मुहूर्तचिन्तामणिः

पं. कपिलेश्वरशास्त्री

[illegible]

प्रकाशक
चौखम्बा अमरभारती प्रकाशन
पत्रमञ्जूषा–संख्या ११३८
के. ३७/१३०, गोपाल मन्दिर लेन
वाराणसी–२२१००१ (भारत)
फोन : ३३३५०८

© चौखम्बा अमरभारती प्रकाशन, वाराणसी–२२१००१

पंचम संस्करण, सन् १९८९
वि.सं. २०४५ (पुनः मुद्रित २००८ ई.)
मूल्य : रु. ८०.००

अन्य प्राप्तिस्थान
चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय
सी.के. २८/१५, ज्ञानवापी-चौक
वाराणसी - २२१ ००१
फोन : ०५४२-२४०११७०

HARIDAS SANSKRIT SERIES
185
*****

THE

MUHŪRTACHINTĀMAṆĪ

OF

ŚRĪ RĀMADAIVAJÑA

Edited with

MAṆIPRABHĀ HINDĪ COMMENTARY

By

Pt. KAPILEŚVARA ŚĀSTRĪ
Jyautiṣāchārya & Gold Medalist

Chaukhamba Amarabharati Prakashan

Oriental Publishers & Foreign Book-Sellers

Post Box No. 1138

K. 37/130, Gopal Mandir Lane

Publishers
Chaukhamba Amarabharati Prakashan
Post Box No. 1138
K. 37/130, Gopal Mandir Lane
Varanasi-221 001 (India)
Phone : 333508

© Chaukhamba Amarabharati Prakashan
Varanasi-221 001

Also can be had from
Chaukhamba Sanskrit Pustakalaya
Kachauri Gali

भूमिका

कर्मप्रधान विश्वके आर्य जनोंके कर्मफलकी कामनासे मेरे पूर्व महर्षियोंने दिग्-देश-काल-ज्ञापक शास्त्र (ज्यौतिष) के कितने निबन्ध लिखे हैं। क्योंकि दिग्-देश-कालानुकूल कर्म ही यथार्थ फल फलते हैं, अन्यथा उद्योगों और उपकरणोंके रहते हुए भी बहुतेरे कर्म विफल होते हैं, आधुनिक वैज्ञानिकोंने भी सिद्ध किया है।

वस्तुतः विश्वके वस्तुमात्र आकाशस्थ ग्रह–नक्षत्रों की किरणसे ही अच्छे या बुरे होते हैं। किस समय किस वस्तुके ऊपर किस ग्रह और नक्षत्रकी कैसी किरणें पड़ेंगी और उसका परिणाम क्या होगा? इस विषयका ज्ञान महर्षियोंके किये जातक और मुहूर्तके निबन्धोंसे ही होता है। आजकल मुहूर्तग्रन्थोंमें श्रीरामाचार्यका 'मुहूर्तचिन्तामणि' वस्तुतः मणिकी तरह परमोच्च स्थान पारहा है। इसके आरम्भमें ग्रन्थकर्त्ताने—

क्रियाकलापप्रतिपत्तिहेतुं संक्षिप्तसारार्थविलासगर्भम्।
अनन्तदैवज्ञसुतः स रामो मुहूर्तचिन्तामणिमातनोति ॥

यह सार्थक वचन लिखा है। वस्तुतः इस ग्रन्थमें प्रायः किसी भी आवश्यक कर्मका मुहूर्त्त अलभ्य नहीं है, जिसके लिये पाठकोंको किसी दूसरे मुहूर्त ग्रन्थकी शरण लेनीपड़े।

इस ग्रन्थके 'संक्षिप्तसारार्थविलासगर्भम्' होनेके कारण स्वयं ग्रन्थकर्त्ताने 'प्रमिताक्षरा' टीका और ग्रन्थकर्त्ताके भ्रातुष्पुत्र[1] (भतीजे) ने 'पीयूषधारा'

---

१. श्रीनीलकण्ठ दैवज्ञके पुत्र श्रीगोविन्द दैवज्ञ।

टीका की जिनमें ग्रन्थोंके प्रत्येक विषयोंकी ऊहापोह की गई है। अनन्तर कालके चक्रमें संस्कृतकी दयनीय दशा होते-होते उन दोनों टीकाओंसे साधारण समाजका सम्पर्क धीरे-धीरे हटता गया और ग्रन्थके अर्थ जटिल होते गये। यहाँ तक कि साधारण समाजको कौन कहे, सामान्य पण्डितोंकी भी पहुँच उन संस्कृत टीकाओंमें नहीं की तरह होने लगी और हो गई। इस परिस्थितिको देख कर साधारण समाजमें ग्रन्थकी मर्यादा कायम रखनेकी कामनासे देशके हितैषी पुस्तकालयाध्यक्षोंने कई तरहकी हिन्दी टीकायें निकालीं। मानव समाजमें इस ग्रन्थकी इतनी अधिक उपयोगिता है कि हिन्दी टीकाके कई संस्करण होने पर भी इस ग्रन्थकी अधिकतर माँग रहती ही है। आजतक हिन्दी टीकाओंमें प्रायः इस तरहका कोई ऐसा अद्भूत संस्करण मुझे देखनेमें नहीं आया कि जिससे साधारण संस्कृत प्रेमी और हिन्दी भाषियोंको प्रकृत ग्रन्थका यथार्थ अभिप्राय लग जाता हो और उससे वे किसीकी सहायता बिना अपनी आवश्यकताकी पूर्ति कर सकते हों। इस अभावकी पूर्तिके लिये वर्तमान कठिन समयमें भी तन-मन-धनसे इस संस्कृत साहित्यकी सच्ची सेवा करने वाले वाराणसेय चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालयाध्यक्ष श्रेष्ठिवर बाबू जयकृष्णदासहरिदास गुप्त महोदय ने इस (मुहूर्तचिन्तामणि) ग्रन्थकी ऐसी हिन्दीटीका करनेकी आशा प्रकट की, जिससे ग्रन्थकी पंक्तिका यथार्थ अर्थ व्यक्त होकर उनके विशेष मत मतान्तरोंके भी पूर्ण अर्थका ज्ञान एक छात्रसे लेकर अध्यापकों तक भी अच्छी तरह होवे। उक्त श्रेष्ठिमहोदयके आदेशानुसार प्रकृत ग्रन्थसे सम्बन्ध रखनेवाले बहुतेरे आर्ष और पौरुष ग्रन्थोंकी समालोचना करके मैंने इस ग्रन्थकी अत्यावश्यक अपेक्षित हिन्दी ठीका की। जिसके अन्दर हिन्दी भाषा में ही मूल पद्योंके सच्चे अर्थ, उपपत्ति, उदाहरण और सन्देह स्थलोंमें मतमतान्तर उल्लेख पूर्वक उनके

सिद्धान्त लिखे गये हैं तथा उनके साथ साधारणतया संस्कृत टीकाकी रक्षाकी कामना और छात्रोंको पद्य लगानेकी सुभीतेकी दृष्टिसे प्रत्येक श्लोकके अन्वय भी लिखे गये हैं। मेरी दृष्टिसे इस संस्करणमें ऐसी कोई बात छोड़ी नहीं गई है, जिसके लिए पाठकोंको किसी दूसरे संस्करणकी आवश्यकता पड़े। इसमें कुछ सन्देह नहीं कि साधारण पञ्चाङ्गका ज्ञान रखनेवाले भी इस ग्रन्थके इस संस्मरणसे पूर्णलाभ उठा सकेंगे।

आचार्य (ग्रन्थकर्ता) ने इस अपने ग्रन्थका नाम 'मुहूर्तचिन्तामणि' रखा है। वस्तुतः यह ग्रन्थ मुहूर्तग्रन्थमें मणिकी भाँति होनेके कारण अपने नामको सार्थक कर रहा है। इसके अन्दर क्रमशः १ शुभाशुभ, २ नक्षत्र, ३ संङ्क्रान्ति, ४ गोचर, ५ संस्कार, ६ विवाह, ७ वधूप्रवेश, ८ द्विरागमन, ९ अग्न्याधान, १० राजाभिषेक, ११ यात्रा, १२ वास्तु और १३ गृहप्रवेश प्रकरण बनाये, जिनमें प्रत्येक प्रकरणोंमें उन-उन विषयोंके प्रत्येक भेदोंका विशद विचार किया गया है। समस्त ग्रन्थमें श्लोकोंकी संख्या ४९६ है।

गृहप्रवेश प्रकरणके १० वें श्लोकमें 'भुजभुजेषुचन्द्रैर्मिते १५२२ शके' वाक्यसे आचार्यने शाके १५२२ में इस ग्रन्थकी रचना की। ग्रन्थके अन्तिम ३ श्लोकों (गृ० प्र० प्र० के ८, ९, १०) से इस ग्रन्थकी रचना विदर्भ देशमें नर्मदा नदी के किनारे 'मातृपुर' ग्राममें हुई है। आचार्यके पिताका नाम 'अनन्त देवज्ञ' था और इनके भाईका नाम नीलकण्ठ दैवज्ञ जिनकी रचना 'ताजिक नीलकण्ठी' है। भारतवर्ष भर में 'मुहूर्तचिन्तामणि' का स्थान इतना ऊँचा है कि आरम्भ कालसे आजतक ३५० वर्षोंसे सर्वपूज्य हो रहा है।

प्रकाशक महोदयने इस सर्वमान्य परम प्रिय ग्रन्थको सर्वोपयोगी बनानेमें व्ययाधिक्यकी कुछ भी चिन्ता नहीं करके देश और समाजके

सेवामें बड़ी उदारता दिखाई है इसलिए वे सपरिवार धन्यवाद और शुभाशीर्वाद के पात्र नहीं, प्रत्युत हमारे बड़े श्रेयान् भी हैं।

मैं यावदावश्यक विषयोंके साथ इस ग्रन्थकी 'मणिप्रभा' नामकी हिन्दी टीका लिखकर प्रिय प्रकाशक महोदयको प्रकाशनार्थ अर्पण करते हुए अपने प्रिय पाठकोंसे यह प्रार्थना करता हूँ कि भ्रमवश जो कुछ त्रुटि रह गई या हुई हो उसे सुधार कर कृपया उसकी सूचना देकर कृतार्थ करें। इति।

काशी,
वैशाखी पूर्णिमा
सं० २००५ वि०

चौधरी कपिलेश्वरशास्त्री

विषयानुक्रमणिका

विषय	पृष्ठाङ्क
मङ्गलाचरण	१
ग्रन्थपरिचय	२
शुभाशुभप्रकरण ॥ १ ॥	
तिथियों के स्वामी	३
तिथिवार के योग से सिद्धियोग	४
मृत्यु और दग्धयोग	५
क्रकच योग	७
तिथियों में वर्ज्य कार्य	८
दग्ध-विष-हुताशन और यमघण्ट योग	८
शून्य तिथियाँ	१०
तिथि और नक्षत्र से निषिद्ध योग	११
शून्य नक्षत्र	१२
शून्य राशियाँ	१३
शून्य लग्न	"
शून्य तिथ्यादिका प्रहार	१४
तिथिवारनक्षत्र के योग से निन्द्य योग	१५
कार्य भेद से सिद्धि योग का त्याग	१६
आनन्दादि २८ योग	१७
" का विचार	१८
" " कोष्ठ	१९
अशुभ योगोंका परिहार	"
रवियोग	२०
सर्वार्थसिद्धियोग	२०–२१
उत्पातादि ४ योग	२२
देशभेद से दुष्टयोगों का परिहार	२३
शुभकार्यों में वर्ज्य विषय	२३–२४
शुभदोत्पातका विवरण (वि)	२४–२५
ग्रहणनक्षत्र का त्याग काल	२६
शुभ कार्यों में वर्ज्य पञ्चाङ्ग दोष	"
रन्ध्रतिथियाँ	२७
कुलिकादिविचार	२८
" कोष्ठक	२९
दिनभेद से दुष्ट मुहूर्त	३०
शुभकार्यमें होलाष्टक त्यागने का देश	३१
पूर्वोक्त मृत्युयोगादिका परिहार	"
अयोगों का परिहार	३२
भद्राका विवरण	३३
भद्रा जानने का कोष्ठ	३४
भद्राके, मुखपुच्छ विभाग	"
भद्रा की उत्पत्ति (वि०)	३५
भद्राकी स्थिति	३७
गुरुशुक्रास्तादि में वर्ज्यकर्म	३८
सिंह-मकर-वक्र-अतीचार गत गुरु का दोष	३९
सिंहस्थ गुरुका परिहार	४०
" "	४१
नीचस्थ गुरुका परिहार	४२
विलुप्ताब्द और उसका अपवाद	४२
वारप्रवृत्तिका ज्ञान	४३
कालहोरा का ज्ञान	४५
कालहोरा जानने का कोष्ठ	४७
कालहोराका प्रयोजन	"
मन्वादि और युगादि	४८
मनुओं के नाम (वि०)	४९

विषय	पृष्ठाङ्क
नक्षत्र प्रकरण ॥ २ ॥	
नक्षत्रों के स्वामी	५०
ध्रुव-स्थिर नक्षत्र	„
चर–चल „	५१
उग्र-क्रूर „	५१
मिश्र-साधारण नक्षत्र	५२
क्षिप्र-लघु „	„
मृदु-मैत्र „	„
तीक्ष्ण-दारुण „	५३
ऊर्ध्व-अध-तिर्यङ् नक्षत्र	„
भूषण-वस्त्रधारण मुहूर्त्त	५४
नये वस्त्र के जलने फटने और पंकित होने का फल	५५
दुष्टदिनों में वस्त्र धारणकी व्यवस्था	५६
लतावृक्षादिरोपण, राजदर्शन, मद्यनिर्माण और पशुव्यापार के मुहूर्त्त	५६
पशुरक्षा और गोशाले में प्रवेश निर्गम के मुहूर्त	५७
औषध खाने और सिलाई करने का मुहूर्त	५८
क्रयविक्रय का मुहूर्त	„
बेचने और दुकान खोलने का मुहूर्त	५९
घोड़े और हाथी के व्यवहार का मुहूर्त	„
अश्वचक्र (वि०)	६०
जेवर और वस्त्र वनाने का मुहूर्त	„
सिक्का ढालने का मुहूर्त	६१
शस्त्रधारण और शय्यारोहण	६२
अन्धादि नक्षत्र	„
„ नक्षत्र का फल	६३
धनव्यवहार में निषिद्धनक्षत्र	६४
जलाशय और नृत्यारम्भ	६५
नौकरी का मुहूर्त	६६

विषय	पृष्ठाङ्क
क़र्ज देने लेने का मुहूर्त	६६
हल चलाने „ „	६७
बीज बोने का „	६८
शिराछेदन-विरेचन-वमन और धर्म क्रिया	६९
फसल काटने का मुहूर्त	७०
दांवन और धान्यरोपण	„
अन्न रखने और बढ़ाने का मुहूर्त	७१
शान्ति और पौष्टिककर्म	„
हवन विचार	७२
हवन में अग्निवास	७३
नवान्न भक्षण	७४
नौकानिर्माण	७५
वीरसाधन अभिचार	७६
रोगमुक्त का स्नान	„
शिल्पविद्या का मुहूर्त	७७
दिव्य परीक्षा मुहूर्त	७८
नाड़ीनक्षत्र और जातिनक्षत्र	७८-७९
शुभकार्यों में सामान्य लग्नशुद्धि	७९
रोगारम्भ में नक्षत्रफल	„
„ मरणसूचक नक्षत्रादि	८१
प्रेतक्रिया और पञ्चक में त्याज्यकर्म	„
जलावन रखने का मुहूर्त	८२
त्रिपुष्कर और द्विपुष्कर योग	८३
पुतलादाह में निषिद्ध समय	८४
पुतलादाह में कर्ता का शुभाशुभ	„
अभुक्तमूल	८५
मतान्तर से अभुक्तमूल	८६
मूल और आश्लेषा में जन्मका फल	८७
मूल का निवास	८९
जन्म में निषिद्ध समय	„
नक्षत्रों की तारायें	९०
„ आकृति	„

विषय	पृष्ठाङ्क
नक्षत्रों का विशेष कोष्ठ	९२
जलाशयादिकी प्रतिष्ठा	”
सङ्क्रान्तिप्रकरण ॥ ३ ॥	
सङ्क्रान्ति के नाम और फल	९४
समयभेद सङ्क्रान्तिफल	९५
राशिभेद से सङ्क्रान्ति के नाम	९७
सङ्क्रान्ति का पुण्यकाल	”
मध्यरात्रि में सङ्क्रान्ति का पुण्यकाल और अयन में विशेषता	९८
सन्ध्या का प्रमाण और उससे अयन सङ्क्रान्ति की विशेषता	९९
पुण्यकाल में विशेषता	१००
सायन सङ्क्रान्ति	”
सम-बृहत् जघन्य नक्षत्र	१०२
सङ्क्रान्ति के मुहूर्त और फल	१०३
वर्ष का विंशोपक	१०४
सङ्क्रान्ति में सूर्यकी स्थिति	”
सङ्क्रान्ति के वाहनादि	१०५
सङ्क्रान्ति के नक्षत्र से जन्मर्क्षका शुभाशुभ फल	१०८
ग्रहबल में कर्तव्य कार्य	”
अधिमास और क्षयमास	१०९
गोचरप्रकरण ॥ ४ ॥	
जन्मराशि से ग्रहों का शुभ और वेधस्थान	११०
ग्रहों के वेध में भेद	११२
जन्मराशि से ग्रहण का फल	११३
अशुभग्रहण की शान्ति	११४
चन्द्रबल में विशेषता	११५
पक्षभेद चन्द्रबल	११६
ग्रहशान्ति के लिये रत्नधारण	”
ग्रहों के रत्न	”
अल्पमूल्यक रत्न और ताराज्ञान	११७
ताराओं के नाम	११८
दुष्टताराओं की शान्ति	”
चन्द्रमा की अवस्था	११९
” ” ” के नाम	१२०
” ” ” का कोष्ठ	१२१
ग्रहशान्ति के लिये औषध	१२२
ग्रहों के मन्त्र और दानवस्तु	१२३
राशिसञ्चार में ग्रहों का काल	१२४
दुष्टतिथ्यादि में दान	”
राशि में ग्रहों का फलकाल और मास में जन्मर्क्ष का फल	”
संस्कारप्रकरण ॥ ५ ॥	
संस्कारों का विवरण (वि)	१२५
प्रथम रजोदर्शन में शुभ समय	१२६
” ” उत्तम-मध्याधम नक्षत्र	”
” ” निषिद्ध काल	”
ऋतुमती का स्नानकाल	१२७
गर्भाधान में निषिद्ध काल	”
गर्भाधान का मुहूर्त	१२८
गर्भाधान में लग्नशुद्धि	”
सीमन्तसंस्कारः	१२९
गर्भ के मासेश्वर	१३०
पुंसवन और विष्णुपूजा	”
जातकर्म-नामकरण	१३१
प्रसूती स्नान	”
बालक के दाँत निकलने का फल	१३२
दोला रोहण में चक्रशुद्धि	१३३
दोलारोहण और निष्कासन	१३४
प्रसूता स्त्री का जलपूजन	”
अन्नप्राशन मुहूर्त	१३५

विषय	पृष्ठाङ्क
अन्नप्राशन में लग्नशुद्धि	१३५
" " ग्रहों का स्थानफल	१३६
बालक का भूम्युपवेशन	"
भूम्युपवेशन में जीविका परीक्षा	१३७
बालक का ताम्बूलभक्षण	१३८
कर्णवेध मुहूर्त	"
कर्णवेध में लग्नशुद्धि	१३९
शुभकर्मों में निषिद्धकाल	"
गुरु शुक्र के बाल्य और वृद्धत्व	१४०
" " में मतान्तर	१४१
मुण्डनमुहूर्त	"
चूड़ाकरण में केन्द्रगत ग्रहों के फल	१४२
माता के गर्भवती रहने पर मुण्डन का निर्णय	१४३
मुण्डन में दुष्टतारा का अपवाद	"
ऋतुमती के बालक के मुण्डन में व्यवस्था	"
साधारण क्षौर	१४४
क्षौरकर्म में विशेष	१४५
दाढ़ी बनाने का मुहूर्त	"
अक्षरारम्भ का मुहूर्त	१४६
विद्यारम्भ का मुहूर्त	"
व्रतबन्धन का समय	१४७
" मुहूर्त	१४८
उपनयन में निन्दित ग्रहसंख्या	१४९
" लग्नशुद्धि	१५०
वर्णों और वेदों के स्वामी ग्रह	"
वर्णेश और वेदेशों का प्रयोजन	१५१
जन्ममासादि में उपनयन का महत्त्व	"
उपनयनादि में गुरुशुद्धि	१५२
अशुभ गुरु का परिहार	"
उपनयन में निषिद्ध काल	१५३

विषय	पृष्ठाङ्क
उपनयन के लग्न में ग्रहों का नवांश फल	१५४
चन्द्रमा के नवांश में विशेषता	"
उपनयन लग्न से केन्द्रगत ग्रहों का फल	१५५
उपनयन में ग्रहयोग फल	"
" ग्रहनवांशगत चन्द्रफल	"
उपनयन में अनध्याय	१५६
प्रदोष	"
ब्रह्मौदन में विशेषता	"
वेदानुसार उपनयन के नक्षत्र	१५८
उपनयन में माता के रजस्वला होने पर परिहार	१५८
क्षत्रियों के छुरिका बन्धन का मुहूर्त	१५९
केशान्तकर्म और समावर्तन	"

विवाहप्रकरण ॥ ६ ॥

विषय	पृष्ठाङ्क
विवाह का विवरण	१६०
विवाह में समय की प्रधानता	१६१
प्रश्नलग्न से विवाह योग	"
" कन्या का वैधव्ययोग	१६२
" कन्या को कुलटा और	
" मृतवत्सा होने का योग	१६३
" विवाहभंग योग	"
वैधव्य योग की शान्ति	"
प्रश्नलग्न से कन्या की सन्ततिका विचार	१६५
प्रश्नकाल में निमित्त वश शुभाशुभ फल	१६६
कन्यावरण का मुहूर्त	"
वरवरण का "	१६७
कन्या का विवाह काल और ग्रहशुद्धि	"
विवाह में विहित मास	१६९
जन्म मासादि में विवाह का विधिनिषेध	"

विषय	पृष्ठाङ्क
ज्येष्ठ की व्यवस्था	१७०
एक कुल में विवाहादिकी व्यवस्था	"
निश्चय होनेपर मरणशौचमेंव्यवस्था	१७१
विवाहानन्तर मुण्डनादि की व्यवस्था	"
दुष्टनक्षत्रों में उत्पन्न कन्या का फल	१७२
चरणभेद से दुष्ट नक्षत्रका परिहार	१७३
विवाह में गणना की प्रधानता	"
" मेलापक के ८ भेद	१७४
वर्णगुण का विचार	"
वश्य " "	१७६
तारा " "	१७७
योनि " "	१७८
ग्रहमैत्री " "	१८०
गण " "	१८२
भकूट " "	१८४
दुष्टभकूट का परिहार	१८६
नाड़ीविचार	१८७
नाड़ी और गणदोष का परिहार	१८९
नौकरी विवाहादि में नक्षत्रमेलापक (नृदूर योग)	"
वर्गविचार	१९१
पूर्वमध्य पर भाग नक्षत्र	"
राशीश और नवांशविचार	१९२
होराविचार	१९३
त्रिशांश और द्रेष्काण	१९५
द्वादशांश और षड्वर्गफल	१९६
त्रिविधगण्डान्त	१९७
कर्त्तरीदोष	१९९
ग्रहयोग से चन्द्रफल	१९९
अष्टम लग्न का दोष और परिहार	२००
लग्न में जन्मकालीन अष्टम और	

विषय	पृष्ठाङ्क
शुभकार्यों में वर्ज्य नक्षत्रों की विषघटी	२०२
विषघटी दोष का परिहार	२०४
दिन के १५ मुहूर्त्तों के नाम	२०५
रात के " "	"
दिनभेद से त्याज्य मुहूर्त्त	२०६
विवाह में विहित नक्षत्र और अभिजित् का मान	"
" पञ्चशलाकावेध	२०८
सप्तशलाकावेध	२०९
पापाक्रान्तादिनक्षत्रों का परिहार	२११
विवाह मे लत्ता दोष	"
" पात दोष	२१२
क्रान्तिसाम्य नाम का महापात दोष	"
खार्जूर का एकार्गल दोष	२१४
उपग्रह दोष पात-उपग्रह-लत्ता दोषों का परिहार और अर्धयाम दोष	२१६
कुलिक दोष	२१७
मासभेद से दग्ध तिथियाँ	२१८
जामित्र दोष	"
एकार्गल आदि दोषों का परिहार	२१९
देशभेद से दोषों का परिहार	२२०
दश योगों के नाम और फल	"
पञ्च बाण दोष	२२२
व्यास के मत से बाण दोष और उसका अपवाद	"
समय, कर्म और वार भेद से बाण दोष का परिहार	२२३
ग्रहदृष्टिका विवरण	"
उदयास्त शुद्धि	२२४
लग्नेश और नवांशेश की दृष्टि से	

विषय	पृष्ठाङ्क
उदयास्तशुद्धि में प्रकारान्तर	२२६
सङ्क्रान्ति दोष	"
ग्रहों की सङ्क्रान्तिघटी	"
पङ्गु अन्ध और बधिर लग्न	२२७
अन्य मत से पङ्ग्वन्धादि लग्न	२२८
बधिरादि लग्नों के फल	"
विवाह में प्रशस्त नवांश	२२९
नवांशों में विशेषता	"
लग्नभङ्गयोग	"
बिवाह लग्नमें ग्रहों के शुभ स्थान	२३०
कर्तरी आदि दोषों का परिहार	"
वर्ष आदि दोषों "	२३१
दोषोंके परिहारमें ग्रहों कीविशेषता	२३२
लग्न में ग्रहों का विंशोपक	२३३
ग्रहों से श्वसुर आदि का विचार	"
सङ्कीर्ण जातियों के विवाहका मुहूर्त	२३४
गान्धर्वादि विवाह में नक्षत्रशुद्धि	"
वैवाहिक उपकरणों के आरम्भ का मुहूर्त	२३५
वेदी का प्रमाण और मण्डप उठाने का मुहूर्त	"
विवाह के पूर्व वर वधू को तेल लगाने का मुहूर्त	२३६
मण्डप में स्तम्भ रोपण	"
गोधूलि लग्न की प्रशंसा	२३७
समय भेद से गोधूलिका	२३८
गोधूलि में वर्जनीय	"
मेषादिराशि में सूर्य की गति	२३९
इष्ट काल में सूर्य का स्पष्टीकरण	२४०
लग्न में अभीष्ट नवांश का आनयन	"
लग्न और सूर्य को जानकर [illegible]	[illegible]

विषय	पृष्ठाङ्क
लग्न और इष्टकाल में विशेष	२४२
विवाहमें वर्जनीय दोषोंका उपसंहार	२४३

बधूप्रवेशप्रकरण ॥ ७ ॥

वधूप्रवेश का समय	२४५
" तिथिनक्षत्र	२४६
विवाहानन्तर पतिगृह में स्त्री की स्थिति का मास फल	२४६

द्विरागमन प्रकरण ॥ ८ ॥

द्विरागमन व्यवस्था (टीका)	२४७–२४९
द्विरागमन का मुहूर्त	२४९
द्विरागमनमेंशुक्रकाविचारऔरफल	२५०
सम्मुख शुक्र का परिहार	"
" " विशिष्ट अपवाद	२५१

अग्न्याधानप्रकरण ॥ ९ ॥

अग्न्याधान का अर्थ	२५२
" मुहूर्त	२५३
" लग्नशुद्धि	"
यज्ञकर्तृयोग	२५४

राजाभिषेकप्रकरण ॥ १० ॥

राजाभिषेक का समय	२५४
राजाभिषेकमें नक्षत्र और लग्नशुद्धि	२५५
" पापग्रहों का स्थान फल और उसका परिहार	"
" स्थिरसम्पत्ति का योग	२५६

यात्रा प्रकरण ॥ ११ ॥

यात्रा की व्युत्पत्ति (टीका)	२५६
यात्रा का मुहूर्त बताने की रीति	"
यात्रा सम्बन्धी प्रश्न का फल	२५७
प्रश्न का दूसरा फल	"
" तीसरा "	२५८
" चौथा "	"

विषय	पृष्ठाङ्क
यात्री के यात्रा दिशा का विचार	२५९
यात्रा दिशा का दूसरा योग	"
यात्रा में समय का फल	२६०
" में तिथिनक्षत्र की शुद्धि	२६१
" में वारशूल और नक्षत्रशूल	२६२
" " में विशेषता	२६३
यात्रा में नक्षत्रवश कालशूल	२६५
क्रूर नक्षत्रों की त्याज्य घड़ियाँ	२६६
जीव-मृत-कर्तरी-ग्रस्त नक्षत्र	"
जीवपक्षादि नक्षत्रों के फल	२६७
अकुल-कुल-कुलाकुल नक्षत्र	२६८
पथि राहु चक्र	२६९
" राहु का फल	२७०
मास भेद से तिथि फल	२७१
" " " का कोष्ठ	२७२
यात्रा में सर्वाङ्क विचार	२७३
महाडल और भ्रमयोग	२७४
हिंवर योग	२७४
घवाड़, टेलक, गौरव योग	"
घातचन्द्र	२७५
" में नक्षत्रों के त्याज्य चरण	"
घाततिथियाँ	२७६
घातवार	"
घातनक्षत्र	२७७
घातलग्न	"
सर्वघात चक्र	२७८
योगिनी विचार	"
काल और पाश दोष	२७९
परिध दण्ड	"
" का परिहार	२८०
सर्वदिग्गमन नक्षत्र और वक्री	

विषय	पृष्ठाङ्क
यात्रा में अयनशुद्धि	२८२
" विविध शुक्र दोष	२८३
शुक्र का वक्रादिदोष और परिहार	"
सम्मुखशुक्र का परिहार और शुक्रास्त में विशेष	२८४
यात्रा में त्याज्य लग्न	२८५
" शुभाशुभ लग्न	"
अशुभ लग्न	"
नौकायात्रा	२८६
दिग्द्वार लग्न की प्रशंसा	"
दूसरा शुभ लग्न	२८७
दिशा के स्वामी	"
" " का प्रयोजन	"
लालाटिक योग	२८८
पर्युषित यात्रा योग	२८९
" यात्रा का योगान्तर	"
यात्रा में समयकाल	२९०
द्वादश भावों के नाम	"
ग्रहवश भावफल	"
वर्णानुसार योगफल	२९१
लग्न से विजययोग	२९२—२९८
योग, अधियोग, योगाधियोग	२९८
विजयादशमी	"
चित्तशुद्धि की प्रशंसा	२९९
यात्रा में निषिद्ध समय	३००
एकदिन के गमन प्रवेश में विशेषता	"
यात्रा में त्रिनवमी दोष	३०१
" पूर्वकर्तव्य	"
नक्षत्र दोष की शान्ति	३०२
दिग्दोहद	३०३
वारदोहद	"

विषय	पृष्ठाङ्क
यात्राकाल का कर्तव्य	३०४
यात्राकालिक दिग्वाहन	"
यात्रा में निर्णयस्थान	"
वर्णक्रम से प्रस्थान की वस्तुएँ	३०५
प्राचीन मत से प्रस्थान का प्रमाण	"
प्रस्थान में दूसरा प्रमाण	३०६
" रुकने की स्थिति और विशेष	३०७
यात्रा में त्याज्य वस्तुएँ	३०८
" त्याज्य वस्तुओं के सेवन का फल	"
अकालवृष्टि दोष	३०९
अकालवृष्टि दोष का प्रमाण और उसकी शान्ति	"
यात्रा में शुभ शकुन	३१०
" अशुभ शकुन	३११
शुभशकुन का परिचय	३१२
वाम भाग के शकुन	३१३
दाहिने भाग के शकुन	"
अपशकुन में कर्तव्य	३१४
यात्रा से लौटने पर गृहप्रवेश	३१४
यात्रा के दोषों का उपसंहार	३१५

वास्तु प्रकरण ॥ १२ ॥

विषय	पृष्ठाङ्क
ग्राम में बसने के शुभाशुभ फल का विचार	३१६
काकिणी विचार और साधन	३१७-३१८
वर्गज्ञान कोष्ठक	३१९
राशि भेद से ग्राम के निषिद्ध भाग	३१९
वास्तु भूमिका पिण्ड और दैर्घ्य विस्तार	३२०
आयानुसार गृहद्वार विचार	३२३
गृहारम्भ में त्याज्य विषय	३२४
गृह में व्यय और अंश का ज्ञान	"
गृह का ध्रुवाङ्क साधन	३२५
गृहों के नामाक्षर	"
सोलह गृहों के नाम	३२६
मतान्तर से आय वार आदि का ज्ञान	"

विषय	पृष्ठाङ्क
गृहपिण्डदीर्घविस्तारसारिणी	३२८-३३०
गृहारम्भ में वृषवास्तु चक्र	"
पूर्व आदि दिशाओं में गृहद्वार गृहारम्भ नक्षत्र सूतिका गृह में प्रवेश मुहूर्त	३३१
प्रकारान्तर से गृहारम्भ विचार	३३२
तिथि भेद से द्वार निषेध	३३३
गृहारम्भ में पञ्चाङ्गशुद्धि	३३४
" राहुमुख का विचार और उसका कोष्ठक	३३५
वास्तुभूमि में कूप का फल	३३६
वास्तु के दिग्भेद से उपकरण गृह	"
गृहारम्भ में ग्रहस्थिति से फल	३३७
" ग्रहस्थिति के योगान्तर	३३८
चिरस्थायी लक्ष्मीयुक्तगृह के ३ योग	"
गृह के अन्य हस्त चले जाने के योग	"
गृहारम्भ में नक्षत्र-वारों के फल	३३९
मतान्तर से द्वारचक्र और फल	३४०

गृह प्रवेश प्रकरण ॥ १३ ॥

विषय	पृष्ठाङ्क
अपूर्व-सपूर्व प्रवेश का मुहूर्त	३४१
पुराने गृह में प्रवेश का विशेष	"
गृहप्रवेश में पूर्व कर्तव्य	३४२
" वास्तु पूजा प्रकार	३४३-३४४
वास्तु पूजा में ८१ कोष्ठक	३४५
गृह प्रवेश में वामरवि का विचार	३४५
" वामरवि और प्रवेश तिथि बोधक कोष्ठ	३४६
" कुम्भ चक्र	"
प्रवेश के बाद कर्तव्य	३४७

ग्रन्थकार का वर्णन—

विषय	पृष्ठाङ्क
पितामह का वर्णन	३४८
पितृ वर्णन	"
स्ववर्णन	"

मुहूर्त्तचिन्तामणिः

सोदाहरणोपपत्तिकेन सान्वय-'मणिप्रभाख्य'
हिन्दीतिलकेन विभूषितः ।

टीकाकारकृतमङ्गलम्—

नत्वा श्रीजगदम्बां भारतभाषास्वरूपिणीं प्रेम्णा ।
रामाचार्यनिबन्धे टीकां हिन्दीगिरा कुर्वे ॥ १ ॥
यद्यप्यस्मिन् ग्रन्थेऽनेके टीकेन्दवः कृताः पूर्वैः ।
पीयूष[1]-प्रमिता[2]-द्या मनीषिमान्या हि ते सर्वे ॥ २ ॥
न च तैरल्पबुद्धीनां सम्यक् तत्त्वार्थसङ्गतिः ।
जायते जातु दुर्दैवात् संस्कृताज्ञत्वकारणात् ॥ ३ ॥
भारती भारतीयानामासीदमरभारती ।
अद्य हिन्दीत्वमापन्ना कुर्वे हिन्दीमहं ततः ॥ ४ ॥

इस ग्रन्थके रचयिता श्रीरामाचार्य शिष्टाचारका पालन करते हुए कर्तव्यको कुशलपूर्वक समाप्त करनेकी कामनासे आकस्मिक विघ्नोंको दूर करनेकेलिए विविध विघ्न विघातक सकल मङ्गलदायक श्रीगणेशजीकी वन्दना करते हैं:—

गौरीश्रवःकेतकपत्रभङ्गमाकृष्य[3] हस्तेन ददन्मुखाग्रे ।
विघ्नं मुहूर्ताकलितद्वितीयदन्तप्ररोहो हरतु द्विपास्यः ॥ १ ॥

---

१. पीयूषधारा टीका, गोविन्द दैवज्ञकी । २. प्रमिताक्षरा टीका, ग्रन्थकारकी ।
३. 'केतकपत्रभागमाकृष्य' ऐसा पाठ निर्विवाद होगा ।

अन्वयः—गौरीश्रवःकेतकपत्रभङ्गं हस्तेन आकृष्य मुखाग्रे दधद् मुहूर्त्तकलित-द्वितीयदन्तप्ररोहः, द्विपास्यः (श्रीगणेशः) 'मम' विघ्नं हरतु ॥ १ ॥

भाषार्थः—श्री पार्वतीजीके कानमें पहनाया हुआ जो केतकी फूल-के पत्तेका अलङ्करण उसका एक टुकड़ा अपने हाथ (शूण्ड) से लेकर मुखाग्र-(ओठ) में देते हुए थोड़ी देरकेलिये जिनके दूसरे दाँतका जन्म मालूम होता है ऐसे 'श्रीगणेशजी' मेरे विघ्नको दूर करें।

तात्पर्य—यह है कि श्रीगणेशजी मेरे इस ग्रन्थके बनानेमें जो विघ्न हो उसे दूर करें। परन्तु उपासकोंको अपने उपास्य देवके किसी विलक्षण रूपके ऊपर विशेष भक्ति होनेके कारण श्रीरामाचार्य श्रीगणेशजीके बाल रूपका वर्णन किये हैं। वास्तवमें श्रीगणेशजीकी मुखाकृति एकदन्ता हाथीके मुखकी तरह है। (इसीलिये उनका नाम एकदन्त[1] भी है) लेकिन जब कभी ये अपनी माता श्रीपार्वतीकी गोदमें बैठे थे, उस समय माताके कानमें पहना हुआ कर्ण-फूलका एक टुकड़ा लेकर बालस्वभावसे मुखमें रखलिये। वह फूलका टुकड़ा भी दाँतकी तरह ही उजले रङ्गका था; इसलिये थोड़ी देर तक देखनेवालोंने समझा कि श्रीगणेशजीके दूसरे दाँतकी उत्पत्ति हुई है।

यहां साहित्यकी दृष्टिसे 'अद्भुतोपा'[2] नामका अलङ्कार है। इसलिये ग्रन्थकर्त्ताने ऐसे अद्भुत रूपवाले श्रीगणेशजीसे अपनी कामनाकी पूर्ति चाही हैं ॥ १ ॥

दूसरे श्लोकसे ग्रन्थकारका नाम और कर्त्तव्य ग्रन्थका परिचय देते हैं:—

क्रियाकलापप्रतिपत्तिहेतुं संक्षिप्तसारार्थविलासगर्भम् ।
अनन्तदैवज्ञसुतः स रामो मुहूर्तचिन्तामणिमातनोति ॥ २ ॥

अन्वयः—अनन्तदैवज्ञसुतः स रामः (रामाचार्यः) क्रियाकलापप्रतिपत्तिहेतुं, संक्षिप्तसारार्थविलासगर्भं, 'मुहूर्त्तचिन्तामणिम्' आतनोति ॥ २ ॥

भाषार्थ—श्रीअनन्ताचार्य नामक दैवज्ञ-(ज्योतिषी) के वह (जगत् प्रसिद्ध) पुत्र श्रीरामाचार्य "जो मुहूर्तचिन्तामणि मनुष्योंके जीवन भरमें जातकर्म-नामकरण वगैरह जितनी क्रियायें हैं, उनके समूहोंके जनानेमें एक कारणरूप है और जिसके मध्य (भीतर) थोडे ही श्लोक बड़े बड़े सुन्दर तथा उत्कृष्ट अर्थों और प्रयोजनोंसे शोभित हैं" ऐसे 'मुहूर्त्तचिन्तामणि' नामक ग्रन्थको अच्छी तरह बनाते हैं ॥ २ ॥

---

१. 'अप्येकदन्तहेरम्ब……'इत्यमरः।

२. "यथाकथञ्चित् सादृश्यं यत्रोद्भूतं प्रतीयते। उपमा नाम सा तस्याः प्रपञ्चोऽयं प्रदृश्यते ॥
यदि किञ्चित् भवेत्पद्मं सुभ्रु विभ्रान्तलोचनम् ।
तत्ते मुखश्रियं धत्तामित्यसावद्भुतोपमा" । इति दण्डिकाव्यादर्शे।

विशेषः—अनन्त दैवज्ञके दो पुत्र थे। बड़े पुत्रका नाम 'श्रीनीलकण्ठ' था, जिनकी बनाई 'ताजिकनीलकण्ठी' है। छोटे पुत्रका नाम 'रामाचार्य' था, जिन्होंने इस मुहूर्तचिन्तामणिकी रचना की[1] ॥ २ ॥

शुभाशुभप्रकरणम् ॥ १ ॥

अब आगे इस ग्रन्थमें प्रकरणके अनुसार प्रत्येक कार्योंके मुहूर्त कहेंगे। मुहूर्तों में मास-पक्ष-तिथि-नक्षत्र-योग-राशि-लग्न और समयका संमिश्रण रहता है। तहां पहले किन तिथ्यादिकोंका योग शुभ और किनका योग अशुभ होता है इत्यादि बातोंका विचार करनेकेलिये 'शुभाशुभ' नामका प्रथम प्रकरण रखते हैं। इस शुभाशुभ प्रकरणमें "पञ्चाङ्गमें सबसे पहले तिथिकी गणना होनेके कारण" पहले तिथियोंका उल्लेख उचित जानकर लोक-प्रसिद्ध तिथियोंके पतियोंका निरूपण करते हैं:-

तिथियोंके स्वामी—

तिथीशा वह्निकौ गौरी गणेशोऽहिर्गुहो रविः।
शिवो दुर्गाऽन्तको विश्वे हरिः कामः शिवः शशी ॥ ३ ॥

अन्वयः—वह्निकौ, गौरी, गणेशः, अहिः, गुहः, रविः, शिवः, दुर्गा, अन्तकः, विश्वे, हरिः, कामः, शिवः, शशी 'एते देवाः क्रमेण' तिथीशाः भवन्ति ॥ ३ ॥

भाषार्थः—प्रतिपत्का स्वामी = अग्नि। द्वितीयाका = ब्रह्मा। तृतीयाका = पार्वती। चतुर्थीका=गणेश। पञ्चमीका=सर्पदेव (नाग)। षष्ठीका = कार्तिकेय। सप्तमीका = सूर्य। अष्टमीका = शिव। नवमीका=दुर्गा। दशमीका = यमराज। एकादशीका=विश्वेदेव। द्वादशीका=विष्णु। त्रयोदशीका=कामदेव। चतुर्दशीका=शिव और पूर्णिमाका स्वामी = चन्द्रमा है। अमावसका स्वामी = पितर होते हैं। ॥ ३ ॥

विशेषः—जिस देवताकी जो तिथि कही गई है उस तिथिमें उस देवताकी पूजा-प्रतिष्ठा-शान्ति विशेष हितकर होती हैं। जैसे वराहमिहिरकी संहितामें—

"यत्कार्यं नक्षत्रे तद्दैवत्यासु तिथिषु तत्कार्यम्।
करणमुहूर्त्तेष्वपि तत् सिद्धिकरं देवतानाञ्च" ऐसा लिखा है।

एवं ज्यौतिष शास्त्रमें प्रायः बहुत जगह सङ्केत शब्दोंसे काम लिये जाते हैं। जैसे-विश्व=एकादशी, हरि=द्वादशी, काम=त्रयोदशी, इत्यादि शब्द ग्रन्थमें व्यवहार किये गये हैं इसलिए तिथिके स्थानपर तिथिपतिका नाम लेनेपर उस तिथिका ज्ञान करनेके लिये तिथिपतिका निर्णय आचार्यने किया है ॥ ३ ॥

---

१. इन दोनों भाइयोंकी बनाई और भी पुस्तकें हैं, जिन्हें इस ग्रन्थके अन्तमें लिखूंगा।

तिथियोंकी नन्दा आदि संज्ञा और दोनों पक्षोंमें उनके अशुभ-मध्य शस्तके भेद तथा वारभेदसे सिद्धियोग—

नन्दा च भद्रा च जया च रिक्ता पूर्णेति तिथ्योऽशुभमध्यशस्ताः ।
सितेऽसिते शस्तसमाधमाः स्युः सितज्ञभौमार्किगुरौ च सिद्धाः ॥४॥

अन्वयः—सिते (शुक्ले पक्षे) नन्दा च (तथा) भद्रा च (तथा) जया च (तथा) रिक्ता, पूर्णा, इति तिथ्यः 'क्रमेण' अशुभमध्यशस्ताः भवन्ति । असिते (कृष्णे पक्षे) 'क्रमेण' शस्तसमाधमाः भवन्ति । तथा सितज्ञभौमार्किगुरौ च सिद्धाः (सिद्धयोगाः) भवन्ति ॥ ४ ॥

यहां श्लोकका अर्थ लिखनेके पहले तिथियोंकी संज्ञाका विवरण लिखना आवश्यक है । प्रतिपत्=नन्दा । द्वितीया=भद्रा । तृतीया = जया । चौथ = रिक्ता और पञ्चमी = पूर्णा । फिर-षष्ठी = नन्दा । सप्तमी = भद्रा । अष्टमी = जया । नवमी = रिक्ता और दशमी = पूर्णा । इसी भाँति-एकादशी = नन्दा । द्वादशी = भद्रा । त्रयोदशी=जया । चतुर्दशी = रिक्ता । पूर्णिमा और अमावास्या = पूर्णा कहलाती हैं इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि तीन तीन तिथियोंकी एक एक संज्ञा हुई । जैसेः—

प्र० खं०,	द्वि० खं०,	तृ० खं०,	नाम ।
प्रतिपत्	षष्ठी	एकादशी	= नन्दा ।
द्वितीया	सप्तमी	द्वादशी	= भद्रा ।
तृतीया	अष्टमी	त्रयोदशी	= जया ।
चतुर्थी	नवमी	चतुर्दशी	= रिक्ता ।
पञ्चमी	दशमी	पूर्णिमा	= पूर्णा ।

भाषार्थः—शुक्ल पक्षमें नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता और पूर्णा क्रमसे अशुभ, मध्य और शस्त (उत्तम) होती हैं । अर्थात् शुक्ल पक्षमें ऊपर लिखी हुई प्रथम खण्डकी नन्दा आदि पांच तिथियाँ (पड़िवासे पञ्चमी तक) अशुभ । द्वितीय खण्डवाली (षष्ठीसे दशमी तक) ५ तिथियाँ मध्य और तृतीय खण्डवाली (एकादशीसे १५ तक) ५ तिथियाँ उत्तम होती हैं । इसी तरह कृष्णपक्षमें क्रमसे उत्तम, मध्यम और अधम होती हैं। कृष्ण पक्षमें—पड़िवासे ५मी तक शुभ। ६ठीसे १०मी तक मध्य और ११शीसे १५तक अशुभ होती हैं । एवं शुक्रवारकी नन्दा (१। ६। ११), बुधवारकी भद्रा (२।७।१२), मङ्गलवारकी जया (३।८।१३), शनिवारकी रिक्ता (४। ९। १४) और गुरुवारकी पूर्णा (५। १०। १५) तिथि सिद्धयोग होतो है । स्पष्टताके लिये चक्र देखिये ॥ ४ ॥

संज्ञाः	तिथयः			वारे	योगाः
नन्दा =	१	६	११	शुक्रे	सिद्धाः
भद्रा =	२	७	१२	बुधे	,,
जया =	३	८	१३	भौमे	,,
रिक्ता =	४	९	१४	शनौ	,,
पूर्णा =	५	१०	१५	गुरौ	,,
शुक्लपक्षे—	अशुभाः	मध्याः	शस्ताः		
कृष्णपक्षे	शस्ताः	मध्याः	अशुभाः		

विशेषः—तिथियोंका बल चन्द्रबलके अनुसार होता है। शुक्ल पक्षमें १से ५तक चन्द्रमा क्षीण रहते हैं इसलिये पहली पांच तिथियां अशुभ हैं। ६से १०तक चन्द्रमा मध्य रूप रहते हैं इसलिये ६से १०तक ५तिथियां मध्य और ११से १५तक चन्द्रमा पूर्ण रूप होते हैं अतः आखिरकी पांच तिथियां शुभ होती हैं। कृष्ण पक्षमें–१से ५तक चन्द्रमाके पूर्ण होनेसे शुभ। ६से १०तक चन्द्रमाके मध्यम रूप होनेसे मध्य और ११से १५ तक चन्द्रमाके क्षीण होनेसे अशुभ होती हैं ॥ ४ ॥

तिथि और वारसे योगसे मृत्युयोग एवं नक्षत्र और वारके योगसे दग्धयोग कहते हैं—

नन्दा भद्रा नन्दिकाख्या जया च रिक्ता भद्रा पूर्णसञ्ज्ञा[1] मृताऽर्कात्।
याम्यं त्वाष्ट्रं वैश्वदेवं धनिष्ठाऽऽर्यम्णं ज्येष्ठाऽन्त्यं रवेर्दग्धभं स्यात्॥५॥

अन्वयः—अर्कात् (रविवारात् क्रमेण) नन्दा, भद्रा, नन्दिकाख्या, जया च (पुनः) रिक्ता, भद्रा, पूर्णसंज्ञा मृता (मृत्युयोगाख्या) स्यात्। तथा रवेः (रविवारात् क्रमेण) याम्यं, त्वाष्ट्रं, वैश्वदेवं, धनिष्ठा, आर्यम्णं, ज्येष्ठा, अन्त्यं, दग्धभं (दग्धनक्षत्रं) स्यात् ॥ ५ ॥

भाषार्थः—रविवारको नन्दा (१।६।११), सोमवारको भद्रा (२।७।१२), मङ्गलवारको नन्दा (१।६।११), बुधवारको जया (३।८।१३), गुरुवारको रिक्ता (४।९।१४), शुक्रवारको भद्रा (२।७।१२), और शनिवारको पूर्णा (५।१०। १५) तिथि अधम (मृत्युयोग) होती है।

एवं–रविवारको भरणी, सोमवारको चित्रा, मङ्गलवारको उत्तराषाढ़, बुधवारको धनिष्ठा, गुरुवारको उत्तरफाल्गुनी, शुक्रवारको ज्येष्ठा और शनिवारको रेवती

१. पूर्णसञ्ज्ञाऽधमार्कादिति पाठान्तरम्।

नक्षत्र पड़े तो दग्धयोग होता है। ये मृत्युयोग और दग्धयोग यात्रामें विशेष वराये जाते हैं तथा सामान्य रूपसे शुभकार्योंमें भी वराने योग्य हैं। ५

विशेषः—इस श्लोककी 'पीयूषधारा' टीकामें श्रीगोविन्द दैवज्ञने लिखा है कि—'उक्तं च नारदेन—

आदित्यभौमयोर्नन्दा भद्रा शुक्रशशाङ्कयोः।
जया सौम्ये गुरौ रिक्ता शनौ पूर्णा मृतिप्रदा॥ इति।

अत्र बहुषु नारदसंहितादिपुस्तकेषु 'मृतिप्रदा' इति पाठमाश्रित्य मृतेति पदं प्रायोजि ग्रन्थकृता। तथैवास्माभिर्व्याकृतं च सकलदेशीयशिष्टसम्मतत्वादापामरं तथैव व्यवहारदर्शनाच्च"।

अर्थात् उपर्युक्त नारदजीके श्लोकके अन्तमें 'मृतिप्रदा' ऐसा पाठ देखकर श्रीरामाचार्यने भी यहाँ "......पूर्णा मृताऽर्कात्" ऐसा पाठ रखा और मैं (गोविन्द दैवज्ञ पीयूषधाराकर्त्ता) ने भी सभी देशोंके प्रतिष्ठित विद्वानोंकी ऐसी ही सम्मति तथा प्रत्येक मनुष्यको इसके अनुसार ही व्यवहार करते देखकर उसी तरह 'मृतार्कात्' की व्याख्या की। परन्तु इस प्रकरणमें श्रीवसिष्ठजी के—

"नन्दा भौमार्कयोर्भद्रा शुक्रेन्द्वोश्च जया बुधे।
शुभयोगा गुरौ रिक्ता शनौ पूर्णाऽमृताह्वया"॥

इस वचनमें'शुभयोगा और अमृताह्वया' ये दो शब्द शुभवाचक मिलते हैं। एवं श्री-कश्यपजीके—

"आदित्यभौमयोर्नन्दा भद्रा शुक्रशशाङ्कयोः।
जया सौम्ये गुरौ रिक्ता पूर्णार्कादमृता शुभा"॥

इस श्लोकमें भी 'अमृता और शुभा' दो शब्द शुभवाचक मिलते हैं। इससे यह अनुमान किया जाता है कि पूर्व (पुराने) ग्रन्थोंमें 'पूर्णाऽमृताऽर्कात्' ऐसा पाठ रहा होगा जो काल-क्रमसे लिखने, पढ़ने और पढ़ानेवालोंकी अनवधानतासे 'अ' का लोप होकर 'मृता' बच गया। ऐसा ही गोविन्दजीने भी पीयूषधारामें लिखा है—"वस्तुतस्तु पूर्णा मृतार्कादित्यत्र अकारं प्रश्लिष्य अमृतेति पदं विधेयम्। तत्रामृता अमृतफलदा स्यात्। यथा नन्दा रवावमृता। एवं सोमवारादिष्वपि व्याख्येयं पूर्ववत्। अत्र सम्मतिरूपे जीर्णपुस्तकस्थनारदवाक्ये 'शनौ पूर्णाऽमृ-ताह्वये'–त्यकारादिराकारान्तः पाठः साधीयान्। अमृतेत्याह्वयं नाम यस्याः सा अमृताह्वयेत्यर्थः"।

इस लेखसे यह प्रतीत होता है कि प्रकृत श्लोकका पूर्वार्ध 'शुभयोग' है ऐसी पीयूषधारा-कारकी भी सम्मति थी और प्राचीन नारदसंहितामें भी ऐसाही पाठ था। परन्तु शास्त्रसिद्ध भी बातें व्यवहारसे विरुद्ध होनेपर नहीं मानी जातीं ऐसी एक पुरानी प्रणाली चली आरही है। प्रकृत श्लोकमें मृत्युयोगके सम्बन्धमें पीयूषधाराकारका कहना है कि 'सभी देशोंके शिष्टोंकी सम्मति और प्रत्येक मनुष्यका व्यवहार देखकर मैंने भी इसे 'मृत्युयोग' व्याख्या की; तथा यद्यपि यह प्रमाणोंसे शुभयोग सिद्ध होता है लेकिन 'एवं सत्यपि शुभत्वे शिष्टाचारेण व्यवस्था ज्ञेया' इस लेखसे आजसे साढ़े तीन सौ वर्ष पहले (शाके १५३५) समयसे भी 'मृत्युयोग'

के नामसे व्यवहार किये जानेके कारण यह मृत्युयोग ही माना जाता है। इसलिये इधरके सम्पादकोंने 'पूर्णा मृतार्कात्' के स्थानपर 'पूर्णाऽधमाऽर्कात्' ऐसा पाठ रख दिया है ॥ ५ ॥

तिथि और दिनके योगसे क्रकच तथा सँव्वर्त्त संज्ञक अशुभ योग और दाँत धोनेमें निषिद्ध तिथियाँ—

षष्ठ्यादितिथयो मन्दाद्विलोमं प्रतिपद्बुधे ।
सप्तम्यर्केऽधमाः षष्ठ्याद्यामाश्च रदधावने ॥ ६ ॥

अन्वयः—मन्दात्, विलोमं षष्ठ्यादितिथयः, 'तथा' बुधे प्रतिपत्, अर्के सप्तमी, च (पुनः) रदधावने षष्ठ्याद्यामाः तिथियः अधमाः भवन्ति ॥ ६ ॥

भावार्थः—शनिवारसे उलटे दिन और षष्ठी आदि तिथियोंके योगसे क्रकच नामका अधम योग होता है। जैसे—शनिवारको षष्ठी, शुक्रवारको सप्तमी, गुरुवारको अष्टमी, बुधवारको नवमी, मङ्गलवारको दशमी, सोमवारको एकादशी और रविवारको द्वादशी तिथि अधम (क्रकच योग) होती है।

बुधवारको पड़िवा और रविवारको सप्तमी तिथि होनेसे 'सँव्वर्त्त' नामका अधम योग होता है।

दाँतूनसे दाँत धोने-(दाँतून करने) में षष्ठी, पड़िवा और अमावस ये तिथियां अधम हैं। याने इन तिथियोंमें दाँतून नहीं करना चाहिये। (आम्रपल्लवसे मुखशुद्ध करना चाहिये) ॥ ६ ॥

विशेषः—तिथि तथा वारकी सङ्ख्या मिलकर १३ होनेसे क्रकच योग होता है। इसलिये शनि + षष्ठी = ७ + ६=१३ । शुक्र + सप्तमी = ६ + ७=१३ । वृ० + अष्टमी = ५ + ८ = १३ । बु० + नवमी=४ + ९ = १३ । मं० + दशमी=३ × १०=१३ । सो० + एकादशी=२ + ११ = १३ । रवि + द्वादशी = १ + १२ = १३ । इसमें नारदका वचन—

'त्रयोदश स्युर्मिलने सङ्ख्यायास्तिथिवारयोः ।
क्रकचो नाम योगोऽयं मङ्गलेष्वति-गर्हितः ॥
तथा—सप्तम्यामर्कवारश्चेत् प्रतिपत् सौम्यवासरे ।
सँव्वर्त्तयोगो विज्ञेयः शुभकर्मविनाशकृत्" ॥

काशीखण्डमें दन्तधावनमें निषिद्ध तिथियाँ—

प्रतिपद्दर्शषष्ठीषु नवम्यां रविवासरे ।
दन्तानां काष्ठसंयोगो दहेदासप्तमं कुलम्" ॥ ६ ॥

तिथि भेदसे वर्जित कार्य—

षष्ठ्यष्टमी भूतविधुक्षयेषु नो सेवेत ना तैलपले क्षुरं रतम् ।
नाभ्यञ्जनं विश्वदशद्विके तिथौ धात्रीफलैः स्नानममाद्रिगोष्वसत् ॥

अन्वयः—ना (पुरुषः) षष्ठ्यष्टमीभूतविधुक्षयेषु (तिथिषु क्रमेण) तैल-पले क्षुरं रतं नो सेवेत । विश्वदशद्विके तिथौ अभ्यञ्जनं न सेवेत । तथा अमाद्रिगोषु तिथिषु धात्रीफलैः स्नानं असत् (भवति) ॥ ७ ॥

भाषार्थः—मनुष्य षष्ठी तिथिको तेल नहीं लगावे । अष्टमीको मांस नहीं खाय । चतुर्दशी तिथिको क्षौर कर्म नहीं करे (वाल नहीं बनवावे) और अमावस तिथिको स्त्रीप्रसङ्ग (मैथुन) नहीं करे । त्रयोदशी, दशमी और द्वितीया तिथियोंमें तेल और उबटन नहीं लगावे । एवं अमावस, सप्तमी और नवमी तिथियोंमें आँवला लगाकर स्नान नहीं करे ॥ ७ ॥

विशेषः—यदि षष्ठी शनिवारको पड़े तो तेल लगाने में दोष नहीं हैं । महा अष्टमी (आश्विन शुक्लाष्टमी श्रीदुर्गाष्टमी) को मांस भी खानेमें दोष नहीं । तीर्थ (प्रयाग, काशी वगैरह) में यदि चतुर्दशीमें पहुँचे तो क्षौर कर्ममें भी दोष नहीं और दीपमालिका-(दीवाली) की अमावसमें स्त्री प्रसङ्गमें भी दोष नहीं होता ।

इसमें प्रमाण वचन—

षष्ठी शनैश्चरे तैलं महाष्टम्यां पलानि च ।
तीर्थे क्षौरं चतुर्दश्यां दीपमालासु मैथुनम् ॥ ७ ॥

दग्ध-विष-हुताशन और यमघण्ट योग—

सूर्येशपञ्चाग्निरसाष्टनन्दा वेदाङ्गसप्ताश्विगजाङ्कशैलाः ।
सूर्याङ्गसप्तोरगगोदिगीशा दग्धा विषाख्याश्च हुताशनाश्च ॥ ८ ॥
सूर्यादिवारे तिथयो भवन्ति, मघाविशाखाशिवमूलवह्निः ।
ब्राह्मं करोऽर्कादयमघण्टकाश्च शुभे विवर्ज्या गमने त्ववश्यम् ॥ ९ ॥

अन्वयः—सूर्यादिवारे (क्रमेण) सूर्येशपञ्चाग्निरसाष्टनन्दाः (तिथयः) दग्धाः भवन्ति । वेदाङ्गसप्ताश्विगजाङ्कशैलाः (तिथयः) विषाख्याः भवन्ति । च (पुनः) सूर्याङ्गसप्तोरगगोदिगीशाः (तिथयः) हुताशनाः भवन्ति ॥ एवं, अर्कात्-(रविवारात् क्रमेण) मघा-विशाखा-शिव-मूल-वह्निः ब्राह्मं करः यमघण्टकाः भवन्ति । 'इमे सर्वे कुयोगाः' शुभे विवर्ज्याः । गमने तु अवश्यं विवर्ज्याः ॥ ८-९ ॥

भाषार्थः—रविवारको द्वादशी, सोमवारको एकादशी, मङ्गलवारको पञ्चमी,

बुधवारको तृतीया, गुरुवारको षष्ठी, शुक्रवारको अष्टमी और शनिवारको नवमी 'दग्ध योग' होता है ।

रविवारको चतुर्थी, सोमवारको षष्ठी, मङ्गलवारको सप्तमी, बुधवारको द्वितीया, गुरुवारको अष्टमी, शुक्रवारको नवमी और शनिवारको सप्तमी 'विषयोग' होता है ।

रविवारको द्वादशी, सोमवारको षष्ठी, मङ्गलवारको सप्तमी, बुधवारको अष्टमी, गुरुवारको नवमी, शुक्रवारको दशमी और शनिवारको एकादशी 'हुताशन योग' कहलाता है ।

इसी तरह रविवारको मघा, सोमवारको विशाखा, मङ्गलवारको आर्द्रा, बुधवारको मूला, गुरुवारको कृत्तिका, शुक्रवारको रोहिणी और शनिवारको हस्त नक्षत्र होनेसे 'यमघण्ट' योग होता है । उपर्युक्त 'दग्ध-विष-हुताशन-यमघण्ट' योग शुभ कार्योंमें बराये जाते हैं । विशेष कर यात्रामें अवश्य ही बराने चाहिये ॥८-९॥

पूर्वोक्त अशुभ योगोंके सुगमतासे जाननेका कोष्ठ—

वारोंमें अशुभयोग	रविको	सोमको	मङ्गलको	बुधको	गुरुको	शुक्रको	शनिको
मृत्युयोग	नन्दा १।६।११	भद्रा २।७।१२	नन्दा १।६।११	जया ३।८।१३	रिक्ता ४।९।१४	भद्रा २।७।१२	पूर्णा ५।१०।१५
दग्धयोग	भरणी	चित्रा	उत्तराषाढ़	धनिष्ठा	उत्तरफ०	ज्येष्ठा	रेवती
क्रकच	१२	११	१०	९	८	७	६
सँवर्त्त	७	०	०	१	०	०	०
दग्ध	१२	११	५	३	६	८	९
विष	४	६	७	२	८	९	७
हुताशन	१२	६	७	८	९	१०	११
यमघण्ट	मघा	विशाखा	आर्द्रा	मूल	कृत्तिका	रोहिणी	हस्त

विशेषः—ऊपरके कोष्ठसे यह ज्ञात होता है कि 'शनिवारको' नवमी तिथि दग्ध होती है इसलिये शनिवारको रिक्ता तिथि जहाँ सिद्धयोग बतायी गई है वहाँ चौथ और चतुर्दशी ही जाननी चाहिये ।

आवश्यक कार्यमें यमघण्ट दोषका परिहार—

"विन्ध्यस्योत्तरभागे तु यावदा तु हिमाचलम् ।
यमघण्टकदोषोऽस्ति नान्यदेशे कदाचन ॥
लग्नाच्छुभग्रहः केन्द्रे त्रिकोणे वा स्थितो यदि ।
चन्द्रो वाऽपि न दोषः स्याद्यमघण्टकसम्भवः ॥"

इस प्रमाणसे विन्ध्याचल और हिमालयके बीचवाले (उत्तर भारत) देशमेंही यमघण्ट योगका दोष लागू है। उसमें भी यदि लग्नसे १।४।५।७।९।१० स्थानमें कोई भी शुभग्रह या चन्द्रमा रहे तो यमघण्टका दोष लागू न हो ॥ ८-९ ॥

चैत्रादि बारह मासोंमें शून्य-तिथियाँ—

भाद्रे चन्द्रदृशौ नभस्यनलनेत्रे माधवे द्वादशी
पौषे वेदशरा इषे दशशिवा मार्गेऽद्रिनागा मधौ ।
गोष्टौ चोभयपक्षगाश्च तिथयः शून्या बुधैः कीर्तिता
ऊर्जाषाढतपस्यशुक्रतपसां कृष्णे शराङ्गाब्धयः ॥ १० ॥
शक्राः पञ्च सिते शक्राद्रयग्निविश्वरसाः क्रमात् ।

अन्वयः—भाद्रे चन्द्रदृशौ, नभसि (श्रावणे) अनलनेत्रे, माधवे (वैशाखे) द्वादशी, पौषे वेदशराः, इषे (आश्विने) दशशिवा, मार्गे (अग्रहायणे) अद्रिनागा, मधौ (चैत्रे) गोष्टौ "एताः" उभयपक्षगाश्च तिथयः बुधैः शून्याः कीर्तिताः । तथा, ऊर्जाषाढतपस्यशुक्रतपसां कृष्णे पक्षे क्रमात् शराङ्गाब्धयः शक्राः पञ्च, तथा सिते (शुक्ले पक्षे) शक्राद्रयग्निविश्वरसाः 'क्रमात्' बुधैः शून्याः कीर्तिताः ॥ १० ॥

भाषार्थः—भादो (भाद्रपद) मासके दोनों (शुक्ल और कृष्ण) पक्षोंको पड़िवा और द्वितीया श्रावण (सावन) मासके दोनों पक्षकी तृतीया और द्वितीया, वैशाख मासकी द्वादशी, पौष (पूस) मासकी चौथ और पञ्चमी, आश्विन (कुआर) मासकी दशमी और एकादशी, अग्रहण मासकी सप्तमी और अष्टमी, चैत्र मासकी नवमी और अष्टमी ये तिथियाँ पण्डितोंने शून्य कही हैं ।

इसी तरह कार्त्तिक मासके कृष्णपक्षकी पञ्चमी, आषाढ़ कृष्णपक्षकी षष्ठी, फाल्गुन कृष्णपक्षकी चतुर्थी, ज्येष्ठ कृष्णपक्षकी चतुर्दशी और माघ कृष्णपक्षकी पञ्चमी तिथि शून्य होती है । एवं-कार्तिक शुक्लपक्षकी चतुर्दशी, आषाढ़ शुक्लपक्षकी सप्तमी, फाल्गुन शुक्लपक्षकी तृतीया, ज्येष्ठ शुक्लपक्षकी त्रयोदशी और माघ शुक्लपक्षकी षष्ठी तिथि शून्य होती है । अर्थात् कहे हुये मासोंकी उक्त

तिथियोंमें शुभकार्य नहीं करना चाहिये ॥ १० ॥

विशेषः—इन शून्य तिथियोंके सम्बन्धमें श्रीवसिष्ठजीका वचन है कि ये शून्य तिथियाँ वंश और धनको नाश करनेवालीं हैं। इन तिथियोंमें केवल पितरोंके लिये श्राद्ध (पिण्डदान) करना चाहिये। मङ्गल कार्य नहीं करना चाहिये। जैसे—

"तिथयो मासशून्याख्या वंशवित्तविनाशदाः।
आसु श्राद्धं प्रकुर्वीत नैव मङ्गलमाचरेत् ॥" इति ॥ १० ॥

शून्य तिथि जाननेका कोष्ठ—

मास	चै.	वै.	ज्ये.	आ.	श्रा.	भा.	आ.	का.	अ.	पौ.	मा.	का.
शुक्लपक्ष	९।८	१२	१३	७	३।२	१।२	१०।११	१४	७।८	४।५	६	३
कृष्णपक्ष	९।८	१२	१४	६	३।२	१।२	१०।११	५	७।८	४।५	५	४

तिथि और नक्षत्रके योगसे निषिद्ध योग—

तथा निन्द्यं शुभे सार्पं द्वादश्यां वैश्वमादिमे ॥ ११ ॥
अनुराधा द्वितीयायां पञ्चम्यां पित्र्यभं तथा ।
त्र्युत्तराश्च तृतीयायामेकादश्यां च रोहिणी ॥ १२ ॥
स्वाती-चित्रे त्रयोदश्यां सप्तम्यां हस्त-राक्षसे ।
नवम्यां कृत्तिकाऽष्टम्यां पूभा षष्ठ्यां च रोहिणी ॥ १३ ॥

अन्वयः—तथा (मासशून्यतिथिवत्) द्वादश्यां 'तिथौ' सार्पं 'नक्षत्रं' शुभे (शुभकार्ये) निन्द्यं, आदिमे (प्रतिपदि) तिथौ, वैश्वं नक्षत्रं 'निन्द्यं', द्वितीयायां अनुराधा 'निन्द्या', पञ्चम्यां पित्र्यभं तथा (निन्द्यम्), तृतीयायां त्र्युत्तराश्च 'निन्द्याः' एकादश्यां रोहिणी च (निन्द्या) त्रयोदश्यां स्वाती–चित्रे 'निन्द्ये', सप्तम्यां हस्त राक्षसे 'निन्द्ये', नवम्यां कृत्तिका 'निन्द्या', अष्टम्यां पूभा (पूर्वभाद्रपदा) 'निन्द्या' षष्ठ्यां रोहिणी च (निन्द्या) भवति ॥ ११–१३ ॥

भाषार्थः—'जैसे चैत्रादि मासोंमें शून्य तिथियाँ कही गई हैं उसी तरह' द्वादशी तिथिको आश्लेषा नक्षत्र निन्दित (निषिद्ध) होता है। यों पड़िवाको उत्तराषाढ़, द्वितीयाको अनुराधा, पञ्चमीको मघा, तृतीयाको तीनों उत्तरा (उत्तरा फल्गुनी, उत्तराषाढ़ और उत्तरा भाद्र), एकादशीको रोहिणी, त्रयोदशीको चित्रा

और स्वाती, सप्तमीको हस्त और मूल, नवमीको कृत्तिका, अष्टमीको पूर्वभाद्र और षष्ठीको रोहिणी नक्षत्र निन्दित होते हैं ॥ ११-१२ ॥

विशेषः—इन तिथि-नक्षत्रके योगवाले निन्दित योगोंमें कोई कार्य करनेपर छ महीनेमें मरण होता है । जैसे लल्लाचार्यने कहा है—

'एषु कार्यं कृतं चेत् स्यात् षण्मासान् मरणं ध्रुवम्' ॥ ११-१२ ॥

तिथियोंमें निन्दित नक्षत्रका कोष्ठ—

१	२	३	५	६	७	८	९	११	१२	१३	तिथियों में
उत्तराषाढ़	अनुराधा	तीनों उत्तरा	मघा	रोहिणी	हस्त मूल	पूर्वभाद्र	कृत्तिका	रोहिणी	आश्लेषा	चित्रा स्वाती	निन्द्य नक्षत्र

नोटः—चौथे, दशमी, चतुर्दशी और पूर्णा-अमावसको कोई नक्षत्र निन्दित नहीं हैं ॥

चैत्रादि बारह मासोंमें शून्य नक्षत्र—

कदास्त्रभे त्वाष्ट्रवायू विश्वेज्यौ भगवासवौ ।
वैश्वश्रुती पाशिपौष्णे अजपादग्निपित्र्यभे ॥ १४ ॥
चित्राद्वीशौ शिवाश्व्यर्काः श्रुतिमूले यमेन्द्रभे ।
चैत्रादिमासे शून्याख्यास्तारा वित्तविनाशदाः ॥ १५ ॥

अन्वयः—चैत्रादिमासे 'क्रमेण' कदास्त्रभे (१), त्वाष्ट्रवायू (२), विश्वेज्यौ (३), भगवासवौ (४), वैश्वश्रुती (५), पाशिपौष्णे (६), अजपात् (७), अग्निपित्र्यभे (८), चित्राद्वीशौ (९), शिवाश्व्यर्काः (१०), श्रुतिमूले (११), यमेन्द्रभे (१२) शून्याख्याः ताराः (नक्षत्राणि) भवन्ति । एताः वित्तविनाशदाः भवन्ति ॥ १४-१५ ॥

भाषार्थः—चैत्र मासमें रोहिणी और अश्विनी, वैशाखमें चित्रा और स्वाती, ज्येष्ठमें उत्तराषाढ़ और पुष्य, आषाढ़में पूर्वफल्गुनी और धनिष्ठा, श्रावणमें उत्तराषाढ़ और श्रवणा, भादोंमें शतभिषा और रेवती, आश्विन (कुआर) में पूर्वभाद्र, कार्त्तिकमें कृत्तिका और मघा, अग्रहणमें चित्रा और विशाखा, पौष (पूस) में आर्द्रा, अश्विनी और हस्त, माघमें श्रवणा और मूल तथा फाल्गुनमें भरणी और ज्येष्ठानक्षत्र (शून्य नक्षत्र) धनको नाश करनेवाले हैं । अर्थात् उपर्युक्त शून्य नक्षत्रोंमें कार्य करनेवालोंके धनका नाश होता है । जैसे वसिष्ठजीने अपनी संहितामें कहा है—

"……एषु यत्तु कृतं कर्म धनैः सह विनश्यति" इति ॥ १३-१५ ॥

चैत्रादि बारह मास में शून्य राशियाँ—

घटो झषो गौर्मिथुनं मेष-कन्यालि-तौलिनः ।
धनुः कर्को मृगः सिंहश्चैत्रादौ शून्यराशयः ॥ १६ ॥

अन्वयः—चैत्रादौ 'क्रमेण' घटः (१), झषः (२), गौः, (३), मिथुनम् (४), मेष-(५) कन्या(६)-ऽलि(७)-तौलिनः (८), धनुः (९), कर्कः (१०), मृगः (११), सिंहः (१२) 'एते' शून्यराशयः 'भवन्ति' ॥ १६ ॥

भाषार्थः—चैत्र मासमें कुम्भराशि, वैशाखमें मीन, ज्येष्ठमें वृष, आषाढ़में मिथुन, श्रावणमें मेष, भाद्रमें कन्या, आश्विनमें वृश्चिक, कार्त्तिकमें तुला, अग्रहणमें धनु, पूसमें कर्क, माघमें मकर और फाल्गुनमें सिंह राशि शून्य राशि कही गई हैं ।

कहे हुए मासोंकी शून्य राशियोंमें शुभकार्य करनेपर वंश और धनका नाश होता है । जैसे वसिष्ठजीने कहा है—

"चैत्रादौ मासशून्याख्या वंशवित्तविनाशदाः ।
तस्मात्तान् सम्परित्यज्य शोभनं कारयेत् सुधीः" ॥ इति ॥ १६ ॥

शून्य नक्षत्र और शून्यराशि जाननेका कोष्ठ—

चै.	वै.	ज्ये.	आ.	श्रा.	भा.	आ.	का.	अ.	पौ.	मा.	फा.	मासोंमें
रो. अश्वि	चि. स्वा.	उ.षा. पुष्य	पू.फ. ध.	उ.षा. श्र.	श. रे.	भा. ०	कृ. म.	चि. वि.	आ अ. ह.	श्र. मू.	भ. ज्ये.	शून्य नक्षत्र
कुं. ११	मी. १२	वृ. २	मि. ३	मे. १	क. ६	वृ. ८	तु. ७	ध. ९	क. ४	म. १०	सि. ५.	शून्यराशि

विषम तिथियोंमें शून्यलग्न—

पक्षादितस्त्वोजतिथौ घटैणौ मृगेन्द्रनक्रौ मिथुनाङ्गने च ।
चापेन्दुभे कर्कहरी हयान्त्यौ गोन्त्यौ च नेष्टे तिथिशून्यलग्ने ॥

अन्वयः—पक्षादितः (प्रतिपदातः) ओजतिथौ (विषमतिथौ) 'क्रमेण' घटैणौ (१), मृगेन्द्रनक्रौ (३), मिथुनाङ्गने (५), च (पुनः) चापेन्दुभे (७), कर्कहरी (९), हयान्त्यौ (११), गोन्त्यौ (१३) च 'एते' तिथिशून्यलग्ने इष्टे न भवतः ॥ १७ ॥

भावार्थः—शुक्ल और कृष्ण दोनों पक्षोंकी विषम तिथियोंमें क्रमसे ये शून्य लग्न हैं–पड़िवामें तुला और मकर, तृतीयामें सिंह और मकर, पञ्चमीमें मिथुन और कन्या, सप्तमीमें धनु और कर्क, नवमीमें कर्क और सिंह, एकादशीमें धनु और मीन, त्रयोदशीमें वृष और मीन ये लग्न 'शून्यलग्न' होते हैं, जो शुभकार्योंमें निन्दित हैं। अर्थात् इन शून्य लग्नोंमें जो कर्म किये जाते हैं, वे सब नष्ट हो जाते हैं। जैसे वसिष्ठसंहितामें भी कहा है—

"…………'दग्धसद्मानि यत्कर्म कृतं सर्वं विनश्यति।
तस्माद् दग्धगृहास्त्याज्याः शोभनेष्वखिलेष्वपि' इति ॥ १७ ॥

आवश्यक कार्योंमें शून्य तिथि प्रभृति दोषोंका हरिहार—

तिथयो मासशून्याश्च शून्यलग्नानि यान्यपि ।
मध्यदेशे विवर्ज्यानि न दूष्याणीतरेषु तु ॥ १८ ॥
पङ्ग्वन्धकाणलग्नानि मासशून्याश्च राशयः ।
गौडमालवयोस्त्याज्या अन्यदेशे न गर्हिताः ॥ १९ ॥

अन्वयः—मासशून्याश्च याः तिथयः, शून्यलग्नानि अपि यानि, 'तानि' मध्यदेशे विवर्ज्यानि; इतरेषु 'देशेषु' तु (तानि) दूष्याणि न भवन्ति ॥ १८ ॥

पङ्ग्वन्धकाणलग्नानि 'यानि' मासशून्याश्च 'ये' राशयः, 'ते सर्वे' गौडमालवयोः 'देशयोः' त्याज्याः; अन्यदेशे 'ते' गर्हिताः (वर्जिताः) न 'भवन्ति' ॥ १९ ॥

भावार्थः—पहले (दशवें श्लोकमें) कही हुई मासशून्य तिथियाँ और (१६–१७ श्लोकमें) कहे हुए शून्य लग्न जो हैं, वे सब केवल मध्यदेशमें ही बराये जाते हैं। दूसरे देशोंमें ये दूषित नहीं हैं। अर्थात् मध्यदेशमें ही इनका दोष लागू है, दूसरे देशोंमें नहीं।

पङ्गु लग्न[1] अन्ध लग्न[2] और काण लग्न[3] एवं १६ वें श्लोकमें कही हुई मासशून्य राशियाँ जो हैं वे सब गौड़ देश और मालव देशमें ही वर्जित हैं, अन्य देशोंमें ये वर्जित नहीं हैं ॥ १८–१९ ॥

---

१. दिनमें कुम्भ और रातमें मीन ये दो लग्न पङ्गु होते हैं।

२. दिनमें मेष–वृष–सिंह और रातमें मिथुन–कर्क–कन्या ये ६ लग्न अन्ध होते हैं।

३. काण लग्न किसी भी ग्रन्थमें नहीं बताया गया है। जहाँ कहीं पङ्गु, अन्ध और बधिर लग्नोंकी ही गिनती की गई है। जैसे वसिष्ठका वचन—

विशेषः—यहाँ प्रसङ्गवश मध्यदेशका परिचय कराना आवश्यक है। वाराही संहितामें मध्यदेश ये हैं—

"भद्रारिमेदमाण्डव्यशाल्वनीपोज्जिहानसङ्ख्यानाः ।
मरुवत्सघोषयामुनसारस्वतमत्स्यमाध्यमिकाः ।
माथुरकोपज्योतिषधर्मारण्यानि शूरसेनाश्च ।
गौरग्रीवौ द्देहिकपञ्चगुडाश्वत्थपाञ्चालाः ॥
साकेतककुक्कुकुरुकालकोटिकुराश्च पारियात्रनगः ।
औदुम्बरकापिष्ठकगजाह्वयाश्चेति मध्यमिदम्" ॥

वर्त्तमान समयमें इन देशोंके नाममें बहुत परिवर्त्तन हो गया है ॥ १८-१९ ॥

तिथि-वार-नक्षत्रोंके योगसे निन्द्य योग—

वर्जयेत्सर्वकार्येषु हस्तार्कं पञ्चमीतिथौ ।
भौमाश्विनीं च सप्तम्यां, षष्ठ्यां चन्द्रैन्दवं तथा ॥ २० ॥
बुधानुराधाष्टम्यां, दशम्यां भृगुरेवतीम् ।
नवम्यां गुरुपुष्यं चैकादश्यां शनिरोहिणीम् ॥ २१ ॥

अन्वयः—पञ्चमीतिथौ हस्तार्कं, सप्तम्यां भौमाश्विनीं, षष्ठ्यां चन्द्रैन्दवं, तथा अष्टम्यां बुधानुराधां, दशम्यां भृगुरेवतीं, नवम्यां गुरुपुष्यं, एकादश्यां शनिरोहिणीं च सर्वकार्येषु वर्जयेत् ॥ २०-२१ ॥

भाषार्थः—पञ्चमी तिथिको रविवार और हस्त नक्षत्र ।
सप्तमी तिथिको मंगलवार और अश्विनी नक्षत्र ।
षष्ठी तिथिको सोमवार और मृगशिरा नक्षत्र ।
अष्टमी तिथिको बुधवार और अनुराधा नक्षत्र ।
दशमी तिथिको शुक्रवार और रेवती नक्षत्र ।
नवमी तिथिको गुरुवार और पुष्य नक्षत्र, और
एकादशी तिथिको शनिवार और रोहिणी नक्षत्र ।

इन्हें सभी कार्योंमें निन्दित होनेके कारण बराना चाहिये ।

"मेषादिरन्धकं षट्कं चत्वारो बधिराः स्मृताः ।
द्वौ पङ्गू चेति विज्ञेयाविस्येतद्राशिलक्षणम् ॥"

अर्थात् १।२।३।४।५।६ राशि अन्ध, ७।८।९।१० बधिर और ११।१२ पङ्गु हैं । स्वयं आचार्य भी विवाह प्रकरणके ७८-७९-८० श्लोकोंमें पङ्गु-अन्ध-बधिर लग्नोंकी ही परिभाषा किये हैं । इसलिये काणके स्थानपर जड़ लग्न पाठ ठीक होगा ।

यद्यपि दिन और नक्षत्रोंके योग आगेके २८-२९ वें श्लोकके अनुसार सिद्धयोग हैं, परन्तु उनमें विशिष्ट तिथियोंके योगसे वे (मधुमें घी मिलनेकी तरह) विष (अशुभ) योग हो जाते हैं ॥ २०-२१ ॥

विशेषः—यहाँ वसिष्ठके मत से भेद (फर्क) पड़ता है । जैसे वसिष्ठजी का वचन—

"अर्कवारेऽग्निपञ्चम्यौ, सोमे चित्रा द्वितीयया ।
कुजे पूर्णेन्दुरोहिण्योः, सप्तमीयाम्ययोर्बुधे ।
गुरौ मित्रत्रयोदश्योः, षष्ठीश्रवणयोः सिते ।
पौष्णाष्टम्योः शनावेते योगा हालाहलाह्वयाः ॥
एषु योगेषु कर्त्तव्यं शत्रूच्चाटनमारणम् ।
विवाहादिषु कार्येषु नियतं निधनप्रदम्" ।

अर्थात्—रविवारको-पञ्चमी तिथि और कृत्तिका नक्षत्रका योग ।

सोमवारको-द्वितीया	"	"	चित्रा	"	"
मङ्गलवारको-पूर्णिमा	"	"	रोहिणी	"	"
बुधवारको-सप्तमी	"	"	भरणी	"	"
गुरुवारको-त्रयोदशी	"	"	अनुराधा	"	"
शुक्रवारको-षष्ठी	"	"	श्रवण	"	"
शनिवारको-अष्टमी	"	"	रेवती	"	"

ये हालाहल (विष) संज्ञक योग हैं ।

इन विषयोगोंमें शत्रुओंके उच्चाटन और मारणका प्रयोग करना चाहिये । विवाह आदि शुभकार्योंमें ये योग निश्चय मरण करानेवाले हैं । अर्थात् इन विषयोगोंमें शुभकर्मकरनेवालों का ज़रूर मरण होता है ॥ २०-२१ ॥

कार्य विशेषमें सिद्धियोगोंका त्याग—

गृहप्रवेशे यात्रायां विवाहे च यथाक्रमम् ।
भौमेऽश्विनीं शनौ ब्राह्मं गुरौ पुष्यं विवर्ज्जयेत् ॥२२॥

अन्वयः—गृहप्रवेशे, यात्रायां, विवाहे च भौमे अश्विनीं, शनौ ब्राह्मं, गुरौ पुष्यं यथाक्रमं विवर्जयेत् ॥ २२ ॥

मङ्गलवारमें अश्विनी नक्षत्र गृहप्रवेशमें त्याग करे । शनिवारको रोहिणी नक्षत्र यात्रामें त्याग करे । और गुरुवारको पुष्य नक्षत्र विवाहमें त्याग करे ॥ २२ ॥

विशेषः—गृहप्रवेशमें मङ्गलवार स्वतः निषिद्ध है और अश्विनी नक्षत्र भी गृहप्रवेशमें प्रशस्त नहीं है । परन्तु मङ्गलवारमें अश्विनी सर्वार्थसिद्धियोग होता है । इसलिये 'सिद्धियोग

जानकर भौमाश्विनीमें गृहप्रवेश करनेकी रुचि किसीकी होगी उसके निवारणके लिये ग्रन्थ-कर्ता ने भौमाश्विनी योगको गृहप्रवेशमें निषिद्ध बतलाया है।

एवं शनिवारको रोहिणी नक्षत्र सर्वार्थसिद्धि योग है। परन्तु वसिष्ठ तथा राजमार्त्तण्ड-कर्ताके वचनसे शनिवार यात्रामें निषिद्ध तथा रोहिणी नक्षत्र भी गौण होनेके कारण शनि-रोहिणीको यात्रामें निषिद्ध कहा।

इसी तरह गुरुवारको पुष्य नक्षत्र सर्वार्थसिद्धि योग जानकर गुरुपुष्य योगमें कदाचित् विवाह करनेकी इच्छा किसीकी नहीं हो। इसके लिये गुरुपुष्य योगको आचार्यने निषेध कहा ॥ २२ ॥

आनन्द आदि अठाइस योग—

आनन्दाख्यः कालदण्डश्च धूम्रो धाता सौम्यो ध्वांक्षकेतू क्रमेण।
श्रीवत्साख्यो वज्रकं मुद्गरश्च च्छत्रं मित्रं मानसं पद्म-लुम्बौ ॥२३॥
उत्पात-मृत्यू किल काण-सिद्धी शुभोऽमृताख्यो मुसलं गदश्च।
मातङ्ग-रक्षश्चर-सुस्थिराख्य-प्रवर्धमानाः फलदाः स्वनाम्ना ॥२४॥

अन्वयः—आनन्दाख्यः' (१), कालदण्डः, (२) च (पुनः) धूम्रः (३), धाता (४) सौम्यः (५), ध्वाङ्क्षकेतू (६-७), श्रीवत्साख्यः (८), वज्रकं (९), मुद्गरः (१०), च (पुनः) छत्रं (११), मित्रं (१२), मानसं (१३), पद्म-(१४)-लुम्बौ (१५), उत्पात (१६)-मृत्यू (१७), किल (निश्चयेन), काण-(१८) सिद्धी (१९), शुभः (२०), अमृताख्यः (२१), मुसलं (२२), गदः (२३), च (पुनः) मातङ्ग(२४)-रक्ष-(२५) श्चर-(२६)-सुस्थिराख्य (२७)-प्रवर्धमानाः (२८), एते क्रमेण 'अष्टाविंशतियोगाः' स्वनाम्ना फलदाः भवन्ति ॥२३–२४॥

भाषा—१ आनन्द। २ कालदण्ड। ३ धूम्र। ४ धाता। ५ सौम्य। ६ ध्वाङ्क्ष। ७ केतु। ८ श्रीवत्स। ९ वज्र। १० मुद्गर। ११ छत्र। १२ मित्र। १३ मानस। १४ पद्म। १५ लुम्ब। १६ उत्पात। १७ मृत्यु। १८ काण। १९ सिद्धि। २० शुभ। २१ अमृत। २२ मुसल। २३ गद। २४ मातङ्ग। २५ रक्षः। २६ चर।

२७ सुस्थिर और २८ प्रवर्द्धमान ये अठाइस योग अपने २ नामके अनुकूल फल देनेवाले हैं ॥ २३-२४ ॥

विशेष—नामानुसार फलदायक होनेके कारण-२ कालदण्ड, ३ धूम्र, ६ ध्वाङ्क्ष, ९ वज्र, १० मुद्गर, १५ लुम्ब, १६ उत्पात, १७ मृत्यु, १८ काण, २२ मुसल, २३ गद और २५ रक्षः ये बारह योग अशुभ हैं। जिनका परिहार आवश्यकमें आगेके २६ वें श्लोकमें कहा जायगा। वहां भी रक्ष-मृत्यु-उत्पात-काल ये चार योग एकदम वर्जित ही कहे जायेंगे।

इन बारह योगोंके अतिरिक्त आनन्द आदि १६ योग शुभ होते हैं ॥ २३-२४ ॥

ऊपर कहे हुए आनन्द आदि योगोंके प्रत्येक दिनमें जाननेका प्रकार—

दास्रादर्के मृगादिन्दौ सार्पाद्भौमे कराद्बुधे।
मैत्राद्गुरौ भृगौ वैश्वाद्गण्या मन्दे च वारुणात् ॥२५॥

अन्वयः—अर्के दास्रात्, इन्दौ मृगात्, भौमे सार्पात्, बुधे करात्, गुरौ मैत्रात्, भृगौ वैश्वात्, मन्दे च वारुणात्, 'ते आनन्दादयो योगाः क्रमेण' गण्याः ॥२५॥

भाषार्थ—रविवारमें अश्विनी नक्षत्रसे 'आरम्भ करके', सोमवारमें मृगशिरासे 'आरम्भ करके' एवं मङ्गलवारमें आश्लेषासे, बुधवारमें हस्तसे, गुरुवारमें अनुराधासे, शुक्रवारमें उत्तराषाढ़से और शनिवारमें शतभिषा नक्षत्रसे आरम्भ करके वर्त्तमान नक्षत्र तक गिनकर उसी सङ्ख्याके प्रमाण आनन्दादि योग जानने चाहिये।

जैसे रविवारको अश्विनी होनेसे आनन्द, भरणीसे कालदण्ड, कृत्तिका होनेसे धूम्र एवं सभी योगोंको गिन जाय।

सोमवारको मृगशिरा होनेसे आनन्द, आर्द्रा होनेसे कालदण्ड इसी रीतिसे और वारोंमें भी सभी योगोंको जानना चाहिये।

स्पष्टताके लिये कोष्ठक देखिये ॥ २५ ॥

आनन्दादि योगोंके जाननेका का कोष्ठ—

सं.	आनं दादयः यो.	रवि	चन्द्र	मं.	बुध	बृ.	शुक्र	शनि	फलम्
१	आनन्द	अश्वि	मृग.	श्लेषा	हस्त	अनुरा.	उ.षा.	शत.	शुभ
२	कालदं.	भरणी	आर्द्रा	मघा	चित्रा	ज्येष्ठा	अभि	पू.भा.	अशुभ
३	धूम्र	कृत्ति.	पुनर्व	पू.फा.	स्वाती	मूल	श्रवण	उ.भा.	अशुभ
४	धाता	रोहिणी	पुष्य	उ.फा.	विशा	पू.षा.	ध.	रेवती	शुभ
५	सौम्य	मृग	श्लेषा	हस्त	अनु.	उ.षा	शत	अश्वि	शुभ
६	ध्वांक्ष	आर्द्रा	मघा	चित्रा	ज्येष्ठा	अभि.	पू.भा.	भरणी	अशुभ
७	केतु	पुनर्व	पूर्वाफा.	स्वाती	मूल	श्रवण	उ.भा.	कृत्ति.	शुभ
८	श्रीवत्स	पुष्य	उ.फा.	विशा	पू.षा.	धनिष्ठा	रेवती	रोहिणी	शुभ
९	वज्र	श्लेषा	हस्त	अनु.	उ.षा.	शत	अश्वि	मृग	अशुभ
१०	मुद्गर	मघा	चित्रा	ज्येष्ठा	अभि.	पू.भा.	भरणी	आर्द्रा	अशुभ
११	छत्र	पूर्वाफा	स्वाती	मूल	श्रवण	उ.भा.	कृत्ति.	पुन.	शुभ
१२	मित्र	उ. फा.	विशा	पू.षा.	धनिष्ठा	रेवती	रोहिणी	पुष्य	शुभ
१३	मानस	हस्त	अनुरा.	उ.षा.	शत.	अश्वि.	मृग	श्लेषा	शुभ
१४	पद्म	चित्रा	ज्येष्ठा	अभि.	पू भा.	भरणी	आर्द्रा	मघा	शुभ
१५	लुम्बक	स्वाती	मूल	श्रवण	उ.भा.	कृत्ति	पुन.	पू.फा.	अशुभ
१६	उत्पात	विशा.	पू.षा.	धनिष्ठा	रेवती	रोहिणी	पुष्य	उ.फा.	अशुभ
१७	मृत्यु	अनुरा.	उ.षा.	शतभि	अश्वि.	मृग	श्लेषा	हस्त	अशुभ
१८	काण	ज्येष्ठा	अभि.	पू.भा.	भरणी	आर्द्रा	मघा	चित्रा	अशुभ
१९	सिद्धि	मूल	श्रवण	उ.भा.	कृत्ति.	पुन.	पू.फा.	स्वाती	शुभ
२०	शुभ	पूर्वाषा	धनिष्ठा	रेवती	रोहिणी	पुष्य	उ.फा.	विशा.	शुभ
२१	अमृत	उ.षा.	शतभि	अश्वि.	मृग.	श्लेषा	हस्त	अनु.	शुभ
२२	मुसल	अभि.	पू.भा.	भरणी	आर्द्रा	मघा	चित्रा	ज्येष्ठा	अशुभ
२३	गद	श्रवण	उ.भा.	कृत्ति.	पुन.	पू.फा.	स्वाती	मूल	अशुभ
२४	मातङ्ग	धनिष्ठा	रेवती	रोहिणी	पुष्य	उ.फा.	विशा.	पू.षा.	शुभ
२५	रक्षस	शत.	अश्वि	मृग	श्लेषा	हस्त	अनु.	उ.षा.	अशुभ
२६	चर	पू.भा.	भरणी	आर्द्रा	मघा	चित्रा	ज्येष्ठा	अभि.	शुभ
२७	सुस्थिर	उ.भा	कृत्ति.	पुनर्व.	पू.फा.	स्वाती	मूल	श्रवण	शुभ
२८	वर्धमान	रेवती	रोहिणी	पुष्य	उ.फा.	विशा	पू.षा.	धनि.	शुभ

आवश्यक कार्यमें अशुभ योगोंका परिहार—

ध्वांक्षे वज्रे मुद्गरे चेषुनाड्यो वर्ज्या वेदाः पद्मलुम्बे गदेऽश्वाः ।
धूम्रे काणे मौसले भूर्द्वयं द्वे रक्षोमृत्यूत्पातकालाश्च सर्वे ॥२६॥

अन्वयः—ध्वाङ्क्षे वज्रे मुद्गरे च (योगत्रये) इषुनाड्यः, पद्मलुम्बे वेदाः 'नाड्यः', गदे अश्वाः (सप्त) नाड्यः वर्ज्याः । धूम्रे 'योगे' भूः (एका) नाडी वर्ज्या, काणे 'योगे' द्वयं (नाडीद्वयं) वर्ज्यं, मौसले 'योगे' द्वे 'नाड्यौ' वर्ज्ये । रक्षोमृत्यूत्पातकालाश्च सर्वे 'वर्ज्याः' ॥ २६ ॥

भाषार्थः—ध्वाङ्क्ष, वज्र और मुद्गर योगोंमें आदिकी ५ घड़ी (दण्ड), पद्म और लुम्ब योगोंमें आदिकी ४ घड़ी, गद योगमें ७ घड़ी, धूम्र योगमें १ घड़ी, काण योगमें २ घड़ी और मुसल योगमें २ घड़ी आवश्यक कार्यमें त्याग करे। रक्षः, मृत्यु, उत्पात और काल योगोंकी समस्त घड़ियां त्याग करे।

तात्पर्य यह है कि किसी आवश्यक कार्यके दिन यदि उपर्युक्त ध्वांक्ष आदि ९ योगोंमेंसे कोई योग पड़े तो उसकी कही हुई घड़ी बरा कर उसके बाद कार्य करे। परन्तु रक्षः-मृत्यु-उत्पात-काल इन चार योगोंके अत्यन्त दुष्ट होनेसे इनका परिहार नहीं होता। ये चारो योग समस्त त्याज्य हैं ॥ २६ ॥

विशेषः—श्लोकके मूलमें चर योगके सम्बन्धमें नहीं कहा है। लेकिन "......गदे सप्तैव तिस्रश्चरे" इस ज्योतिःसागरके प्रमाणसे चर योगमें भी ३ घड़ी त्याग करना ग्रन्थकारका मत है ॥ २६ ॥

दोषसमूहको मिटानेवाले रवियोग—

सूर्यभाद्वेद-गो-तर्क-दिग्विश्व-नख-सम्मिते ।
चन्द्रर्क्षे रवियोगाः स्युर्दोषसङ्घविनाशकाः ॥ २७ ॥

अन्वयः—सूर्यभात् (सूर्याधिष्ठितनक्षत्रात्) वेद-गो-तर्क-दिग्-विश्व-नखसम्मिते चन्द्रर्क्षे 'सति' ते रवियोगाः स्युः। ते रवियोगाः, दोषसङ्घविनाशकाः 'भवन्ति' ॥२७॥

भाषार्थः—सूर्य जिस नक्षत्रमें हो उससे चन्द्रमाका नक्षत्र (दिननक्षत्र) यदि ४ था, ९ वाँ, ६ ठा, १० वाँ, १३ वाँ या २० वाँ हो तो ये रवियोग होते हैं। ये रवियोग दोषोंके समूहको मिटानेवाले हैं। अर्थात् कितने भी दोष (दग्ध योग मृत्युयोग वगैरह) क्यों न हों लेकिन यदि कहे हुये लक्षणसे रवियोग होवे तो सभी दोष मिट जाते हैं ॥ २७ ॥

उदाहरण—यदि सूर्य रोहिणीमें हो और चन्द्रनक्षत्र (दिनका नक्षत्र) पुनर्वसु ४ अथवा आश्लेषा ६, या उत्तराफल्गुनी ९, या हस्त १०, या विशाखा १३, अथवा धनिष्ठा २० हो तो रवियोग जानना चाहिये ॥ २७ ॥

प्रत्येक दिनोंमें नक्षत्रोंके योगसे सर्वार्थसिद्धि योग—

सूर्येऽर्कमूलोत्तरपुष्यदास्रं चन्द्रे श्रुतिब्राह्मशशीज्यमैत्रम् ।

भौमेऽश्व्यहिर्बुध्न्यकृशानुसार्पं ज्ञे ब्राह्ममैत्रार्ककृशानुचान्द्रम् ॥२८॥
जीवेऽन्त्यमैत्राश्व्यदितीज्यधिष्ण्यं शुक्रेऽन्त्यमैत्राश्व्यदितिश्रवोभम्
शनौ श्रुतिब्राह्मसमीरभानि सर्वार्थसिद्ध्यै कथितानि पूर्वैः ॥२९॥

अन्वयः—सूर्ये (रविवारे) अर्कमूलोत्तरपुष्यदास्त्रं, चन्द्रे (सोमवारे) श्रुतिब्राह्मशशीज्यमैत्रं, भौमे (मङ्गलवारे) अश्व्यहिर्बुध्न्यकृशानुसार्पं, ज्ञे (बुधवारे) ब्राह्ममैत्रार्ककृशानुचान्द्रं, जीवे (गुरुवारे) अन्त्यमैत्राश्व्यदितीज्यधिष्ण्यं, शुक्रे—अन्त्यमैत्राश्व्यदितिश्रवोभं, शनौ श्रुतिब्राह्मसमीरभानि 'एतानि नक्षत्राणि' पूर्वैः (पूर्वाचार्यैः) सर्वार्थसिद्ध्यै कथितानि ॥ २८-२९ ॥

भाषार्थः—रविवारमें—हस्त, मूल, तीनों उत्तरा (उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढ़, और उत्तरभाद्र) पुष्य और अश्विनी ये ७ नक्षत्र ।

सोमवारमें—श्रवण, रोहिणी, मृगशिरा, पुष्य और अनुराधा ये ५ नक्षत्र ।

मङ्गलवारमें—अश्विनी, उत्तरभाद्र, कृत्तिका और आश्लेषा ये ४ नक्षत्र

बुधवारमें—रोहिणी, अनुराधा, हस्त, कृत्तिका और मृगशिरा ये ५ नक्षत्र ।

गुरुवारमें—रेवती, अनुराधा, अश्विनी, पुनर्वसु और पुष्य ये ५ नक्षत्र

शुक्रवारमें—रेवती, अनुराधा, अश्विनी, पुनर्वसु और श्रवणा ये ५ नक्षत्र ।

शनिवारमें—श्रवणा, रोहिणी और स्वाती ये ३ नक्षत्र ।

इन्हें प्राचीन आचार्योंने 'सर्वार्थसिद्धि योग' कहे हैं ।

इन योगोंमें किये गये सभी कार्य सिद्ध होते हैं । परन्तु मङ्गलवारकी अश्विनी में गृहप्रवेश, शनिवारकी रोहिणीमें यात्रा और गुरुवारके पुष्य में विवाह पूर्वोक्त २२ वें श्लोकके अनुसार नहीं करने चाहिये ॥२८-२९ ॥

विशेषः—यहाँ प्रसङ्गानुसार प्रत्येक दिनोंमें नक्षत्रोंके योगसे कुयोग भीमपराक्रमके वचनानुसार लिखे जाते हैं ।

"ज्येष्ठावह्निमघाविशाखवसवो मैत्रं यमाख्यं रवौ,
सोमे शैवविशाखपुष्यपवनाश्चित्रा त्वषाढाद्वयम् ।
भौमे विश्वजलेशमित्रवसवः प्राग्भाद्रसार्पौ शिवः,
शूलीरेवतिपूर्वयोनिभरणी वस्वश्विमूला बुधे ॥
जीवे मूलमघार्द्रयाम्यवरुणाः पूषा शशी रोहिणी ।
शुक्रे स्वातिभुजङ्गदैवतमघापुष्योत्तरा रोहिणी ।
सौरावर्यममूलहस्तवरुणाषाढाद्वयं रेवती,
चित्रा विष्णुमघाश्च सर्वसमये त्याज्या भयोगा बुधैः" ॥

अर्थः रविवारमें—ज्येष्ठा, कृत्तिका, मघा, विशाखा, धनिष्ठा, अनुराधा और भरणी ये ७ नक्षत्र।

सोमवारमें—आर्द्रा, विशाखा, पुष्य, स्वाती, चित्रा, पूर्वाषाढ़ और उत्तराषाढ़ ये ७ नक्षत्र।

मङ्गलवारमें—उत्तराषाढ़, शतभिषा, अनुराधा, धनिष्ठा, पूर्वभाद्र, आश्लेषा और आर्द्रा ये ७ नक्षत्र।

बुधवारमें—आर्द्रा, रेवती, पूर्वफाल्गुनी, भरणी, धनिष्ठा, अश्विनी और मूल ये ७ नक्षत्र।

गुरुवारमें—मूल, मघा, आर्द्रा, भरणी, शतभिषा, रेवती, मृगशिरा और रोहिणी ये ८ नक्षत्र।

शुक्रवारमें—स्वाती, आश्लेषा, मघा, पुष्य, तीनों उत्तरा और रोहिणी ये ८ नक्षत्र।

शनिवारमें—उत्तराफल्गुनी, मूल हस्त, शतभिषा, पूर्वाषाढ़, उत्तराषाढ़ और रेवती ये ७ नक्षत्र।

ये पूर्वाचार्योंसे अयोग याने दुष्टयोग कहे गये हैं। इनमें किये हुए कार्य कभी सिद्ध नहीं होते। इसी तरह चित्रा, श्रवणा और मघा ये तीन नक्षत्र सर्वदा त्याज्य हैं।

यहां भीमपराक्रमके कुयोगवाले वचनोंमें सोमवारमें-पुष्य, मङ्गलवारमें आश्लेषा और गुरुवारमें रेवती कुयोग कहा गया है, परन्तु ग्रन्थकर्त्ता इन्हें सिद्धयोग कहे हैं। यद्यपि इन सिद्धियोग और कुयोगोंके सम्बन्धमें आर्षमूल नहीं मिलता, तथापि 'दास्रादर्के मृगादिन्दौ' इत्यादि—आनन्दादि योगके जाननेके प्रकारसे सोमवारमें पुष्य 'धाता योग' मङ्गलवारमें आश्लेषा 'आनन्द-योग' और गुरुवारमें रेवती 'मित्र योग' होनेके कारण सिद्धयोग ही माने जाते हैं॥ २८–२९॥

रव्यादि वारोंमें उत्पात, मृत्यु, काण और सिद्धियोग वाले नक्षत्र—

द्वीशात्तोयाद्वासवात्पौष्णभाच्च ब्राह्मात्पुष्यादर्यमर्क्षाच्चतुर्भैः।
स्यादुत्पातो मृत्युकाणौ च सिद्धिर्वारेऽर्काद्ये तत्फलं नामतुल्यम् ३०

अन्वय—अर्काद्ये 'क्रमेण' द्वीशात्, तोयात्, वासवात्, पौष्णभात्, ब्राह्मात्, पुष्यात्, अर्यमर्क्षात् चतुर्भैः 'क्रमात्' उत्पातः, मृत्युकाणौ, सिद्धिश्च स्यात्। तत्फलं नामतुल्यं 'ज्ञेयम्'॥ ३०॥

भाषार्थः—रविवारमें विशाखा नक्षत्रसे, सोमवारमें पूर्वाषाढ़से, मङ्गलवारमें धनिष्ठासे, बुधवारमें रेवतीसे, गुरुवारमें रोहिणीसे, शुक्रवारमें पुष्यसे और शनिवारमें उत्तरफल्गुनीसे चार चार नक्षत्रोंमें क्रमसे उत्पात, मृत्यु, काण और सिद्धि ये चार योग होते हैं। जैसे—रविवारमें विशाखा नक्षत्र उत्पात योग। अनुराधा मृत्यु योग। ज्येष्ठा काण योग और मूल सिद्धि योग होता है। इसी तरह सोम आदिवारोंमें भी जानना चाहिये। इन योगोंके फल इनके नामके अनुसार ही होते हैं। स्पष्टताके लिये को० देखिये॥ ३०॥

योगाः	वारोंमें नक्षत्र							
	र.	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.	फल
उत्पातः	वि.	पू.षा.	ध.	रे.	रो.	पु.	उ.फ	अशु.
मृत्युः	अनु.	उ.षा.	श.	अ.	मृ.	श्ले.	हस्त	अशु.
काणः	ज्ये.	अभि.	पू.भा.	भ.	आर्द्रा	म.	चि.	अशु.
सिद्धिः	मू.	श्र.	उ.भा.	कृ.	पुन.	पू.फ.	स्वा.	शुभ

नोटः—इस चक्रकी उपपत्ति आनन्दादि योग जानने वाले १५ वें श्लोकके कोष्ठकमें १६-१७-१८-१९ पंक्तियोंसे होती है । प्रत्यक्ष मिलाकर देखिये ॥ ३० ॥

पूर्वोक्त दुष्ट योगोंका देशभेदसे परिहार—

कुयोगास्तिथिवारोत्थास्तिथिभोत्था भवारजाः ।
हूणबङ्गखशेष्वेव वर्ज्यास्त्रितयजास्तथा ॥ ३१ ॥

अन्वयः—तिथिवारोत्थाः, तिथिभोत्थाः, भवारजाः, तथा त्रितयजाः 'ये' कुयोगाः 'ते' हूणबङ्गखशेषु 'देशेषु' एव वर्ज्याः ॥ ३१ ॥

भाषार्थः—तिथि और वारसे उत्पन्न कुयोग ('नन्दा भद्रा नन्दिकाख्येत्यादि' 'षष्ठ्यादि तिथयो मन्दादित्यादि' और 'सूर्येश पञ्चाग्निरसाष्टनन्दा इत्यादि') तिथि और नक्षत्रसे उत्पन्न कुयोग (तथा निन्द्यं शुभे सार्पमित्यादि) नक्षत्र और वारसे उत्पन्न कुयोग (याम्यं त्वाष्ट्रं वैश्वदेवमित्यादि और यमघण्ट योग) तथा तिथि-वार-नक्षत्र तीनोंसे उत्पन्न कुयोग (वर्जयेत् सर्वकार्येषु हस्तार्के पञ्चमीत्यादि) ये सभी कुयोग हूण (बङ्गालसे पूर्वदेश), बङ्ग (बङ्गाल) और खश (नेपाल) देशोंमें ही वर्जित हैं । दूसरे देशोंमें ये त्याज्य नहीं हैं । जैसे नारदजीने कहा है—

"तिथिवारोद्भवा नेष्टा योगा वारर्क्षसम्भवाः ।
हूणबङ्गखशेभ्योऽन्यदेशेष्वेते शुभप्रदाः" इति ॥ ३१ ॥

समस्त शुभकार्योंमें वर्जनीय विषय—

सर्वस्मिन्विधुपापयुक्तनुलवावर्धे निशाह्नोर्घटी-
त्र्यंशं वै कुनवांशकं ग्रहणतः पूर्वं दिनानां त्रयम् ।

उत्पातग्रहतोऽद्र्यहाँश्च शुभदोत्पातैश्च दुष्टं दिनं
षण्मासं ग्रहभिन्नभं त्यज शुभे यौद्धं तथोत्पातभम् ॥३२॥

अन्वयः—हे विद्वन्! विधुपापयुक्तनुलवौ, निशाह्नोः अर्धे घटीत्र्यंशं, वै (निश्चयेन) कुनवांशकं, ग्रहणतः पूर्वं दिनानां त्रयं, उत्पातग्रहतः (उत्पातयुक्तग्रहणानन्तरं) अद्र्यहान्, शुभदोत्पातैश्च दुष्टं दिनं सर्वस्मिन् शुभे (शुभकार्ये) त्यज। तथा ग्रहभिन्नभं, यौद्धं भं, उत्पातभं च षण्मासं यावत् 'सर्वस्मिन् शुभे' त्यज ॥३२॥

भावार्थः—चन्द्रमा और पापग्रहोंसे युक्त लग्न और नवांशको सभी शुभकार्योंमें त्याग करो। अर्थात्-चन्द्रमा या कोई भी पापग्रह जिस लग्न और जिस लग्नके नवांशमें हो उस लग्न और नवांशमें कोई भी शुभकार्य नहीं करना चाहिये।

इसी तरह रात और दिनके मध्यमें अर्थात् ठीक आधीरात और मध्याह्नमें एक घड़ीका तीसरा भाग $\frac{६०}{३}$ याने २० पला (अंग्रेजी मानसे मिनिट) त्याज्य हैं। तात्पर्य यह हुआ कि रात और दिनके बारह बजेसे पूर्व और पश्चात् चार चार मन्टों—(मिलाकर ८ मिन्टों) में शुभकार्य वर्जित हैं।

एवं—पापग्रहोंके नवांश, 'सूर्य और चन्द्रमाके' ग्रहणसे पहले तीन दिन, उत्पातवाले ग्रहणके बाद सात दिन और शुभद उत्पातोंसे दूषित दिन, अर्थात् जिस दिनमें शुभद उत्पात देखे जायें वह दिन-ये सभी शुभकार्योंमें वर्जित हैं।

एवं ग्रहोंसे भिन्न (भेदित) नक्षत्र अर्थात् सिद्धान्तकी रीतिसे ग्रहके भेदयोग्य जो नक्षत्र हो वह, तथा ग्रहोंके युद्ध नक्षत्र (आकाशमें जिस नक्षत्र पर ग्रहोंका युद्ध देखा जाय) और उत्पातवाला नक्षत्र (जिस दिन दिव्य-भौमान्तरिक्षवाली कोई भी दुर्घटना देखी जाय उस दिनका नक्षत्र) ये सब ६ महीनें तक पाठ वर्जित हैं॥ ३२ ॥

वि०—इस श्लोकके अन्दर कितने ऐसे विषय आये हैं जिनका विवरण लिखना आवश्यक है। जैसे—१ पापग्रह। २ नवांश। ३ उत्पात। ४ शुभदोत्पात। ४ ग्रहभेद और ५ ग्रहयुद्ध। इनके विवरण—

१ पापग्रहाः—क्षीण चन्द्रमा, सूर्य, मङ्गल, शनि और इनके साथ रहने पर बुध। ये पापग्रह हैं। जैसे—'क्षीणेन्द्वर्कमहीसुतार्कतनयाः पापा बुधस्तैर्युतः' वराह मिहिरने कहा है। राहु-केतु भी पापग्रह हैं।

२ नवांशाः—प्रत्येक राशिमें ३° । २०' तीन अंश बांश कला एक २ खण्डाके हिसाबसे ९ नवांश होते हैं। इसका विशेष विवरण विवाह प्रकरणके ३९ वें श्लोकमें देखिये।

३ उत्पाताः—स्वाभाविक स्थितिसे विपरीत घटनाका नाम उत्पात है। वे उत्पात दिव्य १,

आन्तरिक्ष २ और भौम ३ भेदसे तीन प्रकारके होते हैं। जिनमें ग्रह और नक्षत्रोंकी विकृति, उल्कापात, निर्घात, पवन और चन्द्र-सूर्यका परिवेष ये दिव्य उत्पात हैं। गन्धर्वपुर, इन्द्रधनुष आदि आन्तरिक्ष उत्पात हैं। तथा चराचर (जङ्गम और स्थावर) की विकृतिको भौम उत्पात कहते हैं।

४ **शुभदोत्पाताः**—ऋतुभेदसे शुभद उत्पात ये हैं—

वसन्त ऋतुमें—बिजलीका टूटना, भूकम्प, सन्ध्याका निर्घात, परिवेष, दिशाओंमें धूली धूसर, उदय और अस्तके समय सूर्य लाल वर्णका, पेड़ोंसे मद टपकना, पेड़ोंमें मधु-फूल-फल का उद्गम, गौ और पक्षियोंके मदकी वृद्धि ये शुभद उत्पात हैं।

ग्रीष्म ऋतुमें—तारा और उल्काका गिरना, कुछ पीले रंगके सूर्य-चन्द्रके बिम्ब, विना आगकी जलन और विस्फोट तथा धूआं का देखना, सन्ध्या समय लाल कमलकी तरह दृश्य, आकाश शान्त समुद्रकी तरह, सरोवरोंका और नदियोंका सूखना शुभद उत्पात हैं।

वर्षा ऋतुमें—इन्द्र धनुष, परिवेष, बिजलीकी चमक, सूखी हुई लता पौधोंका पनपना, पृथिवीकी थरथराहट और कांपना, पृथिवीका फटना, नदी और जलाशयोंमें जलकी वृद्धि तथा ऊपर उछलना, पहाड़ी भूमियोंका विदारण ये शुभदोत्पात हैं।

शरत् ऋतुमें—अप्सरा-भूत-गन्धर्व और विमानोंका अद्भुत दर्शन, दिनमें ग्रह-नक्षत्र-ताराओंका दर्शन, वनों और पर्वतोंको खोहोंमें गाने बजानेकी आहट, फसलोंकी वृद्धि और जलकी कमी ये शुभदोत्पात हैं।

हेमन्त ऋतुमें—ठण्डी हवा और पालाका पड़ना, मृगों और चिड़ियों का नाचना, आकाशमें रक्षोगण-यक्षगणका दर्शन, आकस्मिक (आकाशवाणीकी तरह) शब्द, दिशाओंमें धूएँ की तरह अन्धकारसे जङ्गलों और पर्वतोंका अदर्शन, उदय और अस्तके समय बड़ा सूर्य—ये शुभदोत्पात हैं।

शिशिर ऋतुमें—पाला पड़ना, हवाकी विकृति, आकाशका रङ्ग अञ्जनकी तरह कृष्णवर्ण, तारा और उल्काका पतन, स्त्रियों, गौओं, भेड़ियों, घोड़ियों और मृगपक्षियोंमें गर्भाधानकी अधिकता, वृक्षों और लताओंके पत्तों और अङ्कुरोंकी विकृति ये शुभदोत्पात हैं।

वर्त्तमान कालमें अपने ऋतुके अनुकूल लक्षण दृश्य होनेपर शुभ समझना और विपरीत देखनेपर अशुभोत्पात समझना चाहिये।

जैसे वराहने कहा है—

"ऋतुस्वभावजा ह्येते दृष्टाः स्वर्तौ शुभप्रदाः।
ऋतोरन्यत्र चोत्पाता दृष्टास्ते भृशदारुणाः" इति ॥

५ **ग्रहभिन्ननक्षत्र**—अपनी २ कक्षामें चलते हुये ग्रहका दक्षिणोत्तर शर जब किसी नक्षत्रके शरके समान हो जाता है (ग्रह और नक्षत्रके शर एक ही दिशाके रहते हैं) तो वह ग्रह उस नक्षत्रका भेदन करता है। उसीको ग्रहभिन्न नक्षत्र कहते हैं।

ग्रहयुद्ध—मङ्गल आदि पांच (मं. बु. बृ. शु. श.) ग्रहोंमें एक किसीको दूसरे ग्रहके

साथ योग होनेको युद्ध कहते हैं । एवं चन्द्रमाके साथ योग होनेका नाम समागम है ॥ ३२ ॥

मासके भेदसे ग्रहर्त्तका त्यागकाल—

नेष्टं ग्रहर्क्षं सकलार्धपादग्रासे क्रमात्तर्कगुणेन्दुमासान् ।
पूर्वं परस्तादुभयोस्त्रिघस्रा ग्रस्तेऽस्तगे वाभ्युदितेऽर्धखण्डे ॥३३॥

अन्वयः—सकलार्धपादग्रासे क्रमात् तर्कगुणेन्दुमासान् 'यावत्' ग्रहर्त्तं इष्टं न स्यात् । ग्रस्ते अस्तगे सति पूर्वं त्रिघस्राः इष्टाः न । ग्रस्ते अभ्युदिते 'सति' परस्तात् त्रिघस्रा न इष्टाः । अर्धखण्डे उभयोः (पूर्वं पश्चाच्च) त्रिघस्राः इष्टा न 'भवन्ति' ॥३३॥

भाषार्थः—सूर्य और चन्द्रमाके सम्पूर्ण (सर्वग्रास) ग्रहणमें ६ मास तक, आधा ग्रासमें ३ मास तक और चतुर्थांश (चौथाई) ग्रासमें १ मास तक ग्रहण वाला नक्षत्र (ग्रहणके दिन जो नक्षत्र हो) अशुभ होता है । अर्थात् उतने दिनों तक उस नक्षत्रमें कोई शुभकार्य नहीं करना चाहिये ।

यदि ग्रहण लगे हुए सूर्य या चन्द्रमा अस्त होवें तो ग्रहणसे पहलेके तीन दिन अशुभ होते हैं । यदि ग्रहण लगे हुए उदित हों तो ग्रहणके बादके तीन दिन अशुभ होते हैं । इसी तरह ग्रस्तास्त और ग्रस्तोदयके अभावमें भी यदि सूर्य या चन्द्रमाका आधा ग्रहण हो तो ग्रहणसे पूर्व और पश्चात् तीन तीन दिन अशुभ होते हैं ।

यदि सम्पूर्ण ग्रहण हो तो पूर्व और पर सात सात दिन त्याज्य हैं । जैसे कहा है—'गुरुः'—

"सर्वग्रासे तु षण्मासांस्त्रीन्मासांस्तु दले ग्रहे ।
आपादग्रहणे धिष्ण्यं मासमेकं विवर्जयेत् ॥ तथा च—
ग्रस्तास्ते त्रिदिनं पूर्वं, पश्चाद् ग्रस्तोदये तथा ।
खण्डग्रासे त्रित्रिदिनं निःशेषे सप्त सप्त च" इति ॥ ३३ ॥

वि०—यहां अल्पज्ञोंको कदाचित् शङ्का होगी कि सम्पूर्ण ग्रहणमें ६ मास, आधेमें ३ मास तक ग्रहर्क्ष वराया जाता है, तो चौथाईमें १½ डेढ़ मास कहना चाहिये था ? लेकिन चौथाईमें १ ही मास क्यों कहा गया ?

इसका उत्तर यह है कि नक्षत्रोंकी संख्या २७ है । यदि डेढ़ महीना भी कहा जाये तो डेढ़ मासके ४५ दिनोंमें भी दूसरा ग्रहर्क्ष नहीं पड़ेगा । बल्कि वह ५४ वें दिनमें पड़ेगा, इसलिये १ मास ही कहना ठीक है ॥ ३३ ॥

समस्त शुभकार्यमें अवश्य वर्जनीय पञ्चाङ्गदोष—

जन्मर्क्षमासतिथयो व्यतिपातभद्रावैधृत्यमापितृदिनानि तिथिक्षयर्द्धी ।

न्यूनाधिमासकुलिकप्रहरार्द्धपाता विष्कम्भवज्रघटिकात्रयमेव वर्ज्यम् ॥

परिघार्धं पञ्च शूले षट् च गण्डातिगण्डयोः ।
व्याघाते नव नाड्यश्च वर्ज्याः सर्वेषु कर्मसु ॥ ३५ ॥

अन्वयः—'शुभकार्येषु' जन्मर्क्षमासतिथयः वर्ज्याः । व्यतिपातभद्रावैधृत्यमापितृदिनानि 'वर्ज्यानि' । तिथिक्षयर्द्धी 'वर्ज्ये' । न्यूनाधिमासकुलिकप्रहरा पाताः 'वर्ज्याः' । विष्कम्भवज्रघटिकात्रयं एव वर्ज्यम् ॥ ३४ ॥

सर्वेषु कर्मसु परिघार्धं 'वर्ज्यं', शूले पञ्च नाड्यः, गण्डातिगण्डयोः षट् नाड्यः, व्याघाते च नव नाड्यः वर्ज्याः ॥ ३५ ॥

भाषार्थः—जन्म-नक्षत्र, जन्म-मास, जन्म-तिथि, व्यतीपात योग, भद्रा, वैधृति योग, अमावास्या तिथि, पिता-माताके श्राद्ध दिन, तिथिक्षय (१), तिथिकी वृद्धि (२), न्यूनमास (क्षयमास) (३) अधिकमास (मलमास) (४) कुलिक (५) योग अर्धयाम (६) (अर्धप्रहरा) और पातयोग सभी शुभकार्यों में वर्जनीय हैं । एवं विष्कम्भ और वज्रयोगके आदिकी केवल ३ घड़ी त्याज्य हैं ॥ ३४ ॥

परिघ योगका पहला आधा, शूलयोगके आदिकी ५ घड़ी, गण्ड और अतिगण्ड योगोंकी ६ घड़ी तथा व्याघात योगकी नव घड़ी सभी शुभकार्योंमें वर्जित हैं ॥३५॥

दोनों पक्षोंकी रन्ध्र तिथियां और उनमें वर्जनीय घड़ियां—

वेदाङ्गाष्टनवार्केन्द्रपक्षरन्ध्रतिथौ त्यजेत् ।
वस्वङ्कमनुतत्त्वाशाः शरा नाडीः पराः शुभाः ॥३६॥

अन्वयः—वेदाङ्गाष्टनवार्केन्द्रपक्षरन्ध्रतिथौ 'क्रमेण' वस्वङ्कमनुतत्त्वाशाः शराः नाडीः त्यजेत्, 'ताभ्यः' पराः (अन्याः) नाड्यः शुभाः भवन्ति ॥ ३६ ॥

भाषार्थः—शुक्ल और कृष्ण दोनों पक्षोंमें चौथ, षष्ठी, अष्टमी, नवमी, द्वादशी और चतुर्दशी ये ६ तिथियां 'पक्षरन्ध्रतिथि' कहलाती हैं । आवश्यक कार्यमें इन तिथियोंके आदिकी क्रमसे ८,९,१४,२५,१०,५ घड़ियां त्याग करे, उसके बाद सब शुभ होती हैं । जैसे—चौथकी आठ घड़ी, षष्ठीकी ९ घड़ी,

(१) जिस तिथिमें सूर्यका उदय नहीं होता वह तिथिक्षय है । (२) जिस तिथिमें दो बार सूर्यका उदय हो वह तिथिवृद्धि है । (३) चान्द्रमास (दो अमावसके भीतर) में दोवार संक्रान्ति होनेसे क्षयमास होता है । (४) चान्द्रमासमें संक्रान्ति नहीं होनेसे अधिमास होता है । (५) कुलिक योग इसी प्रकरणके ३७ वें श्लोकमें कहा जायगा । (६) अर्धयाम विवाह प्रकरणके ६४ वें श्लोकमें कहा जायगा ।

अष्टमीकी १४ घड़ी, नवमीकी २५ घड़ी, द्वादशीकी १० घड़ी और चतुर्दशीकी ५ घड़ी अशुभ होती हैं। इनमें किये गये सभी कार्य नष्ट होते हैं; अतः इन्हें वराना चाहिये। ऐसा ही श्री वसिष्ठजीने कहा है —

"दोषनाडीषु यत्कर्म कृतं सर्वं विनश्यति।
विवाहे विधवा नाड़ी, व्रात्यः स्याच्चोपनायने॥
सीमन्ते गर्भनाशः स्यात् प्राशने मरणं ध्रुवम्।
अग्निना दह्यते क्षिप्रं गृहारम्भे विशेषतः॥
राजराष्ट्रविनाशः स्यात् प्रतिष्ठायां विशेषतः।
किमत्र बहुनोक्तेन कृतं कर्म विनश्यति" इति॥ ३६॥

'कुलिक-कालवेला-यमघण्ट-कण्टक' ये चार अशुभ मुहूर्त्त—

कुलिकः कालवेला च यमघण्टश्च कण्टकः।
वाराद्द्विघ्ने क्रमान्मन्दे बुधे जीवे कुजे क्षणः॥ ३७॥

अन्वयः—वाराद् (अभीष्टदिनात्) मन्दे, बुधे, जीवे, कुजे द्विघ्ने 'सति' क्रमात् कुलिकः, कालवेला, च (पुनः) यमघण्टः, कण्टकश्च क्षणः (मुहूर्त्तः) स्यात्॥ ३७॥

भाषार्थ—जिस दिनमें कुलिकादि ४ मुहूर्त्तोंका ज्ञान करना हो उस दिनसे शनि, बुध, गुरु और मङ्गलवार तक गिनकर जो संख्यायें हों उन्हें दूनी करनेसे क्रमसे कुलिक, कालवेला, यमघण्ट और कण्टक मुहूर्त्त होते हैं॥ ३७॥

उदा०—जैसे रविवारमें इन चारों मुहूर्त्तोंको जानना है, तो रविसे शनि तककी सङ्ख्या ७ को दूनी करनेपर १४ वां मुहूर्त्त कुलिक हुआ। रविसे बुध तककी सङ्ख्या ४ को दूनी करनेपर ८ वां कालवेला हुआ। रविवारसे गुरुवार तककी सङ्ख्या ५ को दूनी करनेसे १०वां मुहूर्त्त यमघण्ट और मङ्गल तककी सङ्ख्या ३को दूनी करनेसे ६ठा मुहूर्त्त कण्टक हुआ। इसी तरह हर एक वारोंमें समझिये॥ ३७॥

स्पष्टार्थ कोष्ठक-१

योगाः	रवि.	सोम	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
कुलिक	१४	१२	१०	८	६	४	२
कालवेला	८	६	४	२	१४	१२	१०
यमघण्ट	१०	८	६	४	२	१४	१२
कण्टक	६	४	२	१४	१२	१०	८

विशेषः—दिनमानके १६ वें भागको १ मुहूर्त्त कहा गया है। उपर्युक्त कुलिकादि मुहूर्त्तों-में शुभकार्यका त्याग करना चाहिये। आवश्यक कार्योंमें देशभेदसे इनका परिहार गर्गाचार्यके मतसे इस तरह है—

"विन्ध्यस्योत्तरकूले तु यावदातुहिनाचलम्।
यमघण्टकदोषोऽस्ति नान्यदेशेषु विद्यते॥
मत्स्याङ्गमागधान्ध्रेषु यमघण्टस्तु दोषकृत्।
काश्मीरे कुलिकं दुष्टमर्धयामस्तु सर्वतः" इति॥

प्रकृत श्लोककी उपपत्तिः—

"रविवारादिशन्यन्तं गुलिकादि निरूप्यते।
दिवसानष्टधा कृत्वा वारेशाद् गणयेत् क्रमात्॥
अष्टमांशो निरीशः स्याच्छन्यंशो गुलिकः स्मृतः।
रात्रीरप्यष्टधा कृत्वा वारेशात् पञ्चमादितः॥
गणयेदष्टमः खण्डो निष्पतिः परिकीर्तितः।
शन्यंशो गुलिकः प्रोक्तो गुर्वंशो यमघण्टकः॥
भौमांशो मृत्युरादिष्टो रव्यंशः कालसंज्ञकः।
सौम्यांशोऽर्धप्रहरकः स्पष्टकर्मप्रदेशकः॥

पराशरके इस वचनसे दिनमानको बराबर ८ टुकड़े करके प्रत्येक दिनमें। वर्त्तमान दिनसे शनिकी संख्या वाला टुकड़ा गुलिक, गुरुका टुकड़ा यमघण्ट, मङ्गलका टुकड़ा मृत्यु और बुधका टुकड़ा अर्धयाम होता है। जैसे रविवारको आठ टुकड़े करनेपर ७वाँ शन्यंश गुलिक, ५वाँ गुर्वंश यमघण्ट, ४ था बुधांश अर्धयाम और ३ रा कुजांश मृत्यु होता है। एवं प्रत्येक दिनोंमें समझिये

स्पष्टार्थ कोष्ठक २

ग्रहांश	संज्ञा	रवौ	चन्द्रे	कुजे	बुधे	गुरौ	शुक्रे	शनौ
शन्यंश	गुलिक= कुलिक	७	६	५	४	३	२	१
गुर्वंश	यमघण्ट	५	४	३	२	१	७	६
बुधांश	अर्धयाम= कालवेला	४	३	२	१	७	६	५
कुजांश	मृत्यु = कण्टक	३	२	१	७	६	५	४

ऊपर बताई हुई संज्ञाओंमें आचार्यने गुलिककी जगह कुलिक, अर्धयामको कालवेला और मृत्युको कण्टकके नाम से रखा। तहाँ मुहूर्त्तको दिनमानका सोलहवाँ भाग होनेके कारण पूर्वमें दिनमानका अष्टमांश सिद्ध कुलिकादि ४ योग दूना करने पर आचार्यमतसे सिद्ध होते हैं। अतः ऊपरका प्रथम कोष्ठ उपपन्न हुआ ॥ ३७ ॥

प्रत्येक दिनोंमें दूषित मुहूर्त्तोंका विवरण—

सूर्ये षट्-स्वर नाग-दिङ्-मनुमिताश्चन्द्रेऽब्धिषट् कुञ्जरा-
ङ्कार्काविश्वपुरन्दराः, क्षितिसुते द्व्यब्ध्यग्नितर्का दिशः।
सौम्ये द्व्यब्धि-गजाङ्क-दिङ्-मनुमिता, जीवे द्वि-षड्-भास्कराः
शक्राख्यास्तिथयः कलाश्च, भृगुजे वेदेषु-तर्क-ग्रहाः ॥३८॥
दिग्-भास्करा मनुमिताश्च, शनौ शशि-द्वि-
नागा दिशो भव-दिवाकर-सम्मिताश्च।
दुष्टक्षणः कुलिक-कण्टक-कालवेलाः
स्युश्चार्द्धयाम-यमघण्टगताः कलांशः ॥३९॥

अन्वयः—सूर्ये (रविवारे) षट्-स्वर-नाग-दिङ्-मनुमिताः कलांशाः (मुहूर्त्ताः), चन्द्रे (सोमवारे) अब्धिषट्कुञ्जराङ्कार्काविश्वपुरन्दराः 'कलांशाः', क्षितिसुते (भौमवारे) द्व्यब्ध्यग्नितर्कादिशः 'कलांशाः', सौम्ये (बुधवारे) द्व्यब्धिगजाङ्कदिङ्-मनुमिताः 'कलांशाः'; जीवे (गुरुवारे) द्विषड्भास्कराः शक्राख्यास्तिथयः कलाश्च, भृगुजे (शुक्रवारे) वेदेषुतर्कग्रहाः दिग्भास्करा मनुमिताश्च कलांशाः (मुहूर्त्ताः) 'कश्चित्' दुष्टः क्षणः स्यात्। 'केचित्' कुलिक-कण्टक-कालवेलाः स्युः। 'केचित्' अर्धयामयमघण्टगताः स्युः ॥ ३८-३९ ॥

भाषार्थः—रविवारमें-६।७।८।१० और १४वाँ मुहूर्त्त,
सोमवारमें—४।६।८।९।१२।१३ और १४वाँ मुहूर्त्त,
मङ्गलवारमें—२।४।३।६ और १०वाँ मुहूर्त्त,
बुधवारमें—२।४।८।९।१० और १४ वाँ मुहूर्त्त,
गुरुवारमें—२।६।१२।१४।१५ और १६ वाँ मुहूर्त्त,
शुक्रवारमें—४।५।६।९।१०।१२ और १४ वाँ मुहूर्त्त,
शनिवारमें—१।२।८।१०।११ और १२ वाँ मुहूर्त्त,
इनमें कोई दुष्ट मुहूर्त्त, कोई कुलिक, एवं कण्टक, कालवेला, अर्धयाम तथा

यमघण्ट होते हैं । इनमें प्रत्येकका प्रमाण कलांशके समान अर्थात् दिनमानके सोलहवें भागके समान होता है । ये मुहूर्त्त शुभकार्योंमें दूषित कहे गये हैं ॥३८-३९॥

उपपत्तिः—पूर्वोक्त ३७वें श्लोकके अनुसार रविवारमें १४ वाँ मुहूर्त्त कुलिक, १० वां यमघण्ट, ८ वां कालवेला, ६ठा कण्टक होता है तथा विवाह प्रकरणके ६४वें श्लोकके अनुसार रविवारमें—४ था अर्धयाम मुहूर्त्तके हिसाबसे ७वां हुआ । अतः रविवारमें—६ ठा कण्टक, ७वां अर्धयाम, ८वां कालवेला, १० वां यमघण्ट और १४वां कुलिक उपपन्न हुआ । इसी तरह सोम आदि वारोंमें भी सभी मुहूर्त्त उपपन्न होते हैं ॥ ३८-३९ ॥

विवाहादि शुभकार्योंमें होलाष्टकका त्याग—

विपाशेरावतीतीरे शुतुद्र्वाश्च त्रिपुष्करे ।
विवाहादिशुभे नेष्टं होलिकाप्राग्दिनाष्टकम् ॥ ४० ॥

अन्वयः—विपाशेरावतीतीरे, शुतुद्र्वाश्च तीरे, तथा त्रिपुष्करे 'देशे' विवाहादिशुभे होलिकाप्रागदिनाष्टकं इष्टं न भवति ॥ ४० ॥

भाषार्थः—विपाशा, इरावती और शुतुद्रु नदियोंके तटमें वसने वाले देशोंमें और त्रिपुष्कर देशमें होलिका (फाल्गुनकी पूर्णमासी) से आठ दिन पूर्व (अर्थात् फाल्गुन शुक्ला ८मीसे पूर्णमासी तक) विवाह आदि शुभकार्यमें निन्दित हैं । अर्थात् उक्त देशोंमें इन दिनोंमें शुभकार्य नहीं करना चाहिये । दूसरे देशोंमें कोई दोष नहीं है ॥ ४० ॥

विशेष—वर्त्तमान समयमें विपाशाको 'व्यासा', इरावतीको 'रावी' और शुतुद्रुको 'सतलज' कहते हैं । ये तीनों नदियां पञ्चनद (पंजाब) प्रान्तमें हैं । जिनमें विपाशा (व्यासा) नदीके तटपर होशियारपुर, गुरुदासपुर, मण्डी, कैङ्गड़ा, सुलतान और कपुरथला ये शहर पाये जाते हैं । इरावती (रावी) नदीके तटपर लाहौर, अमृतसर और मुलतान शहर हैं । शुतुद्रु (सतलज) नदीके किनारे फिरोजपुर, शिमला, भावलपुर और लुधियाना शहर बसे हैं । ये नदियां पूर्व पश्चिम प्रवाह से सिन्धनदीमें गिरतीं हैं । त्रिपुष्कर (पुष्कर क्षेत्र) अजमेरमें है ॥ ४० ॥

पूर्व कहे हुए मृत्युयोगादिका परिहार—

मृत्यु-क्रकच-दग्धादीनिन्दौ शस्ते शुभाञ् जगुः ।
केचिद्यामोत्तरञ्चान्ये यात्रायामेव निन्दितान् ॥४१॥

अन्वयः—इन्दौ शस्ते 'सति' मृत्युक्रकचदग्धादीन् 'योगान्' आचार्याः शुभान् जगुः । केचित् 'आचार्याः' तान् 'यामोत्तरं शुभान् जगुः'। अन्ये 'केचिदाचार्याः' तान् यात्रायामेव निन्दितान् जगुः ॥ ४१ ॥

भाषार्थः—किसी आचार्य (राजमार्त्तण्ड) के मतसे चन्द्रमाके शुभ

(कार्यकर्त्ताके गोचरमें चन्द्रमा शुद्ध) रहनेपर मृत्युयोग (आनन्दादि योगमें कहा हुआ) क्रकच योग ('षष्ठयादितिथयो मन्दात्' इस श्लोकमें कहा हुआ) और दग्ध-विष-हुताशन योग ('सूर्येशपञ्चाग्नि' इत्यादि कहा हुआ) ये सब शुभ होते हैं। अर्थात् उनके मतमें चन्द्रबल ही प्रधान है। जैसे **राजमार्त्तण्डकी दीपिकामें** कहा है—

क्रकचो मृत्युयोगाख्यो दिनं दग्धं तथैव च।
चन्द्रे शुभे क्षयं यान्ति वृक्षा वज्राहता इव॥

दूसरा मत यह है कि ये मृत्यु, क्रकच, दग्धादि योग एक प्रहरके बाद शुभ होते हैं। अर्थात् इन योगोंके प्रारम्भसे सिर्फ १ प्रहर निन्दित है; बाद शुभ। जैसे **राजमार्त्तण्डकी** दीपिकामें—

उत्पाते यमघण्टे च काणे च क्रकचे तथा।
तिथौ दग्धे च काले च प्राग्यामात् परतः शुभम्" ॥

किसी किसी अन्य आचार्यों (गर्गाचार्य आदि) का मत है कि ये मृत्यु-क्रकचादि योग केवल यात्रामें ही निन्दित हैं। अर्थात् विवाहादि अन्य शुभकार्यों में इन्हें त्यागनेकी आवश्यकता नहीं है। जैसे लल्लाचार्यने लिखा है—

वारर्क्षतिथियोगेषु यात्रामेव विवर्जयेत्।
विवाहादीनि कुर्वीत गर्गादीनामिदं वचः॥

वस्तुतः तिथिनक्षत्रोंमें चन्द्रमाकी प्रधानता रहनेके कारण चन्द्रमाकी शुद्धि रहनेपर ही इन दोषोंका परिहार हो सकता है॥ ४१॥

नोटः—चन्द्रमाकी गोचरशुद्धि गोचर प्रकरणमें कहेंगे॥ ४१॥

अयोगोंका दूसरा परिहार—

अयोगे सुयोगोऽपि चेत् स्यात्तदानीमयोगं निहत्यैष सिद्धिं तनोति। परे लग्नशुद्ध्या कुयोगादिनाशं दिनार्द्धोत्तरं विष्टिपूर्वं च शस्तम् ४२

अन्वयः—अयोगे चेत् सुयोगः अपि स्यात्, तदानीं एष (सुयोगः) अयोगं निहत्य सिद्धिं तनोति। (केचित् आचार्याः) लग्नशुद्ध्या कुयोगादिनाशं वदन्ति, 'तथा' विष्टिपूर्वं (सर्वदोषं) दिनार्धोत्तरं शस्तं 'वदन्ति'॥ ४२॥

भाषार्थः—यदि क्रकचादि किसी अयोगमें कोई सुयोग (सिद्धियोग) भी पड़े तो वह सिद्धियोग अयोग (बुरे फलों) को नाश करके सिद्धि (शुभ फलों) को बढ़ाता है। तात्पर्य यह है कि यदि कुयोग और सुयोग दोनों रहें तो कार्य अवश्य ही करना चाहिये। जैसे **राजमार्त्तण्डमें** कहा है—

"अयोगः सिद्धियोगश्च द्वावेतौ भवतो यदि ।
अयोगो हन्यते तत्र सिद्धियोगः प्रवर्त्तते" ॥ इति ॥

कोई २ आचार्य (राजमार्त्तण्ड प्रभृति) कहते हैं कि यदि लग्नकी शुद्धि रहे तो कुयोगोंका नाश होता है । अर्थात् किसी भी कार्यमें तात्कालिक लग्नकी शुद्धि अत्यावश्यक है । जैसे राजमार्त्तण्डने कहा है—

"यत्र लग्नं विना किञ्चित् क्रियते शुभसंज्ञकम् ।
तत्र तेषामयोगानां प्रभावाज्जायते फलम्" ॥

और भद्रा आदि जितने दोष हैं वे सब दिनार्ध (मध्याह्न) के बाद शुभ हो जाते हैं । अर्थात् दोपहर दिनके बाद कोई दोष शुभकार्यमें बाधक नहीं होते । राजमार्तण्डने कहा भी है—

"विष्टिरङ्गारकश्चैव व्यतीपातः सवैधृतिः ।
प्रत्यरिर्जन्मनक्षत्रं मध्याह्नात् परतः शुभम्" ॥ इति ॥

विशेषः—इस श्लोकमें सबसे प्रबल शब्द 'लग्नशुद्धि' है । लग्न वह चीज़ है जो तत्कालमें आकाशगत भचक्र (राशिमण्डल) का प्रदेश पृथिवीमें लगा रहता है । पृथिवीवासियोंको उसमें संसक्त लग्नका असर अधिक पड़ता है । इसलिये सबसे अधिक लग्नकी शुद्धि ही कुयोगोंका परिहार कर सकती है ।

नोटः—लग्नशुद्धि कार्यभेदसे भिन्न २ प्रकारकी प्रत्येक कार्यमें आगे कहेंगे ॥ ४२ ॥

भद्राका विवरण—

शुक्ले पूर्वार्धेऽष्टमी-पञ्चदश्योर्भद्रैकादश्यां चतुर्थ्यां परार्धे ।
कृष्णेऽन्त्यार्धे स्यात्तृतीया-दशम्योः पूर्वे भागे सप्तमी-शम्भुतिथ्योः ॥

अन्वयः— शुक्ले (शुक्लपक्षे) अष्टमीपञ्चदश्योः पूर्वार्धे, 'तथा' एकादश्यां चतुर्थ्यां परार्धे भद्रा भवति । कृष्णे (कृष्णपक्षे) तृतीया-दशम्योः अन्त्यार्धे 'तथा' सप्तमी-शम्भुतिथ्योः पूर्वे भागे भद्रा स्यात् ॥ ४३ ॥

भाषार्थः—शुक्लपक्षमें-अष्टमी और पूर्णमासी तिथिके पूर्वार्ध (पहले आधे) में और एकादशी तथा चतुर्थी तिथिके परार्ध (दूसरे आधे) में भद्रा होती है ।

कृष्णपक्षमें-तृतीया और दशमीके परार्धमें, तथा सप्तमी और चतुर्दशीके पूर्वार्धमें भद्रा होती है ॥ ४३ ॥

उपपत्तिः—भद्रा एक करणका नाम है । करणका मान तिथिके आधेके समान है प्रत्येक तिथिमें २ करण होते हैं । जिनमें ७ करण चल और ४ करण स्थिर हैं । तहां—

"चतुर्दशी या शशिना प्रहीना तदर्धभागे शकुनिर्द्वितीये ।
दशार्धयोर्नागचतुष्पदे च किंस्तुघ्नमाद्ये प्रतिपद्दले च ॥"

इस प्रमाणसे कृष्णपक्षकी चतुर्दशीके परार्धमें शकुनि करण, अमावसके पूर्वार्धमें नाग, परार्धमें चतुष्पद् और शुक्लपक्षकी पड़िवाके पूर्वार्धमें किंस्तुघ्न ये ४ स्थिर करण हैं । उसके बाद शुक्ल पड़िवाके परार्धमें बव, द्वितीयाके पूर्वार्धमें बालव, उत्तरार्धमें कौलव, तृतीयाके पूर्वार्धमें तैतिल, परार्धमें गर, चतुर्थीके पूर्वार्धमें वणिक् और परार्धमें विष्टि (भद्रा) ये ७ चल करण हैं । फिर शुक्ल पञ्चमीसे सप्तमी तक बवसे वणिक् पर्यन्त ६ करण बीतनेके बाद अष्टमीके पूर्वार्धमें विष्टि (भद्रा) हुई । फिर भी अष्टमीके उत्तरार्धसे एकादशीके पूर्वार्ध तक ६ करण बीतने पर एकादशीके परार्धमें भद्रा हुई । एवं फिर भी द्वादशीसे चतुर्दशी तक बवादि ६ करण बीतकर पूर्णमासीके पूर्वार्धमें भद्रा । उसके बाद कृष्णपक्षकी तृतीयाके परार्धमें फिर ७ मीके पूर्वार्धमें और १० मीके परार्धमें भद्रा सिद्ध हुई[1] । स्पष्टताके लिये कोष्ठक देखिये ॥ ४३ ॥

भद्रा जाननेके लिये करण कोष्ठ—

शुक्लपक्ष	तिथि	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५
	पूर्वार्ध	किं. स्थि	बा.	तै.	व.	ब.	कौ.	ग.	भ.	बा.	तै.	व.	ब.	कौ.	ग.	भ.
	परार्ध	ब	कौ	ग.	भ.	बा.	कौ.	व.	व.	कौ.	ग.	भ.	बा.	तै.	व.	ब.
कृष्णपक्ष	तिथि	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	३०
	पूर्वार्ध	बा.	तै.	व.	ब.	कौ.	ग.	भ.	बा.	तै.	व.	व.	कौ.	ग.	भ.	ना स्थि
	परार्ध	कौ.	ग.	भ.	बा.	तै	व.	ब.	कौ.	ग.	भ.	बा.	तै.	व.	श. स्थि	च. स्थि

भद्राके मुख-पुच्छका विभाग और फल—

पञ्चद्व्यद्रिकृताष्टरामरसभूयामादिघट्यः शरा
विष्टेरास्यमसद्गजेन्दुरसरामाद्र्यश्वबाणाब्धिषु ।
यामेष्वन्त्यघटीत्रयं शुभकरं पुच्छं तथा वासरे
विष्टिस्तिथ्यपरार्धजा शुभकरी रात्रौ तु पूर्वार्धजा ॥ ४४ ॥

१. शुक्लपक्षकी पड़िवासे कृष्णपक्षकी चतुर्दशीके पूर्वार्ध तक (मध्यमें) वर्त्तमान तिथिको दूनी करके एक घटाने तथा ७ से भाग देनेसे जो शेष हो, बवसे उतनी संख्याका करण होगा शेष शून्य रहनेपर भद्रा होगी ।

अन्वयः—पञ्चद्वयद्विकृताष्टरामरसभूयामादिवट्यः शराः विष्टेः आस्यं 'भवति, तत्' असत् 'प्रोक्तम्'। 'तथा' गजेन्दुरसरामाद्वयधिबाणाब्धिषु यामेषु अन्त्यघटीत्रयं 'विष्टेः' पुच्छं 'भवति तत्' शुभकरं 'प्रोक्तम्'। तिथ्यपरार्धजा विष्टिः वासरे, तु (पुनः) पूर्वार्धजा 'विष्टिः' रात्रौ शुभकरी 'भवति' ॥ ४४ ॥

भाषार्थः—"शुक्ल पक्षमें ४,८,११ और १५ तथा कृष्णपक्षमें ३,७,१० और १४ तिथियोंमें भद्रा होती है" इसलिये-शुक्लपक्षकी चतुर्थीके ५वें प्रहरकी, अष्टमी के २रे प्रहरकी, एकादशीके ७वें प्रहरकी, पूर्णमासीके ४थे प्रहरकी एवं कृष्णपक्षकी तृतीयाके ८वें प्रहरकी, सप्तमीके ३रे प्रहरकी, दशमीके ६ठे प्रहरकी और चतुर्दशीके १म प्रहरकी 'आदिसे' पांच घड़ी भद्राका मुख होता है; जो अशुभ है।

इसी तरह-शुक्लपक्षकी चतुर्थीके ८वें प्रहरकी, अष्टमीके १म प्रहरकी, एकादशीके ६ठे प्रहरकी, पूर्णमासीके ३रे प्रहरकी तथा कृष्णपक्षकी तृतीयाके ७वें प्रहरकी, सप्तमीके २रे प्रहरकी, दशमीके ५वें प्रहरकी और चतुर्दशीके ४थे प्रहरकी अन्तवाली ३ घड़ी भद्राका पुच्छ (पूंछ) है; यह शुभ है।

भद्राका परिहार—तिथियोंके परार्धवाली (अर्थात् शुक्लपक्षमें ४ और ११ तिथि, कृष्णपक्षमें ३ और १० तिथिवाली) भद्रा दिनमें पड़े तो शुभ होती है। एवं तिथियोंके पूर्वार्धवाली (अर्थात् शुक्लपक्षमें ८ और १५ तिथि तथा कृष्णपक्षमें ७ और १४ तिथिवाली) भद्रा यदि रातमें पड़े तो शुभ होती है। ऐसी हालतमें भद्रामें भी शुभकार्य किये जाते हैं ॥ ४४ ॥

वि०—यहां भद्राका स्वरूप मुख-पुच्छ विशिष्ट कहा है। इसकी कथा श्रीपतिके—

"दैत्येन्द्रैः समरेऽमरेषु विजितेष्वीशः क्रुधा दृष्टवान्
स्वं कायं किल निर्गता खरमुखी लाङ्गूलिनी च त्रिपात्।
विष्टिः सप्तभुजा मृगेन्द्रगलका क्षामोदरी प्रेतगा।
दैत्यघ्नी मुदितैः सुरैस्तु करणप्रान्ते नियुक्ता सदा" ॥

इस श्लोकसे इस तरह है कि जब असुरोंने युद्धमें देवताओंको हराया उस समय शंकर भगवान् बड़े क्रोधके साथ अपने शरीरको देखे। उनके देखते ही तुरत गधेकी तरह मुख वाली, पूंछवाली, ३ पांववाली, ७ भुजावाली सिंहकी तरह गर्दनवाली, दुबला पेटवाली और प्रेत वाहनवाली, (पशुकी तरह) एक 'भद्रा' नामकी देवता उत्पन्न हुई। जो उत्पन्न होते ही समस्त असुरोंका संहार की। इस उपकारसे प्रसन्न होकर देवतालोगोंने उस भद्रा देवीको करणोंके अन्तमें सदाके लिये स्थान दे दिया।

चूंकि उस देवीने देवोंका 'भद्र' (कल्याण) किया इसलिये उसका नाम 'भद्रा' अन्वर्थक है। परन्तु अपने मुखसे असुरोंका संहार किया इसलिये भद्राका मुख अशुभ तथा पुच्छ शुभ माना गया। आज भी पशुओंकी पूंछ ही शुभ मानी जाती है।

आवश्यक कार्यमें भद्राका परिहारवचन रहने पर भी आजकल दक्षिण बिहार, संयुक्त प्रान्त आदि बहुत देशोंमें भद्राको विशेषतः वराते ही हैं। परन्तु मिथिला, बङ्गाल, नेपाल आदि प्रान्तोंमें भद्रामें सिर्फ श्रावणी और फाल्गुनी (होलिका दाह) दो ही कार्य वराते हैं। इन प्रान्तों में—

"भद्रायां द्वे न कर्त्तव्ये श्रावणी फाल्गुनी तथा।
श्रावणी नृपतिं हन्ति राष्ट्रं (ग्रामं) दहति फाल्गुनी" ॥

इसी वचनको प्रबल मानते हैं कि भद्रामें श्रावणी और फाल्गुनी दो ही कर्म त्याज्य हैं ॥४४॥
उपपत्तिः—रत्नमालाके—

"जलशिखिशशिरक्षःशर्वकीनाशवायु-
त्रिदशपतिककुप्सु प्रोक्तमास्यं हि विष्टेः।
नियतमृषिभिराशासङ्ख्ययामक्रमेण
स्फुटमिह परिहार्यं मङ्गलेष्वेतदेव" ॥

इस श्लोकसे यह सिद्ध होता है कि शुक्लपक्षकी चौथको भद्राका मुख जल (पश्चिम) दिशामें होता है। यहां दिशाके समान सङ्ख्यावाले प्रहरमें मुखकी कल्पनासे शुक्ल चौथको पश्चिमकी संख्या ५ वें प्रहरमें भद्राका मुख सिद्ध हुआ। एवं शुक्ल अष्टमीको शिखि-दिशा (अग्निकोण) में भद्राका मुख होनेसे दिशासङ्ख्या २ रे प्रहरमें मुख सिद्ध हुआ। शुक्ल एकादशीको शशि (उत्तर) दिशाकी सङ्ख्यामें ७ वें प्रहरमें मुख सिद्ध हुआ। इसी तरह पूर्णमासीको राक्षस (नैर्ऋति) दिशासं० ४ था प्रहर, कृष्णतृतीयामें शर्व (ईशान) ८ वां प्रहर, सप्तमीको कीनाश (यम) ३ रा प्रहर, दशमीको वायु ६ ठा प्रहर और चौदशको त्रिदशपति (इन्द्र-पूर्व) प्रथम प्रहर मुखके उपपन्न हुए। करणका मान तिथिका आधा होता है, जो चार प्रहर ही स्थूल मानसे माना जाता है। उपर्युक्त वचनके अनुसार जिस तिथिमें जो प्रहर मुखका सिद्ध है उससे चौथे प्रहरमें भद्राका पुच्छ होना उचित है। इसलिये जब चौथको ५वें प्रहरमें प्रथम ५ घड़ी मुख है तो उससे चौथे ८ वें प्रहरकी अन्तवाली ३ घड़ी पुच्छ वास्तव ही है। अष्टमीको ४ प्रहरके भीतर ही भद्राकी स्थिति होनेसे जब २ रे प्रहरमें प्रथम ५ घड़ी मुख है तो दूसरेसे चौथा पहला प्रहर ही पड़ता। अतः प्रथम प्रहरके अन्तकी ३ घड़ी भद्रा-पुच्छ हुआ। एवं एकादशीको चौथे प्रहरके बाद ५ से ८ तक भद्राकी स्थिति है। वहां जब ७ वें प्रहरकी प्रथम ५ घड़ी मुख हैं तो उससे चौथा ६ ठा प्रहर ही पड़ता। एवं और तिथियोंमें भी समाधान करें। इस तरह भद्राके मुख और पुच्छ विभाग उपपन्न होते हैं ॥ ४४ ॥

भद्राका मुख–पुच्छविभाग जाननेका कोष्ठ

	शुक्लपक्षमें				कृष्णपक्षमें			
तिथि	४	८	११	१५	३	७	१०	१४
भद्रा	उत्तरा.	पूर्वार्ध	उत्तरा.	पूर्वार्ध	उत्तरा.	पूर्वार्ध	उत्तरा.	पूर्वार्ध
प्रहर	५	२	७	४	८	३	६	१
मुखघ.	५	५	५	५	५	५	५	५
प्रहर	८	१	६	३	७	२	५	४
पुच्छ घ.	३	३	३	३	३	३	३	३

चन्द्रराशिके भेदसे भद्राका निवास और फल—

कुम्भकर्कद्वये मर्त्ये स्वर्गेऽब्जेऽजात्त्रयेऽलिगे ।
स्त्रीधनुर्जूकनक्रेऽधो भद्रा तत्रैव तत्फलम् ॥ ४५ ॥

अन्वयः—कुम्भकर्कद्वये अब्जे 'चन्द्रे सति' मर्त्ये 'भद्रा भवति' । अजात् त्रये, अलिगे च 'चन्द्रे सति' स्वर्गे 'भद्रा भवति' । स्त्रीधनुर्जूकनक्रे 'चन्द्रे सति' अधः (पाताले) 'भद्रा भवति' । 'भद्रा यत्र तिष्ठति' तत्रैव तत्फलं वाच्यम् ॥ ४५ ॥

भाषार्थः—जब चन्द्रमा कुम्भ, मीन, कर्क और सिंह इन ४ राशियोंमें रहता है उस समय भद्रा मर्त्यलोकमें (इस पृथिवी पर) रहती है । मेष, वृष, मिथुन और वृश्चिक राशियोंमें चन्द्रमाके रहने पर भद्रा स्वर्गलोकमें रहती है । एवं कन्या, धनु, तुला और मकर राशियोंमें चन्द्रमाके रहने पर भद्रा पाताल लोकमें रहती है । भद्रा जिस समय जहाँ रहती है वहाँ ही अपना फल देती है । इससे यह अर्थ निकला कि कुम्भ, मीन, कर्क और सिंह राशियोंमें भद्रा पृथिवी निवासियोंके (मनुष्योंके) लिये अशुभ होती है । शेष (१–२–३–६–७–८–९–१०) राशियोंमें इस लोकके वास्ते भद्रा शुभ ही होती है ॥ ४५ ॥

गुरु और शुक्रके वृद्ध, अस्त और बाल्यमें तथा मलमास और क्षयमासमें वर्जित कर्म—

वाप्याराम–तडाग–कूप–भवनारम्भप्रतिष्ठे व्रता-
ऽऽरम्भोत्सर्ग–वधूप्रवेशन–महादानानि सोमाष्टके ।
गोदानाग्रयण–प्रपा–प्रथमकोपाकर्म वेदव्रतं
नीलोद्वाहमथातिपन्नशिशुसंस्कारान् सुरस्थापनम् ॥ ४६ ॥
दीक्षा-मौञ्जि-विवाह-मुण्डनमपूर्वं देवतीर्थेक्षणं
संन्यासाग्निपरिग्रहौ नृपतिसन्दर्शाऽभिषेकौ गमम् ।
चातुर्मास्यसमावृती श्रवणयोर्वेधं परीक्षां त्यजेद्-
वृद्धत्वास्तशिशुत्व इज्य-सितयोर्न्यूनाधिमासे तथा ॥ ४७ ॥

अन्वयः—इज्यसितयोः वृद्धत्वास्तशिशुत्वे तथा न्यूनाधिमासे 'सति'—वाप्यारामतडागकूपभवनारम्भप्रतिष्ठे, व्रतारम्भोत्सर्गवधूप्रवेशनमहादानानि, सोमाष्टके, गोदानाग्रयणप्रपाप्रथमकोपाकर्म, वेदव्रतं, नीलोद्वाहं, अथ—अतिपन्नशिशुसंस्कारान्, सुरस्थापनं, दीक्षामौञ्जिविवाहमुण्डनम्, अपूर्वं देवतीर्थेक्षणं, संन्यासाग्निपरिग्रहौ, नृपतिसन्दर्शाभिषेकौ, गमम्, चातुर्मास्यसमावृती, श्रवणयोर्वेधं, परीक्षां 'च' त्यजेत् ॥ ४६–४७ ॥

भाषार्थः—बृहस्पति और शुक्र जब वृद्ध, अस्त और बाल्य अवस्थामें रहते हैं, एवं जब क्षयमास और मलमास होता है, तब—वापी (बावली), बगीचा, तालाब, और कूपका आरम्भ और प्रतिष्ठा (उत्सर्ग-यज्ञ), गृहोंका आरम्भ और गृहप्रवेश, व्रतोंका आरम्भ और उत्सर्ग (उद्यापन), वधूप्रवेश, महादान (तुलादान), सोमयाग, अष्टका (पितृपक्षका श्राद्ध), गोदान (केशान्तकर्म), नवान्नभक्षण, जलशाला, पहले २ श्रावणी व्रत, वेदव्रत, नीलवृषोत्सर्ग (काम्यवृषोत्सर्गको नील वृषोत्सर्ग कहते हैं, जो किसी अभीष्ट सिद्धिके निमित्त होता है) अतिपन्न-शिशुसंस्कार (समय बीत जाने पर अतिक्रान्त समयमें बच्चोंका जातकर्मादि संस्कार), देवताओंकी स्थापना, गुरुसे इष्टमन्त्रका ग्रहण, उपनयन, विवाह, मुण्डन (चूडाकरण), प्रथम प्रथम किसी तीर्थ[1] और देवताका दर्शन, संन्यासधारण, अग्निहोत्र,

---

१. गया और गङ्गाकी यात्रामें गुरु-शुक्रका अस्तादि दोष और मलमास भी दोषावह नहीं हैं। जैसे लिखा है—

"गयायां सर्वकालेषु पिण्डं दद्याद् विधानतः ।
अधिमासे जन्मदिने ह्यस्ते च गुरुशुक्रयोः ॥

राजाका प्रथम दर्शन, राजाभिषेक, प्रथम प्रथम अपूर्व यात्रा, चातुर्मास्य व्रत (चतुर्मास्यका याग), समावर्त्तन (ब्रह्मचर्यव्रतका विसर्जन), कर्णवेध, और दिव्यपरीक्षा इन सभी कार्योंको त्याग करे। अर्थात् उक्त समयमें ये कार्य नहीं किये जाते हैं ॥ ४६–४७ ॥

विशेषः—इस श्लोकमें बृहस्पति-शुक्रके बाल्य, वृद्ध और अस्त तथा क्षयमास और मल-मासकी चर्चा की गई है। बृहस्पति और शुक्र जब सूर्यसे आगे-पीछे १२ अंशके भीतर रहते हैं तो अस्त कहलाते हैं। अस्त होनेके पहले वृद्ध और उदय होनेके बाद बाल्य अवस्था होती है। जिसका विवरण संस्कारप्रकरणके २७–२८ वें श्लोकोंमें कहेंगे। क्षयमास और मलमासकी परिभाषा संक्रान्ति प्रकरणके २० वें श्लोकमें कहेंगे ॥ ४६–४७ ॥

सिंह–मकरराशि–वक्रातिचार और गुर्वादित्यमें गुरुका दोष—

अस्ते वर्ज्यं सिंहनक्रस्थजीवे वर्ज्यं केचिद्वक्रगे चातिचारे।
गुर्वादित्ये विश्वघस्रेऽपि पक्षे प्रोचुस्तद्वद्दन्तरत्नादिभूषाम् ॥४८॥

अन्वयः—अस्ते वर्ज्यं 'कर्म' सिंहनक्रस्थजीवे 'अपि' वर्ज्यम्। केचित् (परे) आचार्याः 'गुरौ' वक्रगे, अतिचारे च (पुनः) गुर्वादित्ये, विश्वघस्रे पक्षे अपि वर्ज्यम्। 'तथा' दन्तरत्नादिभूषां तद्वत् (पूर्वोक्तवत्) वर्ज्यां प्रोचुः ॥ ४८ ॥

भाषार्थः—बृहस्पतिके अस्त रहनेमें जो कार्य (श्लोक ४६–४७ में कहे गये) त्याज्य हैं, वे सभी बृहस्पतिके सिंह और मकर राशिमें रहने पर भी त्याज्य हैं। किसी २ आचार्यका मत है कि जब बृहस्पति वक्री (पीछे हटते) रहें और अतिचारी हों तो अस्तमें कहे हुये सभी कर्म त्याज्य होते हैं। इसी तरह गुर्वादित्य और १३ दिनवाले* पक्षमें भी वे सभी कार्य त्याज्य हैं। इन पूर्वोक्त निषिद्ध समयोंमें हाथीके दाँत और रत्नोंसे युक्त अलङ्करणोंका बनवाना तथा पहनना भी अशुभ है ॥ ४८ ॥

विशेषः—सिंह और मकर राशिमें गुरुके रहने पर और भी विशेष बातें आगे कही जायेंगी। यहाँ प्रसङ्गवश अतिचार और गुर्वादित्यका विवरण लिखना आवश्यक है।

न त्यक्तव्यं गयाश्राद्धं सिंहस्थे च बृहस्पतौ।
अधिमासे सिंहगुरावस्ते च गुरुशुक्रयोः॥
तीर्थयात्रा न कर्त्तव्या गयां गोदावरीं विना।" वायुपुराणे।
एवं—"गोदावर्यां गयायां च श्रीशैले ग्रहणद्वये।
सुरासुराणां गुर्वोश्च मौढ्यदोषो न विद्यते॥" इति।

---

* जिस पक्षमें दो तिथियोंका क्षय होता है वह पक्ष १३ दिनका होता है।

अतिचारः—म० म० महेशठक्कुरकृतातीचारनिर्णये—

"पूर्वराशिं परित्यज्यापूर्णे सँवत्सरे गुरुः।
अतीचारः स विज्ञेयः परराशिगतो यदि" ॥

मध्यमागतिसे बृहस्पतिका एक राशिमें एकवर्ष रहना सँवत्सर कहाता है। यदि स्पष्ट-गतिसे गुरु सँवत्सर पूरा होनेके पहले ही दूसरी (आगे वाली) राशिमें चला जाय तो उसे अतीचार कहते हैं। वह अतीचार दो तरहका होता है। १ लघ्वतीचार और २ महातीचार। इनके विशेष लक्षण, अतिचार-निर्णयमें देखिये।

गुर्वादित्य :—गुरु और आदित्य (सूर्य) के योगको (अर्थात् जब गुरु और सूर्य एक राशिमें होते हैं तो) गुर्वादित्य कहा जाता है। गुरु और सूर्यके एक राशिमें भी बाल्य-वृद्ध और अस्तके कालांशसे अधिक अन्तर रहनेसे गुर्वादित्य दोष होता है ॥ ४८ ॥

सिंहराशिमें गुरुका तीन प्रकारसे परिहार—

सिंहे गुरौ सिंहलवे विवाहो नेष्टोऽथ गोदोत्तरतश्च यावत् ।
भागीरथीयाम्यतटं हि दोषो नान्यत्र देशे तपनेऽपि मेषे ॥४९॥

अन्वयः—सिंहे (सिंहराशौ) सिंहलवे (सिंहस्य नवांशे) 'च' गुरौ 'सति' 'विवाहः, इष्टः न 'स्यात्'। अथ गोदोत्तरतः, भागीरथीयाम्यतटं 'यावत्' हि दोषः 'स्यात्' अन्यत्र देशे 'दोषः' न 'भवति'। मेषे तपने अपि 'कुत्रापि दोषः न भवति' ॥ ४९ ॥

भावार्थः—जब बृहस्पति सिंह राशिमें सिंहके ही नवांशमें हो तो विवाह शुभ नहीं होता। तात्पर्य यह है कि सिंह राशिमें जब गुरु सिंह राशिके ही नवांशमें (१३°।२०′ के बाद १६°।४०′ तक) रहे तो किसी भी देशमें* विवाहादि नहीं करना चाहिये। यह अंश भेदसे पहला परिहार है।

देशभेदसे दूसरा परिहार यह है कि—गोदावरी (गोमती) नदीसे उत्तर भागीरथी (गङ्गा) के दक्षिण तीर तक जितने देश हैं उनमें सिंह राशिका गुरु विवाहमें वर्जित है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि गोदावरीसे दक्षिण और गङ्गाजीके उत्तरवाले देशोंमें सिंह राशिका गुरु दोषावह नहीं है×। 'परन्तु इससे विशेष वचन सिंह-गुरुके सम्बन्धमें और आगे कहेंगे'।

---

* राजमार्त्तण्डमें लिखा है—

"सिंहराशौ तु सिंहांशे यदा भवति वाक्पतिः।
सर्वदेशेष्वयं त्याज्यो दम्पत्योर्निधनप्रदः" ॥

× वसिष्ठजीका वचन—

"भागीरथ्युत्तरे कूले गौतम्या दक्षिणे तथा।
विवाहो व्रतबन्धो वा सिंहस्थेज्ये न दुष्यति" ॥

तीसरा परिहार यह है कि-जब सूर्य मेष राशिमें होता है उस समय सिंह राशिगत गुरुका दोष किसी देशमें नहीं लगता ॥ ४९ ॥

ऊपर कहे गये सिंहस्थ-गुरुके दोषोंका सारार्थ—

मघादिपञ्चपादेषु गुरुः सर्वत्र निन्दितः।
गङ्गागोदान्तरं हित्वा शेषाङ्घ्रिषु न दोषकृत् ॥ ५० ॥
मेषेऽर्के सन् व्रतोद्वाहो गङ्गागोदान्तरेऽपि च।
सर्वः सिंहगुरुर्वर्ज्यः कलिङ्गे गौडगुर्जरे ॥ ५१ ॥

अन्वयः—गुरुः मघादिपञ्चपादेषु सर्वत्र निन्दितः 'भवति'। शेषाङ्घ्रिषु गङ्गागोदान्तरं हित्वा 'अन्यत्र' दोषकृत् न 'भवति'। च (तथा) अर्के मेषे 'सति' गङ्गागोदान्तरे अपि व्रतोद्वाहः सन् (शुभः) 'भवति'। कलिङ्गे गौड-गुर्जरे 'देशे' सर्वः सिंहगुरुः वर्ज्यः ॥ ५०-५१ ॥

भाषार्थः—मघा आदि पाँच चरणोंमें (मघाके ४ चरण और पूर्वफल्गुनीका पहला १ चरण, इन ५ चरणोंमें) जब गुरु रहता है तो सभी देशोंमें निन्दित कहा गया है। बचे हुए सिंहके ४ चरणोंमें (अर्थात् पूर्वफल्गुनीके ३ चरण और उत्तर फल्गुनीका १ प्रथम चरण, इन ४ चरणोंमें) गङ्गा और गोदावरीके बीचवाले देशोंको छोड़कर किसी भी देशमें दोष नहीं है। यदि सूर्य मेष राशिमें हो तो गङ्गा और गोदावरीके मध्यवाले देशोंमें भी उपनयन और विवाह शुभ होते हैं। अर्थात् उस समय वहाँ भी सिंहस्थ गुरुका दोष नहीं लगता। परन्तु-कलिङ्ग देश (वैतरणी और कृष्णानदीके मध्यवर्ती उड़ीसा प्रान्तका प्रदेश) गौड़ (मध्य बङ्गाल और उड़ीसाके मध्यवाला) देश और गुर्जर (गुजरात) देशमें समस्त सिंह राशिका बृहस्पति त्याज्य है। अर्थात् इन तीन देशोंमें जब तक सिंहराशिमें गुरु रहता है तब तक शुभकार्य नहीं किये जाते। इन देशोंमें सूर्यके मेषमें होनेपर भी सिंहस्थ गुरुका परिहार नहीं है।

इन दोनों श्लोकोंसे यह सिद्धान्त हुआ कि कलिङ्ग-गौड़-गुजरात तथा गङ्गा-गोदावरीके मध्यदेशमें समस्त सिंहराशिका गुरु त्याज्य है और इनके अतिरिक्त देशोंमें जब गुरु सिंहमें १६°।४०' से अधिक हो जाता है तो दोष नहीं रहता; तथा कलिङ्ग-गौड़-गुजरातको छोड़कर और देशोंमें सौर वैशाख मासमें 'सिंहे गुरौ' में भी शुभकार्य होते ही हैं ॥ ५०-५१ ॥

नीच-(मकर-) स्थ गुरुका परिहार—

रेवापूर्वे गण्डकीपश्चिमे च शोणस्योदग्दक्षिणे नीच इज्यः ।
वर्ज्यो नायं कौङ्कणे मागधे च गौडे सिन्धौ वर्जनीयः शुभेषु ॥५२॥

अन्वयः—रेवापूर्वे गण्डकीपश्चिमे शोणस्य उदग् दक्षिणे च नीचः इज्यः न वर्ज्यः । अयं (नीच इज्यः) कौङ्कणे, मागधे, गौडे सिन्धौ च 'देशे' शुभेषु वर्जनीयः 'भवति' ॥ ५२ ॥

भाषार्थः—रेवा नदी (जो C. P. के जब्बलपुर जिलेमें नर्मदा नामसे प्रसिद्ध है) उससे पूर्व और गण्डकी (जो हिमालयसे निकलकर नेपालके पश्चिम होती हुई विहार प्रान्त पटनाके पास गङ्गाजीमें मिली है, कहीं नारायणी कहीं शालग्रामी और गण्डकी नामसे प्रसिद्ध है; उस–) से पश्चिम, तथा शोण नदी (जो विन्ध्य पहाड़की ओर से ईशानाभिमुख बहती हुई पटनासे पश्चिम गङ्गामें मिली है, उस–) से उत्तर और दक्षिण देशोंमें नीच (मकर) राशिका गुरु वर्जित नहीं है । अर्थात् इन देशोंमें गुरुके मकर राशिमें रहने पर भी शुभकार्य किये जाते हैं । वह नीच (मकर) राशिका गुरु कौङ्कण देश, (भारतवर्षका दक्षिणी भाग), मगध (दक्षिण विहारके गया, पटना, शाहाबाद आदि प्रदेश) गौड़ देश और सिन्धु देशमें शुभ कार्योंमें त्याज्य है ।

इस श्लोकमें नीचस्थ गुरुके विहित और निषेध पक्षोंमें जिन देशोंका उल्लेख हो चुका है उससे अतिरिक्त देशोंमें नीच-गुरु शुभकार्योंमें मध्यम सिद्ध होते हैं । परन्तु नीच गुरुको प्रायः अधिकांश त्यागते ही हैं ॥ ५२ ॥

विलुप्ताब्द और उसका अपवाद—

गोजान्त्यकुम्भेतरभेऽतिचारगो नो पूर्वराशिं गुरुरेति वक्रितः ।
तदा विलुप्ताब्द इहातिनिन्दितः शुभेषु रेवा-सुरनिम्नगान्तरे ॥५३॥

अन्वयः—गोजान्त्यकुम्भेतरभे अतिचारगः गुरुः वक्रितः 'सन्' पूर्वराशिं नो एति, तदा विलुप्ताब्दः 'भवति' । 'स विलुप्ताब्दः' इह रेवासुरनिम्नगान्तरे 'देशे' शुभेषु अति निन्दितः 'भवति' ॥ ५३ ॥

भाषार्थः—कुम्भ, मीन, मेष और वृष इन चार राशियोंको छोड़कर शेष ८ राशियोंमें अतिचारी गुरु यदि पूर्व (पीछेवाली) राशिमें वक्री होकर नहीं

आवे तो वह (पूर्वराशि-सम्बन्धी गुरुवर्ष) विलुप्ताब्द रेवा (नर्मदा) और गङ्गानदी के बीचवाले देशों में शुभकार्योंमें अत्यन्त निन्दित है। अर्थात् लुप्तसंवत्सरमें वहाँ शुभकार्य बिलकुल नहीं होते।

कुम्भ-मीन-मेष-वृष राशियोंमें अतिचारी गुरु वक्री होकर पूर्वराशिमें नहीं भी आवे तो विलुप्ताब्दका लक्षण रहने पर भी उसका दोष नहीं लगता। जैसे गुरुने कहा है—

"मेषे वृषे झषे कुम्भे यद्यतीचारगो गुरुः।
न तत्र काललोपः स्यादित्याह भगवान् यमः॥" इति ॥ ५३ ॥

विशेषः—बृहस्पतिकी मध्यमा गतिके अनुसार एक २ राशिके भोगकालको सँवत्सर कहते हैं। वे ही प्रभवादि गुरुवर्ष हैं। उन वर्षों में गुरु स्पष्टा गतिके वश प्रत्येक वर्षमें एक २ राशिमें सञ्चार करें तो वे तत्तद्राशि सम्बन्धी शुद्ध वर्ष होते हैं। यदि एक वर्षके भीतर ही मार्गी स्पष्ट गुरु दो राशिमें सञ्चार करे तो स्पष्टा गतिसे वर्षकी पूर्ति नहीं होनेके कारण वह गुरु अतिचारी कहा जाता है। यों 'महामहोपाध्याय पं० महेश—ठक्कुरने भी कहा है—

"पूर्वराशिं परित्यज्यापूर्णे सँवत्सरे गुरुः
अतीचारः स विज्ञेयः परराशिगतो यदि"।

इस तरहका अतिचारी गुरु यदि वक्री होकर पुनः पीछेकी राशिमें नहीं आवे तो वह (पीछेकी राशिवाला वर्ष) विलुप्ताब्द या लुप्तसँवत्सर कहलाता है। यदि प्रथम अतिचारी गुरु पीछे वक्री होकर पूर्व राशिमें आजावे तो वह विलुप्ताब्द नहीं होता। परन्तु इस हालतमें भी इतना देखना चाहिये कि वक्री गुरुके पूर्वराशिमें आने पर भी मार्ग और वक्र भोगका योग वर्षके समान हुआ या नहीं। यदि वक्री होनेपर भी वर्षकी पूर्ति नहीं होती हो तो वह लुप्ताब्द ही समझा जाता है। इसीको मैथिलनिबन्धमें महातीचार कहते हैं॥ ५३॥

वारप्रवृत्तिका ज्ञान—

पादोनरेखापरपूर्वयोजनैः पलैर्युतोनास्तिथयो दिनार्धतः।
ऊनाधिकास्तद्विवरोद्भवैः पलैरूर्ध्वं तथाऽधो दिनपप्रवेशनम्॥५४॥

अन्वयः—तिथयः (पञ्चदश) पादोनरेखापरपूर्वयोजनैः पलैः 'अक्रमेण' युतोनाः 'यदि' दिनार्धतः ऊनाधिकाः 'तदा' तद्विवरोद्भवैः पलैः ऊर्ध्वं तथा अधः दिनपप्रवेशनं 'स्यात्' ॥ ५४ ॥

भाषार्थः—रेखादेश (लङ्कासे सुमेरुपर गई हुई रेखा जिन २ देशोंमें लगी

है वे रेखा देश हैं—लङ्का, उज्जैन, कुरुक्षेत्र वगैरह[1]) से पश्चिम जितने योजन पर वार-प्रवृत्ति जाननी हो उन योजनोंमें उनका चतुर्थांश घटाकर शेषके समान पल १५ घटीमें जोड़ना और रेखासे पूर्वदेशोंमें जितने योजन पर वार-प्रवेश जानना हो उन योजनोंमें उनका चतुर्थांश घटाकर शेष समान पल १५ दण्डमें घटाना। इस तरह जोड़ने या घटाने पर जो घटी-पल हो वह यदि दिनार्ध (दिनमानके आधे) से कम हो तो जितना कम हो उतना ही सूर्योदयके बाद वारप्रवृत्ति होगी और यदि अधिक हो, तो जितना अधिक हो उतना ही सूर्योदयसे पहले वार प्रवृत्ति होती है।

उदाहरण—जैसे वैशाख शुक्ल सप्तमी शनिवार दिनमान ३२।२० में काशीकी वारप्रवृत्ति जाननी है। रेखा देश-(कुरुक्षेत्र-) से काशी ६३ योजन पूर्व है। इसलिये ६३ योजनका चतुर्थांश (६३ ÷ ४ =) १५।४५ को ६३ में घटानेसे शेष (६३।० − १५।४४ =) ४७।१५ बचा। पूर्वमें होनेके कारण ४७।१५ पलादिको १५ घटीमें घटानेसे (१५।०।० − ०।४७।१५ =) शेष १४।१२।४५ दण्डादि हुआ। यह दिनार्ध (३२।२० ÷ २) = १६।१० से कम है। इसलिये इन दोनोंका अन्तर (१६।१०।० − १४।१२।४५) = १।५७।१५ इतना दण्डादि पर सूर्योदयके बाद वारप्रवृत्ति हुई। इसी तरह सर्वत्र जानना चाहिये। अन्तर मान जब शून्य हो तो सूर्योदयके समयमें ही वारका प्रवेश समझना चाहिये ॥ ५४ ॥

उपपत्तिः—प्राचीन आचार्य लोग लङ्कामें सूर्योदय होनेको ही वारप्रवृत्ति मानते हैं। जैसे भास्कराचार्यने—

"लङ्कानगर्यामुदयाच्च भानोस्तस्यैव वारे प्रथमं बभूव।
मधोः सितादेर्दिनमासवर्षयुगादिकानां युगपत् प्रवृत्तिः" ॥

ऐसा लिखा है। इसलिये अपने २ देशके सूर्योदय कालसे लङ्काका सूर्योदय-कालका ज्ञान इस श्लोकसे किया जाता है। अपने देशकी क्षितिजमें जब सूर्यका उदय होता है उससे कितनी देर पूर्व या पीछे लङ्काकी क्षितिजमें सूर्योदय होगा इसके जाननेके लिये पहले लङ्काके याम्योत्तरवृत्तसे अपने देशके याम्योत्तरवृत्तका अन्तर जानना आवश्यक है। क्योंकि दोनों याम्योत्तरवृत्तका अन्तरके समान ही दोनों क्षितिजोंका अन्तर होता है। लङ्का और स्वदेशके याम्योत्तरवृत्तोंका अन्तर विषुवत या अहोरात्र वृत्तमें देशान्तर घटी-पल होते हैं। इनके जाननेके लिये रेखा देशसे स्वदेशका योजनात्मक पूर्वापर अन्तरसे त्रैराशिकसे यह अनुपात होता है कि यदि भूपरिधियोजनमें ६० घड़ी या ३६०० पल पाते हैं तो इस पूर्वापर देशान्तर योजनमें क्या ?=:

---

१. भूमध्यरेखादेशाः—

"यल्लङ्कोज्जयिनीपुरोपरिकुरुक्षेत्रादिदेशान् स्पृशत्,
सूत्रं मेरुगतं बुधैर्निगदिता सा मध्यरेखा भुवः" ॥ इति ॥

$\frac{३६०० \times \text{देशान्तरयोजन}}{\text{भूपरिधियोजन}}$ = देशान्तर पल। भूपरिधिका प्रमाण ४८०० योजन कहा गया है[1]। इसलिये देशान्तर पल $= \frac{३६०० \times \text{दे.अं.यो}}{४८००} = \frac{३ \times \text{दे.अं.यो}}{४} = \frac{(४-१)\ \text{दे.अं.यो}}{४} =$ $\frac{\text{दे.अं.यो} \times ४}{४} - \frac{\text{दे.अं.यो}}{४} = \text{दे.अं.यो.} - \frac{\text{दे.अं.यो}}{४}$। ये देशान्तर पल पादोनरेखापर-पूर्वयोजनके समान सिद्ध हो चुके।

अब देखिये कि लङ्काका याम्योत्तर (रेखादेश) और लङ्काकी क्षितिजवृत्तका अन्तर १५ घड़ी है। यदि अपना देश रेखादेशसे पूर्व हो तो लङ्काके याम्योत्तरसे अपना याम्योत्तर पूर्व, पश्चिम होनेसे अपना याम्योत्तर पश्चिम होगा। इसलिये पहलेका देशान्तर पल १५ घटीमें (पूर्वापर स्वदेशमें क्रमसे) घटाने और जोड़नेसे अपना याम्योत्तर और लङ्काक्षितिजका अन्तर होता है। पश्चिम और पूर्व स्वदेशमें लङ्काक्षितिजस्वयाम्योत्तरवृत्तान्तर=अन्तर = १५ $\mp$ $\left(\text{दे.अं.यो} - \frac{\text{दे.अं.यो}}{४}\right)$।

यह अन्तर यदि अपने दिनार्धसे कम हो तो अपनी क्षितिजसे लङ्काकी क्षितिज उपर होनेसे अपने देशमें उदय होनेके बाद लङ्कामें उदय (वारप्रवृत्ति) और यदि अपने दिनार्धसे अन्तर अधिक हो तो अपनी क्षितिजसे लङ्काकी क्षितिज नीचे होती है इसलिये पहले लङ्कामें उदय (वारप्रवृत्ति) होकर अपनी क्षितिजमें उदय होता है। अतः वहाँ वारप्रवेश पहले सिद्ध होता है। इसलिये श्लोककी सभी बातें उपपन्न हो गईं ॥ ५४ ॥

कालहोरेशका ज्ञान—

वारादेर्घटिका द्विघ्नाः स्वाक्षहृच्छेषवर्जिताः ।
सैकास्तष्टा नगैः कालहोरेशा दिनपात् क्रमात् ॥५५॥

अन्वयः—वारादेः 'याः' घटिकाः 'ताः' द्विघ्नाः, स्वाक्षहृच्छेषवर्जिताः, सैकाः, नगैः तष्टाः, 'तदा' दिनपात क्रमात् कालहोरेशाः 'भवन्ति' ।। ५५ ॥

भाषार्थः—वारप्रवृत्तिसे वर्तमान काल तक जितनी घड़ियाँ बीतीं हों उन इष्ट घड़ियोंको दूनी करके अलग २ दो स्थानमें रखे। एक स्थामें ५ से भाग देने पर जो शेष बचे उसे दूसरे स्थानमें रखी हुई (द्विगुणी घड़ियों) में घटावे। घटाने पर जो बचे उसमें एक जोड़ कर ७ से भाग देनेसे जो शेष बचे वही दिन पतिसे गिनने पर कालहोराका पति होता है ॥ ५५ ॥

---

१. "खाभ्राष्टवेदैः प्रमितं तु योजनैर्भवेत् सदा भूपरिधिप्रमाणम्" इति ॥

उदाहरण—जैसे बुधवारको (वारप्रवृत्तिसे) ६ दण्ड इष्टकाल पर कालहोरेशका विचार करना है। श्लोकके अनुसार इष्ट घटी ६ को दूनो की तो १२ हुई। इसे एक जगह ५ से भाग देकर शेष २ बचा। इस शेष २ को दूसरे स्थानमें रखो दूनो घड़ी १२ में घटाया (१२ – २) तो १० बचा। उसमें १ जोड़ा (१०+१) तो ११ हुआ। इसमें ७ का भाग देनेसे शेष ४ रहा। इसलिये दिनपति बुधसे चौथा शनि उस समय कालहोरेश हुआ। यों ही सभी दिनोंमें समझना चाहिये ॥ ५५ ॥

उपपत्तिः—

"वारप्रवृत्तेर्गदिता दिनेशात् कालाख्यहोरापतयः क्रमेण।
सार्धेन नाडीद्वितयेन तष्टः षष्ठश्च षष्ठश्च पुनः पुनः स्यात्" ॥

इस वसिष्ठके वचनसे एक दिनमें २४ कालहोरायें प्रत्येक २½ घड़ीकी होती हैं। जिनमें एकके बाद उससे ६ ठा दूसरा कालहोरेश होता है। (स्पष्टताके लिये चक्र देखिये)।

अब यह अनुपात करते हैं कि यदि २½ घड़ी में एक कालहोरा होती है तो गत (इष्ट) घड़ीमें क्या ? $\frac{१ \times इ.घ}{२\frac{१}{२}} = \frac{इ.घ.}{\frac{५}{२}} = \frac{२ \times इ.घ}{५}$ = इष्टकालहोरा। यहाँ इष्ट कालहोराका स्वरूप गत कालहोरामें युत वर्त्तमान कालहोराका अवयव होगा।

अतः इ.का.हो = ग.का.हो + $\frac{शे}{५}$। दोनों पक्षमें समशोधन करनेसे—

इ.का.हो. – $\frac{शे}{५}$ = ग.का.हो। परन्तु इ.का.हो = $\frac{२ \times इ.घ.}{५}$।

$\therefore \frac{२ \times इ.घ.}{५} - \frac{शे}{५}$ = ग.का.हो.।

= $\frac{२ \times इ.घ - शे}{५}$ = ग.का.हो.।

अब एक होरेशके बाद उससे छठा दूसरा होरेश होता है। अतः एक २ होरामें होरेशों का अन्तर ५ होता है। इसलिये यहाँ यह अनुपात करते हैं कि यदि एक होरामें होरेशोंका अन्तर ५ होता है तो अभीष्ट (गत) कालहोरामें क्या ? = $\frac{५ \times (२ \times इघ - शे)}{१ \times ५}$ =फल वर्त्तमान वारेश और गत कालहोरेशका अन्तर हुआ = २ इ.घ – शे। इसमें एक जोड़नेमें वारेश और वर्त्तमान होरेशका अन्तर होता है। यहाँ वारकी सङ्ख्या ७ ही होने के कारण होरेशकी संख्या ७ से अधिक आने पर ७ से भाग दिया जाता है। अतः श्लोककी क्रिया उपपन्न हो गई ॥ ५५ ॥

कालहोरा जाननेका स्पष्ट चक्र—

संख्या	घटी	रवि	सोम	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
१	२½	र.	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.
२	५	शु.	श.	र.	चं.	मं.	बु.	बृ.
३	७½	बु.	बृ.	शु.	श.	र.	चं.	मं.
४	१०	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.	र.
५	१२½	श.	र.	चं.	सं.	बु.	बृ.	शु.
६	१५	बृ.	शु.	श.	र.	चं.	मं.	बु.
७	१७½	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.	र.	चं.
८	२०	र.	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.
९	२२½	शु.	श.	र.	चं.	मं.	बु.	बृ.
१०	२५	बु.	बृ.	शु.	श.	र.	चं.	मं.
११	२७½	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.	र.
१२	३०	श.	र.	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.
१३	३२½	बृ.	शु.	श.	र.	चं.	मं.	०
१४	३५	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.	र.	चं.
१५	३७½	र.	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.	०
१६	४०	शु.	श.	र.	चं.	मं.	बु	बृ.
१७	४२½	बु.	बृ.	शु.	श.	र.	चं.	मं.
१८	४५	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.	र.
१९	४७½	श.	र.	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.
२०	५०	बृ.	शु.	श.	र.	चं.	मं.	बु.
२१	५२½	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.	र.	चं.
२२	५५	र.	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.
२३	५७½	शु.	श.	र.	चं.	मं.	बु.	बृ.
२४	६०	बु.	बृ.	शु.	श.	र.	चं.	०

कालहोराका प्रयोजन—

वारे प्रोक्तं कालहोरासु तस्य धिष्ण्ये प्रोक्तं स्वामितिथ्यंशकेऽस्य ।
कुर्याद्दिक्छूलादि चिन्त्यं क्षणेषु नैवोल्लंघ्यः पारिघश्चापि दण्डः ५६ ।

नक्षत्रोंके स्वामी—

नासत्याऽन्तक-वह्नि-धातृ-शशभृद्रुद्रादितीज्योरगा
ऋक्षेशाः पितरो भगोऽर्यमरवी त्वष्टा समीरः क्रमात् ।
शक्राग्नी खलु मित्र इन्द्रनिर्ऋतिक्षीराणि विश्वे विधि-
र्गोविन्दो वसुतोयपाऽजचरणाऽहिर्बुध्न्यपूषाभिधाः ॥ १॥

अन्वयः—नासत्यान्तकवह्निधातृशशभृद्रुद्रादितीज्योरगाः, पितरः, भगः, अर्यमरवी,त्वष्टा, समीरः, शक्राग्नी, मित्रः, इन्द्रनिर्ऋतिक्षीराणि, विश्वे, विधिः, गोविन्दः, वसुतोयपाजचरणाहिर्बुध्न्यपूषाभिधाः, एते खलु (निश्चयेन) क्रमात् ऋक्षेशाः (अश्विन्यादिनक्षत्राणां स्वामिनः) 'ज्ञेयाः' ॥ १ ॥

भाषार्थः—अश्विनीका स्वामी नासत्य (दोनों अश्विनी-कुमार), भरणीका स्वामी अन्तक (यमराज), कृत्तिकाका वह्नि (अग्नि), रोहिणीका धाता (ब्रह्मा), मृगशिराका शशभृत (चन्द्रमा), आर्द्राका रुद्र (शिवजी), पुनर्वसुका अदिति (देवमाता), पुष्यका ईज्य (बृहस्पति), आश्लेषाका उरग (सर्प), मघाका पितर, पूर्वाफल्गुनीका भग (भग नामका सूर्य), उत्तराफल्गुनीका अर्यमा (अर्यमा नामका सूर्य), हस्तका रवि (सूर्य), चित्राका त्वष्टा (विश्वकर्मा), स्वातीका समीर (वायु), विशाखाका शक्राग्नी (इन्द्र और अग्नि), अनुराधाका मित्र (मित्र नामका सूर्य), ज्येष्ठाका इन्द्र, मूलका निर्ऋति (राक्षस), पूर्वाषाढ़का क्षीर (जल), उत्तराषाढ़का विश्वेदेव; अभिजित्का विधि (विधाता), श्रवणाका गोविन्द (विष्णु), धनिष्ठाका वसु (आठ प्रकारके वसु), शतभिषाका तोयप (वरुण), पूर्वभाद्रका अजचरण (अजपात नामक सूर्य) उत्तर भाद्रका अहिर्बुध्न्य (अहिर्बुध्न्य नामका सूर्य) और रेवतीका स्वामी पूषा (पूषण् नामका सूर्य) है ॥ १ ॥

वि०—जिस नक्षत्रका जो स्वामी कहा गया है उसके और भी जितने पर्याय हैं उनके स्थानमें उसी नक्षत्रका ज्ञान करना चाहिये । जैसे-वह्नि = अनल = दहन इत्यादिसे कृत्तिका । ब्रह्मा = धाता=क=विरञ्चि इत्यादिसे रोहिणी । शशभृत = चन्द्र = मृगाङ्क=इन्दु इत्यादिसे मृगशिरा । एवं आगे भी जानना चाहिये ॥ १ ॥

आगे ७ श्लोकोंमें नक्षत्रोंकी संज्ञा और उनके विशेष कार्य कहे जाते हैं—

ध्रुव और स्थिर नक्षत्र तथा उनके कार्य—

उत्तरात्रय-रोहिण्यो भास्करश्च ध्रुवं स्थिरम् ।
तत्र स्थिरं बीजगेहशान्त्यारामादि सिद्धये ॥ २ ॥

अन्वयः—उत्तरात्रयरोहिण्यः भास्करश्च ध्रुवं स्थिरं 'च' भवति । तत्र स्थिरं बीजगेहशान्त्यारामादि सिद्ध्ये 'भवति' ॥ २ ॥

भाषार्थः—तीनों उत्तरा (उत्तरा फल्गुनी, उत्तराषाढ़ और उत्तर भाद्र) और रोहिणी ये चार नक्षत्र और रविवार ध्रुव तथा स्थिर संज्ञक हैं। इन ध्रुव-स्थिर संज्ञावाले दिन-नक्षत्रोंमें स्थिर कार्य, बीज बोना, गृहारम्भ, शान्तिकर्म, और बाग़ लगाना इत्यादि (यहां आदि पदसे आगे मृदुसंज्ञक नक्षत्रमें कहे हुये) कार्य शुभ होते हैं।

ध्रुव नक्षत्रमें मृदुनक्षत्रोक्त कर्म किये जाते हैं। इसमें **वसिष्ठजीका** वचन—

"मृदुवृन्दे कथितान्यपि स्थिरवृन्दे तानि कार्याणि" इति ॥ २ ॥

चर-चल संज्ञक नक्षत्र और उनके कार्य—

स्वात्यादित्ये श्रुतेस्त्रीणि चन्द्रश्चापि चरं चलम् ।
तस्मिन् गजादिकारोहो वाटिकागमनादिकम् ॥ ३ ॥

अन्वयः—स्वात्यादित्ये, श्रुतेः त्रीणि 'नक्षत्राणि' चन्द्रश्च चरं, चलं अपि 'भवति' तस्मिन् गजादिकारोहः, वाटिकागमनादिकं 'शुभं भवति' ॥ ३ ॥

भाषार्थः—स्वाती, पुनर्वसु, श्रवणा, धनिष्ठा, शतभिषा ये ५ नक्षत्र और सोमवार चर तथा चल-संज्ञक हैं। इन चर-चल-संज्ञावाले दिन-नक्षत्रों में हाथी-घोड़े आदि सवारी पर चढ़ना, बगीचाको यात्रा, आदि शब्दसे लघुसंज्ञक नक्षत्रमें कहे गये कर्म शुभ होते हैं।

चर नक्षत्रमें लघु नक्षत्रोक्त कर्म करनेके लिये **वसिष्ठजीका** वचन—

"कथितान्यपि लघुवृन्दे चरसंज्ञे तानि कार्याणि" इति ॥ ३ ॥

उग्र-क्रूरसंज्ञक नक्षत्र और उनके कार्य—

पूर्वात्रयं याम्यमघे उग्रं क्रूरं कुजस्तथा ।
तस्मिन् घाताग्निशाठ्यानि विषशस्त्रादि सिद्ध्यति ॥ ४ ॥

अन्वयः—पूर्वात्रयं याम्यमघे तथा कुजः उग्रं क्रूरं 'च' भवति । तस्मिन् घाताग्निशाठ्यानि, विषशस्त्रादि सिद्ध्यति ॥ ४ ॥

भाषार्थः—तीनों पूर्वा (पूर्वा फल्गुनी, पूर्वाषाढ़, पूर्वभाद्र), भरणी और मघा ये ५ नक्षत्र और मङ्गलवार उग्र तथा क्रूर संज्ञक हैं) इनमें घात (किसीको मारना) अग्निकार्य (आग लगाना) शाठ्य (किसीको ठगना) विषकर्म (किसी को जहर देना) शस्त्रकर्म (शस्त्र चलाना तथा बनाना) और आदि शब्दसे दारुण नक्षत्रोक्त कर्म सिद्ध होते हैं।

अन्वयः—वारे प्रोक्तं 'कर्म' तस्य (वारस्य) कालहोरासु 'कार्यम्'। धिष्ण्ये प्रोक्तं 'कर्म' अस्य (धिष्ण्यस्य) स्वामितिथ्यंशके कुर्यात्। क्षणेषु दिक्शूलादि चिन्त्यम्। पारिघः दण्डः अपि नैव उल्लङ्घ्यः॥ ५६॥

भाषार्थ—जिस दिनमें जो कार्य करनेको कहा है वह कार्य उस दिनकी कालहोरामें भी करना चाहिये। जैसे रविवारके दिन किसीको गुरुवारका कार्य करना आवश्यक हो तो वह रविवारको गुरुवारकी कालहोरामें (अर्थात् १२½ दण्डके बाद १५ दण्डके भीतर) कर सकता है। एवं जिस नक्षत्रमें जो कार्य कहा गया है वह कार्य उस नक्षत्रके स्वामीके तिथ्यंश-(मुहूर्त—जो विवाहप्रकरणके ५२ वें श्लोकमें रहेंगे उस मुहूर्त्त) में भी करना चाहिये। जैसे किसीको अनुराधा नक्षत्रका कार्य भरणी नक्षत्रवाले दिनमें करना जरूरी हो तो वह उस दिनमें भी जब अनुराधाका मुहूर्त्त पड़े (दिनमें ३रा मुहूर्त्त अनुराधाका होता है) उसमें कर सकता है ऐसी अवस्था में उसे दुष्ट दिन और दुष्ट नक्षत्रका दोष नहीं लगता। परन्तु मुहूर्त्तोंमें भी दिक्शूल आदि (दिशाशूल, नक्षत्रशूल वगैरह दोष) का विचार करना चाहिये अर्थात् दिक्शूल-नक्षत्रशूलवाले कालहोरा-मुहूर्तोंको त्याग देना चाहिये और मुहूर्त्तोंमें परिघ दण्ड-(जो यात्राप्रकरणके ३६वें श्लोकमें कहेंगे) को भी नहीं लाङ्घना चाहिये। तात्पर्य यह है कि जिस नक्षत्रमें पारिघ दण्ड पड़ा हो उसका मुहूर्त्तभी ग्रहण नहीं करे॥ ५६॥

मन्वादी और युगादि तिथियोंका विवरण—

मन्वाद्यास्त्रितिथी मधौ तिथिरवी ऊर्जे शुचौ दिक्तिथी
ज्येष्ठेऽन्त्ये च तिथिस्त्विषे नव तपस्यश्वाः सहस्ये शिवाः।
भाद्रेऽग्निश्च सिते त्वमाष्टनभसः कृष्णे युगाद्याः सिते
गोऽग्नी बाहुलराधयोर्मदनदर्शौ भाद्रमाघासिते॥ ५७॥

अन्वयः—मधौ सिते त्रितिथी, ऊर्जे 'सिते' तिथिरवी, शुचौ 'सिते' दिक् तिथी, ज्येष्ठे अन्त्ये च 'सिते' तिथिः, इषे 'सिते' नव, तपसि 'सिते' शिवाः, भाद्रे 'सिते' अग्निः, 'तथा' अमाष्टनभसः कृष्णे, 'एता' मन्वाद्याः 'भवन्ति'। 'एवं' बाहुलराधयोः सिते गोऽग्नी, भाद्रमाघासिते मदनदर्शौ युगाद्याः भवन्ति'॥ ५७॥

भाषार्थः—चैत्र शुक्लपक्षकी ३ और १५। कार्त्तिक शुक्लकी १५ और १२। आषाढ़ शुक्लकी १० और १५। ज्येष्ठकी पूर्णमासी और फाल्गुनकी पूर्णमासी। आश्विन शुक्लकी ९। माघशुक्लकी ७। पौष शुक्लकी ११। भाद्र शुक्लकी ३ और

श्रावण कृष्णकी अमावस तथा ८ ये १४ तिथियां मन्वादि-तिथियां हैं। इन तिथियोंमें क्रमसे १४ मनुओंका आरम्भ होता है (उन १४ मनुओंके नाम नीचे कोष्ठमें देखिये)।

एवं-कार्तिकशुक्लकी ९, वैशाखशुक्लकी ३, भाद्रकृष्णपक्षकी १३ और माघ-कृष्णपक्षकी अमावस ये चार युगादि तिथियां हैं। इन तिथियोंमें सत्य-त्रेता-द्वापर-कलि इन चार युगोंका प्रारम्भ क्रमसे हुआ है। मन्वादि और युगादि तिथियां शुभकार्योंमें त्याज्य हैं ॥ ५७ ॥

१४ मनुओंके नाम और उनकी आरम्भतिथियां—

१ स्वायंभुव	२ स्वारोचिष	३ औत्तम	४ तामस	५ रैवत	६ चाक्षुष	७ वैवस्वत	८ सावर्णि	९ दक्षसावर्णि	१० ब्रह्मसावर्णि	११ धर्मसाव.	१२ रुद्रसाव.	१३ देवसाव.	१४ इन्द्रसाव.
चैत्रशुक्ल ३	चैत्रशुक्ल १५	कार्तिकशु. १५	कार्तिकशु. १२	आषाढशु. १०	आषाढशु. १५	ज्येष्ठशु. १५	फाल्गुनशु. १५	आश्विनशु. ९	माघशु. ७	पौषशु. ११	भाद्रशु. ३	श्रावणकृष्ण ३०	श्रावणकृष्ण ८

४ युग और युगादितिथियां—

१ सत्य	२ त्रेता	३ द्वापर	४ कलि
कार्तिक शुक्ल ९	वैशाख शुक्ल ३	भाद्रकृष्ण १३	माघकृष्ण ३०

इति मैथिलभूदेवपण्डितश्रीकपिलेश्वरशास्त्रिकृतमणिप्रभाहिन्दीतिलक-विभूषिते मुहूर्तचिन्तामणौ शुभाशुभप्रकरणं समाप्तम् ॥ १ ॥

अथ नक्षत्रप्रकरणम् ॥ २ ॥

इस दूसरे प्रकरणमें विविधकार्योंमें विहित नक्षत्र कहे जायेंगे, इस लिए इसका नाम नक्षत्रप्रकरण रखा गया है। परिभाषा जाननेके लिये तिथिस्वामीकी तरह नक्षत्रोंके स्वामीका विवरण भी आवश्यक समझकर पहले नक्षत्रोंके स्वामी कहते हैं।

दारुण नक्षत्रमें कहे हुये बुरे कार्य उग्र नक्षत्रमें करने चाहिये, इसमें वसिष्ठजीका वचन—

"यद् दारुणभोक्तं तत् कर्म स्वथोग्रभे कार्यम्" इति ॥ ४ ॥

मिश्र और साधारण नक्षत्र तथा उनके कार्य—

विशाखाग्नेयभे सौम्यो मिश्रं साधारणं स्मृतम् ।
तत्राग्निकार्यं मिश्रं च वृषोत्सर्गादि सिद्ध्यति ॥ ५ ॥

अन्वयः—विशाखाग्न्येयभे 'तथा' सौम्यः (बुधवारः) मिश्रं साधारणं 'च' स्मृतम् । तत्र अग्निकार्यं, मिश्रं च (तथा) वृषोत्सर्गादि सिद्ध्यति ॥ ५ ॥

भाषार्थः—विशाखा कृत्तिका ये दो नक्षत्र और बुधवार मिश्र और साधारण संज्ञक हैं । इनमें अग्निकार्य (अग्निहोत्र) मिश्रकार्य (मिलावटका कार्य) वृषोत्सर्ग (मनोरथ पूर्तिके लिये वृषोत्सर्ग) और आदि शब्दसे उग्रनक्षत्रके कर्म सिद्ध होते हैं ।

मिश्र नक्षत्रमें उग्रकार्य करने का प्रमाण वचन—

"निखिलानि च साधारणकार्याण्युग्राणि तत्र कार्याणि" इति वसिष्ठः ॥ ५ ॥

क्षिप्र-लघुसंज्ञक नक्षत्र और उनके कार्य—

हस्ताश्वि-पुष्याभिजितः क्षिप्रं लघु गुरुस्तथा ।
तस्मिन् पण्यरतिज्ञानं भूपाशिल्पकलादिकम् ॥ ६ ॥

अन्वयः—हस्ताश्विपुष्याभिजितः, तथा गुरुः (गुरुवारः) क्षिप्रं, लघु (लघुसंज्ञकं) 'च भवति' तस्मिन् पण्यरतिज्ञानं, भूपाशिल्पकलादिकं शुभं भवति' ॥ ६ ॥

भाषार्थः—हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित् ये ४ नक्षत्र और गुरुवार क्षिप्र और लघु-संज्ञक हैं । इनमें पण्य (दुकान खोलना), रति (स्त्रीप्रसङ्ग), शास्त्र-विद्याका ज्ञान, भूषणोंका बनाना और पहनना, शिल्प (चित्रकारी) कला (गान वाद्य नृत्य वगैरह ६४ कला) और आदि शब्दसे चर नक्षत्रमें कहे गये कर्म शुभ होते हैं ।

"चरधिष्ण्ये कथितान्यपि कार्याण्यखिलानि लघुगणे नूनम्"

वसिष्ठजीके इस वचनसे चर नक्षत्रके कार्य लघु नक्षत्रमें भी करने चाहिये ॥ ६ ॥

मृदु-मैत्र नक्षत्र और उनके कार्य—

मृगान्त्यचित्रामित्रर्क्षं मृदु मैत्रं भृगुस्तथा ।
तत्र गीताम्बरक्रीडा मित्रकार्यं विभूषणम् ॥ ७ ॥

अन्वयः—मृगान्त्यचित्रामित्रर्क्षं तथा भृगुः (शुक्रवारः) मृदु (मृदु-संज्ञं) मैत्रं (मैत्रसंज्ञं) 'च भवति'। तत्र गीताम्बरक्रीडा, मित्रकार्यं, विभूषणं 'सिद्ध्यति' ॥७॥

भाषार्थः—मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा ये ४ नक्षत्र और शुक्रवार मृदु तथा मैत्र संज्ञक हैं। इनमें गीतका गाना, वस्त्र बनाना और पहनना, खेल खेलना, मित्र सम्बन्धी कार्य और भूषणोंका बनाना तथा पहनना ये सब शुभ होते हैं ॥ ७ ॥

तीक्ष्ण और दारुण नक्षत्र तथा उनके कार्य—

मूलेन्द्रार्द्राहिभं सौरिस्तीक्ष्णं दारुणसंज्ञकम् ।
तत्राभिचारघातोग्रभेदाः पशुदमादिकम् ॥ ८ ॥

अन्वयः— मूलेन्द्रार्द्राहिभं, सौरिः (शनिवारः) 'च' तीक्ष्णं (तीक्ष्णसंज्ञकं) दारुणसंज्ञकं 'च भवति'। तत्र अभिचारघातोग्रभेदाः, पशुदमादिकं सिद्ध्यति ॥ ८ ॥

भाषार्थः—मूल, ज्येष्ठा, आर्द्रा, आश्लेषा ये ४ नक्षत्र और शनिवार तीक्ष्ण संज्ञक तथा दारुण संज्ञक हैं। इनमें अभिचार (किसीको मारण आदिका प्रयोग) घातकर्म, उग्र (भयङ्कर) कर्म, भेद (झगड़ा लगाना) पशुदम (पशुओंकी शिक्षा) और आदि शब्दसे बन्धन चलाना, इत्यादि सब सिद्ध होते हैं ॥ ८ ॥

नक्षत्रोंकी ध्रुव आदि संज्ञा जाननेका स्पष्ट चक्र—

संज्ञा	नक्षत्रों के नाम	वार
ध्रुव, स्थिर	तीनों उत्तरा, रोहिणी ४	रविवार
चर, चल	स्वाती, पुनः, श्र., ध., शत., ५	सोमवार
उग्र, क्रूर	तीनों पूर्वा, भरणी, मघा ५	मंगलवार
मिश्र, साधारण	विशाखा, कृत्तिका २	बुधवार
क्षिप्र, लघु	हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित् ४	गुरुवार
मृदु, मैत्र	मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा ४	शुक्रवार
तीक्ष्ण, दारुण	मूल, ज्येष्ठा, आर्द्रा, आश्लेषा ४	शनिवार

ऊर्ध्व, अधः और तिर्यक् मुखवाले नक्षत्र और उनके कार्य—

मूलाहिमिश्रोग्रमधोमुखं भवेदूर्ध्वास्यमार्द्रेज्यहरित्रयं ध्रुवम् ।
तिर्यङ्मुखं मैत्रकरानिलादितिज्येष्ठाश्विभानीदृशकृत्यमेषु सत् ॥९॥

अन्वयः—मूलाहिमिश्रोग्रं 'नक्षत्रं अधोमुखं भवेत्। आर्द्रज्यहरित्रयं ध्रुवं 'नक्षत्रं' ऊर्ध्वास्यं 'भवेत्'। मैत्रकरानिलादितिज्येष्ठाश्विभानि 'एतत्' तिर्यङ्मुखं 'भवेत्'। एषु 'नक्षत्रेषु' ईदृशकृत्यं सत् 'भवति' ॥ ९ ॥

भाषार्थः—मूल, आश्लेषा, मिश्रसंज्ञक (विशाखा-कृत्तिका) उग्रसंज्ञक (तीनों पूर्वा, भरणी और मघा) ये ९ नक्षत्र अधोमुख (नीचे मुखवाले) हैं। आर्द्रा, पुष्य, श्रवणा, धनिष्ठा शतभिषा और ध्रुवसंज्ञक (तीनों उत्तरा, रोहिणी) ये नक्षत्र ऊर्ध्वमुख (ऊपर मुखवाले) हैं। एवं मैत्रसंज्ञक (मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा) हस्त, स्वाती, पुनर्वसु, ज्येष्ठा और अश्विनी ये नक्षत्र तिर्यक् मुख (सामने मुखवाले) हैं। इन नक्षत्रोंमें ऐसे कार्य शुभ होते हैं। अर्थात् अधोमुख-वाले नक्षत्रोंमें नीचे मुख वाले कार्य (बावली तरहरा कूप वगैरह बनवाना) ऊर्ध्वमुखवाले नक्षत्रोंमें मठ, मन्दिर, मकान, पेड़ आदिका लगाना और तिर्यक् मुखवाले नक्षत्रोंमें सवारी (मोटर, साइकल, रेलगाड़ी, हाथी-घोड़े इत्यादि) का व्यवहार करना, पुल बाँध बाँधना और यात्रा करना ये सब शुभ होते हैं ॥ ९ ॥

भूषण और वस्त्रधारण करनेका मुहूर्त्त—

पौष्णध्रुवाश्विकरपञ्चकवासवेज्या-
दित्ये प्रवाल-रद-शङ्ख-सुवर्ण-वस्त्रम् ।
धार्यं विरक्त-शनि-चन्द्र-कुजेऽह्नि रक्तं
भौमे ध्रुवादितियुगे सुभगा न दध्यात् ॥ १० ॥

अन्वयः—पौष्णध्रुवाश्विकरपञ्चकवासवेज्यादित्ये 'नक्षत्रे' विरिक्तशनिचन्द्रकुजे अह्नि (दिवसे) प्रवाल-रद-शङ्ख-सुवर्ण-वस्त्रं धार्यम्। भौमे (मङ्गलदिने) रक्तं वस्त्रं 'धार्यम्'। ध्रुवादितियुगे 'नक्षत्रे' सुभगा (सधवा स्त्री) 'एतत् सर्वं' न दध्यात् ॥१०॥

भाषार्थः—रेवती, ध्रुवसंज्ञक (उत्तरा ३, रोहिणी) अश्विनी, हस्तसे ५ नक्षत्र (हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा) धनिष्ठा, पुष्य और पुनर्वसु इन नक्षत्रोंमें, रिक्ता-(४।९।१४) को छोड़कर शेष तिथियोंमें और शनि-सोम-मङ्गलको छोड़कर शेष (बु. बृ. शु. र.) दिनोंमें मूङ्गा, दाँत (हाथीके दाँतका भूषण) शङ्खका भूषण, सोनेका भूषण और वस्त्र (नया कपड़ा) धारण करना चाहिये। मङ्गलवारको लालवस्त्र पहनना चाहिये। ध्रुवसंज्ञक (उत्तरा ३ रोहिणी) पुनर्वसु और पुष्य इन नक्षत्रोंमें सधवा स्त्री उपर्युक्त वस्तु नहीं धारण करे ॥ १० ॥

विशेषः—ध्रुवसंज्ञक, पुनर्वसु और पुष्य नक्षत्र साधारणतः नये वस्त्र-भूषण धारणमें

प्रशस्त कहे गये हैं। परन्तु सौभाग्यवती (सधवा) स्त्री के लिये ये नक्षत्र निन्दित हैं। क्योंकि ऐसा करने पर वह स्त्री पतिसंयोग नहीं पाती। पुरुष तथा विधवा स्त्रीके लिये दोष नहीं है। सधवा स्त्री शतभिषा नक्षत्रके दिन स्नान भी नहीं करे। इसमें वृद्धोंके वचन प्रमाण—

"रोहिणीगुरुपुनर्वसूत्तरे या विभर्ति नववस्त्रभूषणम्।
सा न योषिदवलम्बते पतिं स्नानमचरति वारुणेऽपि या" ॥

शतभिषा नक्षत्रमें स्त्रीके नहानेका निषिद्ध फल चण्डेश्वरने कहा है—

"स्नानं कुर्वन्ति या नार्यश्चन्द्रे शतभिषान्विते।
सप्तजन्म भवेद् वन्ध्या विधवा दुर्भगा भृशम्" ॥

जो स्त्रियां शतभिषा नक्षत्रमें स्नान करती हैं वे सात जन्म तक बांझ अथवा विधवा और कुरूपा होती हैं।

भूलसे शतभिषा नक्षत्रमें नहानेसे दोषकी शान्ति यों है—

"प्रमादाच्छतभे स्नानं नारीणां यदि जायते।
पूजयेत् स्वामिनं तत्र आत्मना च धनेन च" ॥

यदि भूलसे शतभिषामें नहायी हो तो वह स्त्री उस दोषकी शान्तिके लिये अपने पतिकी पूजा आत्मसमर्पण और यथाशक्ति धनसे करे ॥ १० ॥

नये वस्त्रके जलने फटने और पङ्कित होनेका फल—

वस्त्राणां नवभागकेषु च चतुष्कोणेऽमरा राक्षसा
मध्यत्र्यंशगता नरास्तु सदशे पाशे च मध्यांशयाः।
दग्धे वा स्फुटितेऽम्बरे नवतरे पङ्कादिलिप्ते न स-
द्रक्षोंऽशे नृसुरांशयोः शुभमसत्सर्वांशके प्रान्ततः ॥ ११ ॥

अन्वयः—वस्त्राणां नवभागकेषु च चतुष्कोणे अमराः 'तिष्ठन्ति'। मध्यत्र्यंशगता राक्षसाः 'भवन्ति'। तु (पुनः) सदशे पाशे मध्यांशयोश्च नराः 'भवन्ति'। 'अथ' नवतरे अम्बरे रक्षोंऽशे दग्धे, वा स्फुटिते, वा पङ्कादिलिप्ते 'सति' सत् न 'भवति'। नृसुरांशयोः शुभं 'ज्ञेयम्'। 'तथा' प्रान्ततः सर्वांशके असत् 'भवति' ॥ ११ ॥

भाषार्थः—बिलकुल नये वस्त्रके अचानक जलने फटने और कीचड़ आदि से लिप जाने पर उसके शुभाशुभ फलकी परीक्षा इस तरह करनी चाहिये—

वस्त्रोंके नव भाग करने पर चारों कोणोंमें देवता, बीचके तीन भागोंमें राक्षस और दशीवाले दोनों पार्श्वके मध्यभागमें मनुष्यकी स्थापना करे। यदि वह नया वस्त्र राक्षस वाले भागोंमें जला कटा या कीचड़ आदिसे लिपा हो तो अशुभ समझना चाहिये। मनुष्य और देवतावाले भागमें शुभ होता है। यदि प्रान्त (किनारे चारो ओर) में सबके अंशमें पड़े तो अशुभ होता है ॥ ११ ॥

विशेष—यह विचार विछावन-चारपाई-आसनमें भी करना चाहिये। अशुभ सूचक वस्त्र आदिको त्याग देवे या दानकर देवे ॥ ११ ॥

स्पष्टताके लिये वस्त्रका नव भाग

देव शुभ	राक्षस अशुभ	देव शुभ
नर शुभ	राक्षस अशुभ	नर शुभ
देव शुभ	राक्षस अशुभ	देव शुभ

दुष्ट दिनमें वस्त्रधारणका नियम—

विप्राज्ञया तथोद्वाहे राज्ञा प्रीत्याऽर्पितश्च यत् ।
निन्द्येऽपि धिष्ण्ये वारादौ वस्त्रं धार्यं जगुर्बुधाः ॥ १२ ॥

अन्वयः—धिष्ण्ये वारादौ निन्द्ये अपि, विप्राज्ञया तथा उद्वाहे राज्ञा प्रीत्या अर्पितं च यद् वस्त्रं 'तत्' धार्यं 'इति' बुधा जगुः ॥ १२ ॥

भाषार्थः—नक्षत्र और दिन-तिथि निन्दित रहने पर भी ब्राह्मणकी आज्ञासे, विवाहमें और राजासे प्रसन्नता पूर्वक दिया हुआ वस्त्र पहनना चाहिये, ऐसा प्राचीन पण्डितोंने कहा है ॥ १२ ॥

विशेषः—यहाँ वस्त्र उपलक्षण है, अर्थात कोई भी छोटी-बड़ी वस्तु विवाहमें मिली हुई, राजासे दी हुई या खास अपनी हो वस्तु ब्राह्मणसे आज्ञा लेकर दुष्ट दिनमें रख लेनी चाहिये ॥ १२ ॥

लता-वृक्षरोपण, राजदर्शन, मद्यनिर्माण और पशुव्यापारके मुहूर्त—

राधामूलमृदुध्रुवर्क्षवरुणक्षिप्रैर्लतापादपा-
रोपोऽथो नृपदर्शनं ध्रुवमृदुक्षिप्रश्रवोवासवैः ।
तीक्ष्णोग्राम्बुपभेषु मद्यमुदितं क्षिप्रान्त्यवह्नीन्द्रभा-
दित्येन्द्राम्बुपवासवेषु हि गवां शस्तः क्रयो विक्रयः ॥ १३ ॥

अन्वयः—राधामूलमृदुध्रुवर्क्षवरुणक्षिप्रैः 'नक्षत्रैः' लतापादपारोपः 'शुभः स्यात्'। अथ ध्रुवमृदुक्षिप्रश्रवोवासवैः 'नक्षत्रैः' नृपदर्शनं 'शुभं स्यात्'। तीक्ष्णोग्राम्बुपभेषु मद्यं 'शुभं' उदितम्'। क्षिप्रान्त्यवह्नीन्द्रभादित्येन्द्राम्बुपवासवेषु 'नक्षत्रेषु' गवां क्रयः विक्रयः हि (निश्चयेन) शस्तः 'स्यात्' ॥ १३ ॥

भावार्थः—विशाखा, मूल, मृदुसंज्ञक, ध्रुवसंज्ञक, शतभिषा और क्षिप्रसंज्ञक नक्षत्रोंमें लतियों और वृक्षोंका लगाना शुभ होता है।

ध्रुव, मृदु और क्षिप्रसंज्ञावाले नक्षत्र, श्रवणा और धनिष्ठा नक्षत्रोंमें राजाका दर्शन (भेंट) करना शुभ होता है।

तीक्ष्ण और उग्रसंज्ञक तथा शतभिषा नक्षत्रोंमें मद्य (शराब) बनाना तथा पीना शुभ होता है।

क्षिप्रसंज्ञक, रेवती, विशाखा, पुनर्वसु, ज्येष्ठा, शतभिषा और धनिष्ठा नक्षत्रोंमें गौओंका खरीदना और बेचना शुभ होता है ॥ १३ ॥

पशुरक्षा और गोशाले आदिमें पशुओंके प्रवेश तथा निर्गमके मुहूर्त्त—

लग्ने शुभे चाष्टमशुद्धिसंयुते रक्षा पशूनां निजयोनिभे चरे।
रिक्ताऽष्टमी-दर्श-कुज-श्रवो-ध्रुव-त्वाष्ट्रेषु यानं स्थितिवेशनं न सत् ॥

अन्वयः—शुभे लग्ने अष्टमशुद्धिसंयुते च, निजयोनिभे चरे (चरनक्षत्रेऽपि) पशूनां रक्षा 'शुभा भवति'। रिक्ताऽष्टमीदर्श-कुज-श्रवोध्रुवत्वाष्ट्रेषु 'तिथिवारभेषु' यानं (पशूनां गृहाद् बहिर्निःसारणम्) स्थितिवेशनं (गोष्ठादौ प्रवेशनम्) सत् न 'भवति' ॥ १४ ॥

भावार्थः—शुभ (२।३।४।६।७।९।१२) राशिके लग्नमें, लग्नसे ८ वां स्थान शुद्ध रहे (अर्थात ८ वें स्थानमें कोई भी ग्रह नहीं हो) पशुकी अपनी योनिके नक्षत्रमें एवं चरसंज्ञक (स्वाती, पुनर्वसु, श्रवणा, धनिष्ठा और शतभिषा) नक्षत्रमें भी पशुओंकी रक्षा (पालन) करना शुभ है।

रिक्ता (४।९।१४) अष्टमी, अमावस्या तिथि, मङ्गलवार, श्रवणा, ध्रुवसंज्ञक और चित्रा नक्षत्र-इनमें पशुओंको गोशाला आदिसे निकालना और बाहरसे लाकर गोशाला आदिमें प्रवेश कराना शुभ नहीं है। तात्पर्य यह है कि इन तिथि-वार-नक्षत्रोंको छोड़कर शेष तिथि-वार-नक्षत्रोंमें पशुओंको गोशालामें प्रवेश-निर्गम करावे।

पशुरक्षाके मुहूर्त्तमें 'अपनी योनिके नक्षत्रों' की चर्चा है। उसका तात्पर्य यह है कि जिस पशुकी रक्षा की जायगी, उसी योनिके नक्षत्र लिये जायें। जैसे गाय-बैलके लिये गौ योनिके नक्षत्र। घोड़ेके लिये अश्वयोनिके नक्षत्र। भैंसके लिये कासर योनिके नक्षत्र। हाथीके लिये गजयोनि एवं हर पशु के योनिनक्षत्र लेना चाहिये ॥ १४ ॥

नोटः—पशुओंकी योनिके नक्षत्र विवाह प्रकरणके २५–२६ वें श्लोकोंमें कहे जायेंगे ॥१४

औषध खाने और सिलाई करनेके मुहूर्त्त—

भैषज्यं सल्लघुमृदुचरे मूलभे द्व्यङ्गलग्ने
शुक्रेन्द्विज्ये विदि च दिवसे चापि तेषां रवेश्च ।
शुद्धे रिष्फद्युनमृतिगृहे सत्तिथौ नो जनेर्भे
सूचीकर्माऽप्यदिति-वसुभ-त्वाष्ट्र-मित्राश्वि-पुष्ये ॥ १५ ॥

अन्वयः-लघुमृदुचरे मूलभे, द्व्यङ्गलग्ने, शुक्रेन्द्विज्ये विदि च 'द्व्यङ्गलग्ने' तेषां रवेश्च दिवसे चापि, रिष्फद्युनमृतिगृहे शुद्धे, सत्तिथौ भैषज्यं सत् 'स्यात्'। जनेः भे 'भैषज्यं सत्' नो । अदितिवसुभत्वाष्ट्रमित्राश्विपुष्ये 'नक्षत्रे' सूचीकर्म अपि सत् 'स्यात्' ॥१५

भाषार्थः—लघुसंज्ञक, मृदुसंज्ञक, चरसंज्ञक और मूल इन नक्षत्रोंमें द्विस्वभाव (३।६।९।१२) लग्नमें, शुक्र, चन्द्रमा, गुरु और बुध ये सब द्विस्वभाव (३।६।९।१२) राशियोंमें हों, इनके (शुक्र-चन्द्र-गुरु-बुध) और रविके दिनमें, लग्नसे १२, ७, ८ स्थान शुद्ध (ग्रह रहित) हों और शुभ तिथियोंमें औषध खाना शुभ (लाभदायक) होता है। जन्मके नक्षत्रमें औषध खाना शुभ नहीं है।

पुनर्वसु, धनिष्ठा, चित्रा, अनुराधा, अश्विनी और पुष्य इन नक्षत्रोंमें सिलाई करना शुभ होता है ॥ १५ ॥

क्रय-विक्रयका मुहूर्त्त—

क्रयर्क्षे विक्रयो नेष्टो विक्रयर्क्षे क्रयोऽपि न ।
पौष्णाम्बुपाश्विनीवातश्रवश्चित्राः क्रये शुभाः ॥ १६ ॥

भाषार्थः—खरीदनेके नक्षत्रमें बेचना अच्छा नहीं होता और बेचनेके नक्षत्रमें खरीदना भी अच्छा नहीं होता। रेवती, शतभिषा, अश्विनी, स्वाती, श्रवणा और चित्रा ये नक्षत्र खरीदनेमें शुभ होते हैं ॥ १६ ॥

विशेषः—क्रय-विक्रयके व्यवहारमें एक ही समयमें एकका खरीदना और दूसरेका बेचना सिद्ध होता है ऐसी अवस्थामें क्रय और विक्रय दोनोंके मुहूर्त्त कैसे लागू होंगे ?।

इस प्रश्नका उत्तर यह है—जब कोई बेचने वाला जिन वस्तुओंको बेचना चाहता है उनको बेचनेके अच्छे मुहूर्त्तमें विक्रयकी इच्छासे अलग रख लेता है, उसी दिन उन वस्तुओंकी विक्री हो गई। फिर जब कभी कोई खरीदने वाला क्रयके मुहूर्त्तमें उन वस्तुओंको खरीदता है। इससे यह सिद्ध हैं कि बेचनेकी इच्छासे दुकानपर वस्तुका रखना ही विक्रय है ॥ १६

बेचने और दुकान खोलनेके मुहूर्त—

पूर्वाद्वीशकृशानुसार्पयमभे केन्द्रत्रिकोणे शुभैः
षट्त्र्यायेष्वशुभैर्विना घटतनुं सन्विक्रयः सत्तिथौ ।
रिक्ताभौमघटान्विना च विपणिर्मित्रध्रुवक्षिप्रभै-
र्लग्ने चन्द्रसिते व्ययाष्टरहितैः पापैः शुभैर्द्व्यायखे ॥ १७ ॥

अन्वयः—पूर्वाद्वीशकृशानुसार्पयमभे, शुभैः केन्द्रत्रिकोणे 'स्थितैः' अशुभैः षट्त्र्यायेषु 'स्थितैः' घटतनुं विना, सत्तिथौ विक्रयः सन् 'स्यात्' ।

रिक्ताभौमघटान् विना च (पुनः) मित्रध्रुवक्षिप्रभैः, चन्द्रसिते लग्ने, पापैः व्ययाष्टरहितैः, शुभैः द्व्यायखे, 'स्थितैः 'विपणिः 'शुभा स्यात्' ॥ १७ ॥

भाषार्थः—तीनों पूर्वा, विशाखा, कृत्तिका, आश्लेषा और भरणी नक्षत्रोंमें, शुभग्रह सब (बु० बृ० शु० चं०) लग्नसे केन्द्र (१।४।७।१०) और त्रिकोण (२।९।५) में हों, पापग्रह सब (सू० मं० श० रा० के०) ६, ३, ११ स्थानोंमें हों, कुम्भको छोड़कर और लग्नोंमें तथा रिक्ता अमावसको छोड़कर शेष शुभ तिथियोंमें विक्रय (वस्तुओंका बेचना) शुभ होता है ।

रिक्ता (४।९।१४) तिथि, मंगलवार, कुम्भ लग्न इनको छोड़कर शेष तिथि-वार-लग्नोंमें, मित्रसंज्ञक ध्रुवसंज्ञक और क्षिप्रसंज्ञक नक्षत्रोंमें, चन्द्र और शुक्र लग्नमें हों, पापग्रह सब (सू० मं० श०) १२, ८ में नहीं हों और शुभग्रह सब २, ११, १० में हों तो विपणि (दुकान खोलना) शुभ है ।

विशेषः—यहाँ विपणीके मुहूर्तमें चन्द्रमा और शुक्रको लग्नमें तथा 'शुभैर्द्व्यायखे' इस वाक्यसे शुभग्रहोंको २।११।१० स्थानोंमें रहना बताया गया है । शुभग्रहोंकी संख्या ४ (बुध-गुरु-शुक्र-पूर्णचन्द्र) हैं । यदि लग्नमें चन्द्र-शुक्र होंगे तो २।१०।११ स्थानोंमें दो ही शुभग्रह बुध-गुरु होंगे अतः 'शुभैर्द्व्यायखे' यहाँ शुभका बहुवचन सङ्गत कैसे होगा ? इसलिये 'शुभौ द्व्यायखे' ऐसा पाठ युक्तियुक्त होगा । तब चन्द्रके साथ शुक्र लग्नमें हो पापग्रह सब १२।८ में नहीं हों और दो शुभग्रह (बुध-गुरु) २।११।१० में हों तो विपणि शुभ है, ऐसा अर्थ ठीक होगा ॥ १७ ॥

घोड़े और हाथीके व्यवहारके मुहूर्त—

क्षिप्रान्त्यवस्विन्दुमरुज्जलेशादित्येष्वरिक्तार्कदिने प्रशस्तम् ।
स्याद्वाजिकृत्यं त्वथ हस्तिकार्यं कुर्यान्मृदुक्षिप्रचरेषु विद्वान् ॥१८॥

अन्वयः—क्षिप्रान्त्यवस्विन्दुमरुज्जलेशादित्येषु 'नक्षत्रेषु' अरिक्तार्कदिने वाजिकृत्यं

तु प्रशस्तं स्यात् । अथ मृदुक्षिप्रचरेषु 'नक्षत्रेषु, 'रिक्तामाभौमवर्जितदिने च' विद्वान् हस्तिकार्यं कुर्यात् ॥ १८ ॥

भाषार्थः—क्षिप्रसंज्ञक, रेवती, धनिष्ठा, मृगशिरा, स्वाती, शतभिषा और पुनर्वसु इन नक्षत्रोंमें, रिक्ता (४।९।१४) तिथि तथा मङ्गलवारको छोड़कर अन्य तिथि-वारोंमें घोड़ेके कार्य (घोड़ेकी सवारी, खरीद-विक्री, शिक्षा, पालन इत्यादि कार्य) शुभ होते हैं ।

मृदुसंज्ञक, क्षिप्रसंज्ञक और चरसंज्ञक नक्षत्रोंमें 'रिक्ता अमावस और मङ्गल को छोड़कर अन्य तिथि-वारोंमें' बुद्धिमान हाथीके कार्य करें ॥ १८ ॥

वि०—घोड़े पर प्रथमारोहणमें अश्वचक्र—

'अश्वाकारं लिखेच्चक्रं साभिजिद्भानि विन्यसेत् ।
स्कन्धे तु सूर्यभात् पञ्च पृष्ठे च दश भानि च ॥
पुच्छे द्वे स्थापयेत् प्राज्ञश्चतुष्पादे चतुष्टयम् ।
उदरे विन्यसेत् पञ्च मुखे द्वे तुरगस्य च ॥
अर्थलाभो मुखे सम्यग् वाजी नश्यति चोदरे ।
चरणस्थे रणे भङ्गः पुच्छे पत्नी विनश्यति ॥
अर्थसिद्धिर्भवेत् पृष्ठे स्कन्धे स्कन्धपतिर्भवेत्'
इति दैवज्ञमनोहरे ।

इन श्लोकोंका तात्पर्य यह है कि सूर्यके नक्षत्रसे १५ नक्षत्रोंमें घोड़ेपर प्रथमारोहणमें शुभफल, उसके बाद ११ नक्षत्रोंमें अशुभफल, उसके बाद २ नक्षत्रोंमें शुभफल होते हैं ।

हाथी पर पहले २ अंकुश चलाना—

'शुभे तारे शुभे लग्ने शुभांशे शोभने तिथौ
अङ्कुशाः करिणां योज्याः शनिलग्ने शनेर्दिने'
इति व्यवहारोच्चये ।

मालिकके चन्द्र-तारेकी शुद्धि हो लग्न और नवांश शुद्ध हों, रिक्ता अमावससे रहित तिथियोमें तथा १०।११ लग्न और शनिवारमें भी नये हाथीपर अङ्कुश रखना शुभ होता है॥१८॥

आभूषण (जेवर) और शस्त्र बनवानेके मुहूर्त—

स्याद् भूषाघटनं त्रिपुष्करचरक्षिप्रध्रुवे रत्नयुक्
तत्तीक्ष्णोग्रविहीनभे रविकुजे मेषालिसिंहे तनौ ।
तन्मुक्तासहितं चरध्रुवमृदुक्षिप्रे शुभे सत्तनौ
तीक्ष्णोग्राश्विमृगे द्विदैवदहने शस्त्रं शुभं घट्टितम् ॥ १९ ॥

अन्वयः—त्रिपुष्कर-चर-क्षिप्र-ध्रुवे 'नक्षत्रे' भूषाघटनं 'सत्' स्यात् । तीक्ष्णोग्रविहीनभे 'नक्षत्रे' रविकुजे 'वारे' मेषालिसिंहे तनौ रत्नयुक् तत् (भूषाघटनं) 'सत् स्यात्' । चरध्रुवमृदुक्षिप्रे 'नक्षत्रे' 'शुभे' 'वारे' सत्तनौ मुक्तासहितं तत् (भूषाघटनं) 'सत् स्यात्' । 'अथ' तीक्ष्णोग्राश्विमृगे द्विदैवदहने 'नक्षत्रे' शस्त्रं घट्टितं शुभं 'भवति' ॥

भाषार्थः—त्रिपुष्कर योग (इसी प्रकरणके ५० वें श्लोकमें कहा जायगा) चरसंज्ञक, क्षिप्रसंज्ञक और ध्रुवसंज्ञक नक्षत्रोंमें आभूषणोंका बनवाना शुभ होता है। तीक्ष्णसंज्ञक और उग्रसंज्ञक नक्षत्रोंको छोड़कर अन्य नक्षत्रोंमें रवि और मङ्गलवारोंमें, मेष-वृश्चिक-सिंह लग्नोंमें रत्नजड़े भूषणोंका बनवाना शुभ होता है। चरसंज्ञक, ध्रुवसंज्ञक, मृदुसंज्ञक और क्षिप्रसंज्ञक नक्षत्रोंमें शुभ (बु. बृ. शु. चं.) वारोंमें और शुभ लग्नोंमें मोती जड़े भूषणोंका बनवाना शुभ होता है।

तीक्ष्णसंज्ञक, उग्रसंज्ञक, अश्विनी, मृगशिरा, विशाखा और कृत्तिका इन नक्षत्रोंमें शस्त्रों-(हथियारों-) का बनवाना शुभ होता है ॥ १९ ॥

सिक्का ढालने और कपड़ा धुलानेके मुहूर्त—

मुद्राणां पातनं सद्ध्रुवमृदुचरभक्षिप्रभैर्वीन्दुसौरे
घस्रे पूर्णाजयाख्ये न च गुरुभृगुजास्ते विलग्ने शुभैः स्यात् ।
वस्त्राणां क्षालनं सद्वसुहयदिनकृत्पञ्चकादित्यपुष्ये
नो रिक्तापर्वषष्ठीपितृदिनरविजज्ञेषु कार्यं कदापि ॥ २० ॥

अन्वयः—ध्रुवमृदुचरक्षिप्रभैः वीन्दुसौरे घस्रे, पूर्णाजयाख्ये 'तिथौ' गुरुभृगुजास्ते च न, शुभैः (शुभग्रहैः) विलग्ने 'स्थितैः' मुद्राणां पातनं सत् स्यात् ।

वसुहयदिनकृत्पञ्चकादित्यपुष्ये 'नक्षत्रे' वस्त्राणां क्षालनं सत् 'स्यात्' । 'अथ' रिक्तापर्वषष्ठीपितृदिनरविजज्ञेषु 'वस्त्राणां क्षालनं' कदापि नो कार्यम् ॥ २० ॥

भाषार्थः—ध्रुवसंज्ञक, मृदुसंज्ञक, चरसंज्ञक और क्षिप्रसंज्ञक नक्षत्रोंमें, सोम-और शनिको छोड़कर अन्य दिनोंमें, पूर्णा (५।१०।१५) और जया (३।८।१३) तिथियोंमें, गुरु और शुक्रके अस्त रहने पर नहीं (अर्थात् गुरु-शुक्र उदित रहें) और शुभग्रह लग्नमें रहें तो टकसालमें सिक्के का ढालना (गिन्नी, असर्फी, रुपये, पैसे इत्यादिका बनाना) शुभ होता है।

धनिष्ठा, अश्विनी, हस्तसे ५ नक्षत्र (ह० चि० स्वा० वि० अ०) पुनर्वसु और पुष्य इन नक्षत्रोंमें धोबीसे कपड़ोंका धुलाना शुभ होता है। रिक्ता (४।९।१४) पर्वकी तिथि, षष्ठी, पितृदिन (माता-पिताके श्राद्धकी तिथि) शनिवार और बुधवार

को कपड़ोंका धुलाना निन्दित है । अर्थात् इन तिथिवारोंमें कपड़ोंको कभी भी नहीं धुलाना चाहिये ॥ २० ॥

विशेषः—चण्डेश्वरके मतसे मङ्गलवारको भी कपड़ा धुलाना निषेध है ।

"शनौ भूमिसुते श्राद्धे षष्ठ्यमावास्ययोस्तथा ।
वस्त्रक्षालनजो दोषो दहत्यासप्तमं कुलम्" इति ॥ स्पष्टार्थः ॥ २० ॥

शस्त्रधारण और शय्या-आसन पर आरोहणके मुहूर्त—

सन्धार्याः कुन्त-वर्मेष्वसन-शर-कृपाणासिपुत्र्यो विरिक्ते
शुक्रेज्यार्केऽह्नि मैत्र-ध्रुव-लघुसहितादित्यशाक्रद्विदैवे ।
स्युर्लग्नेऽपि स्थिराख्ये शशिनि च शुभदृष्टे शुभैः केन्द्रगैः स्या-
द्भोगः शय्यासनादेर्ध्रुव-मृदु-लघु-हर्यन्तकादित्य इष्टः ॥ २१ ॥

अन्वयः—विरिक्ते 'तिथौ' शुक्रेज्यार्के अह्नि, मैत्रध्रुवलघुसहितादित्यशाक्रद्विदैवे 'नक्षत्रे' स्थिराख्ये लग्ने अपि, शशिनि च शुभदृष्टे, शुभैः केन्द्रगैः, कुन्त-वर्म-ष्वसन-शर-कृपाणा-सिपुत्र्यः सन्धार्याः स्युः ।

ध्रुव-मृदु-लघु-हर्यन्तकादित्ये 'नक्षत्रे' शय्यासनादेः भोगः इष्टः स्यात् ॥ २१ ॥

भाषार्थः—रिक्ता (४।९।१४) को छोड़कर अन्य तिथियोंमें, शुक्र गुरु-रवि-दिनोंमें, मैत्रसंज्ञक-ध्रुवसंज्ञक-लघुसंज्ञक-पुनर्वसु-ज्येष्ठा-विशाखा-नक्षत्रोंमें, स्थिर (२।५।८।११) लग्नमें, चन्द्रमा भी लग्नमें शुभग्रहसे देखा जाता हो और शुभग्रह सब (बु. बृ. शु.) केन्द्र-(लग्नसे १।४।७।१०) में हों तो कुन्त (भाला) वर्म (कवच) इष्वसन (धनुष) शर (बाण) कृपाण (तलवार) असिपुत्री (छुरी) ये सब शस्त्र धारण करने चाहिये ।

ध्रुवसंज्ञक-मृदुसंज्ञक-लघुसंज्ञक-श्रवणा-भरणी-पुनर्वसु-नक्षत्रोंमें शय्या (खाट-पलङ्ग-चौकी-आदि बिछावन) आसन (बैठनेकी कुर्सी-पीढ़ा-कम्बल-मृगचर्म) आदिशब्दसे पादुका खड़ाऊंका भोग (प्रथमारोहण) शुभ होता है ॥ २१ ॥

नक्षत्रोंकी अन्धाक्ष-मन्दाक्ष-मध्याक्ष-स्वक्ष-संज्ञायें—

अन्धाक्षं वसुपुष्यधातृजलभद्वीशार्यमान्त्याभिधं,
मन्दाक्षं रविविश्वमित्रजलपाश्लेषाश्विचान्द्रं भवेत् ।
मध्याक्षं शिवपित्रजैकचरणत्वाष्ट्रैन्द्रविध्यन्तकं
स्वक्षं स्वात्यदितिश्रवोदहनभाहिर्बुध्न्यरक्षो भगम् ॥ २२ ॥

अन्वयः—वसुपुष्यधातृजलभद्वीशार्यमान्त्याभिधं अन्धाक्षं 'भवेत्'। रविविश्वमित्रजलपाश्लेषाश्विचान्द्रं मन्दाक्षं भवेत् । शिवपित्रजैकचरणत्वाष्ट्रेन्द्रविध्यन्तकं मध्याक्षं 'भवेत्' । स्वात्यदितिश्रवोदहनभाहिर्बुध्न्यरक्षोभगं स्वक्षं 'भवेत्' ॥ २२ ॥

भाषार्थः—धनिष्ठा, पुष्य, रोहिणी, पूर्वाषाढ़, विशाखा, उत्तराफाल्गुनी और रेवती ये ७ नक्षत्र अन्धाक्ष संज्ञक (अर्थात् अन्धे) होते हैं ।

हस्त, उत्तराषाढ़ अनुराधा, शतभिषा, आश्लेषा, अश्विनी और मृगशिरा ये ७ नक्षत्र मन्दाक्ष (छोटी आँखवाले) हैं ।

आर्द्रा, मघा, पूर्वभाद्र, चित्रा, ज्येष्ठा, अभिजित् और भरणी ये ७ नक्षत्र मध्याक्ष (मझोली आँख वाले) हैं ।

स्वाती, पुनर्वसु, श्रवणा, कृत्तिका, उत्तरभाद्र, मूल, और पूर्वा फल्गुनी ये ७ नक्षत्र स्वक्ष (सुन्दर आँखवाले) है ॥ २२ ॥

विशेषः—इन अन्धादि नक्षत्रोंको सुलभसे जाननेका प्रकार यह है कि–रोहिणीसे प्रारम्भ करके चार २ नक्षत्रोंमें क्रमसे अन्ध, मन्द मध्य और स्वक्षको समझे । फिर चार नक्षत्रोंमें वे चार संज्ञायें समझे । स्पष्टताके लिये चक्र देखिये ॥ २२ ॥

अन्धाक्ष	मन्दाक्ष	मध्याक्ष	स्वक्ष
रो.	मृ.	आ.	पु.
पुष्य	आश्लेषा	म.	पू. फ.
उ. फ.	हस्त	चि.	स्वा.
वि.	अनु.	ज्ये.	मू.
पू. षा.	उ. षा.	अभि.	श्र.
ध.	श.	पू. भा.	उ. भा.
रे.	अश्वि.	भ.	कृ.
शीघ्रलाभ होवे	प्रयत्नसे लाभ होवे	दूरमें श्रवण लाभ नहीं हो	न सुने, न लाभ होवे
पूरब में गया हो	दक्षिण में गया हो	पश्चिम में गया हो	उत्तर में गया हो

अन्धादि नक्षत्रोंका फल—

विनष्टार्थस्य लाभोऽन्धे शीघ्रं, मन्दे प्रयत्नतः ।
स्याद्दूरे श्रवणं मध्ये, श्रुत्याप्ती न सुलोचने ॥ २३ ॥

अन्वयः—अन्धे विनष्टार्थस्य शीघ्रं लाभः 'स्यात्' । मन्दे 'विनष्टार्थस्य' प्रयत्नत 'लाभः स्यात्' । मध्ये 'विनष्टार्थस्य' दूरे श्रवणं स्यात् । सुलोचने 'विनष्टार्थस्य श्रुत्याप्ती न 'भवेताम्' ॥ २३ ॥

भाषार्थः—अन्धसंज्ञक नक्षत्रोंमें नष्ट (खोये या चोरी हुये) धनका शीघ्र ही लाभ होता है मन्दसंज्ञक नक्षत्रोंमें नष्ट हुये धनका लाभ प्रयत्न (बहुत खोज) करनेसे होता है । मध्यसंज्ञक नक्षत्रोंमें नष्ट हुए धन दूर देशमें अधिक दिनोंमें सुन पड़ते हैं (अर्थात् वह धन अमुक आदमी अमुक स्थान पर ले गया ऐसा सुनने में आता है) परन्तु उस धनका लाभ नहीं होता । सुलोचन संज्ञक नक्षत्रोंमें नष्ट हुये धन न सुने ही जाते और न मिलते ही हैं ॥ २३ ॥

विशेषः-ग्रन्थान्तरोंमें 'अन्ध नक्षत्रमें नष्ट धन पूर्व दिशामें, मन्द नक्षत्रमें दक्षिण दिशामें, मध्य नक्षत्रमें पश्चिम और स्वक्ष नक्षत्रमें उत्तर दिशामें जाते हैं' ऐसा लेख मिलता है ।

'अन्धके पूर्वतो वस्तु मन्दके दक्षिणे भवेत् ।
मध्याक्षे पश्चिमे ज्ञेयमुत्तरे तु सुलोचने ॥ इति ।

कोई वस्तु जिस नक्षत्रमें खोई या चुराई गई हो उस नक्षत्रकी संज्ञा देखकर उसका फल कहना चाहिये ॥ २३ ॥

धनके लेन-देन और सञ्चय करनेमें निषिद्ध नक्षत्र—

तीक्ष्णमिश्रध्रुवोग्रैर्यद् द्रव्यं दत्तं निवेशितम् ।
प्रयुक्तं च विनष्टं च विष्ट्यां पाते च नाप्यते ॥ २४ ॥

अन्वयः—तीक्ष्णमिश्रध्रुवोग्रैः 'नक्षत्रैः' विष्ट्यां पाते च यद् द्रव्यं दत्तं, निवेशित प्रयुक्तं, विनष्टं च 'भवति तत्' न आप्यते ॥ २४ ॥

भाषार्थः—तीक्ष्णसंज्ञक, मिश्रसंज्ञक, ध्रुवसंज्ञक और उग्रसंज्ञक नक्षत्रों तथा भद्रामें और व्यतीपात योगमें जो द्रव्य (धन) किसीको उधार रूपमें दिया जाय, सन्दूक या मिट्टीके अन्दर (पृथ्वीमें) रखा जाय, लहनेके रूप (ब्याज पर) किसीको दिया जाय या नष्ट हो जाय (खो जाय या चोरी हो जाय) वह धन फिर नहीं मिलता है ॥ २४ ॥

विशेषः—यहाँ तीक्ष्ण-मिश्र-ध्रुव-उग्र (मू. ज्ये. आ. श्ले;. वि. कृ.; उ. फ. उ. षा. उ. भा. रो; पू. फ. पू. षा. पू.भा. भ. म;) इन १५ नक्षत्रोंमें 'रो. उ.फ. उ.षा. पू. षा. वि.' ये ५ नक्ष

अन्धाक्ष संज्ञक हैं । जिनमें स्वयं नष्ट (खोया या चुराया) हुआ धन मिलता ही है । इसलिये इन ५ नक्षत्रोंमें किसीको दिया गया तथा जमीनमें गाड़ा गया धन ही नहीं मिलता । और सब बातें पूर्वोक्त समझिये ॥ २४ ॥

जलाशय खोदने और नृत्यारम्भके मुहूर्त—

मित्रार्कध्रुववासवाम्बुपमघातोयान्त्यपुष्येन्दुभिः
पापैर्हीनबलैस्तनौ सुरगुरौ ज्ञे वा भृगौ खे विधौ ।
आप्ये सर्वजलाशयस्य खननं व्यम्भोमघैः सेन्द्रभै-
स्तैर्नृत्यं हिबुके शुभैस्तनुगृहे ज्ञेऽब्जे ज्ञराशौ शुभम् ॥२५॥

अन्वयः—मित्रार्कध्रुववासवाम्बुपमघातोयान्त्यपुष्येन्दुभिः 'नक्षत्रैः' पापैः हीनबलैः, सुरगुरौ वा ज्ञे तनौ, भृगौ खे, विधौ आप्ये 'सति' सर्वजलाशयस्य खननं शुभं 'भवति' ।

व्यम्भोमघैः सेन्द्रभैः तैः (पूर्वोक्तनक्षत्रैः), शुभैः हिबुके 'स्थितैः' ज्ञे तनुगृहे 'गते' अब्जे ज्ञराशौ 'स्थिते' नृत्यं शुभं 'भवति' ॥ २५ ॥

भाषार्थः—अनुराधा, हस्त, ध्रुवसंज्ञक, धनिष्ठा, शतभिषा, मघा, पूर्वाषाढ़, रेवती, पुष्य और मृगशिरा इन नक्षत्रोंमें, पाप-ग्रहों (सू. मं. श.) के निर्बल रहने पर, बृहस्पति या बुध लग्नमें रहें, शुक्र लग्नसे १० वें भावमें रहे और चन्द्रमा जलचर राशि-(४।१०।११।१२) में रहे तो सभी जलाशय (कूप-बावली-तालाब आदि) का खोदवाना शुभ होता है ।

पूर्व कहे गये १३ नक्षत्रोंमें, पूर्वाषाढ़ और मघाको छोड़कर और ज्येष्ठाको जोड़कर उन्हीं ११ नक्षत्रोंमें, जब कि शुभग्रह लग्नसे चौथे, बुध लग्नमें और चन्द्रमा बुधकी राशि (मिथुन या कन्या) में हों तो नृत्य-(प्रथम २ नाँच-) का आरम्भ करना शुभ होता है ॥ २५ ॥

विशेषः—यहां नृत्यारंभ मुहूर्त्तमें लग्नमें बुधकी स्थिति मिथुन या कन्यामें चन्द्रमाकी स्थिति बतायी गई है फिर लग्नसे चौथे शुभग्रहोंको बताया है । परन्तु जब बुध और चन्द्रमा निकल ही गये तो शुभग्रह गुरु और शुक्र दो ही बचते हैं, तब **'हिबुके शुभैः'** इस वाक्यसे शुभग्रहका बहुवचन कैसे सङ्गत होगा । इसलिये ४ थे स्थानमें यथासम्भव एक या दो ही शुभग्रह हो सकेगा । अतः **'हिबुके शुभे'** ऐसा पाठ सङ्गत हो सकता है ।

यद्यपि अन्य आचार्योंके मतसे वापी-कूप-तड़ाग खोदनेके नक्षत्र अलग २ हैं तो भी तीनोंके एकजातीय (जलाशय) होनेके कारण आचार्यने सबके लिये एक तरहके नक्षत्र लिखे हैं।

अन्य आचार्योंके मतसे—

वापीके नक्षत्र–स्वा. अ. पुष्य. ह. पुन. रे. श.।

कूपके नक्षत्र—ह. पु. ध. श. अनु. म. उ. ३।

तड़ागके नक्षत्र—अ. मृ. रे. उ. ३, रो. पुष्य. श. पू. षा. ॥ २५ ॥

मालिककी सेवा (नौकरी) करनेका मुहूर्त—

क्षिप्रे मैत्रे वित्सितार्केज्यवारे सौम्ये लग्नेऽर्के कुजे वा खलाभे।
योनेर्मैत्र्यां राशिपोश्चापि मैत्र्यां सेवा कार्या स्वामिनः सेवकेन॥२६॥

अन्वयः—क्षिप्रे मैत्रे 'नक्षत्रे' वित्सितार्केज्यवारे, सौम्ये लग्ने, अर्के वा कुजे खलाभे, योनेः मैत्र्यां, राशिपोश्चापि मैत्र्यां 'सत्याम्' सेवकेन जनेन स्वामिनः सेवा कार्या ॥ २६ ॥

भाषार्थः—क्षिप्रसंज्ञक और मैत्रसंज्ञक नक्षत्रोंमें, बुध-शुक्र-रवि-गुरु-वारोंमें, किसी एक शुभग्रहके लग्नमें रहने पर, लग्नसे १० वें या ११ वें स्थानमें सूर्य या मङ्गलके रहने पर सेवक (नौकर) को स्वामी-(मालिक-) की सेवा (नौकरी) करनी चाहिये। यहां मालिक और नौकरके नक्षत्रोंकी योनिकी मैत्री और दोनोंके राशिपतिकी मैत्री होनी चाहिये ॥ २६ ॥

नोटः—नक्षत्रोंकी योनि विवाह प्रकरणके २५–२६ वें श्लोकमें कही जायेगी। ग्रहोंकी मैत्री वि. प्र. २७–२८ वें श्लोकोंमें देखिये ॥ २६ ॥

धनके कर्जरूपमें देने और कर्ज लेनेके मुहूर्त—

स्वात्यादित्यमृदुद्विदैवगुरुभे कर्णत्रयाश्वे चरे
लग्ने धर्मसुताष्टशुद्धिसहिते द्रव्यप्रयोगः शुभः।
नारे ग्राह्यमृणं तु संक्रमदिने वृद्धौ करेऽर्केऽह्नि यत्
तद्वंशेषु भवेदृणं न च बुधे देयं कदाचिद्धनम् ॥ २७ ॥

अन्वयः—स्वात्यादित्यमृदुद्विदैवगुरुभे कर्णत्रयाश्वे 'नक्षत्रे' धर्मसुताष्टशुद्धिसहिते चरे लग्ने द्रव्यप्रयोगः शुभः 'भवति'।

आरे (मङ्गलवारे) ऋणं न ग्राह्यम्। तु (पुनः) सङ्क्रमदिने, वृद्धौ (वृद्धियोगे) करे (हस्तनक्षत्रे) अर्के अह्नि यद् ऋणं तद् वंशेषु 'ऋणं' भवेत्। बुधे च कदाचिद् धनं न देयम् ॥ २७ ॥

भाषार्थः—स्वाती, पुनर्वसु, मृदुसंज्ञक, विशाखा, पुष्य, श्रवणसे ३ नक्षत्र (श्र. ध. श.) और अश्विनी इन नक्षत्रोंमें, चर (१।४।७।१० राशिके) लग्नमें,

लग्नसे ९ वाँ, ५ वाँ और ८ वाँ स्थान शुद्ध हों (अर्थात् उनमें कोई भी ग्रह नहीं हो) तो द्रव्यका प्रयोग (ब्याज पर धनको लहना रूपमें) करना शुभ होता है ।

मङ्गलवारमें महाजनसे ऋण (कर्ज) नहीं लेना चाहिये । सङ्क्रान्तिके दिनमें, वृद्धियोगमें, हस्त नक्षत्रमें और रविवारमें ऋण लेनेसे वह ऋण उसके वंशमें दृढ़ हो जाता है, अर्थात् उसके खानदानमें ऋण रह जाता है; इसलिये इन दिनोंमें ऋण नहीं लेना चाहिये ।

बुधवारमें कभी भी किसीको धन नहीं देना चाहिये । (क्योंकि बुधवारमें दिया हुआ धन लौटकर नहीं आता) ।

जिस दिनमें ऋण लेना निषेध है उस दिनमें लिये हुये ऋणका शोध (चुकता, अदा) कर देना शुभ होता है । जैसे ज्योतिःप्रकाशमें कहा है—

"हस्तेऽर्कवारे सङ्क्रान्तौ यदृणं स्यात् कुलेषु तत् ।
वृद्धियोगे तथा ह्येवमृणच्छेदं तु कारयेत् ॥" इति, तथा—
"ऋणं भौमे न गृह्णीयान्न देयं बुधवासरे ।
ऋणच्छेदं कुजे कुर्यात् सञ्चयं सोमनन्दने ॥" इति ॥ २७ ॥

हल चलानेका मुहूर्त—

मूलद्वीशमघाचरध्रुवमृदुक्षिप्रैर्विनाऽर्कं शनिं
पापैर्हीनबलैर्विधौ जललवे शुक्रे विधौ मांसले ।
लग्ने देवगुरौ हलप्रवहणं शस्तं, न सिंहे घटे
कर्कार्जैणघटे तनौ क्षयकरं रिक्तासु षष्ठ्यां तथा ॥२८॥

अन्वयः—मूलद्वीशमघाचरध्रुवमृदुक्षिप्रैः 'नक्षत्रैः' अर्कं शनिं विना, पापैः हीनबलैः, विधौ जललवे, शुक्रे विधौ मांसले, देवगुरौ लग्ने 'गते सति' हलप्रवहणं शस्तं 'भवति' । 'अथ' सिंहे घटे कर्कार्जैणघटे तनौ, रिक्तासु [तथा षष्ठ्यां 'तिथौ' हलप्रवहणं 'यतः' क्षयकरं 'भवति' अतः शस्तं न 'भवति' ॥ २८ ॥

भाषार्थः—मूल, विशाखा, मघा, चरसंज्ञक, ध्रुवसंज्ञक, मृदुसंज्ञक और क्षिप्रसंज्ञक नक्षत्रोंमें, रवि और शनिवारको छोड़कर अन्य दिनोंमें, पापग्रहों (र. मं. श.) के निर्बल रहने पर, चन्द्रमाके जलचर राशिके नवांशमें रहने पर, शुक्र और चन्द्रमाके पूर्णबली रहने पर और बृहस्पतिके लग्नमें रहने पर हल चलाना शुभ होता है ।

सिंह, कुम्भ, कर्क, मेष, मकर और तुला लग्नमें, रिक्ता (४।९।१४) और षष्ठी तिथिमें हल चलानेसे हानि होती है; इसलिये हल चलानेमें (सिं. कुं. क. मे. म. तु.) ये लग्न और ४।९।१४।६ ये तिथियां ग्राह्य नहीं हैं ॥ २८ ॥

नोट—हल चलानेमें हल चक्रकी शुद्धि आगे २९ वें श्लोकमें देखिये।

विशेषः—इस प्रकरणमें कई स्थानमें ग्रहोंके निर्बल और बली होनेकी चर्चा आई है। कोई भी (शुभ या पाप) ग्रह जब अपनी राशि, अपने उच्च, या अपने मित्रके घरमें रहता है, देखनेमें स्पष्ट और चमकीला रहता है, वह बली होता है। और जब अपने शत्रुकी राशिमें नीचमें रहता है, अस्त तथा देखनेमें विरूप-रूक्ष रहता है, वह निर्बल होता है ॥ २८ ॥

बीज बोनेका मुहूर्त्त, फणिचक्र तथा हलचक्रकी शुद्धि—

> एतेषु श्रुतिवारुणादितिविशाखोडूनि भौमं विना
> बीजोप्तिर्गदिता शुभा, त्वशुभतोऽष्टाग्नीन्दुरामेन्दवः।
> रामेन्द्वग्नियुगान्यसच्छुभकराण्युप्तौ हलेऽर्कोज्झिताद्
> भाद्रामाष्टनवाष्टभानि मुनिभिः प्रोक्तान्यसत्सन्ति च ॥२९॥

अन्वयः—श्रुतिवारुणादितिविशाखोडूनि—भौमं विना एतेषु (हलप्रवहणोक्त-तिथिवारनक्षत्रेषु) बीजोप्तिः शुभा गदिता। तु (पुनः) उप्तौ (बीजवपने) अशुभतः (राहुनक्षत्रतः) अष्टाग्नीन्दुरामेन्दवः रामेन्द्वग्नियुगानि 'भानि, क्रमात्' असत्-शुभ-कराणि 'भवन्ति'।

'अथ' हले, (हलप्रवहणे) अर्कोज्झिताद् भात् (सूर्यत्यक्तनक्षत्रात्) रामाष्टन-वाष्टभानि मुनिभिः 'क्रमेण' असत्-सन्ति च प्रोक्तानि ॥ २९ ॥

भाषार्थः—हल चलानेमें जो नक्षत्र-तिथि-वार कहे गये हैं, उनमें श्रवण, शतभिषा, पुनर्वसु, विशाखा इन नक्षत्रों और मङ्गलवार को छोड़कर शेष नक्षत्र-तिथि-वारोंमें बीज बोना शुभ है। (अर्थात मूल-मघा-स्वाती-धनिष्ठा-तीनों उत्तरा-रोहिणी-मृगशिरा-रेवती-चित्रा-अनुराधा-हस्त-अश्विनी-पुष्य-नक्षत्रोंमें, चन्द्र-बुध-गुरु-शुक्र-वारोंमें और रिक्ता षष्ठीको छोड़ अन्य तिथियोंमें बीज बोना शुभ है। लग्न और ग्रहोंके बलाबल भी हल चलाने वालेके ही लिये जाते हैं)

बीज बोनेमें फणि-(राहु-) चक्र इस तरह देखना चाहिये-राहु जिस नक्षत्रमें हों उस नक्षत्रसे ८ नक्षत्र बीज बोनेमें अशुभ, उसके बाद ३ नक्षत्र शुभ, उसके बाद १ नक्षत्र अशुभ, फिर ३ नक्षत्र शुभ, उसके बाद १ अशुभ, फिर ३ शुभ, उसके बाद १ अशुभ, फिर ३ शुभ और ४ अशुभ होते हैं। शुभवाले नक्षत्रमें ही बीज बोना चाहिये।

हल चक्रकी शुद्धि यों हैं—सूर्यसे छोड़ा हुआ जो नक्षत्र हो उससे ३ नक्षत्र हल चलानेमें अशुभ, उसके बाद ८ नक्षत्र शुभ, फिर ९ नक्षत्र अशुभ और ८ नक्षत्र शुभ होते हैं। शुभवाले नक्षत्रमें ही हल चलाना चाहिये ॥ २९ ॥

बीज बोनेमें फणि-चक्र राहुके नक्षत्रसे—

नक्षत्र	८	३	१	३	१	३	१	३	४
फल	अशुभ	शुभ	अशुभ	शुभ	अशुभ	शुभ	अशुभ	शुभ	अशुभ

हलचक्र सूर्यके भुक्त नक्षत्रसे—

नक्षत्र	३	८	९	८
फल	अशुभ	शुभ	अशुभ	शुभ

शिराछेदन-विरेचन-वमन और धर्मकार्यके मुहूर्त—

त्वाष्ट्रान्मित्रकभाद् द्वयेऽम्बुपलघुश्रोत्रे शिरामोक्षणं
भौमार्केज्यदिने, विरेकवमनाद्यं स्याद् बुधार्की विना।
मित्रक्षिप्रचरध्रुवे रविशुभाहे लग्नवर्गे विदो
जीवस्यापि तनौ गुरौ निगदिता धर्मक्रिया तद्बले ॥३०॥

अन्वयः—त्वाष्ट्रात्-मित्र-क-भाद् द्वये, अम्बुपलघुश्रोत्रे 'नक्षत्रे' भौमार्केज्यदिने, शिरामोक्षणं 'शुभं स्यात्'। बुधार्की विना 'पूर्वोक्तनक्षत्रेषु' विरेकवमनाद्यं 'शुभं' स्यात्।

मित्र-क्षिप्र-चर-ध्रुवे 'नक्षत्रे' रविशुभाहे, विदः लग्नवर्गे, जीवस्यापि 'लग्नवर्गे' गुरौ तनौ, तद्बले (गुरोः बले) 'सति' धर्मक्रिया 'शुभा' निगदिता ॥ ३० ॥

भाषार्थः—चित्रा-अनुराधा-रोहिणीसे दो दो नक्षत्र (चि. स्वा. अनु. ज्ये. रो. मृ.) शतभिषा, लघुसंज्ञक, और श्रवण इन नक्षत्रोंमें और मङ्गल-रवि-गुरुवारोंमें शिरामोक्षण (नसको काटकर बिगड़े हुये शोणितको निकालना) शुभ होता है।

बुध और शनिवारको छोड़कर अन्य दिनों और पूर्वोक्त (शिरामोक्षणमें कहे) नक्षत्रोंमें "उदरकी शुद्धि और स्वास्थ्य लाभके लिये औषधि द्वारा" विरेचन (जुलाब) और बमन (कै) शुभ होता है।

अनुराधा-क्षिप्रसंज्ञक-चरसंज्ञक-ध्रुवसंज्ञक (अनु; ह. अ. पुष्य; स्वा.

पुन. श्र. ध. श; उ. ३ रो. इन १३) नक्षत्रोंमें, रविवार और शुभग्रहों (बु. बृ. शु. चं.) के वारोंमें, लग्नमें बुध या गुरुका षड्वर्ग रहे, बृहस्पति लग्नमें रहे और बृहस्पति बलवान् भी हो तो धर्म क्रिया (अनुष्ठान, विशिष्ट पूजा-पाठ, हवन आदि क्रिया) शुभ होती है ॥ ३० ॥

वि०—षड्वर्गका विवरण विवाहप्रकरणके ४२ वें श्लोकमें कहेंगे। गृह-होरा-द्रेष्काण-नवांश-द्वादशांश-त्रिंशांश, ये ही ६ षड्वर्ग हैं ॥ १० ॥

फसल काटनेका मुहूर्त—

> तीक्ष्णाजपादकरवह्निवसुश्रुतीन्दु-
> स्वातीमघोत्तरजलान्तकतक्षपुष्ये
> मन्दाररिक्तरहिते दिवसेऽतिशस्ता
> धान्यच्छिदा निगदिता स्थिरभे विलग्ने ॥ ३१ ॥

अन्वयः—तीक्ष्णाजपादकरवह्निवसुश्रुतीन्दुस्वातीमघोत्तरजलान्तकतक्षपुष्ये 'नक्षत्रे' मन्दाररिक्तरहिते दिवसे स्थिरभे विलग्ने धान्यच्छिदा अतिशस्ता निगदिता ॥३१॥

भाषार्थः—तीक्ष्णसंज्ञक, पूर्वभाद्र, हस्त, कृत्तिका, धनिष्ठा, श्रवण, मृगशिरा, स्वाती, मघा, तीनों उत्तरा, पूर्वाषाढ़, भरणी, चित्रा और पुष्य इन १९ नक्षत्रोंमें, शनि-मङ्गलवार और रिक्ता (४।९।१४) तिथिको छोड़कर अन्य दिनों और तिथियोंमें, स्थिर (२।५।८।११) राशिवाले लग्नमें धान्य (फसल) का काटना बहुत उत्तम होता है ॥ ३१ ॥

फसलके दौंवने और धान रोपनेके मुहूर्त—

> भाग्यार्यमश्रुतिमघेन्द्रविधातृमूल-
> मैत्रान्त्यभेषु कथितं कणमर्दनं सत् ।
> द्वीशाजपान्निर्ऋतिधातृशतार्यमर्क्षे
> सस्यस्य रोपणमिहार्किकुजौ विना सत् ॥ ३२ ॥

अन्वयः—भाग्यार्यमश्रुतिमघेन्द्रविधातृमूलमैत्रान्त्यभेषु कणमर्दनं सत् कथितम् । द्वीशाजपान्निर्ऋतिधातृशतार्यमर्क्षे अर्किकुजौ विना इह सस्यस्य रोपणं सत् 'कथितम्' ॥ ३२ ॥

भाषार्थः—पूर्वा फल्गुनी, उत्तरा फल्गुनी, श्रवण, मघा, ज्येष्ठा, रोहिणी,

मूल अनुराधा और रेवती इन ९ नक्षत्रोंमें कणमर्दन (फसलोंका दाँवन) शुभ होता है।

विशाखा, पूर्वभाद्र, मूल, रोहिणी, शतभिषा और उत्तरा फल्गुनी इन ६ नक्षत्रोंमें और शनि मङ्गलको छोड़कर अन्य दिनोंमें धान्यरोपण शुभ होता है ॥३२॥

देहरी आदिमें अन्नोंके रखने और व्याजपर बढ़ानेके मुहूर्त—

मिश्रोग्ररौद्रभुजगेन्द्रविभिन्नभेषु
कर्कौजतौलिरहिते च तनौ शुभाहे।
धान्यस्थितिः शुभकरी गदिता, ध्रुवेज्य-
द्वीशेन्द्रदस्रचरभेषु च धान्यवृद्धिः ॥ ३३ ॥

अन्वयः—मिश्रोग्ररौद्रभुजगेन्द्रविभिन्नभेषु, कर्कौजतौलिरहिते तनौ च, शुभाहे, धान्यस्थितिः शुभकरी गदिता। ध्रुवेज्यद्वीशेन्द्रदस्रचरभेषु च धान्यवृद्धिः 'शुभकरी गदिता' ॥ ३३ ॥

भाषार्थः—मिश्रसंज्ञक-उग्रसंज्ञक-आर्द्रा-श्लेषा-ज्येष्ठा-नक्षत्रोंको छोड़कर अन्य नक्षत्रोंमें- कर्क-मेष-तुला-को छोड़कर अन्य लग्नोंमें, शुभ (बु. बृ. शु. चं.) वारोंमें धान्य (अन्नों) की स्थिति (इकट्ठा करके देहरी या बखारमें रखना) शुभ है।

ध्रुवसंज्ञक, पुष्य, विशाखा, ज्येष्ठा, अश्विनी और चरसंज्ञक-नक्षत्रोंमें धान्यकी वृद्धि (अर्थात् अन्नोंको सवैया-ड्योढ़ा आदि व्याजपर कर्जरूपमें देना) शुभ है ॥३३॥

शान्ति और पौष्टिक कर्मका मुहूर्त—

क्षिप्रध्रुवान्त्यचरमैत्रमघासु शस्तं
स्याच्छान्तिकं च सह मङ्गलपौष्टिकाभ्याम्।
खेऽर्के विधौ सुखगते तनुगे गुरौ नो
मौढ्यादिदुष्टसमये शुभदं निमित्ते ॥ ३४ ॥

अन्वयः—क्षिप्रध्रुवान्त्यचरमैत्रमघासु 'नक्षत्रेषु' अर्के 'लग्नात्' खे, विधौ सुखगते, गुरौ तनुगे 'सति' मङ्गल-पौष्टिकाभ्यां सह शान्तिकं 'सत्' स्यात्। मौढ्यादिदुष्टसमये 'तत् शान्तिकं' नो 'शुभदं' भवति। 'किन्तु' निमित्ते (केत्वाद्युत्पातदर्शने) 'तत् शान्तिकं शुभदं 'स्यात्' ॥ ३४ ॥

भाषार्थः—क्षिप्रसंज्ञक-ध्रुवसंज्ञक-रेवती-चरसंज्ञक-अनुराधा-मघा-इन १५

नक्षत्रोंमें लग्नसे १० वें स्थानमें सूर्य और ४ थे स्थानमें चन्द्रमा तथा लग्नमें गुरुके रहने पर मङ्गल (गणेशादि देवताकी पूजा) और पौष्टिक (ग्रहशान्ति आदि) के साथ शान्तिकर्म (दुष्ट फल देने वाले मूल-आश्लेषा-आदि जन्म नक्षत्रकी शान्ति) शुभ कहा गया है। यह शान्ति कर्म गुरु-शुक्रके अस्त-बाल्य-वृद्धमें नहीं करना चाहिये। परन्तु निमित्त (केतु आदि उत्पातोंका दर्शन होने) की शान्ति गुरु-शुक्रके अस्तादिमें भी करनी चाहिये। जैसे दीपिकामें कहा है--

"शान्तिकर्माणि कुर्वीत रोगे नमित्तिके तथा।
गुरु-भार्गव-मौढ्येऽपि दोषस्तत्र न विद्यते॥" इति॥ ३४॥

हवन करनेका मुहूर्त—

सूर्यभात् त्रित्रिभे चान्द्रे सूर्यविच्छुक्रपङ्गवः।
चन्द्रारेज्यागुशिखिनो नेष्टा होमाहुतिः खले॥ ३५॥

अन्वयः—सूर्यभात् त्रित्रिभे चान्द्रे (चन्द्रनक्षत्रे) 'सति क्रमेण' सूर्यविच्छुक्रपङ्गवः चन्द्रारेज्यागुशिखिनः 'होमाहुतिभागिनः, भवन्ति'। खले (पापग्रहभागे) होमाहुतिः इष्टा न 'भवति'॥ ३५॥

भाषार्थः—सूर्यके नक्षत्रसे तीन ३ नक्षत्रोंमें क्रमसे सूर्य, बुध, शुक्र, शनि, चन्द्रमा, मङ्गल, बृहस्पति, राहु और केतु होमकी आहुतिके भागी होते हैं। तात्पर्य यह है कि सूर्य जिस नक्षत्रमें रहता है उससे ३ नक्षत्रोंमें दी हुई आहुति सूर्यको मिलती है, उसके बाद ३ नक्षत्रोंमें बुधको, उसके बाद ३ में शुक्रको, फिर ३ में मङ्गलको, फिर ३ में गुरुको, फिर ३ में राहुको और उसके बाद ३ नक्षत्रोंमें केतुको मिलती है।

पापग्रह वाले नक्षत्रोंमें होमकी आहुति शुभ नहीं होती। इसलिये शुभग्रहोंके नक्षत्रोंमें ही हवन करना चाहिये॥ ३५॥

वि०—सूर्यके भागमें हवन करनेसे शुभका नाश, चन्द्रमाके भागमें खेतीका जलमग्न होना, मङ्गलके भागमें अग्नि-भय, बुधके भागमें बुद्धिकी वृद्धि, बृहस्पतिके भागमें मनोरथकी पूर्त्ति, शुक्रके भागमें लौकिक-पारलौकिक सम्पत्तिका लाभ, शनिके भागमें धनक्षय और राज्यभङ्ग, राहुके भागमें सब तरहकी हानि और केतुके भागमें दुर्भिक्ष मरण और राज्यभङ्ग फल श्रीकश्यपजीने कहा है। इस लिये पापग्रहोंके भाग में हवन नहीं करना चाहिये॥ ३५॥

स्पष्टार्थ होमाहुति चक्र, सूर्यके नक्षत्रसे—

नक्षत्र सं.	३	३	३	३	३	३	३	३	३
ग्रह	सू.	बु.	शु.	श.	चं.	मं.	बृ.	रा.	के.
हवनका फल	कुलका नाश	बुद्धिकी वृद्धि	सम्पत्तिप्राप्ति	धनक्षय राजभङ्ग	खेतीका डूबना	अग्निभय	मनोरथसिद्धि	हानि	दुर्भिक्ष, मरण. रा. भं.

हवनमें अग्निवासका विचार और उसका फल—

सैका तिथिर्वारयुता कृताप्ता शेषे गुणेऽभ्रे भुवि वह्निवासः ।
सौख्याय होमे शशियुग्मशेषे प्राणार्थनाशौ दिवि भूतले च ॥३६॥

अन्वयः—तिथिः सैका, वारयुता, कृताप्ता 'च कार्या'। गुणे अभ्रे 'च' शेषे 'सति' भुवि वह्निवासः होमे सौख्याय 'भवति'। शशि-युग्मशेषे 'क्रमेण' दिवि भूतले च 'वह्निवासः भवति, तत्र होमे' प्राणार्थनाशौ 'भवतः' ॥ ३६ ॥

भाषार्थः—तिथिमें एक जोड़कर उसमें दिनकी सङ्ख्या (रविवारसे लेकर अभीष्ट वारकी संख्या) जोड़े और योग फलमें ४ से भाग देवे। भाग देने पर यदि शेष तीन या शून्य हो तो अग्निका वास पृथ्वी पर होता है, उस दिन होम करनेसे सौख्यकी प्राप्ति होती है। यदि शेष १ और २ बचे तो क्रमसे स्वर्ग और पातालमें (१ शेष होने पर स्वर्ग में, २ शेष रहने पर पाताल में) अग्निका वास होता है। उसमें हवन करने पर प्राण और धन का नाश (१ शेषमें प्राणका नाश, २ शेषमें धनका नाश) होता है ॥ ३६ ॥

वि०। यहाँ तिथिकी सङ्ख्या शुक्लपक्षकी पड़िवासे गिननी चाहिये। कृष्ण पक्षकी तिथिमें १५ जोड़ने पर वास्तव तिथिकी सङ्ख्या होती है।

जैसे कार्तिक कृष्ण द्वितीया गुरुवारमें हवनके लिये अग्निवासके विचारमें कृष्ण पक्षकी तिथि सङ्ख्या २ में १५ जोड़ने पर शुक्ल पक्षसे वास्तव तिथिसंख्या १७ हुई उसमें १ जोड़ने पर १८ और वार गुरुकी सङ्ख्या ५ जोड़ने पर २३ हुआ। उसमें ४ से भाग दिया तो शेष ३ बचा, अतः अग्निका वास पृथ्वीपर सिद्ध हुआ। इसलिये उस दिन हवन करना शुभ होगा।

इस श्लोकमें तिथिवारके योगमें एक जोड़कर ४ से भाग देना कहा जाता है और १ शेषसे स्वर्गमें २ शेषसे पाताल में, तीन और शून्य शेषसे पृथ्वीपर अग्निका वास तीन ही स्थानमें

बताया गया है। जब कि अग्निकी स्थिति स्वर्ग-पाताल-पृथ्वी ३ ही स्थानमें होती है तो ४ का भाग क्यों दिया जाता तथा तिथिवारके योग में १ और क्यों जोड़ा जाता है ?

इसकी युक्ति यह है—अग्निकी शिखा (लपट) ऊर्ध्वमुखी होने से क्रमसे (पाताल, पृथिवी, अन्तरिक्ष (मेघ) और दिव्य (स्वर्ग) लोकमें अग्निका वास रहता है। जिसमें पृथ्वी और मेघका अन्तर्भाव एक ही भूर्लोकमें होता है। क्योंकि भूवायु के भीतर ही अन्तरिक्ष (मेघ आदि) माना गया है*। अग्निकी वास्तव स्थिति पाताल-पृथिवी-अन्तरिक्ष-स्वर्ग इस क्रमसे है। इसलिये तिथिवारके योगमें ४ से भाग देकर १ शेष से पातालमें, २ शेषसे पृथ्वीपर, ३ शेषसे अन्तरिक्षमें और ० शेषसे स्वर्गमें अग्निवास होना चाहिये। परन्तु स्वर्गलोकको सर्वश्रेष्ठ होनेके कारण स्वर्ग-पाताल-पृथ्वी-अन्तरिक्ष ऐसी गणना आचार्यने की। इसलिये तिथिवारके योगमें एक जोड़नेकी आवश्यकता हुई। अतः १ शेष से स्वर्गमें, २ शेषसे पातालमें, पृथ्वी और मेघके एक भूवायुमें होने से ३ और ० शेषसे पृथ्वी पर अग्निका वास माना गया ॥ ३६ ॥

नवान्न भक्षणका मुहूर्त—

नवान्नं स्याच्चरक्षिप्रमृदुभे सत्तनौ शुभम् ।
विना नन्दा-विषघटी-मधु-पौषाऽर्कि-भूमिजान् ॥ ३७ ॥

अन्वयः—चरक्षिप्रमृदुभे, सत्तनौ, नन्दा-विषघटी-मधु-पौषा-र्कि-भूमिजान् विना नवान्नं शुभं 'स्यात्' ॥ ३७ ॥

भाषार्थः—चरसंज्ञक-क्षिप्रसंज्ञक-मृदुसंज्ञक-नक्षत्रोंमें, शुभ लग्नमें नन्दा (१।६।११) तिथिको, विषघटी को (जो विवाह प्रकरणके ४७ वें श्लोकमें कही जायगी) चैत्र और पूस महीनोंको शनि और मङ्गल दिनोंको छोड़कर अन्य तिथि-मास-दिनोंमें नवान्न (नये अन्नका भोजन) शुभ होता है ॥ ३७ ॥

वि०। नये अन्न (अगहनी और चैती अन्न) पहले देवता और पितरोंको अर्पण करके (देवताओंको हवनके द्वारा और पितरोंको पार्वण पिण्डदान द्वारा अर्पण करके) खाये जाते हैं। जो मनुष्य श्राद्ध (पार्वण) का अधिकारी नहीं है (अर्थात् जिसका पिता जीवित है) वह केवल देवताके निमित्त हवन करके नवान्न भक्षण करे। क्योंकि लिखा है कि—

"अकृताग्रायणश्चैव धान्यजातं द्विजोत्तम ।
राजमाषानणूंश्चैव मसूरांश्च विवर्जयेत् ॥ तथा—
देवताभ्यो द्विजाग्र्याथ दत्वान्नं प्राशयेन्नवम् ।"

विना नवान्नकी विधि किये नया धान, बोड़ा, अकटा और मसूरी इत्यादि अन्न नहीं खाने चाहिये। पहले देवता और ब्राह्मणको नया अन्न देकर पीछे अपने खाय।

(*) "भूमेर्बहिर्द्वादश योजनानि भूवायुरत्राम्बुदविद्युदाद्यम्" भास्करः।
पृथ्वीके ऊपर १२ योजन (९६ मील तक) भूवायु है; उसीके अन्दर मेघ आदि हैं।

अब नवान्न-श्राद्धका विशेष काल कहते हैं—

"वृश्चिके पूर्वभागे तु नवान्नं शस्यते बुधैः ।
अपरे क्रियमाणं तु धनुष्येव कृतं भवेत् ॥
धनुषि यत् कृतं श्राद्धं मृगनेत्रासु रात्रिषु ।
पितरस्तन्न गृह्णन्ति नवान्नामिषकाङ्क्षिणः" ॥

अर्थः—अग्रहण मासमें जब सूर्य वृश्चिक राशिमें १५ अंशके भीतर हो उसीके अन्दर ऊपर मूल श्लोकमें कहे गये नक्षत्र-तिथिमें नवान्नका पार्वण शुभ होता है। जब सूर्य वृश्चिकमें १५ अंशसे अधिक होता है तो उसमें किया हुआ नवान्न पार्वण धनुराशि याने पूस मासका माना जाता है। पूस (धनु राशि) का किया गया श्राद्ध पितरोंकी तुष्टिके लिये नहीं होता अर्थात् उसे पितर स्वीकार नहीं करते इसलिये जब सूर्य वृश्चिकके पूर्वार्धमें रहे तभी नवान्न प्रशस्त है। वृश्चिकके पूर्वार्धमें भी जब तक सूर्य विशाखा नक्षत्रमें रहे तब तक नवान्न निषेध है। जैसे—

"सूर्ये चैव विशाखगे स्मर-तिथौ तारे त्रिजन्मान्विते
नन्दा-मन्द-महीज-काव्य-दिवसे पौषे मधौ कार्तिके ।
भेषूग्राहिशिवेषु विष्णुशयने कृष्णे शशिन्यष्टमे
श्राद्धं भोजनकं नवान्नविहितं पुत्रार्थनाशप्रदम्" ॥ इति ।

अर्थः—सूर्यके विशाखामें रहने पर, त्रयोदशी तिथिमें- तीनों आवृत्तिकी जन्म तारामें* नन्दा (१।६।११) तिथिमें, शनि-मङ्गल-शुक्र वारोंमें, पूस-चैत्र-कार्त्तिकमासोंमें, उग्रसंज्ञक-आश्लेषा-आर्द्रा नक्षत्रोंमें, विष्णुके शयन काल-(आषाढ़ शुक्ल ११ से कार्तिक शुक्ल ११ तक) में कृष्ण पक्षमें और जन्मराशिसे ८ वीं राशिमें चन्द्रमाके रहनेपर नवान्नका श्राद्ध और नवान्न, भक्षण अशुभ (पुत्र-धन-नाशक) कहा गया है।

नोट—उपर्युक्त समयके अनुसार जिस दिन पार्वण और हवन दोनोंका मुहूर्त्त बनता है उसी दिन नवान्न उत्तम समझें। ऐसा सूक्ष्म विचार विशेषकर आजकल मिथिलामें होता है। अन्य प्रान्तोंमें नवान्न-पार्वण कम देखा जाता है। जिस प्रान्तमें जैसी परम्परा हो वही करना चाहिये ॥ ३७ ॥

नौका (नाव) बनानेका मुहूर्त

याम्यत्रयविशाखेन्द्रसार्पपित्र्येशभिन्नभे ।
भृग्वीज्यार्कदिने नौकाघटनं सत्तनौ शुभम् ॥ ३८ ॥

अन्वयः—याम्यत्रयविशाखेन्द्रसार्पपित्र्येशभिन्नभे, भृग्वीज्यार्कदिने, सत्तनौ नौकाघटनं शुभं 'भवति' ॥ ३८ ॥

(*) ताराका ज्ञान गोचर प्रकरणके ११-१२ वें श्लोकमें कहेंगे।

भाषार्थः—भरणीसे ३ नक्षत्र (भ. कृ. रो.) विशाखा, ज्येष्ठा, आश्लेषा, मघा और आर्द्रा इन ८ नक्षत्रोंको छोड़कर अन्य १९ नक्षत्रोंमें शुक्र-गुरु-रवि-वारोंमें नौका (नाव, किश्ती) का बनाना शुभ होता है ॥ ३८ ॥

वि० । नयी नावको चलानेका मुहूर्त्त—

"शुभाहे विष्णुयुग्मेन्दुभगमैत्राश्विपाणिषु ।
चालनं घटनस्थानान्नावः शुभतिथीन्दुषु" ॥ दीपिकायाम् ।

अर्थः—शुभ (चं. बु. बृ. शु.) दिनोंमें, श्रवण-धनिष्ठा-मृगशिरा-पूर्वाफल्गुनी-अनुराधा-अश्विनी-हस्त-नक्षत्रोंमें, रिक्ता अमावसके अतिरिक्त अन्य शुभ तिथियोंमें और मालिककी जन्मराशि से ४-८-१२ वें को छोड़कर 'शुभ' चन्द्रमामें नयी नावका चलाना शुभ होता है ।

नौका पर यात्राका मुहूर्त्त—

"अश्विकरेज्यसुधानिधिपूर्वामित्रधनाच्युतभे शुभलग्ने ।
तारकयोगतिथीन्दुविशुद्धौ नौगमनं शुभदं शुभवारे" ॥ दीपिकायाम् ।

अर्थः—अश्विनी-हस्त-पुष्य-मृगशिरा-तीनों पूर्वा-अनुराधा-धनिष्ठा-श्रवण-नक्षत्रोंमें, शुभलग्नमें शुभवारमें और तारा-योग-तिथि-चन्द्रमाकी शुद्धि रहने पर नावकी यात्रा (अर्थात् नाव पर चढ़कर जाना) शुभ है ॥ ३८ ॥

वीरसाधन और अभिचार कर्मका मुहूर्त—

मूलार्द्राभरणीपित्र्यमृगे सौम्ये घटे तनौ ।
सुखे शुक्रेऽष्टमे शुद्धे सिद्धिर्वीराभिचारयोः ॥ ३९ ॥

अन्वयः—मूलार्द्राभरणीपित्र्यमृगे 'नक्षत्रे' सौम्ये (बुधे) घटे तनौ 'स्थिते' शुक्रे सुखे 'स्थिते' अष्टमे शुद्धे 'सति' वीराभिचारयोः सिद्धिः 'भवति' ॥ ३९ ॥

भाषार्थः—मूल-आर्द्रा-भरणी-मघा-मृगशिरा-नक्षत्रोंमें, कुम्भलग्नमें बुधके रहने पर, शुक्र लग्नसे चतुर्थ स्थानमें हो और लग्नसे ८ वां स्थान शुद्ध (ग्रहसे रहित) हो तो वीर साधन (वेताल आदिकी सिद्धि) और अभिचार (दूसरेको कष्ट देना अर्थात् मन्त्र-यन्त्रादिके द्वारा मारण-उच्चाटन आदि रूप हिंसा) कर्मकी सिद्धि होती है ॥ ३९ ॥

रोगसे मुक्त मनुष्यके स्नान करनेका मुहूर्त—

व्यन्त्यादितिध्रुवमघाऽनिलसार्पधिष्ण्ये
रिक्ते तिथौ चरतनौ विकवीन्दुवारे ।
स्नानं रुजा विरहितस्य जनस्य शस्तं
हीने विधौ खलखगैर्भवकेन्द्रकोणे ॥ ४० ॥

अन्वयः—व्याख्यादितिध्रुवमघाऽनिलसार्पधिष्ण्ये, रिक्ते तिथौ, चरतनौ, विकवीन्दुवारे, विधौ हीने, खलखगैः भवकेन्द्रकोणे 'स्थितैः' रुजा विरहितस्य जनस्य स्नानं शस्तं 'भवति' ॥ ४० ॥

भाषार्थः—रेवती, पुनर्वसु, ध्रुवसंज्ञक, मघा, स्वाती, आश्लेषा इन ९ नक्षत्रोंको छोड़कर अन्य १८ नक्षत्रोंमें, रिक्ता (४।९।१४) तिथिमें, चर (मे. क. तु.) लग्नमें शुक्र-सोमको छोड़ अन्य वारों-(र. मं. बु. बृ. श.) में चन्द्रमाके हीन (दुष्ट स्थानमें) रहने पर और लग्नसे ११ वें केन्द्र (१।४।७।१०) कोण (९।५) स्थानमें पापग्रहोंके रहने पर रोगसे विमुक्त मनुष्यका स्नान करना शुभ होता है ॥ ४० ॥

नोट—चन्द्रमाके दुष्ट स्थान गोचर प्रकरणके ७ वें श्लोकमें देखिये ॥ ४० ॥

शिल्प विद्या सीखनेका मुहूर्त—

मृदु-ध्रुव-क्षिप्र-चरे ज्ञे गुरौ वा खलग्नगे ।
विधौ ज्ञजीववर्गस्थे शिल्पविद्या प्रशस्यते ॥ ४१ ॥

अन्वयः—मृदु-ध्रुव-क्षिप्र-चरे 'नक्षत्रे' ज्ञे वा गुरौ खलग्नगे, विधौ ज्ञ-जीववर्गस्थे 'सति' शिल्पविद्या प्रशस्यते ॥ ४१ ॥

भाषार्थः—मृदुसंज्ञक–ध्रुवसंज्ञक–क्षिप्रसंज्ञक–चरसंज्ञक–नक्षत्रोंमें, बुध अथवा बृहस्पति लग्न या १० वें स्थानमें हो और चन्द्रमा बुध या बृहस्पतिके वर्ग–(षड्–वर्ग *) में रहे तो शिल्पविद्या (चित्रकारी-नकशा-ड्राइङ्ग) प्रारम्भ करना शुभ होता है ॥ ४१ ॥

सन्धान-(सन्धि-) कर्मका मुहूर्त—

सुरेज्यमित्रभाग्येषु चाष्टम्यां तैतिले हरौ ।
शुक्रदृष्ट-तनौ सौम्यवारे सन्धानमिष्यते ॥ ४२ ॥

अन्वयः—सुरेज्यमित्रभाग्येषु 'नक्षत्रेषु' अष्टम्यां च (अथवा) हरौ (द्वादश्यां) 'तिथौ' वा तैतिले 'करणे', शुक्रदृष्ट-तनौ, सौम्यवारे सन्धानं इष्यते ॥ ४२ ॥

भाषार्थः—पुष्य-अनुराधा-पूर्वा फल्गुनी-नक्षत्रोंमें अष्टमी या द्वादशी तिथि, या तैतिल करणमें, लग्नको शुक्र देखता हो, और शुभग्रहके दिनोंमें सन्धान (परस्पर मैत्री और सन्धि) कर्म शुभ होता है ॥ ४२ ॥

वि० । अष्टमी तिथिमें तैतिल करण कभी भी नहीं होता । कृष्ण पक्षकी द्वादशीके उत्त-

---

(*) वर्ग जानने के लिये पीछे ३० वें श्लोकका विशेष देखिये ।

ार्धमें तैतिल करण होता है, शुक्लपक्षमें नहीं । इसलिये अष्टमी या द्वादशी तिथि अथवा तैतिल करणमें सन्धिकर्म शुभ है' ऐसा अर्थ युक्ति-सिद्ध है । जो कोई 'अष्टमी और द्वादशी तिथिमें तथा तैतिल करण में, ऐसा अर्थ करते हैं वह अशुद्ध अर्थ है ॥ ४२ ॥

दिव्य परीक्षाका मुहूर्त—

त्यक्त्वाऽष्टभूतशनिविष्टिकुजान् जनुर्भ-
मासौ मृतौ रविविधू अपि भानि नाड्याः ।
द्व्यङ्गे चरे तनुलवे शशिजीवतारा-
शुद्धौ करादितिहरीन्द्रकपे परीक्षा ॥ ४३ ॥

अन्वयः—अष्टभूतशनिविष्टिकुजान् , जनुर्भमासौ, रविविधू मृतौ 'तथा' नाड्याः भानि अपि त्यक्त्वा द्व्यङ्गे चरे तनुलवे 'सति' शशिजीवताराशुद्धौ, करादितिहरीन्द्रकपे 'नक्षत्रे' परीक्षा 'कर्तव्या' ॥ ४३ ॥

भाषार्थः—अष्टमी–चतुर्दशी तिथि, शनि–मङ्गल वार, भद्रा, जन्मका नक्षत्र, जन्ममास, लग्नसे ८ वें स्थानमें सूर्य और चन्द्रमाको तथा उस मनुष्यकी नाड़ीके नक्षत्रोंको छोड़कर, द्विस्वभाव (मि. कं. ध. मी.) या चर (मे. क. तु. म.) राशिके लग्न और उसके नवांशमें, चन्द्रमा, तारा और गुरुकी शुद्धि रहनेपर, हस्त, पुनर्वसु, श्रवण, ज्येष्ठा, शतभिषा, इन नक्षत्रोंमें परीक्षा (पाप करने और चोरी करनेके सन्देहमें उस मनुष्यकी जांचके लिये आगमें धिकी हुई धातु वगैरहसे परीक्षाकी क्रिया,) शुभ होती है ॥ ४३ ॥

वि०—पूर्व समयमें चोरी और किसी पापकर्ममें जिस व्यक्तिके ऊपर सन्देह होता था उस व्यक्तिकी परीक्षाकी जाती थी । मूल श्लोकमें कहे हुये समयमें विधिवत् किसी धातुको आगमें तपाकर सन्देह वाले मनुष्यकी जाँच होती थी । यदि वह व्यक्ति दोषी रहता हो जलता था, निर्दोष मनुष्यका लोम भी भग्न नहीं होता था । आज कल इस तरहकी परीक्षा एक दम नहीं होती ॥ ४३ ॥

मूल श्लोकमें नाड़ी नक्षत्रकी चर्चा की गयी है । जिसका विवरण दीपिकाकारने लिखा है—

जन्मर्क्षमाद्यं, दशमं च कर्म, साङ्घातिकं षोडशभं च, मानसम् ।
स्यात् पञ्चविंशं, समुदायमष्टादशं त्रयोविंशतिभं विनाशम् ॥
एवं षड्भो जनः सर्वः, जाति–देशा–ऽभिषेकभैः ।
नवभो भूपतिर्ज्ञेयो नाडीताराः स्मृता अमूः ॥ इति ।

अर्थः—सर्व साधारण मनुष्यके लिये–पहला नक्षत्र जन्म, १० वां कर्म, १६ वाँ साङ्घातिक, २५ वाँ मानस, १८ वाँ समुदाय और २३ वाँ विनाश ये ६ नाड़ी नक्षत्र हैं ।

राजा लोगोंके लिये पूर्वोक्त ६ नक्षत्र, तथा जातिका नक्षत्र, देशका नक्षत्र और उनके अभिषेकका नक्षत्र—ये ९ नक्षत्र नाड़ीनक्षत्र हैं ।

देशका नक्षत्र देशके नामसे अवकहड़ा चक्रसे विचारिये । अभिषेक नक्षत्र वह है जिसमें राज्याभिषेक हुआ हो । जातिके नक्षत्र ये हैं—

पूर्वात्रयं सानलमग्रजानां राज्ञां च पुष्येण सहोत्तरा च ।
सपौष्णमैत्रं पितृदैवतं च प्रजापतेर्भं च कृषीवलानाम् ॥
आदित्यहस्ताभिजिदश्विभानि वणिग्जनस्वाम्यमुपागतानि ।
मूलत्रिनेत्रानिलवारुणानि भान्युग्रजातेः प्रभविष्णुतायाः ॥
सौम्येन्द्रचित्रावसुदैवतानि सेवाजनस्वाम्यमुपागतानि ।
सार्पं विशाखाश्रवणाभरण्यश्चाण्डालजातेरभिनिर्दिशन्ति ॥

ब्राह्मणके नक्षत्र—तीनों पूर्वा, कृत्तिका, ४ ।
क्षत्रीके नक्षत्र—तीनों उत्तरा, पुष्य, ४ ।
किसानोंके नक्षत्र—रे. अनु. म. रो. ४ ।
वैश्योंके नक्षत्र—पुन. ह. अभि. अ. ४ ।
उग्रजातिके नक्षत्र—मू. आर्द्रा. स्वा. श. ४ ।
शूद्रोंके नक्षत्र—मृ. ज्ये. चि. ध. ४ ।
चाण्डालके नक्षत्र—श्ले. वि. श्र. भ. ४ । इति ॥ ४३ ॥

प्रत्येक शुभकार्योंमें सामान्य लग्नशुद्धि—

व्ययाष्टशुद्धोपचये लग्नगे शुभदृग्युते ।
चन्द्रे त्रिषड्दशायस्थे सर्वारम्भः प्रसिद्ध्यति ॥ ४४ ॥

अन्वयः—'कर्तृपुरुषस्य जन्मलग्नाद् वा जन्मराशेः सकाशात्' व्ययाष्टशुद्धोपचये लग्नगे शुभदृग्युते, चन्द्रे त्रिषड्दशायस्थे 'सति' सर्वारम्भः प्रसिद्ध्यति ॥ ४४ ॥

भाषार्थः—कार्य करनेवाले मनुष्यके जन्मलग्नसे या जन्मराशिसे उपचय (३।६।१०।११) राशिमें लग्न हो तथा लग्नसे १२ और ८ वाँ स्थान शुद्ध (ग्रहसे रहित) हो, लग्न पर शुभग्रहकी दृष्टि या योग हो और चन्द्रमा लग्नसे ३।६।१०।११ वें स्थानमें हो, तो ऐसे योगमें सभी शुभ कार्योंका आरम्भ करना शुभ होता है ॥ ४४ ॥

नक्षत्र भेदसे रोगारम्भ होनेका फल—

स्वातीन्द्र-पूर्वा-शिव-सार्प-भे मृतिर्ज्वरेऽन्त्यमैत्रे स्थिरता भवेद्रुजः ।
याम्यश्रवोवारुणतक्षभे शिवा घस्त्रः हि पक्षो द्व्यधिपार्कवासवे॥४५॥

मूलाग्निदास्रे नव पित्र्यभे नखा बुध्न्यार्यमेज्यादितिधातृभे नगाः।
मासोऽब्जवैश्वेऽथ यमाहिमूलभे मिश्रेशपित्र्ये फणिदंशने मृतिः ४६

अन्वयः—स्वातीन्द्र-पूर्वा-शिव-सार्पभे ज्वरे 'सति' मृतिर्भवेत्। अन्त्यमैत्रे 'नक्षत्रे, ज्वरे सति' रुजः स्थिरता भवेत्। याम्यश्रवोवारुणतक्षभे 'ज्वरे सति' शिवाः घस्राः, 'रुजः स्थितिः भवेत्'। द्व्यधिपार्कवासवे 'ज्वरे सति' पक्षः हि 'रुजः स्थितिः स्यात्'। मूलाग्निदास्रे 'ज्वरे सति' नव घस्राः 'रुजः स्थितिः भवेत्'। पित्र्यभे 'ज्वरे सति' नखाः घस्राः 'रुजः स्थितिः स्यात्'। बुध्न्यार्यमेज्यादितिधातृभे 'ज्वरे सति' नगाः घस्राः 'रुजः स्थितिः स्यात्। अब्जवैश्वे 'ज्वरे सति' मासः (मासपर्यन्तम्) 'रुजः स्थितिः स्यात्'। अथ यमाहिमूलभे मिश्रेशपित्र्ये 'नक्षत्रे' फणिदंशने 'सति' मृतिः 'भवति' ॥ ४५-४६ ॥

भाषार्थः—स्वाती, ज्येष्ठा, तीनों पूर्वा, आर्द्रा और आश्लेषा इन ७ नक्षत्रोंमें जिसको ज्वर हो उसकी मृत्यु होती है। रेवती-अनुराधा इन नक्षत्रोंमें ज्वर होनेसे रोगकी स्थिरता होती है, अर्थात् वह रोग अधिक दिनों तक रहता है। भरणी-श्रवण-शतभिषा-चित्रा इन ४ नक्षत्रोंमें ज्वर होनेसे ११ दिनों तक रोग रहता है। विशाखा-हस्त-धनिष्ठा-इन ३ नक्षत्रोंमें १५ दिनों तक रोग रहता है। मूल-कृत्तिका-अश्विनी-इन ३ नक्षत्रोंमें ९ दिनों तक, मघामें २० दिनों तक, उत्तरभाद्र-उत्तराफल्गुनी-पुष्य-पुनर्वसु-रोहिणी-इन ५ नक्षत्रोंमें ७ दिनों तक और मृगशिरा-उत्तराषाढ़ इन दो नक्षत्रोंमें ज्वर हो तो १ मास तक रोग रहता है।

भरणी-आश्लेषा-मूल-मिश्रसंज्ञक-आर्द्रा-मघा-इन ७ नक्षत्रोंमें यदि साँप काटे तो उस मनुष्यकी मृत्यु होती है ॥ ४५-४६ ॥

वि०—रोगके आरम्भ होने पर जिस नक्षत्रमें रोग हुआ हो उस नक्षत्रेशकी मूर्त्ति सोनेकी बनाकर उस नक्षत्रेशके मन्त्रसे विधिपूर्वक पूजन करके उस मूर्त्तिको दान कर देनेसे शीघ्र रोगकी शान्ति होती है। जैसे वसिष्ठजीने कहा हैं—

"ऋक्षेशरूपं कनकेन कृत्वा तल्लिङ्गमन्त्रैश्च सुगन्धपुष्पैः।
वस्त्राक्षतैर्गुग्गुलुधूपदीपैर्नैवेद्यताम्बूलफलैश्च सम्यक्॥
पूजां च कृत्वाऽऽमयनाशनाय द्विजाय दद्यादतुलं शिवाय।

एवं जिन नक्षत्रोंमें सांपके काटनेसे मृत्यु कही गयी है उनमें जब उस मनुष्यका चन्द्र-बल (गोचर प्रकरणोक्त) नहीं रहता तभी उसकी मृत्यु होती है। चन्द्र बल रहने पर मृत्यु नहीं होती। जैसे—

"यद्यत्र चन्द्रस्तस्यैव गोचरे चाशुभप्रदः।
तदा नूनं भवेन्मृत्युः सुधासंसिक्तदेहिनः" ॥ इति। ४५-४६ ॥

नोट—यहांका स्पष्ट चक्र इस प्रकरणके अन्तसे देखें ॥ ४५-४६ ॥

रोगके आरम्भमें शीघ्र ही मरनेका योग—

रौद्राहिशाक्राम्बुपयाम्यपूर्वाद्विदैववस्वग्निषु पापवारे ।
रिक्ताहरिस्कन्ददिने च रोगे शीघ्रं भवेद्रोगिजनस्य मृत्युः ॥४७॥

अन्वयः—रौद्राहिशाक्राम्बुपयाम्यपूर्वाद्विदैववस्वग्निषु 'नक्षत्रेषु' पापवारे, रिक्ता-हरिस्कन्ददिने च, रोगे 'सति' रोगिजनस्य शीघ्रमेव मृत्युः भवेत् ॥ ४७ ॥

भाषार्थः—आर्द्रा-आश्लेषा-ज्येष्ठा-शतभिषा-भरणी-तीनोपूर्वा-विशाखा-धनिष्ठा-कृत्तिका-इन ११ नक्षत्रोंमें, पाप (र.मं.श.) वारोंमें और ४।९।१४।१२।६ इन तिथियोंमें (अर्थात् कहे गये नक्षत्र-वार-तिथि तीनोंके योगमें) यदि रोग का आरम्भ हो तो उस रोगीकी शीघ्र ही मृत्यु होती है ॥ ४७ ॥

विशेषः—ऐसे योग में शान्तिके लिये केवल महामृत्युञ्जयका आराधन और तुला दान करना आवश्यक है ॥ ४७ ॥

प्रेतक्रिया और पञ्चकमें त्याज्य कर्म—

क्षिप्राहिमूलेन्दुहरीशवायुभे प्रेतक्रिया स्याज्झषकुम्भगे विधौ ।
प्रेतस्य दाहं यमदिग्गमं त्यजेच्छय्यावितानं गृहगोपनादि च ॥४८॥

अन्वयः—क्षिप्राहिमूलेन्दुहरीशवायुभे प्रेतक्रिया 'शुभा' स्यात् । 'अथ' विधौ (चन्द्रे) झषकुम्भगे 'सति' प्रेतस्य दाहं, यमदिग्गमं, शय्यावितानं, गृहगोपनादि च त्यजेत् ॥ ४८ ॥

भाषार्थः—क्षिप्रसंज्ञक-आश्लेषा-मूल-मृगशिरा-श्रवण-आर्द्रा-स्वाती-इन ९ नक्षत्रों में प्रेत (मरे हुये मनुष्य) की क्रिया (उत्तम गति पानेके लिये श्राद्ध आदि क्रिया) शुभ होती है ॥ ४८ ॥

जब चन्द्रमा कुम्भ और मीनमें अर्थात् धनिष्ठा नक्षत्रके उत्तरार्धसे रेवती नक्षत्र तक रहे तब तक प्रेत (मुर्दा) का दाह, दक्षिण दिशाकी यात्रा, शय्या (खाट चटाई वगैरह) का बीनना और गृहका छाना-बाँधना इन कार्योंका त्याग करे ॥४८॥

विशेषः—इस श्लोकमें प्रेतक्रियाका मुहूर्त्त बताया गया है। वेद-धर्मशास्त्रोंमें मरनेके बाद उसके वर्णाश्रमके अनुसार श्राद्ध आदिकी व्यवस्था की गयी है। उसके अनुसार जिसकी क्रिया नहीं होती उस प्रेतकी गति नहीं होती और उसका परिवार पतित समझा जाता है। यदि किसी कारण वश (अर्थात् यदि दूर देशमें मरा हो, उसके परिवारको उसकी स्थिति ज्ञात नहीं हो तो) समयानुसार उस प्रेतका दाह और श्राद्धादि न हुआ हो तो उक्त श्लोकके मुहूर्त्त में उसकी क्रिया करनी चाहिये।

कुम्भ और मीन राशि-(धनिष्ठाके ३ रे चरणसे रेवती तक) में चन्द्रमाके रहने पर यदि किसीकी मृत्यु हो तो उसका दाह जब तक चन्द्रमा अश्विनीमें न जाय तब तक नहीं करना चाहिये, ऐसा श्लोकका अर्थ निकलता है। परन्तु यह पञ्चक (धनिष्ठासे रेवती तक) ५ दिन तक रहता है, यदि पञ्चक आदिमें किसीका मरण हो तो ५ दिन तक शवका रखना कठिन हो जाता है। इसलिये ऐसी स्थितिमें पञ्चकमें भी दाह करना चाहिये; परन्तु उसकी शान्ति करना आवश्यक है। शान्तिकी विधि अन्त्येष्टिपद्धतिमें लिखी है। यहां विस्तारके भयसे नहीं लिखी जाती।

इस पञ्चकमें जलावन की लकड़ी आदिका सङ्ग्रह, दक्षिण दिशाकी यात्रा, शय्या-चारपाईकी बिनाई और घरका बान्धना छाना इत्यादि भी वराने चाहिये। जैसे वसिष्ठ-नारद-श्रीपति-त्रिविक्रम-आचार्योंने एकार्थक वाक्य लिखा है—

"वासवोत्तरदलादिपञ्चके याम्यदिग्गमनगेहगोपनम्।
प्रेतदाह-तृणकाष्ठसङ्ग्रहं शय्यकावितननं च वर्जयेत्"॥ ४८॥

जलावनके लिये लकड़ी आदि रखनेका मुहूर्त्त—

सूर्यर्क्षाद्रसभैरधःस्थलगतैः पाको रसैः संयुतः
शीर्षे युग्ममितैः शवस्य दहनं मध्ये युगैः सर्पभीः
प्रागाशादिषु वेदभैः स्वसुहृदां स्यात्सङ्गमो रोगभीः
क्राथादेः करणं सुखं च गदितं काष्ठादि-संस्थापने॥ ४९॥

अन्वयः—सूर्यर्क्षात् रसभैः 'मञ्चानचक्रे' अधःस्थलगतैः काष्ठादिसंस्थापने 'कृते सति' रसैः संयुतः पाकः 'स्यात्'। शीर्ष युग्ममिते 'नक्षत्रे' शवस्य दहनं 'स्यात्'। मध्ये युगैः 'नक्षत्रैः' सर्पभीः 'स्यात्'। प्रागाशादिषु वेदभैः 'क्रमेण' स्वसुहृदां सङ्गमः, रोगभीः, क्राथादेः करणं सुखं च गदितम्॥ ४९॥

भाषार्थः—जलावनके वास्ते लकड़ी आदिके रखनेके लिये सूर्यके नक्षत्रसे मुहूर्त्तका विचार इस तरह करे कि-सूर्यके नक्षत्रसे ६ नक्षत्र मञ्चान चक्रके नीचे कल्पना करे, उन नक्षत्रोंमें लकड़ी आदिकी स्थापना करनेसे उस जलावनसे सुन्दर स्वादिष्ट पाक बनता है। उसके बाद २ नक्षत्र मञ्चानके शिर पर कल्पना करे, उनमें लकड़ी वगैरह रखनेसे उस लकड़ीसे मुर्दा जलाया जाय। उसके बाद ४ नक्षत्र मञ्चानके बीचमें कल्पना करे, उनमें सर्पका भय हो। उसके बाद चारों दिशाओंमें चार चार नक्षत्र कल्पना करे—जिनमें पूर्व वाले ४ नक्षत्रोंमें मित्रोंका आगमन, दक्षिणके ४ नक्षत्रोंमें रोग भय, पश्चिमके ४ नक्षत्रोंमें काढ़ा आदि किये जायें और उत्तरके ४ नक्षत्रोंमें सुखप्राप्ति ये फल हैं।

इस श्लोकका सारांश यह है कि सूर्य जिस नक्षत्रमें हो उससे आगेके ६ नक्षत्र मध्यके ४ नक्षत्र और पीछेके ४ नक्षत्र जलावनके रखनेमें शुभ हैं। प्रत्येक नक्षत्रोंके फल कोष्ठकमें देखिये ॥ ४९ ॥

सूर्यके नक्षत्रसे काष्ठस्थापन चक्र—

नक्षत्र	६ अधः	२ शीर्षे	४ मध्ये	४ पूर्वे	४ याम्ये	४ पश्चिमे	४ उत्तरे
फल	स्वादिष्टपाक शुभ	शवदाह अशुभ	सर्पभय अशुभ	मित्रसङ्गम शुभ	रोगभय अशुभ	बाध अशुभ	सुख शुभ

त्रिपुष्कर और द्विपुष्कर योग—

भद्रा-तिथि रविजभूतनयार्कवारे द्वीशार्यमाजचरणादितिवह्निवैश्वे ।
त्रैपुष्करो भवति मृत्युविनाशवृद्धौ त्रैगुण्यदो द्विगुणकृद्वसुतक्षचान्द्रे ५०

अन्वयः—रविजभूतनयार्कवारे द्वीशार्यमाजचरणा दितिवह्निवैश्वे 'नक्षत्रे' भद्रा तिथिः 'यदि भवेत् तदा' त्रैपुष्करो नाम योगः भवति। 'असौ त्रैपुष्करः' मृत्युविनाशवृद्धौ त्रैगुण्यदो भवति । 'एवं वसुतक्षचान्द्रे 'नक्षत्रे' रविजभूतनयार्कवारे, यदि भद्रा तिथिः स्यात् तदा मृत्युविनाशवृद्धौ द्विगुणकृत् 'द्विपुष्करो' योगो भवति ॥५०॥

भाषार्थः—शनिवार, मङ्गलवार और रविवारमें, विशाखा, उत्तरा फल्गुनी, पूर्वभाद्र, पुनर्वसु, कृत्तिका और उत्तराषाढ़ नक्षत्र तथा भद्रा (२।७।१२) तिथि यदि हों तो तीनों (तिथि-वार-नक्षत्रों) के योगसे 'त्रिपुष्कर' नामका योग होता है। यह त्रिपुष्कर योग मृत्यु, विनाश और वृद्धिमें त्रिगुण फल देता है। अर्थात् इस योगमें एकके मरनेसे उसके यहाँ ३ की मृत्यु होवे। कोई वस्तु नष्ट होवे तो ३ वस्तुयें नष्ट हो जावें और किसी वस्तुका लाभ हो तो ३ वस्तुयें लाभ होवें।

इसी तरह धनिष्ठा-चित्रा-मृगशिरा-नक्षत्रोंमें, शनि-मङ्गल रविदिन और भद्रा तिथि (२।७।१२) के होनेसे द्विपुष्कर योग होता है, जो मृत्यु, विनाश और वृद्धिमें दूना फल करता है॥ ५० ॥

विशेषः—ये त्रिपुष्कर और द्विपुष्कर योग कहे गये तिथि-नक्षत्र-वार तीनोंके योगसे होते हैं। केवल नक्षत्रसे नहीं। इनमें अशुभफल-(मरने और नष्ट होने) की शान्तिके लिये त्रिपुष्करमें तीन और द्विपुष्करमें दो गौवें अथवा उनके मूल्य दान करना आवश्यक है। जैसे नारदजीने कहा है—

"दद्यात्तद्दोषनाशाय गोत्रयं मूल्यमेव वा
द्विपुष्करे द्वयं दद्यान्न दोषस्त्वृक्षमात्रतः" इति ॥ ५० ॥

पुतला दाहमें निषिद्ध समय—

शुक्रारार्किषु दर्शभूतमदने नन्दासु तीक्ष्णोग्रभे
पौष्णे वारुणभे त्रिपुष्करदिने न्यूनाधिमासेऽयने ।
याम्येऽब्दात्परतश्च पातपरिघे देवेज्यशुक्रास्तके
भद्रा-वैधृतयोः शवप्रतिकृतेर्दाहो न पक्षे सिते ॥ ५१ ॥

अन्वयः—शुक्रारार्किषु 'वारेषु' दर्शभूतमदने नन्दासु 'तिथिषु' तीक्ष्णोग्रभे पौष्णे वारुणभे 'नक्षत्रे' त्रिपुष्करदिने न्यूनाधिमासे, अब्दात् परतः याम्ये अयने च पातपरिघे 'योगे' देवेज्य-शुक्रास्तके, भद्रा-वैधृतयोः, सिते पक्षे 'च' शवप्रतिकृतेः दाहः न 'कार्यः' ॥ ५१ ॥

भाषार्थः—शुक्र-मङ्गल-शनि-दिनोंमें, अमावास्या-चतुर्दशी-त्रयोदशी-नन्दा (१।६।११) तिथियोंमें, तीक्ष्णसंज्ञक-उग्रसंज्ञक-रेवती-शतभिषा-नक्षत्रोंमें त्रिपुष्कर योगमें, क्षयमास और अधिमासमें,* एक वर्षके बाद दक्षिणायनमें भी, व्यतीपात और परिघ योगमें, बृहस्पति और शुक्रके अस्त कालमें, भद्रा और वैधृति योगमें तथा शुक्ल पक्षमें शवकी प्रतिकृति (पुतला) का दाह नहीं करना चाहिये ॥ ५१ ॥

वि०—मरनेके बाद दाह दो प्रकारके होते हैं। एक प्रत्यक्ष शरीरका, दूसरा प्रत्यक्ष शरीरके अभावमें (अर्थात् मरे हुए शरीरका पता नहीं लगने पर) कुश-काश-पलास आदिसे बनी हुई उसके शरीरकी प्रतिकृतिका। प्रत्यक्षशरीरके दाहमें समय (मुहूर्त्त) का विचार नहीं होता क्योंकि लिखा है कि—

"प्रत्यक्षशवसंस्कारे दिनं नैव विशोधयेत्" ॥ इति ॥

प्रतिकृति (पुत्तल) दाहमें तीन भेद हैं। पहला अशौचके भीतर। दूसरा अशौचके बाद एक वर्षके भीतर। तीसरा एक वर्षके बाद। यदि अशौचके भीतर ही पुत्तल दाह करना हो तो वहां यथासम्भव मुहूर्त्तका विचार करे; अर्थात् वहां सभी बातोंकी शुद्धि आवश्यक नहीं होती। अशौचके बाद वर्षके भीतर और वर्षके अनन्तर भी पुत्तल-दाहमें समय शुद्धि पूर्ण रूपसे अपेक्षित हैं।

नोट—पुत्तल बनानेका प्रकार और उसके दाहकी विधि अन्त्येष्टि आदि पद्धतिमें लिखी है।५१

पुत्तलदाह करने वालेके लिये शुभाशुभ समय—

जन्मप्रत्यरितारयोर्मृतिसुखान्त्येऽब्जे च कर्तुर्न सन्
मध्यो मैत्रभगादितिध्रुवविशाखाश्व्यङ्घ्रिभे ज्ञेऽपि च ।

---

* क्षयमास और अधिमासका लक्षण सङ्क्रान्तिप्रकरणके २० वें श्लोकमें देखिये ।

श्रेष्ठोऽर्केज्यविधोर्दिने श्रुतिकरस्वात्यश्विपुष्ये तथा
त्वाशौचात्परतो विचार्यमखिलं मध्ये यथासम्भवम् ॥ ५२ ॥

अन्वयः—कर्त्तुः जन्मप्रत्यरितारयोः, अब्जे मृतिसुखान्त्ये 'सति' 'शवप्रतिकृतिदाहः' सन् न 'भवति'। मैत्रभगादितिध्रुवविशाखाव्यहिध्रिभे अपि च ज्ञे 'वारे' 'शवप्रतिकृतिदाहः' मध्यः 'भवति'। तथा अर्केज्यविधोः दिने, श्रुतिकरस्वात्यश्विपुष्ये 'नक्षत्रे' 'शवप्रतिकृतिदाहः' श्रेष्ठः 'भवति'। 'इदं' अखिलं तु आशौचात् परतः विचार्यम्। मध्ये (अशौचमध्ये) यथासम्भवं 'कर्त्तव्यम्' ॥ ५२ ॥

भाषार्थः—प्रेतकी क्रिया करने वाले (कर्त्ता) की जन्म और पाँचवी तारामें और कर्त्ताकी जन्मराशिसे चन्द्रमाके ४।८।१२ स्थानमें रहने पर पुतला का दाह करना कर्त्ताके लिये शुभ नहीं होता।

अनुराधा-पूर्वाफल्गुनी-पुनर्वसु-ध्रुवसंज्ञक-विशाखा-मृगशिरा-चित्रा-धनिष्ठा-नक्षत्रोंमें और बुधवारमें 'पुतलादाह' मध्यम होता है।

रवि-बृहस्पति-चन्द्र-दिनोंमें और श्रवण-हस्त-स्वाती-अश्विनी-पुष्य-नक्षत्रोंमें 'पुतला दाह' उत्तम होता है।

इस पुतलादाहके विषयमें जो समयकी शुद्धि बतायी गई है ये सब (५१-५२ श्लोकोक्त) अशौचके बाद विचारने चाहिये। अशौचके भीतर यदि 'पुतलादाह' करना हो तो उसमें जैसा सम्भव (निर्वाह) हो वैसा ही करना चाहिये, क्योंकि अशौचके अन्दर समय शुद्धि आवश्यक नहीं होती ॥ ५२ ॥

वि०—यदि परोक्षमें मरनेवालेका ठीक पता अशौचके अन्दर ही मिल जाय कि वह मनुष्य अमुक दिनमें मरा और उसका शव उपलब्ध नहीं हो तो अशौचके अन्दर ही उसका पुतला दाह करना चाहिये। ऐसी अवस्थामें उसके लिये मुहूर्त देखना आवश्यक नहीं है।

अशौचका प्रमाण इस प्रकार है—

"शुद्ध्येद् विप्रो दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः।
वैश्यः पञ्चदशाहेन, शूद्रो मासेन शुद्ध्यति" इति ॥

अर्थ—मरनेके दिनसे १० दिनों तक ब्राह्मण, १२ दिनों तक क्षत्रिय, १६ दिनों तक वैश्य और ३० दिनों तक शूद्र अशौच-भागी होते हैं। उसके बाद वे शुद्ध होते हैं ॥ ५२ ॥

आर्षमतसे अभुक्त-मूलका प्रमाण—

अभुक्तमूलं घटिकाचतुष्टयं ज्येष्ठान्त्यमूलादिभवं हि नारदः।
वसिष्ठ एकद्विघटीमितं जगौ बृहस्पतिस्त्वेकघटीप्रमाणकम् ॥५३॥

अन्वयः—ज्येष्ठान्त्यमूलादिभवं घटिकाचतुष्टयं हि (निश्चयेन) अभुक्तमूलं

नारदः 'जगौ'। 'ज्येष्ठान्त्यमूलादिभवं' एक द्वि घटीमितं 'अभुक्तमूलं' वसिष्ठः जगौ। बृहस्पतिस्तु 'ज्येष्ठान्त्यमूलादिभवं' एकघटीप्रमाणकं 'अभुक्तमूलं' जगौ ॥ ५३ ॥

भाषार्थः—श्रीनारदजी ज्येष्ठा नक्षत्रके अन्त्यकी ४ घड़ी और मूलके आदिकी ४ घड़ी (दोनों मिलाकर ८ घड़ी) को अभुक्तमूल कहे हैं। वसिष्ठजीने ज्येष्ठाके अन्त्यकी १ घड़ी और मूलके आदिकी २ घड़ी (मिलाकर ३ घड़ी) को अभुक्तमूल कहा है। परन्तु बृहस्पतिने ज्येष्ठाके अन्त्यकी आधी घड़ी और मूलके आदिकी आधी घड़ी (मिलाकर १ घड़ी) को अभुक्तमूल कहा है ॥ ५३ ॥

वि०—अभुक्तमूलके सम्बन्धमें ग्रन्थकर्ताने नारद, वसिष्ठ और बृहस्पतिके मत लिखे हैं। अतः प्रसङ्गवश उनके वचन लिखता हूं।

नारदका वचन—

यो ज्येष्ठामूलयोरन्तरालप्रहरजः शिशुः।
अभुक्तमूलजः सार्पमघानक्षत्रयोरपि ॥

वसिष्ठका वचन—(अन्य मतसे)—

ज्येष्ठान्त्यपादघटिकामितमेव केचिन्मूलं ह्यभुक्तमपरे पुनरामनन्ति।
मूलाद्यपादघटिकाद्वितयेन सार्द्धमष्टौ समाः परिहरेदिह जन्मभाजम् ॥

बृहस्पतिका वचन—

ज्येष्ठान्त्यघटिकार्द्धं च मूलादौ घटिकार्द्धकम्।
तयोरन्तर्गता नाडी ह्यभुक्तं मूलमुच्यते ॥

परन्तु इन वचनोंसे मुख्य पक्ष नारदजीका ही है। अर्थात् विशेष मतसे ज्येष्ठाके अन्त्यकी और मूलके आदिकी चार चार घड़ी (मिलाकर ८ घड़ी) अभुक्तमूल होता है। जैसे कश्यपका वचन—

ज्येष्ठान्त्यमूलयोरन्तरालयामोद्भवः शिशुः।
अभुक्तमूलजः सोऽथ स्वाश्लेषापित्र्ययोरपि ॥

वसिष्ठका अपना मत—

भुजङ्गपौरन्दरपौष्णभानां तदग्रभानां च तदन्तरालम्।
अभुक्तमूलं प्रहरप्रमाणं त्यजेत् सुतं तत्र भवां सुतां च ॥

इति ॥ ५३ ॥

दूसरेके मतसे अभुक्तमूलका प्रमाण तथा उसका प्रयोजन—

अथोचुरन्ये प्रथमाष्टघट्यो मूलस्य शाक्रान्तिमपञ्च नाड्यः।
जातं शिशुं तत्र परित्यजेद्वा मुखं पितास्याष्टसमा न पश्येत् ॥५४॥

अन्वयः—अथ मूलस्य प्रथमाष्टघट्यः, शाक्रान्तिमपञ्चनाड्यः 'अभुक्तमूलं' स्यात्, इति अन्ये ऊचुः। तत्र जातं शिशुं परित्यजेत्; वा (त्यागाशक्तौ) पिता अस्य

(अभुक्तमूले जातस्य शिशोः) मुखम् अष्टसमाः न पश्येत् ॥ ५४ ॥

भाषार्थः—किसी अन्य आचार्योंका मत है कि मूलके आदिकी ८ घड़ी और ज्येष्ठाके अन्त्यकी ५ घड़ी (सब १३ घड़ी) अभुक्तमूल होता है ।

इस 'अभुक्तमूल' में जन्म लेनेवाले बालकको (लड़कीको भी) त्याग देना चाहिये, अथवा (यदि मोहवश त्याग न सके तो) उसका पिता उस (अभुक्तमूलमें उत्पन्न बच्चे) का मुख आठ वर्ष तक नहीं देखे ।

इसमें नारदजीका वचन—

"अभुक्तमूलजं पुत्रं पुत्रीमपि परित्यजेत् ।
अथवाऽब्दाष्टकं तातस्तन्मुखं न विलोकयेत्" इति ॥ ५४ ॥

चरण भेदसे मूल और आश्लेषा नक्षत्रमें जन्मका फल—

**आद्ये पिता नाशमुपैति मूलपादे द्वितीये जननी तृतीये ।
धनं चतुर्थोऽस्य शुभोऽथ शान्त्या सर्वत्र सत्स्यादहिभे विलोमम् ॥५५॥**

अन्वयः-आद्ये मूलपादे 'जाते शिशौ' पिता नाशम् उपैति । द्वितीये 'पादे' जननी 'नाशम् उपैति' । तृतीये 'पादे' धनं 'नाशम् उपैति' । अस्य (मूलस्य) चतुर्थः पादः शुभः 'भवति' । अथ शान्त्या सर्वत्र सत् स्यात् । अहिभे विलोमं 'फलं भवति' ॥५५॥

भाषार्थः—मूलके प्रथम चरणमें जन्म होनेसे उसके पिताका नाश होता है । दूसरे चरणमें बच्चेका जन्म हो तो उसकी माताका नाश होता है । तीसरे चरणमें धनका नाश होता है । मूलका चतुर्थ चरण शुभ होता है, अर्थात् मूल नक्षत्रके चौथे चरणमें जन्म होनेसे अशुभ नहीं होता । शान्ति कर देनेसे सर्वत्र शुभ हो जाता है ।

आश्लेषा नक्षत्रमें इसका उलटा समझना चाहिये । अर्थात् आश्लेषाके प्रथम चरणमें शुभ, दूसरेमें धनका नाश, तीसरेमें माताका नाश और चौथेमें पिताका नाश होता है ॥ ५५ ॥

वि०—वसिष्ठजीने मूलके जन्ममें लिखा है कि यदि मूलका प्रथम चरण रातमें पड़े तो जन्म होने पर पिताको दोष नहीं लगता और मूलका दूसरा चरण यदि दिनमें पड़े तो माताको दोष नही लगता । जैसे—

मूलाद्यपादो यदि रात्रिभागे तदाऽऽगमनो नास्ति पितुर्विनाशम् ।
द्वितीयपादो दिनगो यदि स्यान्न मातुरल्पोऽपि तदाऽस्ति दोषः ॥ इति ॥

किसीके मतसे सम्पूर्ण मूल नक्षत्रको वृक्षरूप मानकर कुछ २ दण्डोंके भेदसे उसके अङ्गोंके ८ कहे जाते हैं। जैसे जयार्णवमें—

मूलं, स्तम्भः, त्वचा, शाखा, पत्रं, पुष्पं, फलं, शिखा।
मुनयोऽष्टौ दिशो रुद्राः सूर्याः पञ्चाब्धयोऽग्नयः॥
मूले तु मूलनाशः स्यात् स्तम्भे वंशविनाशनम्।
त्वचि मातुर्भवेत् क्लेशः शाखायां मातुलस्य च॥
पत्रे राज्यं विजानीयात् पुष्पे मन्त्रीपदं स्मृतम्।
फले च विपुला लक्ष्मीः शिखायामल्पजीवितम्॥ इति॥

इन श्लोकोंका तात्पर्य यह है कि मूलनक्षत्रकी प्रथम ७ घड़ीमें जन्म होनेसे उसका मूल-नाश (सर्वनाश) ८ से १५ घड़ी तक उसके वंशका नाश, उसके बाद १० घड़ीमें माताको कष्ट, उसके बाद ११ घड़ीमें मामाको कष्ट (एवं प्रथम ३६ दण्ड अशुभ दायक होते हैं) उसके बाद १२ घड़ीमें राज्यलाभ, उसके बाद ५ घड़ीमें मन्त्रित्व लाभ, उसके बाद ४ घड़ीमें उत्तम सम्पत्तिका लाभ (एवं ३६ से ५७ दण्ड तक २१ दण्ड शुभदायक होते हैं) और अन्तकी ३ घड़ीमें अल्पायुष्य होते हैं।

एवं मूलमें जन्मलेनेवाली कन्याके अङ्गविभागसे फल लिखे गये हैं। जैसे—

चतस्रो घटिकाः शीर्षे कुर्वन्ति पशुनाशनम्।
मुखे षड् धनहानिः स्यात् कण्ठे पञ्च धनागमः॥
कौटिल्यं हृदये पञ्च बाह्वोर्वित्तागमस्ततः।
वेदाः पाण्योर्दयाधर्मौ वेदा गुह्येऽतिकामिनी॥
ज्येष्ठमातुलनाशश्च जङ्घयोर्युगनाड़िकाः।
ज्येष्ठभ्रातृविनाशश्च चतस्रो जानुयुग्मके॥
पादयोर्दश नाड्यश्च तत्र वैधव्यमादिशेत्।
इति मूलप्रसूतायाः मुनिभिः फलमीरितम्॥ स्पष्टार्थाः॥

आश्लेषा नक्षत्रमें पुत्र-पुत्रीके जन्मका अङ्गभेदसे फल—

मूर्ध्नि पञ्चसु राज्याप्तिः मुखे सप्त पितृक्षयः।
नेत्रे द्वे जननीनाशो ग्रीवायां त्रिषु लम्पटः॥
स्कन्धे वेदा गुरौ भक्तिः हस्तेऽष्टौ च बली भवेत्।
हृद्येकादशभिश्चात्मघाती सञ्जायते नरः॥
स्त्री वा, नाभौ भ्रमः षड्भिः, गुदे नव तपोधनः।
पादे पञ्च धनं हन्ति सार्पादेतत्फलं क्रमात्॥ स्पष्टार्थाः॥

नोट—इन वचनोंमें नक्षत्रका मान ६० दण्ड मानकर अङ्गविभाग बताये गये हैं, परन्तु विद्वान्को चाहिये कि वे उक्त नक्षत्रके स्पष्ट भोगमानसे अनुपात द्वारा अङ्गविभाग करें॥५५॥

मूल नक्षत्रका निवास—

स्वर्गे शुचिप्रौष्ठपदेषमाघे भूमौ नभःकार्तिकचैत्रपौषे ।
मूलं ह्यधस्तात्तु तपस्यमार्गवैशाखशुक्रेष्वशुभं च तत्र ॥ ५६ ॥

अन्वयः—शुचिप्रौष्ठपदेषमाघे 'मासचतुष्टये' मूलं स्वर्गे 'तिष्ठति'। नभः कार्त्तिकचैत्रपौषे 'मासचतुष्टये' मूलं भूमौ 'तिष्ठति'। तु(पुनः)तपस्यमार्गवैशाखशुक्रेषु 'मासेषु' मूलं हि (निश्चयेन) अधस्तात् 'तिष्ठति' 'मूलं यत्र तिष्ठति' तत्र अशुभं च 'ज्ञेयम्' ॥

भाषार्थः—आषाढ़, भाद्रपद (भादो), आश्विन और माघ इन ४ मासोंमें मूल नक्षत्र स्वर्गमें रहता है। श्रावण, कार्त्तिक, चैत्र और पौष इन ४ मासोंमें मूल पृथिवी पर रहता है। एवं फाल्गुन, अगहन, वैशाख और ज्येष्ठ इन ४ मासों में मूल पातालमें रहता है। मूल जहां रहता है वहां ही अशुभ फल होता है।

इस श्लोकसे यह सिद्ध होता है कि श्रावण, कार्त्तिक, चैत्र और पूस इन ४ महीनेमें यदि मूल नक्षत्रमें जन्म हो तो उसे मूलका दोष लगेगा, शेष ८ मासोंमें मूल नक्षत्रमें जन्म होनेपर भी दोष नहीं लगेगा। इस लिये श्रावण, कार्त्तिक, चैत्र, पूस इन ४ मासोंमें मूलकी शान्ति विशेष रूपसे करनी चाहिये। क्योंकि लिखा है कि—

'भूमिष्ठं दोषबहुलं स्वल्पमन्यत्र संस्थितम्'। इति ॥ ५६ ॥

नोटः—मूलका निवास जाननेमें मास गणना चान्द्रमानसे की जाती है ॥ ५६ ॥

सन्तानके जन्ममें निषिद्ध समय—

गण्डान्तेन्द्रभशूलपातपरिघव्याघातगण्डावमे
संक्रान्तिव्यतिपातवैधृतिसिनीवालीकुहूदर्शके ।
वज्रे कृष्णचतुर्दशीषु यमघण्टे दग्धयोगे मृतौ
विष्टौ सोदरभे जनिर्न पितृभे शस्ता शुभा शान्तितः॥५७॥

अन्वयः—गण्डान्तेन्द्रभशूलपातपरिघव्याघातगण्डावमे, सङ्क्रान्तिव्यतिपातवैधृतिसिनीवालीकुहूदर्शके, वज्रे 'योगे' कृष्णचतुर्दशीषु, यमघण्टे, दग्धयोगे, मृतौ (मृत्युयोगे) विष्टौ, सोदरभे, पितृभे, 'च' जनिः शस्ता न 'भवति'। शान्तितः 'सर्वत्र' शुभा 'भवति' ॥ ५७ ॥

भाषार्थः—गण्डान्तमें (नक्षत्र-तिथि-लग्न तीनोंके गण्डान्त विवाह प्रकर-

णके ४३ वे श्लोकमें कहे जायेंगे) ज्येष्ठा नक्षत्रमें, शूलयोग-पात-(महापात) परिघ-व्याघात-गण्डयोगोंमें, तिथिक्षयमें (जो तिथि सूर्योदयकालमें न पड़ती हो) सङ्क्रान्तिदिनमें, व्यतीपात और वैधृति योगमें, सिनीवाली और कुहू दोनों अमावसमें(१), वज्रयोगमें, कृष्णपक्षकी चतुर्दशी तिथिमें, यमघण्ट ('मघा विशाखा शिवमूलवह्नि' इत्यादि) योगमें, दग्ध-'(सूर्येशपञ्चाग्नि' इत्यादि) योगमें, मृत्यु ('द्वीशात्तोयात्' इत्यादि) योगमें, भद्रामें, सोदर-(बड़े भाई या बहिन) के जन्म नक्षत्रमें, और माता-पिताके जन्म-नक्षत्रमें किसीका जन्म होना अशुभ है। परन्तु शान्ति करनेसे सर्वत्र शुभ होता है ॥ ५७ ॥

नोट—उपर्युक्त दुष्ट योगोंकी शान्ति-विधिका उल्लेख करना आवश्यक होने पर भी पुस्तक का कलेवर बढ़नेके भयसे उल्लेख नहीं किया जाता। आवश्यकता होने पर पाठक कृपाकर पीयूषधारा या ग्रन्थकारकी प्रमिताक्षरा टीकाको देख लें ॥ ५७ ॥

अश्विनी आदि नक्षत्रोंके तारे—

त्रित्र्यङ्गपञ्चाग्निकुवेदवह्नयः शरेषुनेत्राश्विशरेन्दुभूकृताः ।
वेदाग्निरुद्राश्वियमाग्निवह्नयोऽब्धयः शतं द्विद्विरदा भतारकाः ॥५८॥

अन्वयः—त्रित्र्यङ्गपञ्चाग्निकुवेदवह्नयः शरेषुनेत्राश्विशरेन्दुभूकृताः, वेदाग्निरुद्राश्वियमाग्निवह्नयः अब्धयः शतं द्वि-द्वि-रदाः 'एताः भतारकाः अश्विन्यादिनक्षत्राणां क्रमेण' तारासङ्ख्याः भवन्ति ॥ ५८ ॥

भाषार्थः—अश्विनीके ३, भरणीके ३, कृत्तिकाके ६, रोहिणीके ५, मृगशिराके ३, आर्द्राका १, पुनर्वसुके ४, पुष्यके ३, आश्लेषाके ५, मघाके ५, पू. फल्गुनीके २, उ. फल्गुनीके २, हस्तके ५, चित्राका १, स्वातीका १, विशाखाके ४, अनुराधाके ४, ज्येष्ठाके ३, मूलके ११, पूर्वाषाढ़के २, उत्तराषाढ़के २, अभिजितके ३ श्रवणके ३, धनिष्ठाके ४, शतभिषाके १००, पू. भाद्रके २, उ. भाद्रके २ और रेवतीके ३२ तारे हैं ॥ ५८ ॥

नोट—आगे ५९ ६० वें श्लोकका विशेष देखिये।

नक्षत्रोंकी आकृति—

अश्व्यादिरूपं तुरगास्ययोनिक्षुरोऽन एणास्यमणिर्गृहं च ।

---

(१) जिस अमावसमें चन्द्रमाकी कुछ कला दिखाई दे उसे 'सिनीवाली' कहते हैं और जिसमें चन्द्रमाकी कला बिलकुल नष्ट हो उसे 'कुहू' कहते हैं। 'सा दृष्टेन्दुः सिनीवाली सा नष्टेन्दुकला कुहूः' इत्यमरः ।

पृषत्कचक्रे भवनं च मञ्चः शय्या करो मौक्तिकविद्रुमं च ॥५९॥
तोरणं बलिनिभं च कुण्डलं सिंहपुच्छगजदन्तमञ्चकाः ।
त्र्यस्रि च चित्ररणाभमर्दलौ वृत्तमञ्चयमलाभमर्दलाः ॥६०॥

अन्वयः—तुरगास्य-योनि-क्षुरः अनः एणास्य-मणिः गृहं च (तथा) पृषत्क-चक्रे भवनं च (तथा) मञ्चः शय्या करः मौक्तिक-विद्रुमं च (तथा) तोरणं बलि-निभं च (पुनः) कुण्डलं सिंहपुच्छ-गजदन्त-मञ्चकाः त्र्यस्रि च (पुनः) त्रिचरणा-भ-मर्दलौ वृत्त मञ्च-यमलाभ-मर्दलाः 'एतत्' क्रमेण अश्व्यादिरूपं (अश्विन्यादिनक्षत्राणां स्वरूपं) 'ज्ञेयम्' ॥ ५९-६० ॥

भाषार्थः—अश्विनी नक्षत्रका स्वरूप घोड़ेके मुखकी तरह, भरणीका स्वरूप योनि-(भग) की तरह, कृत्तिका = क्षुरा (बालकाटने वाली) की तरह, रोहिणी = शकट-(बैलगाड़ी) की तरह, मृगशिरा = हरिणके मुखकी तरह, आर्द्रा = मणिकी तरह, पुनर्वसु = घरके समान, पुष्य = बाणके समान, आश्लेषा = चक्रके समान, मघा = घरके समान, पूर्वाफाल्गुनी = मचानकी तरह, उत्तरा फल्गुनी = शय्या-(खाट) के समान, हस्त = हाथके समान, चित्रा = मोतीकी तरह, स्वाती = मूङ्गाकी तरह, विशाखा = तोरणके समान, अनुराधा = बलि-(भातकी (ढेरी) की तरह, ज्येष्ठा = कुण्डलके समान, मूल = सिंह की पूंछके समान, पूर्वाषाढ़ = हाथीके दाँतकी तरह, उत्तराषाढ़ = मचानकी तरह, अभिजित् = त्रिकोणके समान, श्रवण = त्रिचरण (वामन रूप) की तरह, धनिष्ठा = मृदङ्गके समान, शतभिषा = वृत्ता (गोला) कार, पू. भाद्र = मचानकी तरह, उ. भाद्र = यमल-(जोड़े हुए दो मनुष्य) के समान और रेवती नक्षत्रका स्वरूप मृदङ्गके समान है ॥ ५९-६० ॥

विशेषः—आकाशस्थ भचक्र (क्रान्तिमण्डल) के तुल्य २७ टुकड़े ही अश्विनी आदि २७ नक्षत्र हैं । ये नक्षत्र अपनी २ योग ताराओंसे भिन्न २ आकृतिके देखे जाते हैं । नक्षत्रोंकी तारायें पूर्व (५८ वें श्लोक) में कही गयीं हैं । उन ताराओंकी बनावटसे नक्षत्रोंके रूप जैसे इन दोनों श्लोकोंमें कहे गये हैं ठीक २ उसी तरहके हैं । निर्मल आकाशमें रातमें ये नक्षत्र ठीक-ठीक देखे जाते हैं । जैसे अश्विनी ३ ताराओंसे त्रिकोण (सूक्ष्म यन्त्रसे घोड़ेकी मुखकी) तरह, भरणी ३ ताराओंसे योनिकी तरह, कृत्तिका ६ ताराओसे क्षुराकी तरह देखी जाती है । एवं सभी नक्षत्र अपनी ताराओंसे अपने २ कहे गये स्वरूपमें उपलब्ध होते हैं ॥ ५९-६० ॥

णके ४३ वे श्लोकमें कहे जायेंगे) ज्येष्ठा नक्षत्रमें, शूलयोग-पात-(महापात) परिघ-व्याघात-गण्डयोगोंमें, तिथिक्षयमें (जो तिथि सूर्योदयकालमें न पड़ती हो) सङ्क्रान्तिदिनमें, व्यतीपात और वैधृति योगमें, सिनीवाली और कुहू दोनों अमावसमें(१), वज्रयोगमें, कृष्णपक्षकी चतुर्दशी तिथिमें, यमघण्ट ('मघा विशाखा शिवमूलवह्नि' इत्यादि) योगमें, दग्ध-('सूर्येशपञ्चाग्नि' इत्यादि) योगमें, मृत्यु ('द्वीशात्तोयात्' इत्यादि) योगमें, भद्रामें, सोदर-(बड़े भाई या बहिन) के जन्म नक्षत्रमें, और माता-पिताके जन्म-नक्षत्रमें किसीका जन्म होना अशुभ है। परन्तु शान्ति करनेसे सर्वत्र शुभ होता है ॥ ५७ ॥

नोट—उपर्युक्त दुष्ट योगोंकी शान्ति-विधिका उल्लेख करना आवश्यक होने पर भी पुस्तक का कलेवर बढ़नेके भयसे उल्लेख नहीं किया जाता। आवश्यकता होने पर पाठक कृपाकर पीयूषधारा या ग्रन्थकारकी प्रमिताक्षरा टीकाको देख लें ॥ ५७ ॥

अश्विनी आदि नक्षत्रोंके तारे—

त्रित्र्यङ्गपञ्चाग्निकुवेदवह्नयः शरेषुनेत्राश्विशरेन्दुभूकृताः ।
वेदाग्निरुद्राश्वियमाग्निवह्नयोऽब्धयः शतं द्विद्विरदा भतारकाः ॥५८॥

अन्वयः—त्रित्र्यङ्गपञ्चाग्निकुवेदवह्नयः शरेषुनेत्राश्विशरेन्दुभूकृताः, वेदाग्निरुद्राश्वियमाग्निवह्नयः अब्धयः शतं द्वि-द्वि-रदाः 'एताः भतारकाः अश्विन्यादिनक्षत्राणां क्रमेण' तारासङ्ख्याः भवन्ति ॥ ५८ ॥

भाषार्थः—अश्विनीके ३, भरणीके ३, कृत्तिकाके ६, रोहिणीके ५, मृगशिराके ३, आर्द्राका १, पुनर्वसुके ४, पुष्यके ३, आश्लेषाके ५, मघाके ५, पू. फल्गुनीके २, उ. फल्गुनीके २, हस्तके ५, चित्राका १, स्वातीका १, विशाखाके ४, अनुराधाके ४, ज्येष्ठाके ३, मूलके ११, पूर्वाषाढ़के २, उत्तराषाढ़के २, अभिजितके ३ श्रवणके ३, धनिष्ठाके ४, शतभिषाके १००, पू. भाद्रके २, उ. भाद्रके २ और रेवतीके ३२ तारे हैं ॥ ५८ ॥

नोट—आगे ५९ ६० वें श्लोकका विशेष देखिये।

नक्षत्रोंकी आकृति—

अश्व्यादिरूपं तुरगास्ययोनिक्षुरोऽन एणास्यमणिर्गृहं च ।

---

(१) जिस अमावसमें चन्द्रमाकी कुछ कला दिखाई दे उसे 'सिनीवाली' कहते हैं और जिसमें चन्द्रमाकी कला बिलकुल नष्ट हो उसे 'कुहू' कहते हैं। 'सा दृष्टेन्दुः सिनीवाली सा नष्टेन्दुकला कुहूः' इत्यमरः ।

पृषत्कचक्रे भवनं च मञ्चः शय्या करो मौक्तिकविद्रुमं च ॥५९॥
तोरणं बलिनिभं च कुण्डलं सिंहपुच्छगजदन्तमञ्चकाः ।
त्र्यस्रि च त्रिचरणाभमर्दलौ वृत्तमञ्चयमलाभमर्दलाः ॥६०॥

अन्वयः—तुरगास्य-योनि-क्षुरः अनः एणास्य-मणिः गृहं च (तथा) पृषत्क-चक्रे भवनं च (तथा) मञ्चः शय्या करः मौक्तिक-विद्रुमं च (तथा) तोरणं बलि-निभं च (पुनः) कुण्डलं सिंहपुच्छ-गजदन्त-मञ्चकाः त्र्यस्रि च (पुनः) त्रिचरणाभ-मर्दलौ वृत्त मञ्च-यमलाभ-मर्दलाः 'एतत्' क्रमेण अश्व्यादिरूपं (अश्विन्यादिनक्षत्राणां स्वरूपं) 'ज्ञेयम्' ॥ ५९-६० ॥

भाषार्थः—अश्विनी नक्षत्रका स्वरूप घोड़ेके मुखकी तरह, भरणीका स्वरूप योनि-(भग) की तरह, कृत्तिका = क्षुरा (बालकाटने वाली) की तरह, रोहिणी=शकट-(बैलगाड़ी) की तरह, मृगशिरा = हरिणके मुखकी तरह, आर्द्रा = मणिकी तरह, पुनर्वसु = घरके समान, पुष्य = बाणके समान, आश्लेषा = चक्रके समान, मघा = घरके समान, पूर्वाफाल्गुनी = मचानकी तरह, उत्तरा फल्गुनी = शय्या-(खाट) के समान, हस्त = हाथके समान, चित्रा = मोतीकी तरह, स्वाती = मूङ्गाकी तरह, विशाखा = तोरणके समान, अनुराधा = बलि-(भातकी (ढेरी) की तरह, ज्येष्ठा =कुण्डलके समान, मूल = सिंह की पूंछके समान, पूर्वाषाढ़ = हाथीके दाँतकी तरह, उत्तराषाढ़ = मचानकी तरह, अभिजित् = त्रिकोणके समान, श्रवण = त्रिचरण (वामन रूप) की तरह, धनिष्ठा =मृदङ्गके समान, शतभिषा = वृता (गोला) कार, पू. भाद्र = मचानकी तरह, उ. भाद्र = यमल-(जोड़े हुए दो मनुष्य) के समान और रेवती नक्षत्रका स्वरूप मृदङ्गके समान है ॥ ५९-६० ॥

विशेषः—आकाशस्थ भचक्र (क्रान्तिमण्डल) के तुल्य २७ टुकड़े ही अश्विनी आदि २७ नक्षत्र हैं । ये नक्षत्र अपनी २ योग ताराओंसे भिन्न २ आकृतिके देखे जाते हैं । नक्षत्रोंकी तारायें पूर्व (५८ वें श्लोक) में कही गयीं हैं । उन ताराओंकी बनावटसे नक्षत्रोंके रूप जैसे इन दोनों श्लोकोंमें कहे गये हैं ठीक २ उसी तरहके हैं । निर्मल आकाशमें रातमें ये नक्षत्र ठीक-ठीक देखे जाते हैं । जैसे अश्विनी ३ ताराओंसे त्रिकोण (सूक्ष्म यन्त्रसे घोड़ेकी मुखकी) तरह, भरणी ३ ताराओंसे योनिकी तरह, कृत्तिका ६ ताराओसे क्षुराकी तरह देखी जाती है । एवं सभी नक्षत्र अपनी ताराओंसे अपने २ कहे गये स्वरूपमें उपलब्ध होते हैं ॥ ५९-६० ॥

नक्षत्र	तारा	स्वरूप	जाति	रोगोत्पत्तौ- दिनानि	दानानि	नष्टादौ संज्ञा	फल	यात्रादोहदानि
अश्वि.	३	अश्वमुख	वैश्य	९	ब्रा० भोजन	मन्द	यत्नसेलाभ	तण्डुल-माष
भरणी	३	योनि	चांडाल	११	गौ० अन्न	मध्य	दूर श्रवण	तिल-तण्डुल
कृत्ति.	६	क्षुरा	ब्रा०	९	स्वर्ण	स्वक्ष	अलाभ	माष
रोहि.	५	शकट	शूद्र	७	घृत	अन्ध	शीघ्रलाभ	गव्य दधि
मृग.	३	मृगास्य	कृषक	३०	तिल	मन्द	य. ला.	गोघृत
आर्द्रा	१	मणि	क्रूर	मरण	गौ.	मध्य	दू. श्र.	दुग्ध
पुन.	४	गृही	वैश्य	७	पित्तल	सुलो.	अलाभ	हरिणमांस
पुष्य	३	शर	क्षत्रिय	७	तेल	अन्ध	शी. ला.	मृगा रक्त
श्लेषा	५	चक्र	चांडाल	मरण.	गौ. अज.	मन्द	य. ला.	पायस
मघा	५	भवन	शूद्र	२०	वस्त्र घृत	मध्य	दू. श्र.	चाष मांस
पू. फ.	२	मंच	ब्रा०	मरण	भोजन	स्वक्ष	अला.	मृगमांस
उ. फ.	२	शय्या	क्षत्री	७	अन्न	अन्ध	शी. ला.	शशक मांस
हस्त	५	हस्त	वैश्य	१५	तिल	मन्द	य. ला.	साठी तण्डुल
चित्रा	१	मुक्ता	कृषक	११	दूध	मध्य	दू. श्र.	प्रियङ्गु
स्वाती	१	मूङ्गा	क्रूर	मरण	गोघृत	स्वक्ष	अला.	अपूप
विशा.	४	तोरण	चांडाल	१५	गौ. सोना	अन्ध	शी. ला.	पक्षिमांस
अनु.	४	वलि	शूद्र	स्थिरता	गोघृत	मन्द	य. ला.	सुन्दर फल
ज्येष्ठा	३	कुण्डलः	कृषक	मरण	तिल	मध्य	दू. श्र	कूर्ममांस
मूल	११	सिंहपु०	क्रूर	९	चान्दी	स्वक्ष	अला.	सारिकमांस
पू. षा.	२	गजदंत	ब्रा.	मरण	गौ. मोती	अन्ध	शी. ला.	गोहमांस
उ. षा.	२	मंच	क्ष.	३०	भोजन	मन्द	य. ला.	शल्वमांस
श्रव.	३	वामन	चां.	११	श्रीफल	स्वक्ष	अला.	खिचरी
धनि.	४	मृदङ्ग	कृष.	१५	घोड़ा-अन्न	अन्ध	शी. ला.	मूँगका लड्डू
शत.	१००	वृत्त	क्रूर	११	भोजन-अन्न	मन्द	य. ला.	यव चूर्ण
पू. भा.	२	मंच	ब्रा.	मरण	भोजन	मध्य	दू. श्र.	मत्स्य-अन्न
उ. भा.	२	यमल	क्ष.	७	अन्न	स्वक्ष	अला.	अनेक अन्न
रेवती	३२	मृदङ्ग	शूद्र	स्थिरता	वृष	अन्ध	शी. ला.	दही-भात

जलाशय, बगीचा और देवताकी प्रतिष्ठाका मुहूर्त्त—

जलाशयारामसुरप्रतिष्ठा सौम्यायने जीवशशाङ्कशुक्रे ।
दृश्ये, मृदुक्षिप्रचरध्रुवे स्यात्पक्षे सिते स्वर्क्षतिथिक्षणे वा ॥६१॥
रिक्तारवर्ज्ये दिवसेऽतिशस्ता शशाङ्कपापैस्त्रिभवाङ्गसंस्थैः ।

व्यन्त्याष्टगैः सत्खचरैर्मृगेन्द्रे सूर्यो घटे को युवतौ च विष्णुः ॥
शिवो नृयुग्मे द्वितनौ च देव्यः क्षुद्राश्चरे सर्व इमे स्थिरर्क्षे ।
पुष्ये ग्रहा विघ्नपयक्षसर्पभूतादयोऽन्त्ये श्रवणे जिनश्च ॥ ६३ ॥

अन्वयः—सौम्यायने, जीवशशाङ्कशुक्रे दृश्ये, मृदुक्षिप्रचरध्रुवे 'नक्षत्रे' सिते पक्षे' वा स्वर्क्षतिथिक्षणे 'तथा' रिक्तारवर्ज्ये दिवसे, शशाङ्कपापैः त्रिभवाङ्गसंस्थैः, सत्खचरैः व्यन्त्याष्टगैः, जलाशयारामसुरप्रतिष्ठा अतिशस्ता 'भवति'। मृगेन्द्रे (सिंहे) 'लग्ने' सूर्यः, घटे (कुम्भे) कः (ब्रह्मा), युवतौ च विष्णुः, नृयुग्मे शिवः 'स्थाप्यः' च (पुनः) द्वितनौ देव्यः, चरे, क्षुद्राः, 'तथा' इमे सर्वे स्थिरर्क्षे (स्थिरलग्ने) स्थाप्याः। ग्रहाः पुष्ये, विघ्नपयक्षसर्पभूतादयः अन्त्ये (रेवतीनक्षत्रे) 'स्थाप्याः', जिनश्च श्रवणे 'स्थाप्यः' ॥ ६१–६३ ॥

भाषार्थः—उत्तरायणमें (सूर्यके मकरसे मिथुन राशि तक रहने पर), बृहस्पति, चन्द्रमा और शुक्रके उदित रहने पर, मृदुसंज्ञक-क्षिप्रसंज्ञक-चरसंज्ञक-ध्रुवसंज्ञक-नक्षत्रोंमें, शुक्ल पक्षमें, अथवा जिस देवताकी प्रतिष्ठा करनी हो उस देवताके नक्षत्र-तिथि-मुहूर्त्तमें, रिक्ता (४।९।१४) और मङ्गलको छोड़कर अन्य तिथि-वारोंमें, लग्नसे ३–११–६ इन स्थानोंमें चन्द्रमा और पापग्रहों–(मं.श.र.) के रहने पर और ८–१२ को छोड़कर अन्य स्थानोंमें शुभ ग्रहों–(बु.शु.बृ.) के रहने पर जलाशय (तालाव-कूप-बावली), बगीचा और देवताओंकी प्रतिष्ठा शुभ होती है। सिंह लग्नमें सूर्यकी स्थापना, कुम्भ लग्नमें ब्रह्माकी स्थापना मिथुन लग्नमें शङ्करजीकी स्थापना, द्विस्वभाव (मि. कं. ध. मी.) लग्नोंमें देवियोंकी स्थापना और चर–(मे. क. तु. म.) लग्नोंमें क्षुद्र–(चौंसठी योगिनी आदि) देवताकी स्थापना करनी चाहिये। विशेषकर सभी (कहे गये तथा जो बाकी हैं) देवताओं की स्थापना स्थिर (वृ. सिं. वृश्चि. कुम्भ) लग्नोंमें करनी चाहिये।

चन्द्रमा आदि (८) ग्रहोंकी स्थापना पुष्य नक्षत्रमें, गणेश–यक्ष–सर्प–भुत आदि देवताओंकी स्थापना रेवती नक्षत्रमें और जिन–(बुद्ध) की स्थापना श्रवणा नक्षत्रमें करनी चाहिये ॥ ६१–६३ ॥

इति मुहूर्त्तचिन्तामणौ नक्षत्रप्रकरणम् ॥ २ ॥

अथ सङ्क्रान्तिप्रकरणम् ॥ ३ ॥

इस तीसरे प्रकरणमें सङ्क्रान्ति सम्बन्धी विचार होनेके कारण इसका नाम 'सङ्क्रान्ति प्रकरण' रखा गया। ग्रहोंके एक राशिसे दूसरी राशिमें जानेको सङ्क्रान्ति कहते हैं। इस तरह प्रत्येक ग्रहके राशिसञ्चारको सङ्क्रान्ति कह सकते हैं। परन्तु यहाँ और ग्रहोंके विम्बको छोटा होनेके कारण सङ्क्रान्तिका समय बहुत कम होता है इसलिये अन्य ग्रहोंकी सङ्क्रान्तिको चर्चा नहीं की जाती और सूर्यकी सङ्क्रान्ति ही प्रसिद्ध मानी जाती है। क्योंकि सूर्यका विम्ब बहुत बड़ा है इसलिये सङ्क्रान्ति काल बड़ा होता है, अतः सङ्क्रान्ति शब्दसे सूर्यकी सङ्क्रान्ति ही सर्वत्र प्रसिद्ध है।

नक्षत्र और दिनके योगसे सङ्क्रान्तिके नाम तथा उनके फल—

घोराऽर्कसङ्क्रमणमुग्ररवौ हि शूद्रान्
ध्वांक्षी विशो लघुविधौ च चरर्क्षभौमे ।
चौरान्महोदरयुता नृपतीन् ज्ञमैत्रे
मन्दाकिनी स्थिरगुरौ सुखयेच्च मन्दा ॥ १ ॥
विप्रांश्च मिश्रभभृगौ तु पशूंश्च मिश्रा
तीक्ष्णार्कजेऽन्त्यजसुखा खलु राक्षसी च ॥ २ ॥

अन्वयः—उग्ररवौ 'यदि' अर्कसङ्क्रमणं स्यात् 'तदा' घोरा 'सङ्क्रान्तिर्भवति, सा' हि (निश्चयेन) शूद्रान् 'सुखयेत्'। लघुविधौ च ध्वांक्षी 'सङ्क्रान्तिः स्यात्, सा' विशः 'सुखयेत्'। चरर्क्षभौमे महोदरयुता 'सङ्क्रान्तिः स्यात्, सा' चौरान् 'सुखयेत्'। ज्ञमैत्रेमन्दाकिनी नृपतीन् 'सुखयेत्'। स्थिरगुरौ च मन्दा विप्रान् 'सुखयेत्'। मिश्रभभृगौ तु मिश्रा पशून् 'सुखयेत्'। तीक्ष्णार्कजे खलु (निश्चयेन) राक्षसी च 'सङ्क्रान्तिः' अन्त्यजसुखा भवति ॥ १२ ॥

भाषार्थः—उग्रसंज्ञक नक्षत्र या रविवारमें यदि सूर्यकी सङ्क्रान्ति हो तो उस सङ्क्रान्तिका नाम 'घोरा' होता है, वह शूद्रोंको सुख देती है। अर्थात् उस महीनेमें शूद्र जाति सुखी रहती है। लघुसंज्ञक नक्षत्र या सोमवारमें ध्वांक्षी नामकी सङ्क्रान्ति होती है, वह वैश्योंको सुख देती है। चरसंज्ञक नक्षत्र या मङ्गलवारमें महोदरी नामकी सङ्क्रान्ति होती है, वह चोर-डाकुओंको सुख देती है। बुधवार या मैत्रसंज्ञक नक्षत्रमें 'मन्दाकिनी' नामकी सङ्क्रान्ति क्षत्रियोंको

सुख देती है । स्थिर नक्षत्र या गुरुवारमें 'मन्दा' नामकी सङ्क्रान्ति ब्राह्मणोंको सुख देती है । मिश्रसंज्ञक नक्षत्र या शुक्रवारमें 'मिश्रा' नामकी सङ्क्रान्ति पशुओं को सुख देती है और तीक्ष्णसंज्ञक नक्षत्र या शनिवारमें राक्षसी नामकी सङ्क्रान्ति अन्त्यजों-(चाण्डालों) को सुख देने वाली होती है ॥ १½ ॥

समय भेदसे सङ्क्रान्तिके फल और अयनका विभाग—

त्र्यंशे दिनस्य नृपतीन् प्रथमे निहन्ति
मध्ये द्विजानपि विशोऽपरके च शूद्रान् ॥ २ ॥
अस्ते निशाप्रहरकेषु पिशाचकादी-
न्नक्तञ्चरानपि नटान्पशुपालकांश्च ।
सूर्योदये सकललिङ्गिजनं च सौम्य-
याम्यायनं मकरकर्कटतोर्निरुक्तम् ॥ ३ ॥

अन्वयः—दिनस्य प्रथमे त्र्यंशे 'अर्कसंक्रमणं' नृपतीन् निहन्ति । मध्ये 'त्र्यंशे' द्विजान् अपि 'निहन्ति' । अपरके 'त्र्यंशे' विशः 'निहन्ति' । अस्ते (सूर्यास्तकाले) शूद्रान् 'निहन्ति' । निशाप्रहरकेषु 'क्रमेण' पिशाचकादीन्, नक्तञ्चरान्, अपि नटान्, पशुपालकाँश्च 'निहन्ति' । सूर्योदये सकललिङ्गिजनं 'निहन्ति' । च (तथा) मकर-कर्कटयोः 'अर्कसङ्क्रमणं' सौम्ययाम्यायनं निरुक्तम् ॥ २-३ ॥

भाषार्थः—'जिस दिनमें सूर्यकी सङ्क्रान्ति हो उसके दिनमानको तीन भाग करके एक २ भागको त्रिभाग समझे और रात्रिमानको चार भाग करके चार प्रहर समझे' ।

यदि दिनके पहले विभागमें सङ्क्रान्ति हो तो वह सङ्क्रान्ति क्षत्रियोंको नाश करती है । मध्य (दूसरे) त्रिभागमें वैश्योंको नाश करती है । तीसरे त्रिभागमें वैश्योंको और सूर्यास्तके समयकी सङ्क्रान्ति शूद्रोंको नाश करती है । इसी भाँति रातके पहले प्रहरमें यदि सङ्क्रान्ति हो तो पिशाच आदिको, दूसरे प्रहरमें रात्रि-चरों (राक्षसों) को, तीसरे प्रहरमें नटोंको और चौथे प्रहरमें पशुपालकोंको (गोप आदि जातिको) नाश करती है । सूर्योदयके समयमें होने वाली सङ्क्रान्ति सर्वलिङ्गियों (पाखण्डियों*) को नाश करती है ।

मकर और कर्क राशिकी सङ्क्रान्तिको क्रमसे उत्तर और दक्षिण अयन कहा जाता है । अर्थात् मकरमें उत्तरायण और कर्कमें दक्षिणायन होता है ।

---

* 'पाखण्डाः सर्वलिङ्गिनः' इत्यमरः ।

मकरसे मिथुन तक सूर्यके रहनेसे उत्तरायण और कर्कसे धनु तक दक्षिणायन समय होता है ॥ २-३ ॥

नोट—सायन सङ्क्रान्तिकी परिभाषा आगे ९ वें श्लोकमें कही जायगी ॥

१. पापग्रह (र. मं. श.) के दिनोंमें सङ्क्रान्ति होनेसे उस मासमें लोगोंको अनेक कष्ट और वर्षाकी हानि होती है।

२. (चं. बु. बृ. शु.) दिनोंकी सङ्क्रान्ति दस मासमें लोगोंका कल्याण और पापियोंकी पीड़ा करती है।

३. मेष-कन्या-मीन-कर्ककी संक्रान्तिके दिन वर्षा होनेसे लोगोंमें कल्याण और सुभिक्ष होता है। अन्य राशियोंकी संक्रान्तिके दिन वर्षा होनेसे सर्वथा अशुभ समझना चाहिये।

४. जिसके जन्म नक्षत्रके दिन सङ्क्रान्ति हो उसे उस मासमें धन-हानि और रोगका भय होता है ॥ २-३ ॥

वार-नक्षत्र-योगसे नाम और फल जाननेका स्पष्ट चक्र—

वार	नक्षत्र	नाम	फल
रवि	उग्र (तीनों पूर्वा. भ, म.)	घोरा	शूद्रोंको सुख
सोम	लघु (ह. पु. अभि. अश्वि.)	ध्वांक्षी	वैश्योंको सुख
मंगल	चर (स्वा. पु. श्र. ध. श.)	महोदरी	चोरोंको सुख
बुध	मैत्र (मृ. रे. चि. अनु.)	मन्दाकिनी	क्षत्रियोंको सुख
गुरु	स्थिर (३ उ. रो.)	मन्दा	विप्रोंको सुख
शुक्र	मिश्र (वि. कृ.)	मिश्रा	पशु-सुख
शनि	तीक्ष्ण (मू. आ. ज्ये. श्ले,)	राक्षसी	अन्त्यज-सुख

कालभेदसे सङ्क्रान्ति फल—

दिनके विभाग-	प्रथममें		द्वितीयमें		तृतीयमें
फल	क्षत्रिय नाश		ब्राह्मणनाश		वैश्यनाश
अस्तकालमें	शूद्रोंका नाश				
रात्रिके प्रहर-	प्रथममें	दूसरेमें		तीसरेमें	चौथेमें
फल	पिशाच नाश	राक्षस नाश		नट नाश	गोप नाश
सूर्योदयकालमें	पाखण्डियोंका नाश				

राशिभेदसे सङ्क्रान्तियोंके नाम—

षडशीत्याननं चापनृयुक्कन्याझषे भवेत् ।
तुलाजौ विषुवं विष्णुपदं सिंहालिगोघटे ॥ ४ ॥

अन्वयः—चापनृयुक्कन्याझषे 'अर्कसङ्क्रमणं, षडशीत्याननं भवेत् । तुलाजौ विषुवं 'भवेत्' । सिंहालिगोघटे विष्णुपदं 'भवेत्' ॥ ४ ॥

भाषार्थः—धनु, मिथुन, कन्या और मीन राशिकी सङ्क्रान्तिका नाम षडशीति मुख है । तुला और मेषकी सङ्क्रान्ति विषुव नामकी होती है तथा सिंह, वृश्चिक, वृष और कुम्भकी सङ्क्रान्तिका नाम विष्णुपद है ॥ ४ ॥

वि०—क्रान्तिवृत्तके वे स्थान जहां क्रान्तिका अभाव है (अर्थात् विषुवत्-क्रान्तिवृत्तोंके दोनों सम्पात) विषुव नामसे प्रसिद्ध है । जहां सबसे अधिक क्रान्ति होती है (अर्थात् सम्पातसे ३ राशि अन्तर पर) वे दोनों अयन होते हैं । विषुव और अयनके बीचमें विष्णुपद और षडशीति नामकी दो २ राशियां हैं । इसलिये मेष तुला विषुव, कर्क-मकर याम्यायन-सौम्यायन, स्थिर (वृष-सिंह-वृश्चिक-कुम्भ ये ४) राशियां विष्णुपद और द्वन्द्व (मिथुन-कन्या-धनु-मीन ये ४) राशियां षडशीति मुख होती हैं ॥ ४ ॥

नोट—इनका विशेष विवरण सूर्यसिद्धान्तके मेरे तत्त्वामृत भाष्यमें (मानाध्याय ४६ श्लो०) देखिये ॥ ४ ॥

सङ्क्रान्तिका पुण्यकाल—

संक्रान्तिकालादुभयत्र नाडिकाः पुण्या मताः षोडश षोडशोष्णगोः ।
निशीथतोऽर्वागपरत्र संक्रमे पूर्वापराहान्तिमपूर्वभागयोः ॥ ५ ॥

अन्वयः—उष्णगोः सङ्क्रान्तिकालात् उभयत्र षोडश षोडश नाडिकाः पुण्याः मताः । निशीथतः अर्वाक् अपरत्र सङ्क्रमे 'सति, क्रमेण' पूर्वापराहान्तिमपूर्वभागयोः 'षोडश षोडश नाडिकाः' पुण्याः मताः ॥ ५ ॥

भाषार्थः—सूर्यकी सङ्क्रान्तिकालसे पहले और पीछे १६-१६ दण्ड पुण्यकाल होता है, अर्थात् सूर्यकी सङ्क्रान्तिमें ३२ दण्ड पुण्यकाल होता है । यदि आधी रातके पहले सङ्क्रान्ति हो तो पूर्व दिनके उत्तरार्धमें, तथा आधी रातके बाद सङ्क्रान्ति हो तो आगेवाले दिनके पूर्वार्धमें १६ दण्ड पुण्यकाल होता है ॥५॥

उपपत्तिः—किसी भी ग्रहके-पूर्वराशिसे आगेकी राशिमें जानेको सङ्क्रान्ति कहते हैं । इसलिये वृत्ताकार सम्पूर्ण ग्रहबिम्ब जितने समयमें उस पूर्वापर राशिसन्धि बिन्दुको पार करता है उतने कालको पुण्यकाल कहते हैं । उस पुण्यकालको जाननेके लिये यह अनुपात किया जाता है कि यदि अहोरात्रमें उत्पन्न होने वाली ग्रहकी गतिकलामें अहोरात्रकी ६० घड़ी मिलती हैं

तो इस ग्रहकी बिम्बकलामें क्या ? तो उस ग्रहबिम्बका राशिसङ्क्रान्ति काल (पुण्य काल) होता है = $\frac{\text{६० × ग्र. विं. क.}}{\text{ग्र. ग. क.}}$ । यहां रवि (सूर्य)की मध्यबिम्बकलाका मान ३२′ और मध्यमा गति स्वल्पान्तरसे ६०′ मानी गयी है, इसलिये-पुण्यकाल (मध्यममानसे) = $\frac{\text{६० × ३२}}{\text{६०}}$ = ३२, दण्डके बराबर हुआ । अर्थात् मध्यम मानसे सूर्य ३२ दण्डमें राशि बिन्दुको पार करता है। इसलिये ठीक मध्य सङ्क्रान्ति (जब सूर्य बिम्बका केन्द्र बिन्दु राशिसन्धि बिन्दु पर जाता है) के पहले १६ दण्ड और पीछे १६ दण्ड पुण्यकाल कहा गया है (१)।

धर्मशास्त्रोंमें सङ्क्रान्तिके पुण्यकालमें स्नान, दान, जप आदि बहुत पुण्यप्रद कहे गये हैं। यदि रातमें सङ्क्रान्ति होती है तो उसमें स्नानादि धर्मकृत्य विशेष फलद नहीं होनेके कारण (२) मध्यरात्रिसे पूर्वकी सङ्क्रान्तिमें पहले दिनका उत्तरार्ध और आधी रातके बादकी सङ्क्रान्तिमें आगेके दिनके पूर्वार्धमें स्नान-दानादिके लिये पुण्यकाल माना गया है। क्योंकि मध्यरात्रसे पूर्व रात्रिखण्डको पूर्व दिनसे, और पर रात्रिखण्डको पर दिनसे सम्बन्ध रहता है।

सङ्क्रान्ति कालको पुण्यकाल इसलिये माना गया है कि दो दो राशियोंके योगबिन्दु (सन्धि स्थान) में जाने पर ग्रहोंके किरण दूषित हो जाते हैं। वे किरण मनुष्योंके ऊपर लगने पर अनेक तरहके दोष उत्पन्न करते हैं। अतः उसकी शान्तिके लिये सङ्क्रान्ति कालमें जलमें स्नान करना, दान-जप-पूजा-पाठ करना श्रेयस्कर बताये गये हैं। क्योंकि जलमें किरणका प्रभाव नहीं पड़ता और दान इत्यादि करनेसे मनुष्यके शरीरके ऊपर जो किरण के दोष लगते हैं वे देय वस्तुमें मिलकर निकल जाते हैं। इसीलिये सङ्क्रान्ति कालको धर्मशास्त्रोंमें पुण्यकाल बताया गया है ॥ ५ ॥

ठीक मध्यरात्रिमें सङ्क्रान्तिका पुण्यकाल और अयन सङ्क्रान्तिमें विशेषता—

पूर्णे निशीथे यदि संक्रमः स्याद्दिनद्वयं पुण्यमथोदयास्तात् ।
पूर्वं परस्ताद्यदि याम्यसौम्यायने दिने पूर्वपरे तु पुण्ये ॥ ६ ॥

अन्वयः—यदि पूर्णे निशीथे सङ्क्रमः स्यात् 'तदा' दिनद्वयं पुण्यं 'भवति। अथ, उदयास्तात् पूर्वं परस्तात् यदि याम्य-सौम्यायने 'सङ्क्रान्ती भवेतां' तदा, तु पूर्वपरे दिने पुण्ये 'भवेताम्' ॥ ६ ॥

भाषार्थः—यदि ठीक आधी रातके समय सङ्क्रान्ति हो तो पहले और पीछे दोनों दिनोंमें पुण्यकाल होता है।

यदि सूर्योदयके पहले 'रातमें मध्यरात्र के बाद' याम्यायन (कर्कको) सङ्-

---

(१) वास्तव पुण्यकाल वह है जब सूर्यका केन्द्र राशिबिन्दु पर जाता है। परन्तु वह सूक्ष्म (बहुत अल्प) समय रहता है।

(२) "रात्रौ स्नानं न कुर्वीत दानं चैव विशेषतः" इति वचनात् ।

क्रान्ति हो तो पहले दिनमें, और सूर्यास्तके बाद 'रातमें मध्यरात्रसे पहले' उत्तरायण (मकरकी) सङ्क्रान्ति हो तो पिछले दिनमें पुण्यकाल कहा गया है ॥ ६ ॥

वि०—पांचवें श्लोकमें अर्धरात्रिसे पूर्व-पर सङ्क्रान्तिका पुण्यकाल सामान्य रूपसे कहा गया है। यहां याम्य-सौम्य अयन सङ्क्रान्तिके पुण्यकालमें कुछ विशेषता है। अर्थात् मध्यरात्रसे सूर्योदयकाल तक यदि कर्ककी सङ्क्रान्ति हो तो पहले दिन और सूर्यास्तके बाद आधी रात तक मकरकी सङ्क्रान्ति हो तो पिछले दिन पुण्यकाल होता है।

जैसे गार्गिने कहा है—

"यदाऽस्तमनवेलायां मकरं याति भास्करः।
प्रदोषे चार्धरात्रे वा स्नानं दानं परेऽहनि ॥
अर्धरात्रे तदूर्ध्वं वा सङ्क्रान्तौ दक्षिणायने।
पूर्वमेव दिनं ग्राह्यं यावन्नोदयते रविः" इति ॥

अर्थः—यदि अर्धरात्रके बाद मकरकी सङ्क्रान्ति और अर्धरात्रके पूर्व कर्ककी सङ्क्रान्ति हो तो क्रमसे पर और पूर्व दिनमें पुण्यकाल पांचवें श्लोकसे ही सिद्ध है। अत एव यह सिद्ध हुआ कि यदि कर्ककी सङ्क्रान्ति रातमें हो तो पूर्व दिनमें और मकरकी सङ्क्रान्ति रातमें हो तो पर दिनमें पुण्यकाल होता है।

नोट—रातमें भी उदय-अस्तके आसन्न (सन्ध्या) समयमें याम्य-सौम्य-अयन सङ्क्रान्तिमें विशेषता आगे ७ वें श्लोकमें कहेंगे ॥ ६ ॥

सन्ध्याका प्रमाण और उसमें अयन सङ्क्रान्तिकी विशेषता—

**सन्ध्या त्रिनाडीप्रमिताऽर्कबिम्बादर्धोदितास्तादध ऊर्ध्वमत्र।
चेद्याम्यसौम्ये अयने क्रमात्स्तः पुण्यौ तदानीं परपूर्वघस्रौ ॥७॥**

अन्वयः—अर्धोदितास्तात् अर्कबिम्बात् अधः ऊर्ध्वं 'च' त्रिनाडीप्रमिता सन्ध्या 'भवति'। अत्र (सन्ध्यायाम्) चेद् याम्यसौम्ये अयने 'सङ्क्रमणे भवेताम्' तदानीं क्रमात् पर-पूर्वघस्रौ पुण्यौ स्तः ॥ ७ ॥

भाषार्थः—सबेरे आधे सूर्यबिम्बके उदय होनेके पूर्व ३ घड़ी प्रातः सन्ध्या और आधे सूर्यबिम्बके अस्त होनेके बाद ३ घड़ी सायं सन्ध्या कहलाती है।

प्रातः सन्ध्या-(सूर्योदयसे ३ घड़ी पूर्व) में याम्यायन (कर्ककी) सङ्क्रान्ति हो तो पर दिनमें पुण्यकाल होता है और सायं सन्ध्या-(सूर्यास्तके बाद ३ घड़ी) में सौम्यायन (मकरकी) सङ्क्रान्ति हो तो पूर्व (पहले) दिनमें ही पुण्यकाल होता है ॥ ७ ॥

वि०—इन दोनों (६–७) श्लोकोंसे यह सिद्ध हुआ कि सूर्योदयसे ३ घड़ी पहले यदि कर्ककी सङ्क्रान्ति हो तो पर दिनमें और उससे पूर्व सारी रातमें कर्कसङ्क्रान्ति होने पर

पूर्व ही दिनमें पुण्यकाल होता है। एवं सूर्यास्तके बाद ३ घड़ी तक मकरकी सङ्क्रान्ति हो तो पूर्व दिनमें तथा उसके बाद सारी रातमें मकरसङ्क्रान्ति होने पर पिछले ही दिन पुण्य होता है। दिनमें सङ्क्रान्ति होने पर उसी दिन पुण्यकाल होता है। अन्य १० राशियोंकी संक्रान्तिके पुण्यकाल ५ वें श्लोकके अनुसार होते हैं।

किसी २ देशमें—'स्नानं दानं ग्रहणवत् सौम्य-याम्यायनद्वये' इस कश्यपके वचनसे याम्यायन-सौम्यायन सङ्क्रान्तिके रातमें होने पर उसी समय (रातमें) ही स्नान दानादि किये जाते हैं। इसलिये देशाचार भी (जहां जैसी चाल हो) करना उचित ही है ॥ ७ ॥

सङ्क्रान्तियोंके पुण्यकालमें विशेषता—

याम्यायने विष्णुपदे चाद्या मध्यास्तुलाजयोः ।
षडशीत्यानने सौम्ये परा नाड्योऽतिपुण्यदाः ॥ ८ ॥

अन्वयः—याम्यायने विष्णुपदे च 'सङ्क्रमे' आद्याः 'षोडश नाड्यः' तुलाजयोः 'सङ्क्रमे' मध्याः 'षोडश नाड्यः' 'तथा' षडशीत्यानने सौम्ये 'च, सङ्क्रमे' पराः 'षोडश' नाड्यः अतिपुण्यदाः 'भवन्ति' ॥ ८ ॥

भाषार्थः—दक्षिणायन (कर्क) और विष्णुपद (२।५।८।११ राशिकी) सङ्क्रान्ति में पहलेकी १६ घड़ी अधिक पुण्यप्रदा है। तुला और मेषकी सङ्क्रान्तिमें मध्यवाली १६ घड़ी अर्थात् मध्यसङ्क्रान्ति कालसे ८ घड़ी पहले और ८ घड़ी पीछे अधिक पुण्यका समय होता है। षडशीतिमुख (३।६।९।१२ राशिकी) और उत्तरायण (मकरकी) सङ्क्रान्तिमें मध्यसङ्क्रान्तिके बाद की १६ घड़ी विशेष पुण्य देती हैं ॥ ८ ॥

वि०—यह श्लोक 'अह्निसङ्क्रमणे पुण्यमहः कृत्स्नं प्रकीर्तितम्' (अर्थात् दिनमें सङ्क्रान्ति होने पर उस दिन दिनभर पुण्यकाल होता है) इस वचनके ऊपर विशेषता स्पष्ट करता है कि किस सङ्क्रान्तिमें कितना काल विशेष पुण्यवान् है ॥ ८ ॥

सायन सङ्क्रान्तिका ज्ञान—

तथाऽयनांशाः खरसाहताश्च स्पष्टार्कगत्या विहृता दिनाद्यैः ।
मेषादितः प्राक् चलसंक्रमाः स्युर्दाने जपादौ बहुपुण्यदास्ते ॥९॥

अन्वयः—अयनांशाः खरसाहताः च (पुनः) स्पष्टार्कगत्या विहृताः, 'लब्धैः' दिनाद्यैः मेषादितः प्राक् चलसंक्रमाः स्युः। ते 'चलसंक्रमाः दाने जपादौ 'यथा निरयणसंक्रमाः' तथा बहुपुण्यदाः 'भवन्ति' ॥ ९ ॥

भाषार्थः—अयनांशाको ६० से गुण करके स्पष्ट सूर्यकी गतिसे भाग देनेसे जो दिनादि (दिन-घड़ी-पल) लब्धि मिले, मेषादि राशिकी संक्रान्तिसे उतने

दिनादि पहले चल (सायन) संक्रान्ति होती है। चल संक्रान्तिमें भी दान जप इत्यादि के फल निरयण संक्रान्तिके समान ही हैं ॥ ९ ॥

वि०—इस श्लोकमें अयनांशकी आवश्यकता होती है, इसलिये अयनांश बनानेकी रीति लिखता हूँ।

"शाकं भूनेत्रवेदोनं नन्दघ्नं दशभिर्हरेत्।
लब्धाश्चायनलिप्ताः स्युस्तत्रार्कस्तु लवीकृतः॥
त्रिगुणो नखभक्तश्च विकला योजितास्ततः।
कलिकाः षष्टिभक्तास्ते जायन्ते चायनांशकाः॥"

अर्थः—वर्तमान शाकामें ४२१ घटाकर शेषको ९ गुणाकरके १० से भाग देने पर अयनकी कला होती हैं। उसमें वर्तमान राश्यादि सूर्यके अंश बनाकर ३ से गुणा और २० से भाग देकर लब्धि तुल्य विकला जोड़ने तथा कलामें साठसे भाग देने पर अयनांश (अंशादि) होता है।

अयनांशका उदाहरण—

शाके १८६६ में सायन मकरकी सङ्क्रान्ति जाननेके लिये पहले अयनांश बनाना आवश्यक है। इसलिये इष्टशाके १८६६ मेंसे ४२१ घटाने पर शेष १४४५ को ९ से गुणा किया तो गुणनफल १३००५ में १० का भाग देनेसे लब्धि अयनकी कला-विकला वर्षके आदिमें हुई १३००'।३०"। इसमें इष्ट सूर्यकी राशि १०।• को अंश बनाकर ३००° उसे ३ से गुणा कर २० से भाग देने पर (३०० × ३ ÷ २० =) लब्धि ४५" विकलाको अयनकी। कलादिमें जोड़नेसे १३०१'।१५' हुआ। कलामें ६० का भाग देनेसे अयनांश २१°।४१'।४५" हुआ।

सायनसङ्क्रान्तिका उदाहरण—

अयनांशा २१°।४१'।४५" को ६० से गुणा करके गुणनफल १३०१°।४५'।०" में सूर्यकी स्पष्टा गति ६१'।१६" से भाग देने पर लब्धि दिनादि २१।१४।५० हुई। इसलिये निरयण मकरकी सङ्क्रान्ति (माघ कृष्ण चतुर्दशी शनिवार दण्डादि ३६।३७) से दिनादि २१।१४।५० पहले अर्थात् पौष शुक्ल ८ मी दण्डादि ११।४७ की सायन मकरकी सङ्क्रान्ति हुई ॥ ९ ॥

उपपत्तिः—

क्रान्तिवृत्तमें जहाँ अश्विनी नक्षत्र है वह बिन्दु निरयण मेषादि बिन्दु है सृष्टिके आदिमें नाड़ी-क्रान्तिवृत्तोंका सम्पात उसी विन्दुमें था। परन्तु उसके बाद वह सम्पात उस विन्दुसे पूर्व-पश्चिम चलता है। वर्तमान समयमें वह सम्पात जहाँ रहता है उस बिन्दुको सायन मेष कहते हैं और निरयण मेषसे सायन मेष बिन्दु पर्यन्त क्रान्तिवृत्तमें अयनांशा कहलाता है। वह अयनांशा २७ अंश परम पूर्व और वहाँसे लौटकर पुनः २७ अंश तक परम पश्चिम जाता है। पूर्वकी ओर रहने पर धन और पश्चिममें ऋण होता है।

अयनांशके चलनेकी प्रतीति—

आकाशके निर्मल रहने पर किसी रातमें किसी समय रेवती ताराको दुर्बीनसे देखकर क्रान्तिवृत्तमें उस बिन्दुसे विषुवद्-क्रान्तिवृत्तोंके सम्पात बिन्दुका अन्तर नाप कर जान लीजिये।

उसके बाद दूसरी रातमें ठीक उसी समय रेवतीतारा और सम्पात बिन्दुके अन्तरको नापिये। यदि पहली रातके अन्तरसे दूसरी रातका अन्तर भिन्न हो तो समझिये कि अयनांशा ठीक चलता है।, क्योंकि रेवती तारा (नक्षत्रमें गति नहीं होनेसे) तो स्थिर है, अत एव सम्पात ही चल है।

अयनांश सम्बन्धी दिनादि लानेकी युक्ति—

अयनांशाको ६० से गुणा करने पर कलायें होती हैं। अब यहाँ यह अनुपात होता है कि अपनी स्पष्टा गतिकलामें सूर्य एक दिन भुगतता है तो इन अयनकलाओंमें क्या ? लब्धिरूप अयनांशके दिनादि आते हैं $= \frac{\text{अयनकला} \times १}{\text{स्प. र. ग. क.}} = \frac{\text{अयनांशा} \times ६०}{\text{स्प. र. ग. क.}}$। वर्त्तमान समयमें अयनांशकी गति पूर्व 'धन' होनेसे निरयण संक्रान्तिसे सायन संक्रान्ति लब्धदिनादि तुल्य पहले होती है ॥ ९ ॥

नोट—वस्तुतः स्पष्टा गतिके प्रति दिन विलक्षण (भिन्नरूप) होनेसे उस गतिमें अनुपातमें स्थूलता होनेके कारण लब्ध दिनादिमें भी स्थूलता रहती है[1] ॥ ९ ॥

संक्रान्तिके उपयोगी सम-बृहत्-जघन्य-संज्ञक नक्षत्र—

समं मृदुक्षिप्रवसुश्रवोऽग्निमघात्रिपूर्वास्त्रिपभं, बृहत्स्यात् ।
ध्रुवद्विदैवादितिभं, जघन्यं सार्पाम्बुपार्द्रानिलशाक्रयाम्यम् ॥१०॥

अन्वयः—मृदुक्षिप्रवसुश्रवोऽग्निमघात्रिपूर्वास्त्रिपभं समं 'स्यात्'। ध्रुवद्विदैवादितिभं बृहत् स्यात्। सार्पाम्बुपार्द्रानिलशाक्रयाम्यं जघन्यं 'स्यात्' ॥ १० ॥

भाषार्थः—मृदुसंज्ञक, क्षिप्रसंज्ञक, धनिष्ठा, श्रवण, कृत्तिका, मघा, तीनों पूर्वा और मूल ये १५ नक्षत्र 'सम' संज्ञावाले हैं।

ध्रुवसंज्ञक, विशाखा, और पुनर्वसु ये ६ नक्षत्र 'बृहत्' संज्ञक हैं।

आश्लेषा, शतभिषा, आर्द्रा, स्वाती, ज्येष्ठा और भरणी ये ६ नक्षत्र 'जघन्य' संज्ञक हैं ॥ १० ॥

उपपत्तिः—इस श्लोकमें नक्षत्रोंके जो सम-बृहत्-जघन्य नाम रखे गये हैं वे उन नक्षत्रों के भोगके अनुरूप हैं। अर्थात् समसंज्ञा वाले १५ नक्षत्रोंके भोग मान (पृथक् २) चन्द्रमाकी गतिके समान हैं, इसलिये वे समसंज्ञक हैं। बृहत् संज्ञक ६ नक्षत्रोंके भोग मान चन्द्रगतिसे अधिक हैं इसलिये उनकी बृहत् संज्ञा है और जघन्य संज्ञावाले ६ नक्षत्रोंके भोगमान चन्द्रगतिसे अल्प होनेके कारण उनकी जघन्य संज्ञा रखी गई।

नक्षत्रोंके भोगमान जाननेकी युक्ति—

भगोलके तुल्य २७ टुकड़े ही अश्विनी आदि २७ नक्षत्र हैं। जिनकी आकृति नक्षत्र प्रकरणके ५८ वें श्लोकोक्त ताराओंसे जानी जाती है। प्रत्येक नक्षत्रकी मुख्य (चमकीली)

---

१. वेधसे अयनांशकी गति प्रति दिन ९''' प्रतिविकला, एवं वर्षमें ५४'' विकला होती है।

ताराके ऊपर किया गया कदम्बप्रोत वृत्त (जो दोनों कदम्बों और नक्षत्र बिम्ब पर गया हो) क्रान्तिवृत्तमें जहां छूता है, वहां उस नक्षत्रका स्थान होता है। उस स्थान बिन्दुसे मेषादि बिन्दुतक क्रान्तिवृत्तमें उस नक्षत्रकी ध्रुवा होती है। एवं प्रत्येक नक्षत्रोंकी ध्रुवायें जानकर समीपवर्त्ती दो २ नक्षत्रोंकी ध्रुवाओंका अन्तर उस २ नक्षत्रका भोग मान कहलाता है (देखिये सूर्यसिद्धान्तका गोलाध्याय) ॥ १० ॥

नक्षत्र भेदसे संक्रान्तिके मुहूर्त्त और फल—

जघन्यभे संक्रमणे मुहूर्ताः शरेन्दवो बाणकृता बृहत्सु ।
खरामसंख्याः समभे महर्घ-समर्घ-साम्यं विधुदर्शनेऽपि ॥ ११ ॥

अन्वयः—जघन्यभे 'रवेः' संक्रमणे 'सति' शरेन्दवः 'मुहूर्त्ताः, बृहत्सु बाणकृताः 'मुहूर्त्ताः' समभे खरामसङ्ख्याः 'मुहूर्त्ताः ज्ञेयाः'। 'तेषु क्रमेण' महर्घ-समर्घ-साम्यं 'फलं भवति'। 'तथा' विधुदर्शने अपि 'एवं फलं वाच्यम्' ॥ ११ ॥

भाषार्थः—'दशवें श्लोकमें कहे गये' जघन्य संज्ञक नक्षत्रोंमें संक्रान्ति होने पर १५ मुहूर्त्त, बृहत् संज्ञक नक्षत्रोंमें ४५ मुहूर्त्त और सम संज्ञक नक्षत्रोंमें ३० मुहूर्त्त होते हैं। १५ मुहूर्तवाले मासमें अन्नादिका भाव महंगा, ४५ मुहूर्त्तवाले मासमें सस्ता और ३० मुहूर्तवाले मासमें समता (साधारण) रूपमें रहता है।

चन्द्रमाके दर्शनमें भी यही फल कहना चाहिये। अर्थात् यदि शुक्लपक्षकी द्वितीयामें चन्द्रमा जघन्य नक्षत्रमें उदित हो तो उस मासमें महँगा, बृहत् नक्षत्रमें उदित हो तो सस्ता और समनक्षत्रमें उदित हो तो साधारण भाव रहता है॥११॥

उपपत्तिः—जघन्य नक्षत्रोंका भोगमान स्वल्पान्तरसे चन्द्रगतिका आधा $= \frac{\text{च. ग}}{२}$। बृहत्का भोगमान चन्द्रगतिका ड्योढ़ा $= \frac{\text{च ग ३}}{२}$। समनक्षत्रका भोगमान चन्द्रगतिके समान= च. ग. (देखिये १० वें श्लोककी उपपत्ति)।

अब यहां अनुपात होता है कि यदि चन्द्रमाकी गतिमें अहोरात्रकी ६० घड़ी तो जघन्यके भोगमानमें क्या ? लब्धि जघन्यको भोग घड़ी $= \frac{६० \times \text{जघन्यभोग}}{\text{च. ग.}}$, इसमें जघन्यके भोग $\frac{\text{च. ग.}}{२}$ का उत्थापन देनेसे $= \frac{६०\ \text{चं. ग.}}{\text{च. ग.}\ \ २} = ३०$ घड़ी।

एवं बृहतकी घड़ी $= \frac{६० \times \text{बृहत भोग}}{\text{चं. ग.}} = \frac{६० \times \text{चं. ग.} \times ३}{\text{चं ग} \times २} = ९०$ घड़ी।

सम घड़ी $= \frac{६० \times \text{सम भोग}}{\text{चं. ग.}} = \frac{६० \times \text{चं ग.}}{\text{चं. ग.}} = ६०$ घड़ी।

'मुहूर्तो द्विघटीमितः, इस वचनके अनुसार २ घड़ीका १ मुहूर्त्त होता है, इसलिये घड़ियों में २ से भाग देने पर जघन्यके मुहूर्त्त = ३० ÷ २ = १५। बृहत्के मुहूर्त्त = ९० ÷ २ = ४५, और समके मुहूर्त्त = ६० ÷ २ = ३०, उपपन्न हुए ॥ ११ ॥

कर्ककी संक्रान्तिमें वर्षका विंशोपक—

अर्कादिवारे संक्रान्तौ कर्कस्याब्दविंशोपकाः ।
दिशो नखा गजाः सूर्या धृत्योऽष्टादश सायकाः ॥ १२ ॥

अन्वयः—अर्कादिवारे कर्कस्य संक्रान्तौ 'क्रमात्' दिशः, नखाः, गजाः, सूर्याः, धृत्यः, अष्टादश, सायकाः एते अब्दविंशोपकाः 'भवन्ति' ॥ १२ ॥

भाषार्थः—कर्ककी संक्रान्ति यदि रविवारमें हो तो १०, सोमवारमें २०, मङ्गलवारमें ८, बुधवारमें १२, बृहस्पतिवारमें १८, शुक्रवारमें १८ और शनिवारमें ५ वर्षका विंशोपक होता है। अर्थात् उस वर्षमें शुभफलकी परिमिति कथित विश्वाके समान होती है ॥ १२ ॥

करणभेदसे संक्रान्ति कालमें सूर्यकी स्थिति और उसका फल—

स्यात्तैतिले नागचतुष्पदे रविः सुप्तो निविष्टस्तु गरादिपञ्चके ।
किंस्तुघ्न ऊर्ध्वः शकुनौ सकौलवे नेष्टः समः श्रेष्ठ इहार्घवर्षणे॥१३॥

अन्वयः—तैतिले नागचतुष्पदे 'करणे' रविः सुप्तः 'सन् संक्रमति'। गरादिपञ्चके 'करणे' तु 'रविः' निविष्टः 'सन् संक्रमति'। किंस्तुघ्ने 'तथा' सकौलवे शकुनौ 'करणे रविः' ऊर्ध्वः 'सन् संक्रमति'। इह अर्घ-वर्षणे 'क्रमात्' नेष्टः, समः, श्रेष्ठः 'स्यात्' ॥१३॥

भाषार्थः—तैतिल, नाग और चतुष्पद करणोंमें यदि संक्रान्ति हो तो उस समय सूर्य सोये हुए संक्रमण करते हैं। गरसे ५ करणों (गर-वणिज-भद्रा-बव-बालव) में सूर्य बैठ कर संक्रमण करते हैं और किंस्तुघ्न-कौलव-शकुनि करणोंमें सूर्य ऊर्ध्व (खड़े) होकर संक्रमण करते हैं। इन स्थितियोंमें अन्नादिके भाव तथा वर्षामें अशुभ मध्य और श्रेष्ठ फल होते हैं, अर्थात् जब सूर्य सोये हुये संक्रमण करें तो उस मासमें अन्नादिके भाव और वर्षामें अशुभ, बैठे हुये वाले मासमें साधारण और उठे हुये वाले मासमें उत्तम फल समझना चाहिये ॥ १३ ॥

करणोंके भेदसे संक्रान्तिके वाहन आदि और उनके फल—

सिंहव्याघ्रवराहरासभगजा वाहद्विषद्घोटकाः
श्वाऽजो गौश्चरणायुधश्च बवतो वाहा रवेः संक्रमे ।

वस्त्रं श्वेतसुपीतहारितकपाण्ड्वारक्तकालासितं
चित्रं कम्बलदिग्घनाभमथ शस्त्रं स्याद्भुशुण्डी गदा ॥१४॥
खड्गो दण्डशरासतोमरमथो कुन्तश्च पाशोऽङ्कुशो-
ऽस्त्रं बाणस्त्वथ भक्ष्यमन्नपरमान्नं भैक्ष्यपक्वान्नकम् ।
दुग्धं दध्यपि चित्रितान्नगुडमध्वाज्यं तथा शर्करा-
ऽथो लेपो मृगनाभिकुङ्कुममथो पाटीरमृद्रोचनम् ॥ १५ ॥
यावश्चौतुमदो निशाञ्जनमथो कालागुरुश्चन्द्रको
जातिर्दैवतभूतसर्पविहगाः पश्वेणविप्रास्ततः ।
क्षत्त्रावैश्यकशूद्रसङ्करभवाः पुष्पं च पुन्नागकं
जातीबाकुलकेतकानि च तथा बिल्वार्कदूर्वाम्बुजम् ॥ १६ ॥
स्यान्मल्लिका पाटलिका जपा च संक्रान्तिवस्त्राशनवाहनादेः ।
नाशश्च तद्वृत्त्युपजीविनां च स्थितोपविष्टस्वपतां च नाशः ॥१७॥

अन्वयः—बवतः (बवाद्येकादशकरणेषु) रवेः संक्रमे 'सति, क्रमेण' सिंह व्याघ्र-वराह-रासभ-गजाः वाहद्विषद्-घोटकाः श्वा, अजः, गौः, चरणायुधश्च 'एते' वाहाः 'भवन्ति' ।

श्वेत-सुपीत-हारितक-पाण्ड्वारक्त-काला-सितं, चित्रं, कम्बल-दिग्घनाभं वस्त्रं 'ज्ञेयम्' ।

अथ भुशुण्डी, गदा, खड्गः, दण्डशरासतोमरं, अथो कुन्तः 'च' पाशः, अङ्कुशः, अस्त्रं, बाणः 'एतत्, शस्त्रं' स्यात् ।

अथ तु, अन्न-परमान्नं भैक्ष्य-पक्वान्नकं, दुग्धं, दधि अपि, चित्रितान्न-गुड-मध्वाज्यं तथा शर्करा 'एतत्' भक्ष्यं स्यात् ।

अथ मृगनाभि-कुङ्कुमं अथो पाटीर-मृद्-रोचनं, यावः 'च' (पुनः) ओतुमदः निशाञ्जनं अथो कालागुरुः चन्द्रकः लेपः स्यात् ।

तथा दैवत-भूत-सर्प विहगाः, पश्वेणविप्राः ततः क्षत्त्रावैश्यक-शूद्र-शङ्करभवाः 'एषा' जातिः 'स्यात्' ।

च (पुनः) पुन्नागकं जाती-बाकुल-केतकानि तथा च बिल्वार्कदूर्वाम्बुजं मल्लिका पाटलिका जपा च 'एतत्' पुष्पं स्यात् ।

अथ 'स्वसंक्रान्तिमासे' संक्रान्तिवस्त्राशनवाहनादेः नाशः, तद्वृत्त्युपजीविनां च नाशः 'तथा' स्थितोपविष्टसुप्तसंक्रान्तिकाले, 'क्रमेण' स्थितोपविष्टस्वपतां च नाशः 'भवति' ॥ १४–१७ ॥

भाषार्थः—*बव आदि ११ करणोंमें सूर्यकी संक्रान्ति हो तो क्रमसे १ सिंह, २ बाघ, ३ शूकर, ४ गधा, ५ हाथी, ६ भैंसा, ७ घोड़ा, ८ कुत्ता, ९ भेंडा, १० बैल, ११ मुर्गा ये वाहन (सवारी) होते हैं ।

१ उजला, २ पीला, ३ हरा, ४ पाण्डु (लाल-उजला मिला हुआ) वर्ण, ५ लाल, ६ काला, ७ कज्जलवर्ण, ८ अनेकवर्ण, ९ कम्बल, १० दिगम्बर (विना वस्त्र), ११ श्यामवर्ण इतने रङ्गके उनके वस्त्र होते हैं ।

१ भुशुण्डी, २ गदा, ३ तलवार, ४ दण्ड, ५ धनुष, ६ तोमर (गड़ाँसा), ७ भाला, ८ पाश, ९ अङ्कुश, १० अस्त्र, ११ बाण ये शस्त्र होते हैं ।

१ अन्न (भात), २ खीर (पायस), ३ भिक्षाका अन्न, ४ पक्वान्न (पूआ मालपूआ आदि), ५ दूध, ६ दही, ७ चित्रान्न (खिचरी), ८ गुड़, ९ मधु (शहद), १० घृत, ११ शक्कर ये उनके भक्ष्य (खानेकी वस्तु) होते हैं ।

१ कस्तूरी, २ कुङ्कुम, ३ चन्दन, ४ मिट्टी, ५ गोरोचन, ६ महावड़, ७ विल्लीका पसीना, ८ हल्दी, ९ काजल, १० अगरु और ११ कपूर ये उनके लेपन होते हैं ।

१ देवता, २ भूत, ३ सर्प, ४ पक्षी, ५ पशु, ६ मृगा, ७ ब्राह्मण, ८ क्षत्रिय, ९ वैश्य, १० शूद्र और ११ वर्णशङ्कर (दोगला) ये उनकी जाति हैं ।

१ नागकेशर, २ जाती (मालती), ३ बकुल (मौलसरी), ४ केतकी, ५ बिल्व (बेल), ६ अर्क (मदार-अकवन), ७ दूभ, ८ कमल, ९ बेली, १० पाटलिका (गुलाब) और ११ ओढ़ुल ये उनके पुष्प हैं ।

ऊपर कहे गये वाहनादिका फल—

करण भेदसे जिस संक्रान्तिके जो वाहन-वस्त्रादि कहे गये हैं उस महीनेमें उनका नाश होता है तथा उन वस्तुओंसे जिनकी जीविका चलती है (अर्थात् जो उन वस्तुओंके व्यापारसे ही अपना जीवन चलाते हैं) उनका भी नाश होता है ।

सूर्यके बैठे रहने पर होने वाली संक्रान्तिके (श्लोक १२ वां देखिये) समय बैठे हुए मनुष्योंका नाश होता है । सूर्यके सोये रहने पर होने वाली संक्रान्तिके समय सोने वाले मनुष्योंका और सूर्यके खड़े रहने पर होनेवाली संक्रान्तिके समय

* बव १, बालव २, कौलव ३, तैतिल ४, गर ५, वणिज ६, भद्रा ७, शकुनि ८, चतुरंघ्रि ९, नाग १० और किंस्तुघ्न ११ ये ग्यारह करण हैं । इनका विवरण शुभाशुभ प्रकरण के ४३ वें श्लोकको उपपत्तिमें लिखे जा चुके हैं ।

खड़े रहने वाले मनुष्योंका नाश होता है । (नाशका अर्थ-उन्हें हानि तकलीफ इत्यादि कहना चाहिये) ।

तात्पर्य यह है कि जिस संक्रान्तिकी जो स्थिति है उस अवस्थामें उस संक्रान्तिके समय मनुष्योंको नहीं रहना चाहिये ॥ १४–१७ ॥

वि०—करणोंका मान पञ्चाङ्गोंमें लिखा रहता है। संक्रान्तिके समय करणका ज्ञान करके उसका फल कहना चाहिये । अन्य ग्रन्थमें करणोंमें संक्रान्तिकी अवस्था तथा भोजनपात्र भी लिखे हैं । जैसे—

अवस्थायें—

"शिशुः[1] कुमारी च[2] गतालका[3] युवा[4] प्रौढा[5] प्रगल्भा[6] च ततश्च वृद्धा[7] ।
वन्ध्या[8]-ऽतिवन्ध्या[9] च सुतार्थिनी[10] च प्रव्राजिका[11] चेति ववादिकानाम् ॥"

भोजनपात्र—

"सुवर्ण[1]-रौप्य[2]-ताम्राणि[3] लोहं[4] सीसं[5] त्रपुस्तथा[6] ।
कांस्य[7]-पाषाण[8]-काष्ठं[9] च मृत्पात्रं[10] वेणुपात्रकम्[11] ॥" स्पष्टार्थ ॥ १४–१७ ॥

सङ्क्रान्तिके वाहनादि जाननेका स्पष्ट कोष्ठक—

करण	स्थिति	वाहन	वस्त्र	शस्त्र	भक्ष्य	लेपन	जाति	पुष्प	वयम	पात्र
१ बव	उपविष्ट	सिंह	श्वेत	भुशुण्डी	भात	कस्तूरी	देवता	नागके.	शिशु	सोना
२ बालव	उपविष्ट	बाघ	पीत	गदा	पायस	कुंकुम	भूत	चमेली	कुमारी	चान्दी
३ कौलव	ऊर्ध्व	वराह	हरा	खड्ग	भिक्षा	चन्दन	सर्प	मौलस.	किशोरी	तांबा
४ तैतिल	सुप्त	गधा	पाण्डु	दण्ड	पक्वान्न	मिट्टी	पक्षी	केतकी	युवा	लोहा
५ गर	उपविष्ट	हाथी	लाल	धनुष	दूध	गोरोचन	पशु	बेल	प्रौढ़ा	सीसा
६ वणिज	उपविष्ट	भैंसा	काला	तोमर	दही	आलता	मृग	मदार	प्रगल्भा	रांगा
७ भद्रा	उपविष्ट	घोड़ा	असित	भाला	खिचरी	ओतुमद	विप्र	दूम	वृद्धा	कांसा
८ शकुनि	ऊर्ध्व	श्वान	चित्र	पाश	गुड़	हल्दी	क्षत्री	कमल	बन्ध्या	पत्थर
९ चतुष्पद	सुप्त	भेड़ा	कम्बल	अङ्कुश	मधु	अञ्जन	वैश्य	बेली	अतिव.	काष्ठ
० नाग	सुप्त	बैल	दिशा	अस्त्र	घी	अगरु	शूद्र	गुलाब	सुतार्थी	मिट्टी
१ किंस्तुघ्न	ऊर्ध्व	मुर्गा	श्याम	बाण	शक्कर	कपूर	सङ्कर	ओढ़ूल	प्रव्राज	बांस

संक्रान्ति दिनवाले नक्षत्रसे जन्मनक्षत्रके शुभाशुभ फल—

संक्रान्तिधिष्ण्याधरधिष्ण्यतस्त्रिभे स्वभे निरुक्तं गमनं ततोऽङ्गभे ।
सुखं त्रिभे पीडनमङ्गभेंऽशुकं त्रिभेऽर्थहानी रसभे धनागमः ॥१८॥

अन्वयः—संक्रान्तिधिष्ण्याधरधिष्ण्यतः त्रिभे स्वभे सति गमनं निरुक्तम् । ततः अङ्गभे सुखं 'निरुक्तम्' । ततः त्रिभे पीडनम्, ततः अङ्गभे अंशुकम्, ततः त्रिभे अर्थहानिः, ततः रसभे धनागमः 'स्यात्' ॥ १८ ॥

भाषार्थः—संक्रान्तिके समय जो नक्षत्र हो उसके पहले नक्षत्रसे ३ नक्षत्रोंमें अपना जन्म नक्षत्र हो तो उसे उस मासमें यात्रा करनी पड़े। उसके बाद ६ नक्षत्रोंमें जन्मनक्षत्र पड़े तो उस मासमें सुख मिले । उसके बाद ३ नक्षत्रोंमें पड़ने से पीड़ा, उसके बाद ६ नक्षत्रोंमें वस्त्रका लाभ, उसके बाद ३ नक्षत्रोंमें धनका नाश और उसके बाद ६ नक्षत्रोंमें जन्म नक्षत्र पड़े तो उस मासमें उसे धनका लाभ होता है । स्पष्टार्थ चक्र देखिये—॥ १८ ॥

नक्षत्रोंमें	३	६	३	६	३	६
फल	गमन	सुख	पीड़ा	वस्त्रलाभ	धनहानि	धनागम

ग्रहबलमें कर्त्तव्य कार्य—

नृपेक्षणं सर्वकृतिश्च सङ्गरः शास्त्रं विवाहो गम-दीक्षणे रवेः ।
वीर्येऽथ तारावलतो विधुर्विधोर्बलाद्रविस्तद्बलतः शुभाः परे ॥१९॥

अन्वयः—रवेः (सूर्यादेः) वीर्ये 'क्रमेण' नृपेक्षणं, सर्वकृतिश्च, सङ्गरः, शास्त्रं, विवाहः, गम-दीक्षणे, 'एतत् शुभं भवति' अथ तारावलतः विधुः शुभः, विधोः बलात् रविः 'शुभः' 'तथा' तद्बलतः (रविबलतः) परे शुभाः 'भवन्ति' ॥ १९ ॥

भाषार्थः—सूर्य बली हो तो राजाका दर्शन, चन्द्रमा बली हो तो शास्त्रका पठन पाठन, गुरु बली हो तो विवाह, शुक्रके बली होने पर गमन (यात्रा) और शनि बली हो तो दीक्षा (मन्त्रग्रहण) लेनी चाहिये ।

ताराके बली रहने पर चन्द्रमा शुभ होता है । चन्द्रमाके बलसे सूर्य बली (शुभ) होता है और सूर्यके बली होने पर सभी (भौम आदि ग्रह) शुभ हो जाते हैं ।

जैसे किसीकी जन्मराशिसे अशुभ (गोचर प्रकरणोक्त) स्थानमें चन्द्रमा प्रवेश करता हो उस समय यदि उसकी तारा बली हो तो वह चन्द्रमा अशुभ

नहीं बल्कि शुभ होता है । एवं सूर्यके अशुभ स्थानमें जाते समय यदि चन्द्रमा शुभ हो तो वह सूर्य भी उस मासमें उसका शुभ ही होता है और मङ्गल आदि ग्रहोंके अशुभ स्थानमें जाते समय सूर्यके बली (शुभ) होनेसे वे सब शुभ हो जाते हैं ॥ १९ ॥

अधिमास और क्षयमासके लक्षण—

स्पष्टार्कसंक्रान्तिविहीन उक्तो मासोऽधिमासः क्षयमासकस्तु ।
द्विसंक्रमस्तत्र विभागयोः स्तस्तिथेर्हि मासौ प्रथमान्त्यसंज्ञौ ॥

अन्वयः—स्पष्टार्कसंक्रान्तिविहीनः मासः अधिमासः उक्तः । क्षयमासकस्तु द्विसंक्रमः 'मासः' उक्तः । तत्र तिथेः विभागयोः (पूर्वापरार्धयोः) प्रथमान्त्यसंज्ञौ मासौ स्तः ॥ २० ॥

भाषार्थः—'शुक्लपक्षवाली पड़िवाके आदिसे अमावसके अन्त तक' चान्द्रमासमें यदि स्पष्ट सूर्यकी संक्रान्ति नहीं हो तो उस चान्द्रमासको अधिमास (मलमास) कहा जाता है । यदि एक 'चान्द्र' मासके भीतर स्पष्ट सूर्यकी दो वार संक्रान्ति हो तो वह मास क्षयमास कहलाता है । उस क्षयमासमें 'किसीका जन्म या मरण होने पर' तिथिके पूर्वापर विभागके अनुसार पहला या आगेका मास लेना चाहिये । अर्थात् यदि तिथिके पूर्वार्धमें जन्म या मरण हो तो उस जातकका वर्धापन तथा मृतकका वार्षिक श्राद्ध पहले मासमें करे और तिथिके परार्ध (आधेके बाद) में जन्म या मरण हो तो उसका वर्धापन या वार्षिक श्राद्ध अग्रिम मासमें करे ॥ २० ॥

अधिमास और क्षयमासकी उपपत्तिः—

लोकमें विशेषकर सौर और चान्द्रमासकी ही गणना प्रसिद्ध है । सूर्यके एक राशि भोग कालको सौर मास और दो अमान्तके भीतरवाले काल (३० तिथि) को चान्द्र मास कहते हैं । सौरमासकी दिनसंख्यासे चन्द्रमासकी दिनसंख्यासे कम होती है । इन दोनोंका अन्तर अधिशेष है । वह अधिशेष बढ़ता २ करीब ३२॥ मासमें एक चान्द्रमासके बराबर होता है वही अधिमास होता है । उस समय (प्रत्येक ३२॥ मास पर) सौर माससे चान्द्रमास एक अधिक होता है ।

शुद्ध चान्द्रमास वे हैं, जिनमें एक २ सूर्यकी संक्रान्ति होती है । जैसे चैत्र शुक्ल पड़िवासे वैशाखकी अमावसके भीतर मेषकी संक्रान्ति हो तो वह शुद्ध चैत्र चान्द्रमास है । एवं वैशाख शुक्ल पड़िवासे ज्येष्ठ अमावसके भीतर वृषकी संक्रान्ति होनेसे शुद्ध वैशाख, इसी तरह आगे भी समझिये । परन्तु जब अधिशेष एक चान्द्रमासके बराबर होता है तो प्रथम अमावसके पहले

सूर्य संक्रान्ति होकर फिर दूसरी अमावसके बाद सूर्यकी संक्रान्ति होती है और बीच वाला वह चान्द्रमास संक्रान्तिसे रहित होता है इसलिये उसका नाम अधिमास या मलमास होता है।

इसी तरह जब कभी सौरमासकी दिन संख्या चान्द्रमासकी दिनसंख्यासे कम होती हैं तो सौरमास ही चान्द्रमाससे अधिक होता है। शुद्ध चान्द्रमास उस वर्षमें ११ ही होते हैं उस अवस्थामें प्रथम अमावसके बाद सूर्यकी एक संक्रान्ति होकर फिर दूसरी अमावसके पहले ही सूर्यकी दूसरी संक्रान्ति होती है और वह मास दो संक्रान्तियुक्त होनेसे दोनों मास कहलाने लायक होता है; परन्तु वास्तवमें वह चान्द्रमास एक ही रहता है इस लिये उसे क्षयमास कहते हैं। वह क्षयमास बहुत दिनोंमें जब सूर्य नीचासन्नमें रहता है तो होता है (देखिये सूर्यसिद्धान्तमें मेरा 'तत्वामृत' भाष्य)

नोट—क्षयमासमें जन्म-मरण होने पर तिथिके पूर्व-पर-भागके भेदसे प्रथम और अग्रिम मास लेनेका वचन—

तिथ्यर्धे प्रथमे पूर्वोऽपरस्मिन्नपरस्तथा।
मासाविति बुधैश्चिन्त्यौ क्षयमासस्य मध्यगौ॥ इति॥ २०॥

इति मुहूर्तचिन्तामणौ संक्रान्तिप्रकरणम्॥ ३॥

अथ गोचरप्रकरणम्॥ ४॥

इस प्रकरणमें ग्रहोंकी तात्कालिक स्थितिके अनुसार मनुष्योंके शुभाशुभ फलका विचार किया जायगा, इसलिये इसका नाम गोचर प्रकरण रखा गया।

मनुष्योंकी जन्मराशिसे ग्रहोंके शुभ और वेधस्थान—

सूर्यो रसान्त्ये खयुगेऽग्निनन्दे शिवाक्षयोर्भौम-शनी तमश्च।
रसाङ्कयोर्लाभशरे गुणान्त्ये चन्द्रोऽम्बराब्धौ गुणनन्दयोश्च॥१॥
लाभाष्टमे चाद्यशरे रसान्त्ये नगद्वये ज्ञो द्विशरेऽब्धिरामे।
रसाङ्कयोर्नागविधौ खनागे लाभव्यये देवगुरुः शराब्धौ॥२॥
द्व्यन्त्ये नवांशेऽद्रिगुणे शिवाष्टौ शुक्रः कुनागे द्विनगेऽग्निरूपे।
वेदाम्बरे पञ्चनिधौ गजेषौ नन्देशयोर्भानुरसे शिवाग्नौ॥३॥
क्रमाच्छुभो विद्ध इति ग्रहः स्यात् पितुः सुतस्यात्र न वेधमाहुः।
दुष्टोऽपि खेटो विपरीतवेधाच्छुभो द्विकोणे शुभदः सितेऽब्जः॥४॥

अन्वयः—'स्वजन्मराशेः' सूर्यः—रसान्त्ये, खयुगे, अग्निनन्दे, शिवाक्षयोः 'क्रमात् शुभः स्यात् विद्धश्च स्यात्'। भौमशनी, तमश्च रसाङ्कयोः, लाभशरे, गुणान्त्ये 'क्रमात् शुभः विद्धश्च स्यात्'। चन्द्रः-अम्बराब्धौ गुणनन्दयोः च (पुनः) लाभाष्टमे, आद्यशरे,

रसान्त्ये, नगद्वये च 'क्रमात् शुभः विद्धश्च स्यात्'। ज्ञः–द्विशरे, अब्धिरामे, रसाद्व्योः, नागविधौ, खनागे, लाभव्यये च 'क्रमात् शुभः विद्धश्च स्यात्'। देवगुरुः—शराब्धौ, द्व्यन्त्ये, नवांशे, अद्रिगुणे, शिवाहौ च 'क्रमात् शुभः विद्धश्च स्यात्'। शुक्रः—कुनागे, द्विनगे, अग्निरूपे, वेदाम्बरे, पञ्चनिधौ, गजेषौ, नन्देशयोः, भानुरसे, शिवाग्नौ च इति (एवं प्रकारेण) ग्रहः क्रमात् शुभः, विद्धः स्यात्। अत्र पितुः सुतस्य वेधं 'आचार्याः' न आहुः। 'अथ' दुष्टः अपि खेटः विपरीतवेधात् शुभः भवति। 'तथा' अब्जः (चन्द्रः) सिते पक्षे द्विकोणे शुभदः भवति॥ १–४॥

मनुष्यको जन्मराशिसे सूर्य छठे स्थानमें शुभ होता है, यदि १२ वें स्थानमें कोई ग्रह नहीं हो। अर्थात् यदि १२ वें स्थानमें कोई ग्रह रहे तो उससे सूर्यको वेध होता है। याने ऐसी हालतमें ६ ठे स्थान वाला सूर्य उस मनुष्यके लिये हानिकर होता है। इसी तरह सूर्य १० वें स्थानमें शुभ होता है, यदि ४ थेमें कोई ग्रह हो तो वेध होता है। एवं ३ रे और ११ वें स्थानमें सूर्य शुभ होता है यदि क्रमसे ९ वें और ५ वें स्थानमें ग्रह नहीं हो।

मङ्गल, शनि और राहु–ये तीनो ग्रह जन्मराशिसे ६ ठेमें शुभ ९ वेंमें ग्रहके रहनेसे विद्ध, ११ वेंमें शुभ, ५ वें ग्रह होनेसे विद्ध और ३ रेमें शुभ, १२ वेंमें ग्रह रहनेसे विद्ध होते हैं। अर्थात् इन तीन ग्रहोंके ६।११।३ स्थान शुभ हैं यदि क्रमसे ९।५।१२ स्थानोंमें कोई ग्रह नहीं हो।

चन्द्रमा–जन्मराशिसे १०।३।११।१।६।७ स्थानोंमें शुभ होता है, यदि क्रमसे–४।९।८।५।१२।२ इन स्थानोंमें ग्रह नहीं हो।

बुध जन्मराशिसे ११।४।६।८।१०।११ स्थानोंमें शुभ होता है, यदि क्रमसे—५।३।९।१।८।१२ इन स्थानोंमें ग्रह नहीं रहे।

बृहस्पति—५।२।९।७।११ स्थानोंमें शुभ होता है, यदि क्रमसे ४।१२।१०।३।८ इन स्थानोंमें ग्रह नहीं हो।

शुक्र—१।२।३।४।५।८।९।१२।११ स्थानोंमें शुभ होता है, यदि क्रमसे ८।७।१।१०।९।५।११।६।३ इन स्थानोंमें कोई ग्रह नहीं हो।

यहाँ वेधविचारमें पिता–पुत्रका वेध नहीं होता। जैसे—चन्द्र और बुधको तथा सूर्य और शनिको परस्पर वेधका लक्षण रहने पर भी वह वेध नहीं माना जाता। विपरीत (उलटा) वेध होने पर अशुभ ग्रह भी शुभ हो जाता है। अर्थात् वेध स्थानमें ग्रह पड़े और उस ग्रहका जो शुभ स्थान कहा गया है उसमें कोई ग्रह रहे तो वह शुभ ही होता है। जैसे—मङ्गल या शनि ९ वें स्थानमें हो और

६ ठेमें कोई ग्रह पड़ जाय तो यह उलटा वेध होता है, जो शुभ है।

एवं चन्द्रमा शुक्ल पक्षमें २।९।५ स्थानोंमें शुभ होता है, यदि क्रमसे ६।८।४ स्थानोंमें ग्रह नहीं रहे ॥ १-४ ॥

ग्रहोंके शुभस्थान और वेधस्थान जाननेका कोष्ठ—

ग्रहके नाम	सूर्य				चन्द्रमा						मं.श.रा.के.		
शुभस्थान	६	१०	३	११	१०	३	११	१	६	७	६	११	३
वेधस्थान	१२	४	९	५	४	९	८	५	१२	२	९	५	१३

ग्रह	बुध						बृहस्पति					शुक्र								
शुभस्भान	२	४	६	८	१०	११	५	२	९	७	११	१	२	३	४	५	८	९	१२	११
वेधस्थान	५	३	९	१	८	१२	४	१२	१०	३	८	८	७	१	१०	९	५	११	६	३

ग्रहोंके वेधमें भेद—

स्वजन्मराशेरिह वेधमाहुरन्ये ग्रहाधिष्ठितराशितः सः ।
हिमाद्रिविन्ध्यान्तर एव वेधो न सर्वदेशेष्विति काश्यपोक्तिः ॥५॥

अन्वयः—(क्रमवेधे वामवेधे च) अन्ये (नारदादयः) स्वजन्मराशेः वेधं आहुः। 'परन्तु द्विविधोऽपि वेधः' ग्रहाधिष्ठितराशितः 'भवति' तथा सः वेधः हिमाद्रिविन्ध्यान्तरे एव 'भवति', सर्वदेशेषु न, इति काश्यपोक्तिः 'अस्ति' ॥ ५ ॥

भाषार्थः—नारद आदि अन्य आचार्योंका मत है कि ग्रहोंका वेध जन्म राशिसे होता है। जैसे सूर्य जन्मराशिसे छठे हो और जन्मराशिसे १२ वें दूसरा ग्रह रहे तो सूर्यको उस ग्रहसे वेध होगा। परन्तु कश्यपजीका मत है कि वह वेध ग्रहकी राशिसे होता है। अर्थात् सूर्य जब छठे स्थानमें रहे तो सूर्यसे १२ वें स्थानमें ग्रह रहनेसे अथवा यदि सूर्य १२ वें हो तो सूर्यसे छठे ग्रह रहनेसे सूर्यको वेध होगा एवं सर्वत्र विचारिये।

काश्यपजीका मत है कि यह द्विविध वेध हिमालय और विन्ध्य पर्वतके बीचवाले देश (उत्तरी भारत) में ही होता है। अन्य देशोंमें यह वेध दोषावह नहीं होता।

वि०—वेधके विषयमें द्विविध मत होने पर भी वेध वस्तुतः ग्रहाधिष्ठित राशिसे ही होना चाहिये । क्योंकि वेध ग्रहका होता है, जन्म राशिका नहीं ॥ ५ ॥

जन्मनक्षत्र और जन्मराशिसे ग्रहणका फल—

जन्मर्क्षे निधनं ग्रहे जनिभतो घातः क्षतिः श्रीर्व्यथा
चिन्ता सौख्य-कलत्रदौस्थ्य-मृतयः स्युर्माननाशः सुखम् ।
लाभोपाय इति क्रमात्तदशुभध्वस्त्यै जपः स्वर्णगो-
दानं शान्तिरथो ग्रहं त्वशुभदं नो वीक्ष्यमाहुः परे ॥ ६ ॥

अन्वयः—जन्यर्क्षे ग्रहे 'सति' निधनं 'भवेत्' । 'अथ' जनिभतः (जन्मराशितः) 'क्रमेण' घातः, क्षतिः, श्रीः, व्यथा, चिन्ता, सौख्य–कलत्रदौस्थ्य–मृतयः, माननाशः, सुखं, लाभः, अपायः इति क्रमात् 'फलानि' स्युः । तदशुभध्वस्त्यै जपः 'कार्यः' स्वर्णगोदानं 'कार्यम्' 'तथा' शान्तिः 'कार्या' अथ (वा) अशुभदं ग्रहं नो वीक्ष्यं इति परे आहुः ॥ ६ ॥

भावार्थः—जिस मनुष्यके जन्मके नक्षत्रमें सूर्य या चन्द्रमा का ग्रहण हो उस मनुष्यका मरण होता है । जन्मकी राशिमें ग्रहण होनेसे घात (शरीरपीड़ा), दूसरी राशिमें हानि, तीसरीमें श्री (धनागम), चौथीमें पीड़ा, पाचवींमें चिन्ता, छठीमें सौख्य, सातवींमें स्त्रीको कष्ट, आठवींमें मरण, नववींमें अपमान, दशवींमें सुखप्राप्ति, ग्यारहवींमें लाभ और बारहवीं राशिमें धननाश ये फल होते हैं । अशुभ फल देने वाले ग्रहणमें उसकी निवृत्तिके लिये मन्त्रोंका जप स्वर्णदान और गोदान करने चाहिये, तथा शान्ति करनी चाहिये । अथवा अन्य आचार्योंका मत है कि अशुभ फल देनेवाले ग्रहणको नहीं देखना चाहिये ॥ ६ ॥

वि०—बहुतोंका मत है कि ग्रहण देखने पर ही उसका शुभाशुभ दोष लागू होता है । इसी कारण स्मृतिकारोंने ग्रहणका देखना निषेध लिखा है । जैसे मनुः—

"नेक्षेतोद्यन्तमादित्यं नास्तं यातं कदाचन ।
नोपरक्तं न वारिस्थं न मध्यं नभसो गतम् ॥" इति ॥

परन्तु ग्रहण न देखने परभी पुराणों तथा धर्मशास्त्रोंमें स्नान, जप दानादि करना इस लिये लिखा है कि ग्रहणके समय सूर्य, चन्द्रमाके किरण दूषित रहते हैं और उन दूषित किरणोंका दुःप्रभाव पृथिवी पर मनुष्योंके शरीर पर पड़नेसे बुरा परिणाम करता है (क्यों कि वस्तुमात्र की अच्छी या बुरी स्थिति आकाशस्थ ग्रहोंके किरणके संयोगवश ही रहती है) जलमें ग्रहकिरणोंका प्रभाव असर नहीं करता । इसलिये ग्रहणके समय सूर्य–चन्द्रमाके दूषित किरणोंसे बँचनेके लिये जलमें स्नान और दानादि करना पुण्यप्रद बताया गया ।

जन्म नक्षत्रको मनुष्यके शरीरसे प्रबल सम्बन्ध रहनेके कारण जन्म नक्षत्रमें ग्रहण होनेसे वह नक्षत्र अधिक दूषित होकर उस मनुष्यको अधिक दूषित करता है। वैज्ञानिक दृष्टिसे भी शान्ति करने पर दोषोंका परिहार होता है, अतः ऐसी अवस्थामें उसकी शान्ति अवश्य करनी चाहिये।

अशुभ ग्रहणकी शान्ति मत्स्यपुराणमें यों लिखी है—

रूपं विधाय भुजगस्य तु काञ्चनेन पिष्टेन वा हिमकरे दिवसाधिपे च।
ग्रस्ते त्रिजन्मदिवसे तमसा प्रदद्याद् विप्राय वेदविदुषे सुपरिक्षिताय॥

यस्य राशिं समासाद्य भवेद् ग्रहणसम्भवः।
तत्र स्नानं प्रवक्ष्यामि मन्त्रौषधिसमन्वितम्॥
चन्द्रोपरागं सम्प्राप्य कुर्याद् ब्राह्मणवाचनम्।
सम्पूज्य चतुरो विप्रान् शुक्लमाल्यानुलेपनैः॥
पूर्वमेवोपरागस्य समानीयौषधादिकम्।
स्थापयेच्चतुरः कुम्भानग्रतः सागरानिव॥
गजाश्वरथ्यावल्मीकसङ्गमाद्ध्रदगोकुलात्।
राजद्वारप्रदेशाच्च मृदमानीय निक्षिपेत्॥
पञ्चगव्यं तु कुम्भेषु शुद्धमुक्ताफलानि च।
रोचनं पद्मकं शङ्खं पञ्चरत्नसमन्वितम्॥
स्फाटिकं चन्दनं श्वेतं तीर्थवारि च पल्लवान्।
गजदन्तं कुङ्कुमं च सर्षपोशीरगुग्गुलून्॥
तत्सर्वं निक्षिपेत्पूर्वं कुम्भेष्वावाहयेत् सुरान्।
सर्वे समुद्राः सरितस्तीर्थानि जलदा नदाः॥
आयान्तु मम शान्त्यर्थं दुरितक्षयकारकाः।
तिलहोमं व्याहृतिभिः सहस्रं चाष्टसंयुतम्॥
एवं कृत्वा प्रयत्नेन स्नानकर्म समारभेत्।
आमन्त्र्य नवभिर्मन्त्रैः कुम्भान् सङ्कल्पपूर्वकम्॥
योऽसौ वज्रधरो देवो ह्यादित्यानां प्रभुर्मतः।
सहस्रनयनः शक्रो ग्रहपीडां व्यपोहतु॥
मुखं यः सर्वदेवानां सप्तार्चिरमितद्युतिः।
१ चन्द्रोपरागसम्भूतामग्निः पीडां व्यपोहतु॥
यः कर्मसाक्षी लोकानां धर्मो महिषवाहनः।
यमश्चन्द्रो·१·परागोत्थां ग्रहपीडां व्यपोहतु॥
निर्ऋतिः कौणपो देवः प्रलयानलसन्निभः।
खड्गव्यग्रोऽतिभीमश्च रक्षः पीडां व्यपोहतु॥
नागपाशधरो देवः सदा मकरवाहनः।

सजलाधिपतिश्चन्द्रो ग्रहपीडां व्यपोहतु ॥
प्राणरूपो हि लोकानां सदा कृष्णमृगप्रियः ।
वायुश्चन्द्रो-१-परागोत्थां ग्रहपीडां व्यपोहतु ॥
योऽसौ निधिपतिर्देवः खड्गशूलगदाधरः ।
चन्द्रो-१-परागकलुषं धनदोऽत्र व्यपोहतु ॥
योऽसौ बिन्दुधुतो देवो भवानीपतिरीश्वरः ।
चन्द्रो-१-परागजां पीड़ां स नाशयतु शङ्करः ॥
त्रैलोक्ये यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च ।
ब्रह्म-विष्णवर्क-युक्तानि तानि पापं दहन्तु मे ॥
अभिषिच्य ततो मंत्रान् विलिख्य कनकान्वितान् ।
वस्त्रे पट्टेऽथवा भूर्जे परं रत्नसमन्वितान् ॥
यजमानस्य शिरसि निदध्युस्ते द्विजोत्तमाः ।
ततोऽतिवाहयेद् वेलामुपरागानुमानिनीम् ॥
प्राङ्मुखं पूजयित्वा ते नत्वा चाभीष्टदेवते ।
[1]चन्द्रग्रहे विनिर्वृत्ते कृतशौचारममङ्गलः ॥
अनेन विधिना यस्तु ग्रहस्नानं समाचरेत् ।
न तस्य ग्रहपीड़ा स्यान्न च बन्धुधनक्षयः ॥
सूर्यग्रहे सूर्यनाम सदा मन्त्रेषु कीर्तयेत् । इति ॥ ६ ॥

चन्द्रमाके बलमें विशेषता—

पापान्तः पापयुग्द्यूने पापाच्चन्द्रः शुभोऽप्यसन् ।
शुभांशे वाऽधिमित्रांशे गुरुदृष्टोऽशुभोऽपि सन् ॥ ७ ॥

अन्वयः—पापान्तः, पापयुक्, पापाद् द्यूने 'च स्थितः' चन्द्रः शुभोऽपि असन् भवति' । 'एवं' शुभांशे, वा अधिमित्रांशे 'तथा' गुरुदृष्टः अशुभः अपि 'चन्द्रः' सन् 'भवति' ॥ ७ ॥

भाषार्थः—यदि चन्दमा पापग्रहोंके मध्यमें हो, या पापग्रहके साथ हो, या पापग्रहसे ७ वें स्थानमें हो तो शुभ होने पर भी अशुभ ही होता है । एवं यदि चन्द्रमा शुभग्रहके अथवा अपने अधिमित्र ग्रहके नवांशमें हो तथा वृहस्पतिसे देखा जाता हो तो अशुभ होने पर भी शुभ होता है ॥ ७ ॥

वि०—यहां चन्द्रमाको उपलक्षण समझना चाहिये, बल्कि कोई भी ग्रह पापमध्य और पापयोगसे अशुभ और शुभांश-अधिमित्रांश-शुभयुक्त-दृष्ट रहने पर शुभ होता है ।

अधिमित्र उसे कहते हैं जो नैसर्गिक और तात्कालिक दोनों प्रकारसे मित्र हो । नैसर्गिक

---

१. सूर्यग्रहणमें 'सूर्योपराग' शब्द जोड़ना चाहिये ।

मैत्री विवाह प्रकरणके २७-२८ श्लोकमें कही जायगी। तात्कालिक मित्र वह है जो इष्ट ग्रहसे २।३।४।१०।११।१२ स्थानोंमें रहता है। १।५।६।७।८।९ स्थानोंमें रहनेवाला ग्रह इष्ट ग्रहका शत्रु होता है। नैसर्गिक और तात्कालिक दोनों स्थितिका शत्रु अधिशत्रु कहलाता है॥ ७॥

शुक्ल-कृष्णपक्षके भेदसे चन्द्रबल—

सितासितादौ सद्दुष्टे चन्द्रे पक्षौ शुभावुभौ।
व्यत्यासे चाशुभौ प्रोक्तौ सङ्कटेऽब्जबलं त्विदम्॥ ८॥

अन्वयः—सितासितादौ 'क्रमात्' सद्दुष्टे चन्द्रे 'सति' उभौ पक्षौ शुभौ प्रोक्तौ। च (तथा) 'अस्मात्' व्यत्यासे 'सति' अशुभौ प्रोक्तौ। इदं अब्जबलं तु सङ्कटे (आवश्यके) 'विचार्यम्'॥ ८॥

भाषार्थः—शुक्ल पक्षके आदि (पड़िवा) में चन्द्रमा शुभ हो और कृष्ण पक्षके आदि (पड़िवा) में चन्द्रमा अशुभ हो तो दोनों (शुक्ल-कृष्ण) पक्ष शुभ होते हैं। यदि इससे विपरीत (शुक्ल पक्षके आदिमें अशुभ, कृष्ण पक्षके आदिमें शुभ) हो तो दोनों पक्ष अशुभ होते हैं। किन्तु यह चन्द्रबल केवल सङ्कटावस्था ([1]अत्यावश्यक) में विचारना चाहिये, अन्यत्र नहीं॥ ८॥

गोचरमें दुष्टग्रहजनित दोषकी शान्तिके लिये रत्नोंका धारण—

वज्रं शुक्रेऽब्जे सुमुक्ता प्रबालं भौमेऽगौ गोमेदमार्कौ सुनीलम्।
केतौ वैदूर्यं गुरौ पुष्पकं ज्ञे पाचिः प्राङ्माणिक्यमर्के तु मध्ये॥९॥

अन्वयः—'नवधा विभक्तायां स्वर्णमुद्रिकायां' प्राक् (प्रागादिदिक्षु) 'क्रमेण' शुक्रे दुष्टे सति' (तत्प्रीतये) वज्रम्, अब्जे (चन्द्रे दुष्टे सति) सुमुक्ता, भौमे प्रबालम् अगौ (राहौ), गोमेदं, आर्कौ (शनौ) सुनीलम्, केतौ वैदूर्यम्, गुरौ पुष्पकम्, ज्ञे पाचिः, अर्के 'दुष्टे' तु मध्ये माणिक्यं धार्यम्॥ ९॥

भाषार्थः—नव भाग की हुई सुवर्णकी अङ्गूठीमें शुक्रके दुष्ट रहने पर उसकी शान्तिके लिये पूर्व भागमें वज्र (हीरा), चन्द्रमाके लिये अग्नि कोणमें मोती, मङ्गलके लिये दक्षिण भागमें मूंगा, राहुके लिये नैर्ऋत्य कोणमें गोमेदक (लहसनियां) शनिके लिये पश्चिम भागमें नीलमणि, केतुके लिये वायुकोणमें वैदूर्यमणि, बृहस्पतिके लिये उत्तर भागमें पुष्पक (पुखराज) बुधके लिये ईशान कोणमें पाचि (पन्ना) और सूर्यके लिये मध्य भागमें मणि जड़वा कर धारण करना चाहिये॥ ९॥

वि०—इस यन्त्रको नवग्रह यन्त्र कहते हैं॥ ९॥

---

१. जहां तात्कालिक चन्द्रबलका अभाव हो।

नवग्रहयन्त्रकी आकृति—

बुध पन्ना	शुक्र वज्र	चन्द्र मुक्ता
गुरु पुष्पक	सूर्य मणि	मङ्गल मूङ्गा
केतु वैदूर्य	शनि नीलम	राहु गोमेद

ग्रहोंके पृथक्-पृथक् रत्न—

माणिक्यमुक्ताफलविद्रुमाणि गारुत्मतं पुष्पकवज्रनीलम् ।
गोमेदवैदूर्यकमर्कतः स्यू रत्नान्यथो ज्ञस्य मुदे सुवर्णम् ॥१०॥

अन्वयः—अर्कतः 'सकाशात् क्रमेण' माणिक्य-मुक्ताफल-विद्रुमाणि, गारुत्मतं, पुष्पक-वज्र-नीलम्, गोमेदवैदूर्यकम् 'एतानि' रत्नानि स्युः । अथ ज्ञस्य मुदे सुवर्णं 'धार्यम्' ॥ १० ॥

भावार्थः—सूर्यकी प्रीतिके लिये मणि, चन्द्रमाके लिये मोती, मङ्गलके लिये मूङ्गा, बुधके लिये गारुत्मत (पन्ना) बृहस्पतिके लिये पुखराज, शुक्रके लिये वज्र (हीरा), शनिके लिये नीलमणि, राहुके लिये गोमेद और केतुके लिये वैदूर्य नामका मणि धारण करना चाहिये । बुधकी प्रसन्नताके लिये सुवर्ण भी धारण करना चाहिये ॥ १० ॥

वि०—गोचर विचारसे अथवा कुण्डली आदिमें जो ग्रह वर्त्तमान कालमें अरिष्टसूचक हो उस ग्रहका रत्न धारण करनेसे उस ग्रह सम्बन्धी दोष मिटता है ।

९ वें श्लोकमें कहे गये नवरत्न ग्रहसमुदायके लिये धारण किये जाते हैं, परन्तु नवरत्न जन साधारणके लिये असमर्थता प्रयुक्त दुष्प्राप्य हैं; अतः तात्कालिक दुष्ट ग्रहके लिये पृथक्-पृथक् कहा गया रत्न धारण करना ही उपयुक्त है ॥ १० ॥

असमर्थोंके लिये अल्पमूल्यके ग्रहरत्न और ताराका ज्ञान—

धार्यं लाजावर्तकं राहुकेत्वो रौप्यं शुक्रेन्द्वोश्च मुक्ता गुरोस्तु ।
लोहं मन्दस्यार-भान्वोः प्रवालं तारा जन्मर्क्षात् त्रिरावृत्तितः स्यात् ११

अन्वयः—राहु-केत्वोः 'प्रीतये' लाजावर्त्तकं धार्यम् । शुक्रेन्द्वोः 'प्रीतये' रौप्यं 'धार्यम्' । गुरोः 'प्रीतये' तु मुक्ता 'धार्या' । मन्दस्य 'प्रीतये' लोहं 'धार्यम्' । आरभान्वोः 'प्रीतये' प्रवालं 'धार्यम्' । 'अथ' जन्मर्क्षात् 'सकाशात्' त्रिरावृत्तितः तारा स्यात् ॥ ११ ॥

भाषार्थः—राहु और केतुकी प्रीतिके लाजवर्त मणि, शुक्र और चन्द्रमाकी प्रीतिके लिये चान्दी, बृहस्पतिके लिये मोती, शनिके लिये लोहा, मङ्गल और सूर्यके लिये मूङ्गा धारण करना चाहिये।

जन्मके नक्षत्रसे तीन आवृत्ति ९ तारायें होती हैं। अर्थात् जन्म नक्षत्रसे वर्तमान नक्षत्र तक गिनकर उसमें ९ का भाग देनेसे शेषतुल्य ९ तारायें होती हैं। एवं २७ नक्षत्रोंमें ९ तारायें ३ वार होंगी ॥ ११ ॥

उदाहरण—जैसे रामसुन्दरका जन्म नक्षत्र चित्रा है। उसके लिये वर्तमान मूल नक्षत्रमें ताराका विचार करनेमें चित्रासे मूल प्रथम आवृत्तिकी ६ठी तारा हुई। यदि धनिष्ठामें विचार करना हो तो चित्रासे धनिष्ठा तक १० में ९ का भाग देनेपर शेष १, अतः द्वितीयावृत्तिकी प्रथम तारा हुई। एवं प्रत्येक ताराओंका विचार करना चाहिये ॥ ११ ॥

९ ताराओंके नाम और उनके फल—

जन्माख्य–सम्पद्विपदः क्षेम–प्रत्यरि–साधकाः ।
वध–मैत्राऽतिमैत्राः स्युस्तारा नामसदृक्फलाः ॥ १२ ॥

अन्वयः—जन्माख्य सम्पद्–विपदः क्षेम-प्रत्यरिसाधकाः वध–मैत्रातिमैत्राः 'एताः' नामसदृक्फलाः 'नव' ताराः स्युः ॥ १२ ॥

भाषार्थः—१. जन्म, २. सम्पत्, ३. विपत्, ४. क्षेम, ५. प्रत्यरि, ६. साधक, ७. वध, ८. मैत्र और ९. अतिमैत्र–ये ९ तारायें अपने २ नामके अनुरूप फल देने वाली हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि तीसरी पाँचवीं और सातवीं तारायें अशुभ और २, ४, ६, ८, ९ तारायें शुभ हैं। जन्म तारा कहीं २ शुभ* और कहीं २ अशुभ भी होती है ॥ १२ ॥

आवश्यक कार्यमें दुष्ट ताराओंकी शान्ति—

मृत्यौ स्वर्णतिलान्विपद्यपि गुडं शाकं त्रिजन्मस्वथो
दद्यात्प्रत्यरितारकासु लवणं सर्वो विपत्प्रत्यरिः ।
मृत्युश्चादिमपर्यये न शुभदोऽथैषां द्वितीयेंऽशका
नादिप्रान्त्यतृतीयका अथ शुभाः सर्वे तृतीये स्मृताः ॥१३॥

अन्वयः—मृत्यौ (वधतारायाम्) स्वर्ण–तिलान्, विपदि अपि गुडम्, त्रिजन्मसु शाकम्, अथ प्रत्यरितारकासु लवणं दद्यात्। आदिमपर्यये (प्रथमावृत्तौ) विपत्,

(*) जन्मतारामें उपनयन अत्युत्तम और यात्रा वगैरह निषिद्ध है।

प्रत्यरिः, मृत्युश्च सर्वः (सम्पूर्णः) शुभदः न । अथ द्वितीये 'पर्यये' एषां (विपत्प्रत्यरि-मृत्यूनाम्) 'क्रमेण' आदि-प्रान्त्य-तृतीयकाः अंशकाः न 'शुभदाः' अथ तृतीये 'पर्यये' (विपत्-प्रत्यरि-मृत्यवः) सर्वे शुभाः 'भवन्ति' ॥ १३ ॥

भाषार्थः—आवश्यक कार्यमें मृत्यु (वध) तारामें सोना और तिल, विपत् तारामें गुड़, तीनों आवृत्तिकी जन्मतारामें शाक और प्रत्यरि तारामें लवण दान करना चाहिये ।

प्रथम आवृत्तिकी विपत्, प्रत्यरि और मृत्यु ये तीनों तारायें सम्पूर्ण अशुभ होती हैं । दूसरी आवृतिमें विपत्का प्रथम चरण, प्रत्यरिका चौथा चरण और मृत्युताराका तीसरा चरण अशुभ होता है । शेष चरण सब शुभ होते हैं । तीसरी आवृत्तिकी ये तीनों तारायें सम्पूर्ण शुभ होती हैं । अतः तीसरी आवृत्तिकी दुष्ट ताराओंकी भी शान्तिकी आवश्यकता नहीं है ॥ १३ ॥

चन्द्रमाकी तात्कालिकी अवस्थाका साधन—

षष्टिघ्नं गतभं भुक्तघटीयुक्तं युगाहतम् ।
शराब्धिहृल्लब्धतोऽर्कशेषेऽवस्थाः क्रियाद्विधोः ॥ १४ ॥

अन्वयः—गतभं षष्टिघ्नं 'कार्यं' तत्, भुक्तघटीयुक्तं युगाहतं शराब्धिहृत् लब्धतः अर्कशेषे क्रियात् (मेषात्) 'क्रमेण' विधोः अवस्थाः 'स्युः' ॥ १४ ॥

भाषार्थः—गत नक्षत्रकी संख्या (अश्विनीसे गिनकर जो हो) उसको ६० से गुणकर उसमें वर्त्तमान नक्षत्रकी बीती हुई घड़ियां जोडे, फिर उसे ४ से गुणकर ४५ से भाग देने पर जो लब्धि हो उसमें १२ का भाग देनेसे मेषादि राशिमें शेषाङ्क तुल्य चन्द्रमाको (आगे कही जाने वाली) अवस्था होती है ॥ १४ ॥

उदाहरण—पुष्य नक्षत्रके १० अंशपर चन्द्रमाकी अवस्था देखनी है । यहाँ गत नक्षत्र पुनर्वसुकी सङ्ख्या ७ को ६० से गुणने पर (७×६०)=४२० गुणन फलमें पुष्यकी गत-घटी १० जोड़कर ४३० को ४ से गुणा किया तो १७२० हुआ । उसमें ४५ से भाग देने पर लब्धि ३८ में फिर १२ से भाग देनेसे शेष २ बचे । इस लिये रामसुन्दरको तुला राशिके लिये आगे १५ वें श्लोकके अनुसार क्रीड़ा आदि २ री अवस्था 'सुप्त' अवस्था हुई ॥ १४ ॥

उपपत्तिः—आगेके (१५ वें) श्लोकमें प्रत्येक राशिमें फलादेशके लिये चन्द्रमाकी १२ अवस्थायें कहीं जायेंगी । अर्थात् प्रत्येक राशिमें चन्द्रमाकी १२ अवस्थायें होतीं हैं । उनको जाननेके लिये पहले चन्द्रमा किस राशिमें है इसका ज्ञान करना आवश्यक है । २७ नक्षत्रोंमें

चन्द्रमा १२ राशियोंका भोग करता है। इसलिये पहले यह अनुपात होगा कि यदि २७ नक्षत्रोंमें १२ राशि तो वर्त्तमान नक्षत्रमें क्या ? $= \frac{१२ \times व.न.}{२७}$ । यहां वर्तमान नक्षत्रका रूप गतनक्षत्रमें इष्ट नक्षत्रकी भुक्त घड़ीका ६० वां भाग जोड़ने पर होगा, क्योंकि मध्यम मानसे नक्षत्रका मान ६० घटी माना जाता है।

वर्तमान नक्षत्र $= ग.\ न. + \frac{भु.घ.}{६०} = \frac{गन \times ६० + भु.घ.}{६०}$ । इस परसे अनुताप सिद्ध चन्द्रमाकी राशि $= \frac{(गन \times ६० + भु.घ.) \times १२}{६० \times २७} = \frac{गन \times ६० \times १२ + भु.घ. \times १२}{६० \times २७} =$ $= \frac{गन \times ६० + भु.घ.}{५ \times २७}$ । अब चन्द्रमाकी इस राशि परसे यह अनुपात होगा कि एक राशिमें १२ अवस्था होतीं हैं तो इस अभीष्ट राशिमें क्या ? फल वर्त्तमान राशिमें चन्द्रमाकी अवस्था की सङ्ख्या होगी $= \frac{(गन \times ६० + भु.घ.) \times १२}{५ \times २७ \times १} = \frac{(गन. \times ६० + भु.घ.) \times ४}{५ \times ९} =$ $\frac{(गन \times ६० + भु.घ.) \times ४}{४५}$ । यहाँ लब्धि १२ से अधिक आने पर भगणका प्रयोजनाभावके कारण उसे १२ से भाग देना युक्त ही है॥ १४॥

चन्द्रमाकी १२ अवस्थाओंके नाम और उनके फल—

प्रवास-नाशौ मरणं जयश्च हास्यारति-क्रीडित-सुप्त-भुक्ताः ।
ज्वराख्य-कम्प-स्थिरता अवस्था मेषात्क्रमान्नामसदृक्फलाः स्युः ॥

अन्वयः—मेषात् 'क्रमात्' प्रवास-नाशौ, मरणं, जयः च (पुनः) हास्या–रति–क्रीडित–सुप्त–भुक्ताः ज्वराख्य–कम्प–स्थिरताः 'एताः' नामसदृक्फलाः 'चन्द्रस्य' अवस्थाः स्युः ॥ १५ ॥

भाषार्थः—मेषादि राशियोंमें यथाक्रमसे अपने-अपने नामके अनुरूप फल देने वाली १ प्रवास, २ नाश, ३ मरण, ४ जय, ५ हास्य, ६ रति, ७ क्रीड़ा, ८ सुप्त, ९ भुक्त, १० ज्वर, ११ कम्प, १२ स्थिरता-ये १२ अवस्थायें चन्द्रमाकी होती हैं। इससे यह समझना चाहिये कि मेष राशिकी प्रवासादि १२ अवस्थायें, वृष राशिकी नाशादि १२ अवस्थायें, मिथुन राशिकी मरणादि १२ अवस्थायें होती हैं। एवं आगे भी समझना चाहिये। स्पष्टता के लिये कोष्ठ देखिये॥ १५ ॥

चन्द्रमाकी अवस्थाका कोष्ठ

राशिमें	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनुः	मकर	कुम्भ	मीन
१. अवस्था	प्रवास	नाश	मरण	जय	हास्य	रति	क्रीड़ा	सुप्त	भुक्त	ज्वर	कम्प	स्थिर
२. अवस्था	नाश	मरण	जय	हास्य	रति	क्रीड़ा	सुप्त	भुक्त	ज्वर	कम्प	स्थिर	प्रवास
३. अवस्था	मरण	जय	हास्य	रति	क्रीड़ा	सुप्त	भुक्त	ज्वर	कम्प	स्थिर	प्रवास	नाश
४. अवस्था	जय	हास्य	रति	क्रीड़ा	सुप्त	भुक्त	ज्वर	कम्प	स्थिर	प्रवास	नाश	मरण
५. अवस्था	हास्य	रति	क्रीड़ा	सुप्त	भुक्त	ज्वर	कम्प	स्थिर	प्रवास	नाश	मरण	जय
६. अवस्था	रति	क्रीड़ा	सुप्त	भुक्त	ज्वर	कम्प	स्थिर	प्रवास	नाश	मरण	जय	हास्य
७. अवस्था	क्रीड़ा	सुप्त	भुक्त	ज्वर	कम्प	स्थिर	प्रवास	नाश	मरण	जय	हास्य	रति
८. अवस्था	सुप्त	भुक्त	ज्वर	कम्प	स्थिर	प्रवास	नाश	मरण	जय	हास्य	रति	क्रीड़ा
९. अवस्था	भुक्त	ज्वर	कम्प	स्थिर	प्रवास	नाश	मरण	जय	हास्य	रति	क्रीड़ा	सुप्त
१०. अवस्था	ज्वर	कम्प	स्थिर	प्रवास	नाश	मरण	जय	हास्य	रति	क्रीड़ा	सुप्त	भुक्त
११. अवस्था	कम्प	स्थिर	प्रवास	नाश	मरण	जय	हास्य	रति	क्रीड़ा	सुप्त	भुक्त	ज्वर
१२. अवस्था	स्थिर	प्रवास	नाम	मरण	जय	हास्य	रति	क्रीड़ा	सुप्त	भुक्त	ज्वर	कम्प

ग्रहदोष निवृत्तिके लिये स्नानार्थ औषधि और ग्रहोंकी दक्षिणा—

लाजा-कुष्ठ-बला-प्रियङ्गु-घनसिद्धार्थैर्निशादारुभिः
पुंखालोध्रयुतैर्जलैर्निगदितं स्नानं ग्रहोत्थाघहृत् ।

धेनुः कम्बुररुणो वृषश्च कनकं पीताम्बरं घोटकः।
श्वेतो गौरसिता महासिरज इत्येता रवेर्दक्षिणाः ॥ १६ ॥

अन्वयः—ग्रहोत्थाघहृत् 'सूर्यादिग्रहक्रमात्' लाजा–कुष्ठ–बला–प्रियङ्गु–घन–सिद्धार्थैः निशादारुभिः पुङ्खा–लोध्रयुतैः जलैः स्नानं निगदितम्। 'तथा' रवेः 'सकाशात्' धेनुः, कम्बु, अरुणः वृषः, च (पुनः) कनकम्, पीताम्बरम्, श्वेतः घोटकः, असिता गौः, महासिः, अजः इत्येताः दक्षिणाः 'भवन्ति' ॥ १६ ॥

भाषार्थः—दुष्ट ग्रहसे उत्पन्न दोषकी निवृत्तिके लिये लाजवन्ती, कूठ, बरियारा, टङ्गुनी, मोथा, सरसो, हलदी, देवदारु, सरपुंखा और लोहा इन औषधियों को जलमें मिलाकर स्नान करना कहा गया है। ऐसा स्नान प्रत्येक ग्रहकी शान्तिके लिये करना चाहिये।

सूर्यकी शान्तिके लिये धेनु (प्रसूता गौ), चन्द्रमाके लिये शङ्ख, मङ्गलके लिये लालरङ्गका बैल, बुधके लिये सोना, बृहस्पतिके लिये पीताम्बर, शुक्रके लिये उजला घोड़ा, शनिके लिये काली गौ, राहुके लिये तलवार और केतुके लिये बकरा दानकर दक्षिणा देनी चाहिये* ॥ १६ ॥

---

* यहाँ प्रसङ्गवश ग्रहोंके वैदिक और तान्त्रिक मन्त्र तथा उनके दान द्रव्योंका विवरण किया जाता है।

१. सूर्यका वैदिक मन्त्र—

ॐ आकृष्णेन रजसा वर्त्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यंच्च।
हिरण्ययेन सविता रथेनादेवो याति भुवनानि पश्यन् ॥ १ ॥

२. चन्द्रमाका वैदिक मन्त्र—

ॐ इमं देवाऽअसपत्नꣳ सुवध्वं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठाय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय। इयममुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विशऽएषवोऽमी राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानाꣳ राजा ॥२॥

३. मङ्गलका वैदिक मन्त्र—

ॐ अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्याऽअयम्। अपाꣳरेताꣳसि जिन्वति ॥ ३ ॥

४. बुधका वैदिक मन्त्र—

ॐ उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्त्ते सꣳसृजेथामयं च।
अस्मिन्त्सधस्थेऽअध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत ॥ ४ ॥

५. बृहस्पतिका वैदिक मन्त्र—

ॐ बृहस्पतेऽअति यदर्योऽअर्हाद् द्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु।
यद्दीदयच्छवसऽऋतप्रजाततदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम् ॥ ५ ॥

६. शुक्रका वैदिक मन्त्र—

ॐ अन्नात् परिस्नुतो रसं ब्रह्मणा व्यपिबत् क्षत्रं पयः सोमं प्रजापतिः। ऋतेन सत्यमि-

न्द्रियं विपान ँ शुक्रमन्धसऽइन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥ ६ ॥

७. शनिका वैदिक मन्त्र—

ॐ शन्नो देवीरभीष्टयऽआपो भवन्तु पीतये । शँय्योरभिस्रवन्तु नः ॥ ७ ॥

८. राहुका वैदिक मन्त्र—

ॐ कयानश्चित्रऽ आभुवदूती सदा वृधः सखा । कया शचिष्ठया वृता ॥ ८ ॥

९. केतुका वैदिक मन्त्र—

ॐ केतुं कृण्वन्न केतवे पेशो मर्याऽअपेशसे । समुषद्भिरजायथाः ॥ ९ ॥

नवग्रहोंके दान द्रव्य—

सूर्यका दान—मणि, गेहूँ, गुड़, सवत्सा गौ, कमलका फूल, लाल चन्दन, लाल वस्त्र, सोना, ताँबा, केशर मूँगा । जप संख्या ७००० ।

चन्द्रमाका दान—वांसका डाला, अरवा चावल, उजला वस्त्र, श्वेत चन्दन, श्वेत फूल, चान्दी, चीनी, घी, श्वेत वृषभ, दधि, शंख, मोती, कपूर । जप ११००० ।

मङ्गलका दान—मूँगा, पृथिवी, मसुरोकी दाल, गेहूँ, लाल बैल, गुड़, लाल चन्दन, लाल वस्त्र, लाल फूल, सोना, तांबा, केशर, कस्तूरी । जप १०००० ।

बुधका दान—कांस्य पात्र, हरा वस्त्र, हाथीका दांत, घी, मूँग, पन्ना, शस्त्र, सोना, अनेक फूल, कपूर, षट् रस भोजन । जप ९००० ।

गुरुका दान—पीला अन्न, पीला वस्त्र, पीला फूल-फल, सोना, पोखराज, हल्दी, पुस्तक, मधु, लवण, शक्कर, छाता, भूमि । जप १९००० ।

शुक्रका दान—उजला चन्दन-चावल-फूल, अनेक रङ्ग वाला वस्त्र, चान्दी, हीरा, सोना, घी, दधि, उजला घोड़ा-गौ, शक्कर, सुगन्ध । जप १६००० ।

शनिका दान—नीलम्, तिल, उर्द, तेल, काला-वस्त्र-फूल-फल, कुलथी, लोहा, महिषी, काली गौ, जूता, कस्तूरी, सोना । जप २३००० ।

राहुका दान—सात अन्न, उर्द, सोनेका नाग, नाला कपड़ा, गोमेद, काला फूल, तिल, तलवार, तेल, लोहा, शूप, कम्बल, सतिल ताम्र पात्र । जप १८००० ।

केतुका दान—कस्तूरी, उर्द, कम्बल. वैदूर्य, काला फूल, काला कपड़ा, तिल, तेल, लोहा, बकरा, शस्त्र,, सप्तान्न, सोना । जप १७००० ।

नोट—दान द्रव्योंमें ग्रहोंके वर्णके अनुरूप द्रव्योंका देना उपयुक्त है ।

ग्रहोंके तान्त्रिक मन्त्र—

सूर्यका—ॐ घृणिः सूर्याय नमः ॥ चन्द्रमाका—ॐ सों सोमाय नमः ॥

मङ्गलका—ॐ अं अङ्गारकाय नमः ॥ बुधका—ॐ बुं बुधाय नमः ॥

गुरुका—ॐ बृं बृहस्पतये नमः ॥ शुक्रका—ॐ शुं शुक्राय नमः ॥

शनिका—ॐ शं शनैश्चराय नमः ॥ राहुका—ॐ रां राहवे नमः ॥

केतुका—ॐ कें केतवे नमः ॥१६॥

विशेष—आवश्यक कार्यमें दुष्ट दिनकी शान्तिके लिये रविवारमें पान दान करना चाहिये। सोमवारमें श्रीखण्ड (मधुर युक्त मलाई) दान, मङ्गलवारमें भोजन दान, बुधवारमें फूल दान, गुरुवारमें विष्णु-शिवको नमस्कार, शुक्रवारमें श्वेतवस्त्र दान करना चाहिये और शनिवारमें तेल लगाकर स्नान करना चाहिये ॥ १६ ॥

राशिसञ्चारमें सूर्यादि ग्रहोंके फलकाल—

सूर्यारसौम्यास्फुजितोऽक्ष-नाग-सप्ताद्रिघस्त्रान् विधुरग्निनाडीः ।
तमोयमेज्यास्त्रिरसाऽश्विमासान् गन्तव्यराशेः फलदाः पुरस्तात्॥१७॥

अन्वयः—सूर्यारसौम्यास्फुजितः 'क्रमेण' अक्ष-नाग-सप्ताद्रिघस्त्रान्, विधुः अग्निनाडीः, तमो-यमेज्याः 'क्रमेण' त्रिरसाश्विमासान् गन्तव्यराशेः पुरस्तात् फलदाः 'भवन्ति' ॥ १७ ॥

भाषार्थः—आगेकी राशिमें प्रवेश करनेके पहले सूर्य ५ दिन, मङ्गल ८ दिन, बुध ७ दिन, और शुक्र ७ दिन अपना २ अच्छा या बुरा फल देते हैं। चन्द्रमा ३ दण्ड पहले अपना फल देता है। राहु ३ मास, शनि ६ मास और बृहस्पति २ मास पहले फल देते हैं ॥ १७ ॥

दुष्ट पञ्चाङ्गके दान—

दुष्टे योगे हेम चन्द्रे च शङ्खं धान्यं तिथ्यर्धे तिथौ तण्डुलांश्च ।
वारे रत्नं भे च गां हेम नाड्यां दद्यात्सिन्धूत्थं च तारासु राजा ॥१८॥

अन्वयः—योगे दुष्टे 'सति' हेम, चन्द्रे 'दुष्टे' सति, शङ्खम्, तिथ्यर्धे (करणे) 'दुष्टे सति' धान्यम्, तिथौ तण्डुलान्, च (पुनः) वारे रत्नम्, भे गाम्, नाड्यां च हेम तारासु दुष्टासु च राजा सिन्धूत्थं दद्यात् ॥ १८ ॥

भाषार्थः—योग दुष्ट हो तो सुवर्ण, चन्द्रमा दुष्ट हो तो शङ्ख, करण दुष्ट हो तो धान्य, तिथि दुष्ट हो तो चावल, दिन दुष्ट हो तो रत्न, नक्षत्र दुष्ट हो तो गौ, नाडी दुष्ट हो तो सोना और तारा दुष्ट हो तो राजा नमक दान करे ॥ १८ ॥

वि०—इस श्लोकमें 'राजा' शब्द उपलक्षण मात्र है वस्तुतः सबको यथाशक्ति दान करना चाहिये। आवश्यक कार्यमें योग आदिकी प्रतिकूलता रहने पर निर्दिष्ट वस्तुओंका दान करके कर्त्तव्यका सम्पादन करना चाहिये ॥ १८ ॥

राशिमें ग्रहोंका फलकाल और प्रत्येक मासमें वारभेदसे जन्मर्क्षका फल—

राश्यादिगौ रवि-कुजौ फलदौ सितेज्यौ
मध्ये सदा शशिसुतश्चरमेऽब्ज-मन्दौ ।
अध्वाऽन्न-वह्निभय-सन्मति-वस्त्र-सौख्य-

दुःखानि मासि जनिभे रविवासरादौ ॥ १९ ॥

अन्वयः—रविकुजौ राश्यादिगौ फलदौ 'भवतः'। सितेज्यौ मध्ये फलदौ 'भवतः'। शशिसुतः सदा फलदः स्यात्। अब्जमन्दौ चरमे 'फलदौ भवतः'। अथ, मासि जनिभे रविवासरादौ 'सति क्रमेण' अध्वाम—वह्निभय—सन्मति—वस्त्र—सौख्य—दुःखानि 'भवन्ति' ॥ १९ ॥

भाषार्थः—सूर्य और मङ्गल राशिके आरम्भमें, शुक्र और गुरु राशिके मध्यमें, बुध समस्त राशिमें, चन्द्रमा और शनि राशिके अन्तमें अपना-अपना अच्छा या बुरा फल देते हैं।

प्रत्येक मासमें जन्म नक्षत्र यदि रवि आदि वारोंमें पड़े तो उस मासमें उसे इस प्रकार फल कहे—रविवारमें यात्रा हो, सोमवारमें अन्न लाभ, मङ्गलवारमें अग्निभय, बुधवारमें उत्तम बुद्धि, गुरुवारमें वस्त्रलाभ, शुक्रवारमें सौख्य और शनिवारमें दुःख होवे ॥ १९ ॥

इति मुहूर्त्तचिन्तामणौ गोचरप्रकरणम् ॥ ४ ॥

अथ संस्कारप्रकरणम् ॥ ५ ॥

इस प्रकरणमें संस्कारोंके मुहूर्त कहे जायेंगे, इस लिये इसका नाम 'संस्कारप्रकरण' रखा गया है। पहले यह प्रश्न उठता है कि संस्कार किसे कहते हैं और वे क्यों किये जाते हैं? इसका उत्तर यह है:—जिन कर्मोंके द्वारा मनुष्य विशुद्ध होकर निर्वाण (मोक्ष) पदका अधिकारी होता है, उन्हें संस्कार कहते हैं। अर्थात् अपनी २ जाति मर्यादाके अनुकूल सामान्य-विशेष वैदिक और स्मार्त कर्मोंके आचरणसे मनुष्य अपनेको विशुद्ध बनाकर मोक्षाधिकारी होता है। आत्यन्तिक सुखस्थान होनेके कारण मोक्षप्राप्ति ही मनुष्यमात्रका मुख्य लक्ष्य है। इस लिये मनुष्यमात्रके लिये संस्कार आवश्यक हैं। वे संस्कार मुनियोंके मतसे ४८ हैं। जैसे १ गर्भाधान, २ पुंसवन, ३ सीमन्तोन्नयन, ४ जातकर्म, ५ नामकरण, ६ अन्नप्राशन, ७ चूड़ाकरण, ८ उपनयन, १२ चार वेदव्रत, १३ स्नान, १४ सहधर्मिणीसंयोग, १९ नित्य पञ्च महायज्ञ,[1] २६ सप्त[2] पाकसंस्था, ३३ सप्त[3] हविर्यज्ञसंस्था, ४० सप्त सोम[4] यज्ञ संस्था और ४८

---

(१) ब्रह्मयज्ञ (अध्यापन) पितृयज्ञ (तर्पण) देवयज्ञ (हवन) भूतयज्ञ (बलि) नृयज्ञ (अतिथि पूजन) ये ५ महायज्ञ हैं।

(२) अष्टका, पार्वण, श्राद्ध, श्रावणी, मार्गी, चैत्री, आश्विनी—ये ७ पाक संस्था हैं।

(३) अग्न्याधान, अग्निहोत्र, दर्शपौर्णमास, चातुर्मासी, अन्याग्रयणेष्टि, निरूढ़. पशुबन्ध सौत्रामणी—ये ७ हविर्यज्ञसंस्था हैं।

(४) अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोड़शी, बाजपेय, अतिरात्र, अप्तर्यामि—ये ७ सोम यज्ञ संस्था हैं।

आठ आत्म[1]गुण—ये ४८ संस्कार हैं।

पूर्वोक्त संस्कारोंमें प्रथम गर्भाधान संस्कारका मूल कारण स्त्रियोंकी ऋतु (रजःप्रवृत्ति) है। अतः प्रथम ऋतुमें शुभाशुभ फल जाननेकी स्थितिका निरूपण प्रथम दो श्लोकोंमें किया जाता है।

प्रथम रजोदर्शनमें शुभ समय—

आद्यं रजः शुभं माघ–मार्ग–राधेष–फाल्गुने ।
ज्येष्ठ–श्रावणयोः शुक्ले सद्वारे सत्तनौ दिवा ॥ १ ॥

अन्वयः—माघ–मार्ग–राधेष–फाल्गुने, ज्येष्ठ–श्रावणयोश्च शुक्ले 'पक्षे' सद्वारे, सत्तनौ, दिवा 'च' आद्यं रजः शुभं 'भवति' ॥ १ ॥

भाषार्थः—माघ, अग्रहण, वैशाख, आश्विन, फाल्गुन, ज्येष्ठ और श्रावण इन ७ मासोंमें, शुक्ल पक्षमें, शुभ (बुध, गुरु, शुक्र और सोम) वारोंमें, शुभ लग्नमें और दिनमें स्त्रियोंका प्रथम रजोदर्शन (पहले २ मासिक धर्म) होना शुभ होता है ॥ १ ॥

प्रथम रजोदर्शनमें उत्तम-मध्याधम नक्षत्र—

श्रुतित्रयमृदुक्षिप्रध्रुवस्वातौ सिताम्बरे ।
मध्यं च मूलादितिभे पितृमिश्रे परेऽसत् ॥ २ ॥

अन्वयः—श्रुतित्रय-मृदु-क्षिप्र-ध्रुव-स्वातौ 'नक्षत्रेषु' सिताम्बरे 'च' 'आद्यं रजः-शुभं स्यात्'। मूलादितिभे पितृमिश्रे च 'आद्यं रजः' मध्यं 'स्यात्'। परेषु 'नक्षत्रेषु' असत् 'स्यात्' ॥ २ ॥

भाषार्थः—श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, मृदुसंज्ञक, क्षिप्रसंज्ञक, ध्रुवसंज्ञक और स्वाती इन १५ नक्षत्रोंमें तथा श्वेत (साफ उजले) वस्त्र पर प्रथम रजोदर्शन होना शुभ है। मूल, पुनर्वसु, मघा, विशाखा और कृत्तिका इन ५ नक्षत्रोंमें प्रथम रजोदर्शन मध्यम है और अन्य ७ नक्षत्रोंमें प्रथम रजोदर्शन अशुभ होता है ॥२॥

प्रथम रजोदर्शनमें निषिद्ध काल—

भद्रा-निद्रा-संक्रमे दर्शरिक्तासन्ध्याषष्ठीद्वादशीवैधृतेषु ।
रोगेऽष्टम्यां चन्द्रसूर्योपरागे पाते चाद्यं नो रजोदर्शनं सत् ॥ ३ ॥

अन्वयः—भद्रा–निद्रा–सङ्क्रमे, दर्श–रिक्ता–सन्ध्या–षष्ठी–द्वादशी–वैधृतेषु, रोगे, अष्टम्यां, चन्द्र–सूर्योपरागे, पाते च आद्यं रजोदर्शनं सत् नो 'भवति' ॥ ३ ॥

---

(१) दया, क्षान्ति, अनसूया शौच, अनायास, माङ्गल्य, औदार्य, स्पृहा—ये ८ आत्मगुण हैं।

भाषार्थः—भद्रामें (शुभाशुभ प्र. ४२ श्लो. देखिये), निद्रा अवस्थामें सङ्क्रान्तिके समयमें, अमावस और रिक्ता (४।९।१४) तिथिमें, सन्ध्या समयमें, षष्ठी-द्वादशी और अष्टमी तिथिमें, वैधृति योगमें, रोगकी अवस्थामें, चन्द्रमा और सूर्यके ग्रहणकालमें और व्यतीपात योगमें प्रथम रजोदर्शन शुभ नहीं होता है। अर्थात् इस प्रतिकूल समयकी प्रथम ऋतु सन्तान-प्रद नहीं होती ॥ ३ ॥

ऋतुमती स्त्रीके स्नानका मुहूर्त्त—

हस्तानिलाश्विमृगमैत्रवसुध्रुवाख्यैः
शाक्रान्वितैः शुभतिथौ शुभवासरे च ।
स्नायादथार्तववती मृगपौष्णवायु-
हस्ताश्विधातृभिररं लभते च गर्भम् ॥ ४ ॥

अन्वयः—शाक्रान्वितैः हस्तानिलाश्विमृगमैत्रवसुध्रुवाख्यैः 'नक्षत्रैः' शुभतिथौ शुभवासरे च 'आर्तववती स्त्री' स्नायात्। 'अथ' मृगपौष्णवायुहस्ताश्विधातृभिः 'नक्षत्रैः स्नाता आर्तववती' अरं (शीघ्रम्) गर्भं च लभते ॥ ४ ॥

भाषार्थः—हस्त, स्वाती, अश्विनी, मृगशिरा, अनुराधा, धनिष्ठा, ध्रुवसंज्ञक और ज्येष्ठा इन नक्षत्रोंमें शुभतिथि और शुभवारमें रजस्वला स्त्रीको स्नान करना चाहिये। मृगशिरा, रेवती, स्वाती, हस्त, अश्विनी और रोहिणी नक्षत्रोंमें स्नान करनेसे रजस्वला स्त्री शीघ्र ही गर्भधारण करती है ॥ ४ ॥

वि०—ऋतुमती स्त्रीके स्नानमें देशाचर भी देखा जाता है। कहीं २ ऋतु प्रारम्भ होनेके चौथे दिन ही स्नान करती हैं। शुद्धिके लिये यहाँ विहित-निषेध दिनादि नहीं देखे जाते। क्योंकि मनुका वचन है कि 'भर्तुः स्पृश्या चतुर्थेऽह्नि'। कहीं २ विहित दिन नक्षत्र मिलने पर ही ऋतुमती स्त्रीका स्नान देखा जाता है, गर्भाधानके लिये यही पक्ष उत्तम है ॥ ४ ॥

गर्भाधानमें निषिद्ध काल—

गण्डान्तं त्रिविधं त्यजेन्निधनजन्मर्क्षे च मूलान्तकं
दास्रं पौष्णमघोपरागदिवसान् पातं तथा वैधृतिम् ।
पित्रोः श्राद्धदिनं दिवा च परिघाद्यर्धं स्वपत्नीगमे
भान्युत्पातहतानि मृत्युभवनं जन्मर्क्षतः पापभम् ॥ ५ ॥

अन्वयः—स्वपत्नीगमे-त्रिविधं गण्डान्तं, निधन-जन्मर्क्षे, च (पुनः) मूलान्तकं, दास्रं, पौष्णमघोपरागदिवसान्, पातं तथा वैधृतिं, पित्रोः श्राद्धदिनं दिवा (दिनम्)

च (पुनः) परिघाद्यर्धं, उत्पातहतानि भानि, जन्मर्क्षतः मृत्युभवनं, पापभं 'च' 'एतानि' त्यजेत् ॥ ५ ॥

भाषार्थः—ऋतु शुद्ध होनेके बाद पति तीनों प्रकारके गण्डान्त (विवाह-प्रकरणका ४३ वां श्लोक देखिये) सातवीं और जन्म तारा, मूल, भरणी, अश्विनी, रेवती और मघा नक्षत्र, सूर्य-चन्द्रमाका ग्रहण, व्यतीपात और वैधृति योग माता-पिताका श्राद्ध दिन, दिनका समय, परिघ योगका पूर्वार्ध, उत्पातसे पीड़ित नक्षत्र, जन्मराशिसे ८ वीं राशिवाला लग्न और पाप लग्न इन सबोंको त्याग कर शुभ मुहूर्त्तमें अपनी स्त्रीसे सम्भोग करे ॥ ५ ॥

अग्रिम श्लोकके पूर्वार्धमें त्याज्य काल और उत्तरार्धमें गर्भाधानका मुहूर्त—

भद्राषष्ठीपर्वरिक्ताश्च सन्ध्याभौमार्कार्कीनाद्यरात्रीश्चतस्रः ।
गर्भाधानं त्र्युत्तरेन्द्वर्कमैत्रब्राह्मस्वातीविष्णुवस्वम्बुपे सत् ॥ ६ ॥

अन्वयः—भद्राषष्ठीपर्वरिक्ताः च (पुनः) सन्ध्याभौमार्कार्कीन्, चतस्रः आद्यरात्रीः, 'स्वपत्नीगमे त्यजेदिति' पूर्वेणान्वयः ।

अथ, त्र्युत्तरेन्द्वर्कमैत्रब्राह्मस्वातीविष्णुवस्वम्बुपे 'नक्षत्रे' गर्भाधानं सत् 'भवति' ॥६॥

भाषार्थः—भद्रा (शुभाशुभप्रकरणके ४३ श्लोकोक्त) षष्ठी, पर्वके* दिन, रिक्ता (४।९।१४) तिथि, सन्ध्या समय, मंगल-रवि-शनिवार और ऋतुके आरम्भसे ४ रात—इन्हें गर्भाधानमें त्याग करे । अर्थात् इतने समयमें गर्भाधान शुभ नहीं है ।

तीनों उत्तरा, मृगशिरा, हस्त, अनुराधा, रोहिणी, स्वाती, श्रवण, धनिष्ठा-और शतभिषा इन ११ नक्षत्रोंमें गर्भाधान शुभ होता है ॥ ६ ॥

गर्भाधानमें लग्नशुद्धि—

केन्द्रत्रिकोणेषु शुभैश्च पापैस्त्र्यायारिगैः पुंग्रहदृष्टलग्ने ।
ओजांशगेऽब्जेऽपि च युग्मरात्रौ चित्रादितीज्याश्विषु मध्यमं स्यात् ॥

अन्वयः—शुभैः केन्द्रत्रिकोणेषु 'स्थितैः' पापैः त्र्यायारिगैः, पुंग्रहदृष्टलग्ने, अब्जे ओजांशगे, अपि च युग्मरात्रौ 'गर्भाधानं सत् स्यात्' । चित्रादितीज्याश्विषु 'गर्भाधानं मध्यमं स्यात् ॥ ७ ॥

भाषार्थः—शुभ ग्रह (पूर्ण चन्द्र, बुध, गुरु, शुक्र) लग्नसे केन्द्र (१।४।

---

* पर्व—विष्णुपुराण में—
"चतुर्दश्यष्टमी चैव, अमावस्या च पूर्णिमा । पर्वाण्येतानि राजेन्द्र ! रविसङ्क्रान्तिरेव च ॥"

७।१०) और त्रिकोण (५।९) स्थानोंमें हों, पापग्रह (क्षीण चन्द्र, सूर्य, मंगल, शनि, राहु, केतु) ३, ११, ६ स्थानोंमें हों लग्नके ऊपर पुरुष ग्रहों (सूर्य, मंगल और गुरु) की दृष्टि हो, चन्द्रमा और लग्न विषम राशिके नवांशमें हो और रजोदर्शनसे चतुर्थ आदि सम रात्रि—(४।६।८।१०।१२।१४।१६) में गर्भाधान शुभ (पुत्रप्रद) होता है। चित्रा, पुनर्वसु, पुष्य और अश्विनी नक्षत्रोंमें गर्भाधान मध्यम होता है ॥ ७ ॥

वि०—गृहस्थोंके लिये पुत्रकी कामनासे स्त्रियोंके ऋतुकालमें 'ऋतौ भार्यामुपेयात्' इस श्रुतिके प्रमाणसे स्त्रीसम्भोग अत्यावश्यक है और ऋतुमें स्त्रीसम्भोग नहीं करने पर पतिके लिये प्रायश्चित्त है। जैसे पराशरजी ने लिखा हैं—

"ऋतुस्नातां तु यो भार्यां सन्निधौ नोपगच्छति।
घोरायां भ्रूणहत्यायां पतते नात्र संशयः" इति ॥

प्रत्येक मासमें रजोदर्शनसे १६ अहोरात्र तक स्त्रियोंका ऋतुकाल रहता है, जिनमें रजोदर्शनमें चार रात तक स्त्रियां अशुद्ध रहती हैं। धर्मशास्त्रोंमें प्रथम चार रातमें स्त्रीसंसर्ग निषेध कहा है। जैसे नारदका वचन—

"रजोदर्शनतोऽस्पृश्या नार्यो दिनचतुष्टयम्।
ततः शुद्धाः क्रियास्वेताः सर्ववर्णेष्वयं विधिः" ॥

एवं "प्रथमेऽहनि चाण्डाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी।
तृतीये रजकी प्रोक्ता चतुर्थेऽहनि शुद्ध्यति" ॥

तथा 'भर्तुः स्पृश्या चतुर्थेऽहनि स्नाता स्त्री च रजस्वला'

इन वचनोंसे चौथे दिन स्नान करने के बाद स्त्रियां शुद्ध होती हैं।

जिनमें—"युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु।
तस्माद्युग्मासु पुत्रार्थी संविशेदार्त्तवे स्त्रियम्" ॥

श्रीमनुके इस वचनसे पुत्रोत्पत्तिकी कामनासे ४।६।८।१०।१२।१४।१६ वीं रातमें और कन्योत्पत्तिकी कामनासे ५।७।९।११।१३।१५ वीं रातमें स्त्रीसम्भोग करना चाहिये ॥ ७ ॥

गर्भाधानके बाद सीमन्त संस्कारका मुहूर्त्त—

जीवार्कारदिने मृगेज्यनिर्ऋतिश्रोत्रादितिब्रध्नभैः
रिक्तामार्करसाष्टवर्ज्यतिथिभिर्मासाधिपे पीवरे।
सीमन्तोऽष्टमषष्ठमासि शुभदैः केन्द्रत्रिकोणे खलै-
र्लाभारित्रिषु वा ध्रुवान्त्यसदहे लग्ने च पुंभांशके ॥ ८ ॥

अन्वयः—जीवार्कारदिने, मृगेज्यनिर्ऋतिश्रोत्रादितिब्रध्नभैः 'नक्षत्रैः', रिक्ताऽमार्करसाष्टवर्ज्यतिथिभिः, मासाधिपे पीवरे सति, अष्टम-षष्ठ-मासि, शुभदैः (शुभग्रहैः)

केन्द्रत्रिकोणे 'स्थितैः', खलैः लाभारित्रिषु 'स्थितैः' सीमन्तः 'कार्यः'। वा (अथवा) ध्रुवान्त्यसद्दहे, पुंभांशके लग्ने च 'सीमान्तः कार्यः' ॥ ८ ॥

भाषार्थः—बृहस्पति, रवि और मङ्गल वारोंमें, मृगशिरा, पुष्य, मूल, श्रवण, पुनर्वसु और हस्त इन नक्षत्रोंमें, रिक्ता-अमावास्या-द्वादशी-षष्ठी अष्टमीको छोड़कर अन्य (१।२।३।५।७।१०।११।१३) तिथियोंमें, गर्भका मासपति जब बली रहे, गर्भाधानसे छठे या आठवें मासमें, शुभग्रह सब लग्नसे केन्द्र (१।४।७।१०) त्रिकोण (९।५) में हों और पापग्रह ११, ६, ३ स्थानोंमें हों ऐसे पुरुष राशिके नवांशवाले पुरुष लग्नमें सीमन्त कर्म शुभ होता है। अथवा ध्रुव संज्ञक और रेवती नक्षत्र तथा शुभवारोंमें सीमन्त शुभ होता है ॥ ८ ॥

वि०—जब स्त्री गर्भवती होती है तो पुत्रोत्पत्तिकी कामनासे पुंसवन और सीमन्त संस्कार किये जाते हैं। इनकी विधि 'दशकर्मपद्धति' में है ॥ ८ ॥

गर्भके दश मासोंके स्वामी और चन्द्रबलका निर्णय—

मासेश्वराः सित–कुजेज्य–रवीन्दु–सौरि-
चन्द्रात्मजास्तनुप–चन्द्र–दिवाकराः स्युः ।
स्त्रीणां विधोर्बलमुशन्ति विवाहगर्भ-
संस्कारयोरितरकर्मसु भर्तुरेव ॥ ९ ॥

अन्वयः—सितकुजेज्यरवीन्दुसौरिचन्द्रात्मजाः तनुपचन्द्रदिवाकराः 'एते गर्भे क्रमेण' मासेश्वराः स्युः। विवाह–गर्भ–संस्कारयोः स्त्रीणां विधोः बलं उशन्ति। इतरकर्मसु भर्तुः एव 'विधोः बलं ग्राह्यम्' ॥ ९ ॥

भाषार्थः—गर्भवती स्त्रीके गर्भके प्रथम मासका स्वामी शुक्र १, दूसरेका मङ्गल २, तीसरेका गुरु ३, चौथेका सूर्य ४, पाँचवेंका चन्द्रमा ५, छठेका शनि ६, सातवेंका बुध ७, आठवेंका लग्नेश (अर्थात् गर्भाधान कालिक लग्नका स्वामी) ८, नववेंका चन्द्रमा और दशवें मासका स्वामी सूर्य होता है।

विवाह और गर्भके संस्कारों (गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्त आदि) में स्त्रियोंका चन्द्रबल देखना चाहिये और अन्य संस्कारोंमें उनके स्वामीका ही चन्द्रबल देखना चाहिये ॥ ९ ॥

गर्भवतीका पुंसवन संस्कार और विष्णुपूजा मुहूर्त्त—

पूर्वोदितैः पुंसवनं विधेयं मासे तृतीये त्वथ विष्णुपूजा ।
मासेऽष्टमे विष्णुविधातृजीवैर्लग्ने शुभे मृत्युगृहे च शुद्धे ॥१०॥

अन्वयः—पूर्वोदितैः (सीमन्तसंस्कारोक्ततिथ्यादिभिः) तृतीये तु मासे पुंसवनं विधेयम् । अथ अष्टमे मासे, विष्णुविधातृजीवैः 'नक्षत्रैः' शुभे लग्ने, मृत्युगृहे शुद्धे च 'सति' विष्णुपूजा 'कर्त्तव्या' ॥ १० ॥

भाषार्थः—गर्भाधानके बाद तीसरे मासमें, सीमन्त संस्कारमें कहे गये तिथि-वार-नक्षत्रोंमें पुंसवन संस्कार करना चाहिये । उसके बाद ८ वें मासमें श्रवण-रोहिणी-पुष्य-नक्षत्रोंमें अष्टम स्थान शुद्ध हो ऐसे शुभ (शुभग्रहकी राशि या शुभयुक्त) लग्नमें 'गर्भरक्षाके लिये' विष्णुकी पूजा करनी चाहिये ॥ १० ॥

वि०—'पुमान् सूयतेऽनेन कर्मणेति पुंसवनम्' इस व्युत्पत्तिसे पुंसवन संस्कार करने पर पुत्रकी ही उत्पत्ति होती है, इसलिये पुत्रोत्पत्तिकी इच्छासे गर्भाधानसे ३ रे मासमें पुंसवन संस्कार किया जाता है ॥ १० ॥

जन्म होनेपर जातकर्म-नामकरणका मुहूर्त—

तज्जातकर्मादि शिशोर्विधेयं पर्वाख्यरिक्तोनतिथौ शुभेऽह्नि ।
एकादशे द्वादशकेऽपि घस्रे मृदुध्रुवक्षिप्रचरोडुषु स्यात् ॥ ११ ॥

अन्वयः—पर्वाख्यरिक्तोनतिथौ, शुभे अह्नि, एकादशे द्वादशके अपि घस्रे, मृदुध्रुव-क्षिप्रचरोडुषु तत् (जन्मकालातिक्रान्तम्) शिशोः जातकर्मादि विधेयं स्यात् ॥ ११ ॥

भाषार्थः—पर्वों और रिक्ता तिथियोंको छोड़कर अन्य तिथियोंमें, शुभ वारमें, जन्मसे ११वें या १२वें दिनमें, मृदु-ध्रुव-क्षिप्र-चर-संज्ञक नक्षत्रोंमें बालकका जातकर्म और नामकरण शुभ होता है ॥ ११ ॥

वि०—जातकर्म संस्कार पुत्रके जन्मकालमें ही उसके ग्रहदोषकी शान्ति और कल्याणकी कामनासे पिताको करना चाहिये । जैसे गुरुने कहा है—

जातकर्मक्रियां कुर्यात् पुत्रायुःश्रीविवृद्धये ।
ग्रहदोषविनाशाय सूतकाशुभविच्छिदे ।
कुमारग्रहनाशाय पुंसां सत्त्वविवृद्धये ॥

यदि जन्मकालमें शुभ मुहूर्त नहीं हो या पिता परोक्षमें हो तो कहे गये मुहूर्तके अनुसार करना चाहिये ।

नामकरणमें जन्मनक्षत्रके अनुसार नाम रखना चाहिये। जिस नक्षत्रके जिस चरणमें जन्म हो उस नक्षत्रका वह चरण जिस अक्षरमें पड़े तदादि नाम बालकका रखना चाहिये । उसके वास्ते नक्षत्रोंका शतपद चक्र देखिये ॥ ११ ॥

प्रसूती स्त्रीके स्नानका मुहूर्त—

पौष्णध्रुवेन्दुकरवातहयेषु सूती-
स्नानं समित्रभरवीज्यकुजेषु शस्तम् ।

नार्द्रात्रयश्रुतिमघान्तकमिश्रमूल-
त्वाष्ट्रे ज्ञसौरिवसुषड्विरिक्ततिथ्याम् ॥ १२ ॥

अन्वयः—समित्रभरवीज्यकुजेषु पौष्णध्रुवेन्दुकरवातहयेषु 'नक्षत्रेषु' सूतीस्नानं शस्तं स्यात्'। आर्द्रात्रयश्रुतिमघान्तकमिश्रमूलत्वाष्ट्रे 'नक्षत्रे' ज्ञसौरिवसुषड्विरिक्ततिथ्यां 'सूतीस्नानं शस्तं' न 'भवति' ॥ १२ ॥

भाषार्थः—रेवती, ध्रुवसंज्ञक, मृगशिरा, हस्त, स्वाती, अश्विनी और अनुराधा इन १० नक्षत्रमें, रवि–मङ्गल-गुरुवारोंमें प्रसूती स्त्रीका स्नान शुभ होता है। आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, श्रवण, मघा, भरणी, विशाखा, कृत्तिका, मूल और चित्रा इन १० नक्षत्रोंमें, बुध और शनि वारोमें तथा ६, ८, १२, ४, ९, १४ इन तिथियोंमें प्रसूतीका स्नान शुभ नहीं हैं ॥ १२ ॥

"स्नाता प्रसूताऽप्यसुता बुधेन स्नाता च वन्ध्या भृगुनन्दनेन।
सौरे मृतिः दुग्धहतिश्च सोमे पुत्रार्थलाभो रविभौमजीवे ॥"

वि०—इस वचनके अनुसार बुध, शुक्र, शनि और सोमवारको प्रसूतीका स्नान निषेध है।

बालकके प्रथम माताका स्तनपानका मुहूर्त्त—

रिक्तां भौमं परित्यज्य विष्टिं पातं सवैधृतिम्।
मृदुध्रुवक्षिप्रभेषु स्तन्यपानं हितं शिशोः ॥

'रिक्ता तिथि, मङ्गलवार, भद्रा, व्यतीपात और वैधृति योगोंको' छोड़कर अन्य तिथि वार योगोंमें और मृदु–ध्रुव–क्षिप्र संज्ञक नक्षत्रोंमें बालकका प्रथम २ माताका दूध पीना शुभ होता है ॥ १२ ॥

बालकके दाँत निकलनेका फल—

मासे चेत्प्रथमे भवेत्सदशनो बालो विनश्येत्स्वयं
हन्यात्स क्रमतोऽनुजात-भगिनीमात्रग्रजान् द्व्यादिके।
षष्ठादौ लभते हि भोगमतुलं तातात्सुखं पुष्टतां
लक्ष्मीं सौख्यमथो जनौ सदशनो वोर्ध्वं स्वपित्रादिहा ॥१३॥

अन्वयः—चेत् प्रथमे मासे बालः सदशनः भवेत् 'तदा' स स्वयं विनश्येत्। चेद्' द्व्यादिके 'मासे सदशनः भवेत्तदा' क्रमतः अनुजात–भगिनी–मात्रग्रजान् हन्यात्। षष्ठादौ 'मासे' हि 'क्रमेण' अतुलं भोगं, तातात् सुखं, पुष्टतां, लक्ष्मीं, सौख्यं लभते। अथो जनौ (जन्मकाले) वा ऊर्ध्वं (उपरिस्थपङ्क्तौ) सदशनः बालः स्वपित्रादिहा 'भवति' ॥ १३ ॥

भाषार्थः—यदि जन्मके बाद पहले मासमें बालकके दाँत निकलें तो वह

बालक स्वयं मर जाय। दूसरे मासमें दाँत निकलनेपर अपने छोटे भाईका, तीसरे मासमें बहिनका, चौथे मासमें माताका और पाँचवें मासमें बड़े भाईका नाश करता है। छठे मासमें दाँत निकलनेपर बालक अत्यन्त सुख पाता है। सातवें मासमें पितासे सुख प्राप्त हो। ८ वें मासमें पुष्टता (खूब स्वास्थ्य) लाभ हो। ९ वें मासमें लक्ष्मीकी प्राप्ति हो और १० वें मासमें दाँत निकले तो सुखी हो। यदि जन्मके समयमेंके ही बालकके दाँत निकले हों (अर्थात् दन्तयुक्त बालकका जन्म हो) तो अपना, पिता और माताका नाश करता है, अथवा जन्मके बाद निषिद्ध कालमें ऊपरकी पंक्ति (तालु) में पहले दाँत निकलें तो अपना, पिता और माताका नाश करता है ॥ १२ ॥

वि०—दशवें मासके बाद दाँत निकले तो बालक अधिक सुखी होता है।

निषिद्ध दन्तोत्पत्तिकी शान्ति—

"गजपृष्ठगतं बालं नौस्थं वा स्नापयेद् द्विजः।
तदभावे तु धर्मज्ञ काञ्चने तु वरासने॥
सर्वौषधैः सर्वगन्धैर्बीजैः पुष्पैः फलैस्तथा।
पञ्चगव्येन रत्नैश्च मृत्तिकाभिश्च भार्गव!
स्थालीपाकेन धातारं पूजयेत्तदनन्तरम्।
सप्ताहं चात्र कर्त्तव्यं तथा ब्राह्मणभोजनम्॥
अष्टमेऽहनि विप्राणां तथा देया च दक्षिणा।
काञ्चनं रजतं गाश्च भुवं वा धनमेव च" इति॥

यदि बालकके दाँत जन्म-कालमें या निषिद्ध कालमें निकलें तो शुभ मुहूर्त्तमें बालकको हाथी पर अथवा नदीमें नौका पर, या हाथी और नौकाके अभावमें सुन्दर आसन पर बैठाकर सर्वौषधि सुगन्ध-बीज-फल-फूल-पञ्चगव्य-पञ्चरत्न-सप्तमृत्तिका इनसे युक्त जलसे ब्राह्मणके द्वारा स्नान करावे और स्थाली पाकसे ब्रह्माकी पूजा करे। उसके बाद यथा शक्ति सात दिन तक ब्राह्मण भोजन करावे और आठवें दिन ब्राह्मणोंको सोना-चान्दी-गौ-वस्त्र-पृथ्वी दक्षिणा दे। इस प्रकार निषिद्ध दन्तोत्पत्तिका दोष मिट जाता है ॥ १३ ॥

बालकके दोलारोहणमें चक्रशुद्धिका विचार—

दोलारोहेऽर्कभात् पञ्च-शर-पञ्चेषु-सप्तभैः।
नैरुज्यं मरणं कार्श्यं व्याधिः सौख्यं क्रमाच्छिशोः॥१४॥

अन्वयः—अर्कभात् पञ्च-शव-पञ्चे-षु-सप्तभैः शिशोः दोलारोहे क्रमात्-नैरुज्यं, मरणं, कार्श्यं, व्याधिः, सौख्यं 'फलं भवति' ॥ १४ ॥

भाषार्थः—सूर्यके नक्षत्रसे ५ नक्षत्रोंमें बालकके दोलारोहण (पालना-

झुलाने) में आरोग्यता होती है। उसके बाद ५ नक्षत्रोंमें मरण होता है। उसके बाद ५ नक्षत्रोंमें कृशता (दुर्बलता) होती है। उसके बाद ५ नक्षत्रोंमें व्याधि (रोग) हो। और अन्तके ७ नक्षत्रोंमें सौख्य होता है। तात्पर्य यह है कि सूर्य जिस नक्षत्रमें हो उससे आगेके ५ नक्षत्र और पीछेके ७ नक्षत्र बालकोंके दोलारोहणमें शुभ हैं अन्य १५ नक्षत्र अशुभ हैं ॥ १४ ॥

बालकोंके दोलारोहण और घरसे बाहर लानेके मुहूर्त्त—

दन्तार्कभूपधृतिदिङ्मितवासरे स्याद्
द्वारे शुभे मृदु-लघु-ध्रुवभैः शिशूनाम् ।
दोलाधिरूढिरथ निष्क्रमणं चतुर्थे
मासे गमोक्तसमयेऽर्कमितेऽह्नि वा स्यात् ॥१५॥

अन्वयः—'जन्मतः' दन्तार्कभूपधृतिदिङ्मितवासरे, शुभे वारे, मृदु-लघु-ध्रुवभैः 'नक्षत्रैः' शिशूनां दोलाधिरूढिः स्यात्। अथ चतुर्थमासे गमोक्तसमये, वा अर्कमिते (द्वादशे) अह्नि 'शिशूनां' निष्क्रमणं 'शुभं' स्यात् ॥ १५ ॥

भाषार्थः—जन्मके दिनसे ३२, १२, १६, १८, १० इनमें किसी दिनमें, शुभ दिनमें और मृदु-लघु-ध्रुवसंज्ञकनक्षत्रोंमें बालकोंका प्रथम २ दोलारोहण (पालना झूलना) शुभ होता है।

जन्मसे चौथे मासमें यात्रामें कहे तिथि-वार-नक्षत्रोंमें बालकोंका प्रथम २ घरसे बाहर लाना शुभ होता है। अथवा जन्मसे १२ वें दिनमें निष्क्रमण शुभ होता है ॥ १५ ॥

वि०—बारहवें दिनमें भी यात्रोक्त तिथि-वार-नक्षत्र देखने चाहिये ॥ १५ ॥

प्रसूति स्त्रीके जलपूजनका मुहूर्त्त—

कवीज्यास्तचैत्राधिमासे न पौषे जलं पूजयेत्सूतिका मासपूर्तौ ।
बुधेन्द्वीज्यवारे विरिक्ते तिथौ हि श्रुतीज्यादितीन्द्वर्कनैर्ऋत्यमैत्रैः ॥१६॥

अन्वयः—सूतिका स्त्री मासपूर्त्तौ 'अपि' कवीज्यास्तचैत्राधिमासे 'तथा' पौषे 'मासे' जलं न पूजयेत्। 'तथा' बुधेन्द्वीज्यवारे, विरिक्ते तिथौ, श्रुतीज्यादितीन्द्वर्कनैर्ऋत्यमैत्रैः 'नक्षत्रैः' हि (निश्चयेन) जलं पूजयेत् ॥ १६ ॥

भाषार्थः—शुक्र और बृहस्पतिके अस्त रहनेपर, चैत्रमास, मलमास और पौष मासमें प्रसूती स्त्री मासकी पूर्त्ति होनेपर भी जलकी पूजा नहीं करे। बुध, सोम, गुरुवारोंमें, रिक्ताको छोड़कर अन्य तिथियोंमें, श्रवण, पुष्य, पुनर्वसु,

मृगशिरा, हस्त, मूल और अनुराधा इन नक्षत्रोंमें प्रसूती स्त्री जलपूजन करे ।

प्रसवके बाद १ मास बीतने पर प्रसूती स्त्री जल पूजन करती है । उसमें चैत्र पौस, मलमास, गुरुशुक्रास्त और रिक्ता तिथियां निषिद्ध हैं ॥ १६ ॥

अन्नप्राशनका मुहूर्त—

रिक्तानन्दाष्टदर्शं हरिदिवसमथो सौरिभौमार्कवारान्
लग्नं जन्मर्क्षलग्नाष्टमगृहलवगं मीनमेषालिकं च ।
हित्वा षष्ठात्समे मास्यथ हि मृगदृशां पञ्चमादोजमासे
नक्षत्रैः स्यात् स्थिराख्यैः समृदु-लघु-चरैर्बालकाऽन्नाशनं सत् ॥१७॥

अन्वयः—रिक्तानन्दाष्टदर्शं हरिदिवसं, अथो सौरिभौमार्कवारान्, जन्मर्क्षलग्नाष्टमगृहलवगं लग्नं, मीनमेषालिकं लग्नं च हित्वा, षष्ठात् समे मासि, अथ मृगदृशां (कन्यकानाम्) पञ्चमात् ओजमासे, समृदु-लघु-चरैः स्थिराख्यैः नक्षत्रैः बालकान्नाशनं सत् स्यात् ॥ १७ ॥

भाषार्थः—बालकोंका छठे आदि सम (६।८।१०।१२) मासमें और कन्याओंका पञ्चम आदि विषम (५।७।९।११) मासमें, मृदु-लघु-चर-स्थिर-संज्ञक १६ नक्षत्रोंमें प्रथम २ अन्नाशन (अन्न खाना) शुभ होता है । उस अन्नाशनमें-रिक्ता (४।९।१४), नन्दा (१।६।११), अष्टमी, अमावास्या और द्वादशी तिथियों, शनि-शङ्गल-रवि वारों, जन्मराशि-और जन्मलग्नसे ८वीं राशिके नवांश वाले लग्न तथा मीन-मेष-वृश्चिक लग्नोंका त्याग करना चाहिये ॥ १७ ॥

वि०—अन्नप्राशनमें गुरुशुक्रास्तादिका त्याग करना आवश्यक नहीं है । 'शुक्लपक्षे च पूर्वाह्णे' इस नारदके वचनसे 'शुक्लपक्ष और पूर्वाह्ण कालमें अन्नाशन करना चाहिये । और 'पट्टबन्धने चौलान्नप्राशने व्रतबन्धने । प्रशस्तं जन्मनक्षत्रमशुभं त्वन्यकर्मणि' इस नारदोक्त वचनसे अन्नप्राशन जन्मनक्षत्रमें भी शुभ है ॥ १७ ॥

अन्नप्राशनमें लग्नशुद्धि—

केन्द्रत्रिकोणसहजेषु शुभैः खशुद्धे लग्ने त्रिलाभरिपुगैश्च वदन्ति पापैः ।
लग्नाष्टषष्ठरहितं शशिनं प्रशस्तं मैत्राम्बुपानिलजनुर्भमसच्च केचित् ॥

अन्वयः—शुभैः केन्द्रत्रिकोणसहजेषु 'स्थितैः' खशुद्धे लग्ने, पापैः त्रिलाभरिपुगैश्च, लग्नाष्टषष्ठरहितं शशिनं प्रशस्तं वदन्ति । केचित् "आचार्याः" मैत्राम्बुपानिलजनुर्भं च असद् वदन्ति ॥ १८ ॥

भाषार्थः—शुभग्रह लग्नसे १।४।७।५।९।३ स्थानोंमें हों, लग्नसे १०वाँ

झुलाने) में आरोग्यता होती है। उसके बाद ५ नक्षत्रोंमें मरण होता है। उसके बाद ५ नक्षत्रोंमें कृशता (दुर्बलता) होती है। उसके बाद ५ नक्षत्रोंमें व्याधि (रोग) हो। और अन्तके ७ नक्षत्रोंमें सौख्य होता है। तात्पर्य यह है कि सूर्य जिस नक्षत्रमें हो उससे आगेके ५ नक्षत्र और पीछेके ७ नक्षत्र बालकोंके दोलारोहणमें शुभ हैं अन्य १५ नक्षत्र अशुभ हैं ॥ १४ ॥

बालकोंके दोलारोहण और घरसे बाहर लानेके मुहूर्त्त—

दन्तार्कभूपधृतिदिङ्मितवासरे स्याद्
द्वारे शुभे मृदु-लघु-ध्रुवभैः शिशूनाम् ।
दोलाधिरूढिरथ निष्क्रमणं चतुर्थ-
मासे गमोक्तसमयेऽर्कमितेऽह्नि वा स्यात् ॥१५॥

अन्वयः—'जन्मतः' दन्तार्कभूपधृतिदिङ्मितवासरे, शुभे वारे, मृदु-लघु-ध्रुवभैः 'नक्षत्रैः' शिशूनां दोलाधिरूढिः स्यात्। अथ चतुर्थमासे गमोक्तसमये, वा अर्कमिते (द्वादशे) अह्नि 'शिशूनां' निष्क्रमणं 'शुभं' स्यात् ॥ १५ ॥

भाषार्थः—जन्मके दिनसे ३२, १२, १६, १८, १० इनमें किसी दिनमें, शुभ दिनमें और मृदु-लघु-ध्रुवसंज्ञकनक्षत्रोंमें बालकोंका प्रथम २ दोलारोहण (पालना झूलना) शुभ होता है।

जन्मसे चौथे मासमें यात्रामें कहे तिथि-वार-नक्षत्रोंमें बालकोंका प्रथम २ घरसे बाहर लाना शुभ होता है। अथवा जन्मसे १२ वें दिनमें निष्क्रमण शुभ होता है ॥ १५ ॥

वि०—बारहवें दिनमें भी यात्रोक्त तिथि-वार-नक्षत्र देखने चाहिये ॥ १५ ॥

प्रसूति स्त्रीके जलपूजनका मुहूर्त्त—

कवीज्यास्तचैत्राधिमासे न पौषे जलं पूजयेत्सूतिका मासपूर्तौ ।
बुधेन्द्वीज्यवारे विरिक्ते तिथौ हि श्रुतीज्यादितीन्द्वर्कनैर्ऋत्यमैत्रैः ॥१६॥

अन्वयः—सूतिका स्त्री मासपूर्त्तौ 'अपि' कवीज्यास्तचैत्राधिमासे 'तथा' पौषे 'मासे' जलं न पूजयेत्। 'तथा' बुधेन्द्वीज्यवारे, विरिक्ते तिथौ, श्रुतीज्यादितीन्द्वर्कनैर्ऋत्यमैत्रैः 'नक्षत्रैः' हि (निश्चयेन) जलं पूजयेत् ॥ १६ ॥

भाषार्थः—शुक्र और बृहस्पतिके अस्त रहनेपर, चैत्रमास, मलमास और पौष मासमें प्रसूती स्त्री मासकी पूर्त्ति होनेपर भी जलकी पूजा नहीं करे। बुध, सोम, गुरुवारोंमें, रिक्ताको छोड़कर अन्य तिथियोंमें, श्रवण, पुष्य, पुनर्वसु,

मृगशिरा, हस्त, मूल और अनुराधा इन नक्षत्रोंमें प्रसूती स्त्री जलपूजन करे।

प्रसवके बाद १ मास बीतने पर प्रसूती स्त्री जल पूजन करती है। उसमें चैत्र पौस, मलमास, गुरुशुक्रास्त और रिक्ता तिथियां निषिद्ध हैं ॥ १६ ॥

अन्नप्राशनका मुहूर्त—

रिक्तानन्दाष्टदर्शं हरिदिवसमथो सौरिभौमार्कवारान्
लग्नं जन्मर्क्षलग्नाष्टमगृहलवगं मीनमेषालिकं च ।
हित्वा षष्ठात्समे मास्यथ हि मृगदृशां पञ्चमादोजमासे
नक्षत्रैः स्यात् स्थिराख्यैः समृदु-लघु-चरैर्बालकाऽन्नाशनं सत् ॥१७॥

अन्वयः—रिक्तानन्दाष्टदर्शं हरिदिवसं, अथो सौरिभौमार्कवारान्, जन्मर्क्षलग्नाष्टमगृहलवगं लग्नं, मीनमेषालिकं लग्नं च हित्वा, षष्ठात् समे मासि, अथ मृगदृशां (कन्यकानाम्) पञ्चमात् ओजमासे, समृदु-लघु-चरैः स्थिराख्यैः नक्षत्रैः बालकान्नाशनं सत् स्यात् ॥ १७ ॥

भाषार्थः—बालकोंका छठे आदि सम (६।८।१०।१२) मासमें और कन्याओंका पञ्चम आदि विषम (५।७।९।११) मासमें, मृदु-लघु-चर-स्थिर-संज्ञक १६ नक्षत्रोंमें प्रथम २ अन्नाशन (अन्न खाना) शुभ होता है। उस अन्नाशनमें-रिक्ता (४।९।१४), नन्दा (१।६।११), अष्टमी, अमावास्या और द्वादशी तिथियों, शनि-मङ्गल-रवि वारों, जन्मराशि-और जन्मलग्नसे ८वीं राशिके नवांश वाले लग्न तथा मीन-मेष-वृश्चिक लग्नोंका त्याग करना चाहिये ॥ १७ ॥

वि०—अन्नप्राशनमें गुरुशुक्रास्तादिका त्याग करना आवश्यक नहीं है। 'शुक्लपक्षे च पूर्वाह्णे' इस नारदके वचनसे 'शुक्लपक्ष और पूर्वाह्ण कालमें अन्नाशन करना चाहिये। और 'पट्टबन्धने चौलान्नप्राशने व्रतबन्धने। प्रशस्तं जन्मनक्षत्रमशुभं त्वन्यकर्मणि' इस नारदोक्त वचनसे अन्नप्राशन जन्मनक्षत्रमें भी शुभ है ॥ १७ ॥

अन्नप्राशनमें लग्नशुद्धि—

केन्द्रत्रिकोणसहजेषु शुभैः खशुद्धे लग्ने त्रिलाभरिपुगैश्च वदन्ति पापैः ।
लग्नाष्टषष्ठरहितं शशिनं प्रशस्तं मैत्राम्बुपानिलजनुर्भमसच्च केचित् ॥

अन्वयः—शुभैः केन्द्रत्रिकोणसहजेषु 'स्थितैः' खशुद्धे लग्ने, पापैः त्रिलाभरिपुगैश्च, लग्नाष्टषष्ठरहितं शशिनं प्रशस्तं वदन्ति। केचित् "आचार्याः" मैत्राम्बुपानिलजनुर्भं च असद् वदन्ति ॥ १८ ॥

भाषार्थः—शुभग्रह लग्नसे १।४।७।५।९।३ स्थानोंमें हों, लग्नसे १०वाँ

स्थान शुद्ध (ग्रह रहित) हो और पाप ग्रह ३।११।६ स्थानोंमें हों तथा चन्द्रमा लग्न, आठवें और छठे स्थानोंमें नहीं हो तो अन्नाशन शुभ कहा गया है। कोई कोई आचार्य अन्नाशनमें अनुराधा, शतभिषा, स्वाती और जन्मके नक्षत्र अशुभ कहे हैं ॥ १८ ॥

वि०—वस्तुतः अनुराधा, शतभिषा, स्वाती और जन्म नक्षत्र ये सब अन्नाशनमें विहित हैं। क्योंकि नारद-वशिष्ठ-कश्यप-मतसे 'चरस्थिरमृदुक्षिप्रनक्षत्रेषु शुभे दिने' में अनुराधा शतभिषा स्वाती ये तीनों आ जाते हैं और 'बालान्नभुक्तौ व्रतबन्धनेऽपि राजाभिषेके खलु जन्मधिष्ण्यम् शुभं' इस वसिष्ठ-वचनसे जन्मनक्षत्र भी शुभ है। गुरुके मतसे जन्मनक्षत्रमें अन्नभोजन निषेध है, लेकिन वह है वार्षिक नवान्नभोजन। बालकोंका अन्नाशन जन्मनक्षत्रमें भी करना चाहिये ॥ १८ ॥

अन्नाशनमें ग्रहोंका स्थानफल—

क्षीणेन्दु-पूर्णचन्द्रेज्य-ज्ञ-भौमाऽर्काऽऽर्कि-भार्गवैः ।
त्रिकोणव्ययकेन्द्राष्टस्थितैरुक्तं फलं ग्रहैः ॥ १९ ॥
भिक्षाशी यज्ञकृद्दीर्घजीवी ज्ञानी च पित्तरुक् ।
कुष्ठी चान्न-क्लेश-वातव्याधिमान् भोगभागिति ॥ २० ॥

अन्वयः—क्षीणेन्दु-पूर्णचन्द्रेज्य-ज्ञ-भौमार्काऽऽर्कि-भार्गवैः ग्रहैः त्रिकोणव्ययकेन्द्राष्टस्थितैः 'क्रमात्' भिक्षाशी, यज्ञकृद्, दीर्घजीवी, ज्ञानी, पित्तरुक्, कुष्ठी, च (पुनः) अन्नक्लेश-वातव्याधिमान् भोगभाक् इति फलं उक्तम् ॥ १९-२० ॥

भाषार्थः—यदि लग्नसे ५।९।१२।१।४।७।८ इन स्थानोंमें क्षीणचन्द्र[1] पड़े तो अन्नाशन करने पर बालक भिखारी हो। पूर्ण चन्द्र[2] पड़े तो बालक यज्ञ-कर्त्ता हो। बृहस्पति पड़े तो दीर्घजीवी हो। बुध पड़े तो ज्ञानी हो। मङ्गल पड़े तो पित्तका रोगी हो। सूर्य पड़े तो कोढ़ी हो। शनि (और राहु, केतु) पड़े तो उसे अन्नका क्लेश और वातव्याधि (वायुरोग) हो। यदि शुक्र पड़े तो वह बालक भोगयुक्त (सुखी) हो ॥ १९-२० ॥

बालकके पृथ्वीपर बैठानेका मुहूर्त्त—

पृथ्वीं वराहमभिपूज्य कुजे विशुद्धे-
ऽरिक्ते तिथौ व्रजति पञ्चममासि बालम् ।

---

१. कृष्ण पक्षकी अष्टमीसे शुक्ल सप्तमी तक चन्द्रमा क्षीण रहता है।

२. शुक्ल पक्षकी अष्टमीसे कृष्ण सप्तमी तक चन्द्रमा पूर्ण रहता है।

बद्ध्वा शुभेऽह्नि कटिसूत्रमथ ध्रुवेन्दु-
ज्येष्ठर्क्ष-मैत्र-लघुभैरुपवेशयेत्कौ ॥ २१ ॥

अन्वयः—पञ्चममासि व्रजति, कुजे विशुद्धे 'च, सति' अरिक्ते तिथौ, शुभे अह्नि, ध्रुवेन्दुज्येष्ठर्क्षमैत्रलघुभैः पृथ्वीं वराहं अभिपूज्य, अथ कटिसूत्रं बद्ध्वा बालं कौ (पृथिव्याम्) उपवेशयेत् ॥ २१ ॥

भाषार्थः—जब पाँचवाँ महीना लगा हो और मङ्गल बली हो तब रिक्तारहित तिथिमें, शुभ दिनमें, ध्रुवसंज्ञक, मृगशिरा, ज्येष्ठा, अनुराधा और लघुसंज्ञक नक्षत्रोंमें पहले पृथ्वी और वराह भगवान्की विधिपूर्वक पूजा करके बालकको कटिसूत्र पहनाकर पृथ्वी पर बैठाना चाहिये ॥ २१ ॥

वि०—बालकको भूमिपर बैठाते समय नीचे लिखे मन्त्रों को पढ़ना चाहिये ।

"रक्षैनं वसुधे देवि! सदा सर्वगतं शुभे।
आयुःप्रमाणं सकलं निक्षिपस्व हरिप्रिये! ॥
अचिरादायुषस्तस्य ये केचित् परिपन्थिनः ।
जीवितारोग्यवित्तेषु निर्दहस्वाचिरेण तान् ॥
धारिण्यशेषभूतानां मातस्त्वमधिका ह्यसि ।
कुमारं पाहि मातस्त्वं ब्रह्मा तदनुमन्यताम्" ॥ इति पद्मपुराणे ।

इति भूम्युपवेशन लड़का और लड़की दोनोंका समान ही होता है। मूलश्लोकमें यह भूम्युपवेशन '५ वें मासमें और ६ ठे मासमें अन्नाशन कहा गया है। यहाँ ग्रन्थकारने पहले अन्नाशनका मुहूर्त्त लिख कर बादमें भूम्युपवेशनका मुहूर्त्त क्रमभङ्गरूप प्राक्तन आचार्योंसे अनुक्त होनेके कारण लिखा है। इस भूम्युपवेशनमें लग्न चरराशिके लेने चाहिये ॥ २१ ॥

भूम्युपवेशन कालमें बालककी जीविका-परीक्षा—

तस्मिन्काले स्थापयेत्तत्पुरस्ताद्वस्त्रं शस्त्रं पुस्तकं लेखनीं च ।
स्वर्णं रौप्यं यच्च गृह्णाति बालस्तैराजीवैस्तस्य वृत्तिः प्रदिष्टा ॥२२॥

अन्वयः—तस्मिन् काले (भुवि बालकोपवेशनसमये) तत्पुरस्तात् वस्त्रं, शस्त्रं, पुस्तकं, लेखनीं, स्वर्णं, रौप्यं च स्थापयेत्। 'तेषु स्वेच्छया' बालः यद् गृह्णाति तैः आजीवैः तस्य वृत्तिः प्रदिष्टा ॥ २२ ॥

भाषार्थः—'बालकके पृथ्वी पर बैठाते समयमें ही' उसके आगे कपड़ा' शस्त्र, पुस्तक, कलम, सोना, चान्दी इत्यादि अनेक वस्तु रखे। उन वस्तुओंमेंसे बालक अपनी इच्छासे जिस वस्तुको पहले उठावे, उसी वस्तुके द्वारा उस बालक की जीविका जाननी चाहिये ॥ २२ ॥

बालकके ताम्बूल-भक्षणका मुहूर्त्त—

वारे भौमार्किहीने ध्रुव–मृदु–लघुभैर्विष्णुमूलादितीन्द्र-
स्वातीवस्वभ्युपेतैर्मिथुनमृगसुताकुम्भगोमीनलग्ने ।
सौम्यैः केन्द्रत्रिकोणैरशुभगगनगैः शत्रुलाभत्रिसंस्थै-
स्ताम्बूलं सार्धमासद्वयमितसमये प्रोक्तमन्नाशने वा ॥२३॥

अन्वयः—भौमार्किहीने वारे, विष्णुमूलादितीन्द्रस्वातीस्वभ्युपेतैः ध्रुव–मृदु–लघुभैः, मिथुन–मृग–सुता–कुम्भ–गो–मीन–लग्ने सौम्यैः केन्द्रत्रिकोणैः, अशुभगगनगैः, शत्रुलाभ–त्रिसंस्थैः, 'जन्मतः' सार्धमासद्वयमितसमये 'बालकस्य' ताम्बूलं (ताम्बूल-भक्षणं) प्रोक्तम् । वा (अथवा) अन्नाशने 'एव' ताम्बूलं प्रोक्तम् ॥ २३ ॥

भाषार्थः—मङ्गल और शनिको छोड़कर अन्य वारोंमें ध्रुव–मृदु–लघु संज्ञक नक्षत्र, श्रवण, मूल, पुनर्वसु, ज्येष्ठा, स्वाती और धनिष्ठा इन १७ नक्षत्रोंमें; मिथुन, मकर, कन्यां, कुम्भ, वृष, और मीन लग्नोंमें, लग्नसे शुभ ग्रहोंके १।४।७। १०।५।९ स्थानोंमें और पापग्रहोंके ६।११।३ स्थानोंसे रहने पर, जन्मसे ढाई मास बीतने पर बालकको पान खिलाना शुभ होता है। अथवा अन्नप्राशनके दिनमें ही पान खिलाना चाहिये ॥ २३ ॥

कर्णवेधका मुहूर्त्त—

हित्वैतांश्चैत्रपौषावमहरिशयनं जन्ममासं च रिक्तां
युग्माब्दं जन्मतारामृतु-मुनि-वसुभिः सम्मिते मास्यथो वा ।
जन्माहात्सूर्यभूपैः परिमितदिवसे ज्ञेज्यशुक्रेन्दुवारेऽ-
थौजाब्दे विष्णुयुग्मादितिमृदुलघुभैः कर्णवेधः प्रशस्तः ॥२४॥

अन्वयः—चैत्रपौषावमहरिशयनं, जन्ममासं, च (पुनः) रिक्तां, युग्माब्दं, जन्मतारां 'एतान् हित्वा' 'जन्मतः' ऋतु-मुनि-वसुभिः सम्मिते मासि, अथो वा जन्माहात् सूर्य–भूपैः परिमितदिवसे, ज्ञेज्यशुक्रेन्दुवारे; अथ ओजाब्दे, विष्णुयुग्मादिति-मृदुलघुभैः कर्णवेधः प्रशस्तः 'भवति' ॥ २४ ॥

भाषार्थः—चैत्र और पौष दो मास, तिथिक्षय, विष्णुके शयनका समय (आषाढ़ शुक्ला एकादशीसे कार्तिक शुक्ला एकादशी तक चातुर्मास) जन्ममास[1]

---

१. जन्ममास वह है जिस चैत्रादि चान्द्रमासमें जन्म हो। किसी २ के मतसे जन्मदिनसे ३० वें दिन तक एक मास जन्म मास माना गया है। यहाँ जिस देशकी जैसी रीति हो वही पक्ष लेना चाहिये ।

रिक्तातिथि, सम (२।४।६ आदि) वर्ष और जन्म तारा इन सबोंको छोड़ कर जन्मसे ६,७,८वें मासमें, अथवा जन्मके दिनसे १२,१६ वें दिनमें, बुध बृहस्पति, शुक्र और चन्द्र वारमें विषम (१।३।५) वर्षमें और श्रवण–धनिष्ठा–पुनर्वसु–मृदु संज्ञक–लघुसंज्ञक नक्षत्रोंमें बालकका कर्णवेध (कान छेदना) शुभ होता है ॥ २४ ॥

वि—बालकोंका कर्णवेध जन्मसे १२वें या १६वें दिनमें तिथि–वार–नक्षत्रोंकी अनुकूलता देख कर करना चाहिये । यदि उसमें नहीं हो सके तो ६ ठे या ७ वें मासमें करना चाहिये । उसमें भी नहीं हो सके तो फिर ३रे या ५वें वर्षमें करना चाहिये ॥ २४ ॥

कर्णवेधमें लग्नशुद्धि—

संशुद्धे मृतिभवने त्रिकोणकेन्द्रत्र्यायस्थैः शुभखचरैः कवीज्यलग्ने ।
पापाख्यैररिसहजायगेहसंस्थैर्लग्नस्थे त्रिदशगुरौ शुभावहः स्यात्॥२५॥

अन्वयः—'लग्नात्' मृतिभवने संशुद्धे, शुभखचरैः त्रिकोणकेन्द्रत्र्यायस्थैः, कवीज्यलग्ने, पापाख्यैः (पापग्रहैः) अरिसहजायगेहसंस्थैः, त्रिदशगुरौ लग्नस्थे 'च सति, कर्णवेधः' शुभावहः स्यात् ॥ २५ ॥

भावार्थः—लग्नसे आठवाँ स्थान शुद्ध (खाली) रहे, शुभग्रह १।४।७।१०। ५।९।३।११ इन स्थानोंमें हों, शुक्र या बृहस्पतिकी राशि (अर्थात् वृष, तुला, धनु, मीनमें कोई एक) लग्न हो, पाप ग्रह लग्नसे ६।३।११ स्थानोंमें हों और लग्नमें बृहस्पति हो तो ऐसे लग्नमें कर्णवेध शुभ होता है ॥ २५ ॥

शुभकर्मोंमें निषिद्धकाल—

गीर्वाणाऽम्बुप्रतिष्ठा-परिणय-दहनाधान-गेहप्रवेशा-
श्चौलं राजाभिषेको व्रतमपि शुभदं नैव याम्यायने स्यात् ।
नो वा बाल्यास्तवार्धे सुरगुरु-सितयोर्नैव केतूदये स्यात्
पक्षं वार्धं च केचिज्जहति तमपरे यावदीक्षां तदुग्रे ॥२६॥

अन्वयः—याम्यायने गीर्वाणाम्बुप्रतिष्ठापरिणयदहनाधानगेहप्रवेशाः, चौलं, राजाभिषेकः, व्रतं अपि शुभदं नैव स्यात् । वा 'एतत् सर्वं' सुरगुरुसितयोः बाल्यास्तवार्धं 'शुभदं' नो स्यात् । 'एतत् सर्वं' केतूदये 'अपि' नैव 'शुभदं' स्यात् । केचित् (रैभ्य प्रमुखाचार्याः) 'तं केतूदयं' पक्षं वा अर्धं (पक्षार्धम्) च जहति । अपरे तदुग्रे 'केतौ' (ब्रह्मपुत्रादौ) ईक्षां (तद्दर्शनं) यावत् जहति ॥ २६ ॥

भावार्थः—देवताओं और जलाशयोंकी प्रतिष्ठा, विवाह, अग्न्याधान, गृह-प्रवेश, मुण्डन, राजाभिषेक और उपनयन ये सब कर्म याम्यायन (सूर्यके कर्कसे

धनु तक ६ राशिमें रहते) में, बृहस्पति और शुक्रके बाल्य, अस्त और वृद्ध रहने पर और केतुके उदय होनेपर शुभ नहीं होते। किसी २ (रैभ्य आदि) आचार्योंके मतसे केतुके उदयसे एक पक्ष (१५ दिन) या पक्षार्ध (७ दिन) तक उपर्युक्त कर्म शुभ नहीं होते और अन्य किसी आचार्यके मतसे उग्र (ब्रह्मपुत्र आदि अत्यन्त दुष्ट) केतुके उदयमें जबतक उसका दर्शन हो तब तक वे शुभकार्य बराये जायें ॥ २६ ॥

वि०—बृहस्पति और शुक्र इन दोनों ग्रहोंको ब्राह्मण जाति और ग्रहोंके आचार्य (गुरु) होनेके कारण प्रत्येक शुभकार्योंमें इनके प्राबल्य और अनुकूलताकी आवश्यकता उपयुक्त ही है। इनके बाल्य, अस्त और वार्धक्यका विवरण आगे २७वें श्लोकमें होगा।

केतुके भेद वाराही संहितामें अथवा मत्सम्पादित नारदीय संहितामें विशद रूपसे वर्णित हैं, वहाँ देखिये। वस्तुतः दुष्टफल-सूचक केतु जब तक दृश्य हो तब तक शुभकार्य नहीं करना चाहिये ॥ २६ ॥

गुरु-शुक्रके बाल्य और वृद्धत्व—

पुरः पश्चाद् भृगोर्बाल्यं त्रिदशाहं च वार्धकम् ।
पक्षं पञ्चदिनं ते द्वे गुरोः पक्षमुदाहृते ॥ २७ ॥

अन्वयः—भृगोः (शुक्रस्य) पुरः पश्चात 'क्रमेण' त्रिदशाहं बाल्यं 'प्रोक्तम्'। तथा पक्षं पञ्चदिनं च 'क्रमेण पुरः, पश्चात्' वार्धकं 'प्रोक्तम्'। गुरोः (बृहस्पतेः) 'पुरः पश्चात्' ते द्वे (बाल्य-वार्द्धके) पक्षं उदाहृते ॥ २७ ॥

भाषार्थः—शुक्रके पूर्वोदयके बाद ३ दिन और पश्चिमोदयके बाद १० दिन बालावस्था होती है। एवं-शुक्रके पूर्वास्तसे पहले १५ दिन और पश्चिमास्तसे पहले ५ दिन वृद्धत्व होता है।

बृहस्पतिका पूर्व और पश्चिम दोनों तरफ उदयके बाद १५ दिन बाल्य और अस्तके पहले १५ दिन वार्धक्य होता है ॥ २७ ॥

वि०—ग्रन्थ बढ़नेके भयसे उदयास्तका विशेष विवरण नहीं लिखकर इतना ही लिखता हूँ कि बृहस्पति और सूर्यका अन्तर जबतक ११ अंशसे कम रहता है तब तक बृहस्पति सूर्यके किरणोंमें छिपा रहनेके कारण अस्त कहलाता है और शुक्र-सूर्यका अन्तर ९ अंशसे जब तक कम रहता है तब तक शुक्र अस्त रहता है। अस्तके पहले तेजोहीन होनेसे गुरु-शुक्रकी बुढ़ापा और उदय होनेके बाद धीरे २ तेजोवृद्धि होती है इसलिये पहले कुछ दिन निस्तेज होनेके कारण इनकी बाल्यावस्था रहती है। जो पूर्वाचार्योंके अनुकूल ग्रन्थकारने दिनसंख्या लिखी है, ऐसी उपलब्धि मानी गयी है ॥ २७ ॥

गुरु-शुक्रके बाल्य-वार्धक्यमें मतान्तर—

ते दशाहं द्वयोः प्रोक्ते कैश्चित्सप्तदिनं परैः ।
त्र्यहं त्वात्ययिकेऽप्यन्यैरर्धाहं च त्र्यहं विधोः ॥ २८ ॥

अन्वयः—कैश्चित् (महेश्वरादिभिः) द्वयोः (गुरुशुक्रयोः) ते (बाल्यवार्धके) 'उभयत्र' दशाहं प्रोक्ते। परैः (केशवादिभिः) सप्तदिने प्रोक्ते। अन्यैः (गर्गादिभिः) तु आत्ययिके (परमावश्यककार्ये) त्र्यहं प्रोक्ते। तथा विधोः (चन्द्रस्य) अर्धाहं बाल्यं, त्र्यहं वार्धकं च प्रोक्तम् ॥ २८ ॥

भाषार्थः—महेश्वर आदि आचार्योंके मतसे गुरु और शुक्र दोनोंके पूर्व-पश्चिम दोनों तरफ बाल्य और वार्धक्य १० दिन माने गये हैं। केशव आदिके मतसे ७ दिन माने गये हैं। गर्ग आदि आचार्यके मतसे अत्यावश्यक कार्यमें सिर्फ ३ दिन माने गये हैं।

चन्द्रमा उदित होनेके बाद आधा दिन बाल और अस्त होनेके पहले ३ दिन वृद्ध रहता है ॥ २८

वि०—गुरु-शुक्रके बाल्य-वृद्धत्वमें मतभेद होनेके कारण देशाचार-व्यवस्था ही माननी चाहिये। जैसा गर्गाचार्यने लिखा है—

शुक्रो गुरुः प्राक् परतश्च बालो विन्ध्ये दशावन्तिषु सप्तरात्रम् ।
वङ्गेषु, हूणेषु च षट् च पञ्च शेषे तु देशे त्रिदिनं वदन्ति ॥

अर्थात् विन्ध्य देशोंमें (विन्ध्याचलके आसपास) १० दिन, अवन्ती (उज्जैन) में ७ दिन, बङ्गालमें ६ दिन, हूणमें ५ दिन और अन्य देशोंमें ३ दिन ही पूर्व और पश्चिम दोनों तरफ गुरु-शुक्रके बाल्य-वृद्धत्व माने जायें।

चन्द्रमाका वार्धक्य-बाल्य मिलकर कृष्णपक्षकी त्रयोदशीसे लेकर शुक्लपक्षकी प्रतिपत् तक बराये जाते हैं ॥ २८ ॥

मुण्डनका मुहूर्त्त—

चूडा वर्षात्तृतीयात्प्रभवति विषमेऽष्टार्करिक्ताद्यषष्ठी-
पर्वोनाहे विचैत्रोदगयनसमये ज्ञेन्दुशुक्रेज्यकानाम् ।
वारे लग्नांशयोश्चास्वभनिधनतनौ नैधने शुद्धियुक्ते
शाक्रोपेतैर्विमैत्रैर्मृदु-चर-लघुभैरायषट्त्रिस्थपापैः ॥ २९ ॥

अन्वयः—तृतीयाद् वर्षाद् विषमे 'वर्षे' अष्टार्करिक्ताद्यषष्ठीपर्वोनाहे, विचैत्रोदगयन-समये, ज्ञेन्दुशुक्रेज्यकानां वारे लग्नांशयोश्च, अस्वभनिधनतनौ, नैधने शुद्धियुक्ते शाक्रोपेतैः विमैत्रैश्च मृदुचरलघुभैः 'लग्नात्' आयषट्त्रिस्थपापैः चूडा 'शुभा' प्रभवति ॥

भाषार्थः—जन्मसे या गर्भसे तीसरे आदि विषम वर्ष (३।५।७) में, ८।१२। ४।९।१४।१।६ तिथियों और पर्वोंको छोड़कर अन्य तिथियोंमें, चैत्रको छोड़कर उत्तरायणमें (माघ, फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ, और आषाढ़में) बुध-सोम-शुक्र-बृहस्पति वारोंमें और इन्हींके लग्न तथा नवांशमें, जन्मराशि और जन्मलग्नसे आठवें लग्नको छोड़कर अन्य लग्नमें, लग्नसे आठवाँ स्थान खाली हो, ज्येष्ठासे युक्त और अनुराधासे रहित मृदु-चर-लघुसंज्ञक नक्षत्रोंमें (अर्थात् मृगशिरा, रेवती, चित्रा, स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, हस्त, अश्विनी, पुष्य और ज्येष्ठा इन १२ नक्षत्रोंमें) और पापग्रह लग्नसे ११।६।३ स्थानोंमें रहें तो चूडाकरण (मण्डन) शुभ होता है ॥ २९ ॥

वि०—चूडाकरणमें लग्नसे ८ वें स्थानमें शुक्रका रहना शुभ है। क्योंकि—

"अष्टमस्था ग्रहाः सर्वे नेष्टाः शुक्रविवर्जिताः।
शुक्रस्तु निधने चौले सर्वसम्पत्करः शिशोः" ॥

श्री पराशरजीके इस वचनसे शुक्रके अतिरिक्त ग्रह ८ वें स्थानमें अशुभ हैं। जन्ममास और गलग्रह भी चूडाकरणमें निषिद्ध हैं।

आजकल चूड़ाकरणके अतिरिक्त लड़कों और लड़कियोंके जन्मकेश-कर्तनका व्यवहार प्रायः बहुत देशोंमें प्रचलित है। इसमें साधारण पञ्चाङ्ग-शुद्धि ही देखी जाती है। परन्तु उस प्रथम कचकर्त्तनका भी मुहूर्त्त उपलब्ध है। जैसे—

जन्मादौ सममासि पुत्रविषये स्त्रीणां तु तद्व्यत्यये
कार्यं चादिमकेशखण्डनमिदं सूर्ये च सौम्यायने।
आदित्यद्वयदस्रपौष्णशशभृद्विष्णुत्रयार्कत्रये
पूर्वाह्णे शुभवासरे जयतिथौ ह्यष्टम्यमावर्जिते ॥ राजमार्तण्डे।

अर्थात् लड़केका सममास और लड़कियोंका विषम मासमें, सूर्यके उत्तरायण रहने पर, पुनर्वसु, पुष्य, अश्विनी, रेवती, मृगशिरा, श्र. ध. श. ह. चि. स्वा. नक्षत्रोंमें, पूर्वाह्णमें, शुभ दिनमें, अष्टमी और अमावास्या छोड़कर जया (३।१३) तिथिमें प्रथम केशकर्तन शुभ है ॥ २९ ॥

चूडाकरणके समय केन्द्रगत ग्रहोंके फल—

क्षीणचन्द्र-कुज-सौरि-भास्करैर्मृत्यु-शस्त्रमृति-पङ्गुता-ज्वराः।
स्युः क्रमेण बुध-जीव-भार्गवैः केन्द्रगैश्च शुभमिष्टतारया ॥३०॥

अन्वयः—क्षीणचन्द्र-कुज-सौरि-भास्करैः केन्द्रगैः, 'मुण्डने' क्रमेण मृत्यु-शस्त्र-मृति-पङ्गुता-ज्वराः स्युः। बुध-जीव-भार्गवैः केन्द्रगैः इष्टतारया च शुभं स्यात् ॥३०॥

भाषार्थः—चूडाकरणके समय लग्नसे केन्द्रमें (१।४।७।१० में) क्षीण

चन्द्रमा रहे तो बालककी मृत्यु हो। मङ्गल हो तो शस्त्रसे घात हो। शनि हो तो लङ्गड़ा हो जाय और सूर्य हो तो लड़केको ज्वर हो। बुध, बृहस्पति और शुक्रके केन्द्रमें रहनेपर तथा तारा शुभ हो (अर्थात् २।४।६।८।९ वीं तारा हो) तो मुण्डन शुभ होता है ॥ ३० ॥

बालककी माताके गर्भवती रहनेपर मुण्डनका निर्णय—

पञ्चमासाधिके मातुर्गर्भे चौलं शिशोर्न सत् ।
पञ्चवर्षाधिकस्येष्टं गर्भिण्यामपि मातरि ॥ ३१ ॥

अन्वयः—मातुः गर्भे पञ्चमासाधिके 'सति' शिशोः चौलं सत् न 'भवति'। परञ्च, पञ्चवर्षाधिकस्य शिशोः मातरि गर्भिण्यां अपि 'चौलं' इष्टं (शुभम्) 'भवति' ॥३१॥

भाषार्थः—जिस लड़केकी माता ५ माससे अधिक दिनकी गर्भवती हो उसका मुण्डन माताके गर्भवती रहनेपर शुभ नहीं होता। अर्थात् ५ माससे कम कालके गर्भमें चूडाकरण (मुण्डन) हो सकता है। यदि लड़का ५ वर्षसे अधिक दिनका हो तो माताके गर्भवती होनेपर भी मुण्डन शुभ होता है। तात्पर्य यह है कि माताके गर्भका दोष लड़केको ५ वर्षके भीतर ही लागू होता, बादमें नहीं ॥ ३१ ॥

३०वें श्लोकमें 'शुभमिष्टतारया' वाक्यसे मुण्डनमें शुभ तारायें अपेक्षित हैं। इसलिये यहाँ दुष्ट ताराओंका अपवाद कहा जाता है।

मुण्डनमें दुष्ट ताराका अपवाद—

तारादौष्ट्येऽब्जे त्रिकोणोच्चगे वा क्षौरं सत्स्यात्सौम्यमित्रस्ववर्गे ।
सौम्ये भेऽब्जे शोभने दुष्टतारा शस्ता ज्ञेया क्षौरयात्रादिकृत्ये ॥३२॥

अन्वयः—अब्जे (चन्द्रे) त्रिकोणोच्चगे, वा सौम्यमित्रस्ववर्गे स्थिते सति' तारादौष्ट्ये अपि क्षौरं सत् स्यात्। अथ, शोभने अब्जे सौम्येभे 'सति' क्षौरयात्रादिकृत्ये दुष्टतारा अपि शस्ता ज्ञेया ॥ ३२ ॥

भाषार्थः—यदि मुण्डनके समयमें चन्द्रमा त्रिकोणमें अपनी उच्च राशि (वृष) में या शुभग्रहोंके वर्गमें या अपने मित्रग्रहोंके वर्गमें अथवा अपने ही वर्गमें हो तो तारा दुष्ट (१।३।५।७ वीं) रहने पर भी मुण्डन शुभ होता है। यदि चन्द्रमा गोचरमें शुभ होकर शुभग्रहकी राशिमें हो तो दुष्ट तारा भी मुण्डन, यात्रा आदि कार्योंमें शुभ हो जाती, अर्थात् चन्द्रबलके आगे ताराबल गौण होता है ॥ ३२ ॥

मुण्डनादि शुभकार्योंमें निषिद्ध काल—

ऋतुमत्याः सूतिकायाः सूनोश्चौलादि नाऽऽचरेत् ।

ज्येष्ठापत्यस्य न ज्येष्ठे कैश्चिन्मार्गेऽपि नेष्यते ॥ ३३ ॥

अन्वयः—ऋतुमत्याः सूतिकायाश्च सूनोः चौलादि न आचरेत्। ज्येष्ठापत्यस्य ज्येष्ठे मासे 'चौलादि' न 'आचरेत्'। कैश्चित् (भारद्वाजादिभिः) आचार्यैः मार्ग-मासे अपि न इष्यते ॥ ३३ ॥

भाषार्थः—रजस्वला और प्रसूतिका स्त्रीके लड़के और लड़कियोंके मुण्डन आदि (मुण्डन, उपनयन, विवाह) 'सूतक निवृत्ति पर्यन्त' नहीं करने चाहिये। ज्येष्ठ सन्तान (प्रथम लड़के या लड़की) का मुण्डनादि ज्येष्ठ मासमें नहीं करने चाहिये। किसी आचार्य (भारद्वाज आदि) के मतसे अग्रहण मासमें भी ज्येष्ठ सन्तानके मुण्डनादि निषिद्ध हैं ॥ ३३ ॥

वि०—माताके रजस्वला होनेपर मङ्गल कार्य करनेका फल वरुणने कहा है—

यस्य माङ्गलिकं कृत्यं तस्य माता रजस्वला।
तदा स मृत्युमाप्नोति पञ्चमं दिवसं विना ॥
विवाहोत्सवकार्येषु माता चैव रजस्वला।
वैधव्यं जायते तत्र नृनार्योः पाणिपीडने ॥

इसलिये ऋतु और प्रसवके सूतकके बीतने पर शुभ कार्य करने चाहिये।

ज्येष्ठ और मार्गशीर्षमासमें ज्येष्ठ सन्तानका मुण्डनादि-निषेध भारद्वाजने किया है—

"मार्गशीर्षे तथा ज्येष्ठे क्षौरं परिणयं व्रतम्।
आद्यगर्भदुहित्रोश्च यत्नेन परिवर्जयेत्" ॥ इति ॥ ३३ ॥

साधारण क्षौर कर्मका मुहूर्त्त और उसमें निषिद्ध काल—

दन्तक्षौरनखक्रियाऽत्र विहिता चौलोदिते वारभे
पातंग्याररवीन्विहाय नवमं घस्रं च सन्ध्यां तथा।
रिक्तां पर्व निशां निरासनरणग्रामप्रयाणोद्यत-
स्नाताभ्यक्तकृताशनैर्नहि पुनः कार्या हितप्रेप्सुभिः ॥३४॥

अन्वयः—पातङ्ग्याररवीन्, नवमं घस्रं, सन्ध्यां, तथा रिक्तां पर्वनिशां च विहाय, अत्र चौलोदिते वारभे दन्तक्षौरनखक्रिया विहिता। अथ, पुनः निरासन-रण-ग्रामप्र-याणोद्यत-स्नाताभ्यक्तकृताशनैः हितप्रेप्सुभिः 'जनैः' दन्तक्षौरनखक्रिया नहि कार्या॥

भाषार्थः—शनि, मङ्गल, रविवार, क्षौरके नवें दिन, सन्ध्या समय, रिक्ता तिथि, पाँचो पर्व और रातका समय—इनको छोड़कर मुण्डनमें कहे गये तिथि, वार, नक्षत्रोंमें साधारण दाँत साफ करना, क्षौर (हजामत) बनाना और नख कटाना शुभ हैं। अपने हित चाहनेवालोंको बिना आसन, लड़ाई और किसी ग्रामकी

यात्राके दिन, स्नान करनेके बाद, तेल लगानेके बाद और भोजन करनेके बाद दन्त-क्षौर-नख-क्रिया नहीं करनी चाहिये ॥ ३४ ॥

क्षौर कर्ममें विशेष काल—

क्रतु-पाणिपीड-मृति-बन्धमोक्षणे क्षुरकर्म च द्विजनृपाज्ञयाऽऽचरेत् ।
शववाहतीर्थगमसिन्धुमज्जनक्षुरमाचरेन्न खलु गर्भिणीपति ॥३५॥

अन्वयः—क्रतु–पाणिपीड–मृति–बन्धमोक्षणे द्विजनृपाज्ञया च (गर्हितसमयेऽपि) क्षुरकर्म आचरेत् । अथ गर्भिणीपति शववाह–तीर्थगम–सिन्धुमज्जन–क्षुरं खलु (निश्चयेन) न आचरेत् ॥ ३५ ॥

भाषार्थः—यज्ञमें, विवाहमें, मरणाशौचमें और बन्धन (जेल) आदिसे छूटने पर निन्दित समयमें भी ब्राह्मण और राजाकी आज्ञासे क्षौर कराना चाहिये। जिसकी स्त्री गर्भवती हो वह पुरुष मृतकका वहन (उठाना) तीर्थकी यात्रा, समुद्रमें स्नान और क्षौर कर्म नहीं करे ॥ ३५ ॥

वि०—गङ्गायां भास्करक्षेत्रे मातापित्रोर्मृतेऽहनि ।
आधाने सोमपाने च षट्सु क्षौरं विधीयते ॥
राजकार्यनियुक्तानां नटानां रूपजीविनाम् ।
श्मश्रुरोमनखच्छेदे नास्तिकालविशोधनम् ॥

इन वचनोंसे तीर्थमें, माता-पिताके वार्षिक श्राद्धमें, गर्भाधानमें, मद्य (शराब) पीनेपर, एवं-राजाके नौकरोंको, नटोंको, बहुरूपकोंको क्षौर कर्ममें मुहूर्त देखनेकी आवश्यकता नहीं है ॥ ३५ ॥

श्मश्रुकर्म (दाढ़ी बनवाने) का मुहूर्त्त और क्षौरकर्ममें वर्ज्य नक्षत्र—

नृपाणां हितं क्षौरभे श्मश्रुकर्म दिने पञ्चमे पञ्चमेऽस्योदये वा ।
षडग्निस्त्रिमैत्रोऽष्टकः पञ्चपित्र्योऽब्दतोऽब्ध्यर्यमा क्षौरकृन्मृत्युमेति ॥

अन्वयः—क्षौरभे पञ्चमे पञ्चमे दिने, वा अस्य (क्षौरभस्य) उदये (मुहूर्त्ते) नृपाणां श्मश्रुकर्म हितं 'स्यात्'। अथ, षडग्निः, त्रिमैत्रः, अष्टकः, पञ्चपित्र्यः, अब्ध्यर्यमा, क्षौरकृत् 'जनः' अब्दतः मृत्युमेति ।

भाषार्थः—क्षौरमें कहे गये नक्षत्रोंमें, पाँचवें पाँचवें दिनोंमें अथवा (यदि पाँचवें २ दिनोंमें क्षौरका नक्षत्र नहीं पड़े तो) क्षौर नक्षत्रके उदयमें (मुहूर्त्तमें[1]) राजाओंको[2] श्मश्रुकर्म कराना (दाढ़ी बनवाना) शुभ है। जिसके क्षौरकर्ममें

१. नक्षत्रोंके मुहूर्त्त विवाह प्रकरणके ५२-५३ वें श्लोकोंमें कहेंगे।

२. यहाँ राजा उपलक्षण है, सबको करना चाहिये।

आवृत्ति क्रमसे कृत्तिका ६ वार, अनुराधा ३ बार, रोहिणी ८ वार, मघा ५ वार और उत्तराफल्गुनी ४ वार पड़े, वह मनुष्य १ वर्षके अनन्तर मरण प्राप्त करता है। अभिप्राय यह है कि इन पाँच (कृ, अनु, रो, म, उ०-फ०) नक्षत्रोंमें क्षौर कर्म नहीं करना चाहिये ॥ ३६ ॥

बालकोंके अक्षरारम्भका मुहूर्त्त—

गणेश-विष्णु-वाग्रमाः प्रपूज्य पञ्चमाब्दके
तिथौ शिवार्कदिग्द्विषट्शरत्रिके रवावुदक् ।
लघुश्रवोऽनिलान्त्यभादितीशतक्षमित्रभे
चरोनसत्तनौ शिशोर्लिपिग्रहः सतां दिने ॥ ३७ ॥

अन्वयः—पञ्चमाब्दके, रवौ उदक् (उत्तरायणं गते) शिवार्कदिग्द्विषट्शरत्रिके तिथौ, लघुश्रवोऽनिलान्त्यभादितीशतक्षमित्रभे, चरोनसत्तनौ, सतां दिने, गणेश-विष्णु-वाग्-रमाः प्रपूज्य शिशोः लिपिग्रहः (अक्षरलेखनारम्भः) 'शुभः स्यात्' ॥३७॥

भाषार्थः—जन्मसे ५ वें वर्षमें, सूर्यके उत्तरायण (माघ आदि ६ मासोंमें) रहने पर ११, १२, १०, २, ६, ५, ३, इन तिथियोंमें, लघुसंज्ञक, श्रवण, स्वाती, रेवती, पुनर्वसु, आर्द्रा, चित्रा और अनुराधा इन नक्षत्रोंमें, चर राशियों (१।४।७।१०) को छोड़कर अन्य शुभ (२।३।६।९।१२) लग्नोंमें और शुभ दिनोंमें[1] श्रीगणेश-विष्णु-सरस्वती-लक्ष्मीकी विधिवत् पूजा करके बालकको प्रथम २ अक्षरारम्भ कराना शुभ होता है ॥ ३७ ॥

विद्यारम्भका मुहूर्त्त—

मृगात्कराच्छ्रुतेस्त्रयेऽश्विमूलपूर्विकात्रये
गुरुद्वयेऽर्कजीववित्सितेऽह्नि षट्शरत्रिके ।
शिवार्कदिग्द्विके तिथौ ध्रुवान्त्यमित्रभे परैः
शुभैरधीतिरुत्तमा त्रिकोणकेन्द्रगैः स्मृता ॥ ३८ ॥

अन्वयः—मृगात्-करात्-श्रुतेः-त्रये, अश्विमूलपूर्विकात्रये, गुरुद्वये 'च' नक्षत्रे, अर्कजीववित्सिते अह्नि, षट्शरत्रिके शिवार्कदिग्द्विके तिथौ, शुभैः (शुभग्रहैः) त्रिकोणकेन्द्रगैः अधीतिः उत्तमा स्मृता। परैः (अन्याचार्यैः[2]) ध्रुवान्त्यमित्रभे 'अधीतिः उत्तमा स्मृता' ॥ ३८ ॥

---

१. लग्नशुद्धि भी देखनी चाहिये। २. दीपिकाकारैः।

भाषार्थः—मृगशिरा–आर्द्रा–पुनर्वसु, हस्त–चित्रा–स्वाती, श्रवण–धनिष्ठा–शतभिषा, अश्विनी, मूल, तीनों पूर्वा, पुष्य और आश्लेषा नक्षत्रोंमें, रवि, बृहस्पति, बुध और शुक्रवारोंमें, ६।५।३।११।१२।१०।२ इन तिथियोंमें, शुभग्रह सब लग्नसे १।५।९।४।७।१० स्थानोंमें हों तो बच्चोंको विद्यारम्भ कराना शुभ होता है।

अन्य आचार्यके मतसे ध्रुवसंज्ञक रेवती और अनुराधा नक्षत्रोंमें भी विद्यारम्भ शुभ है ॥ ३८ ॥

वि०—विद्यारम्भमें जो अन्याचार्यका मत दिखाया गया है, वह है धनुर्विद्याका मुहूर्त्त। अर्थात् ध्रुवसंज्ञक रेवती, और अनुराधा इन नक्षत्रोंको दीपिकाकारने धनुर्विद्याके आरम्भमें शुभ लिखा है ॥ ३८ ॥

व्रतबन्धन–(उपनयन) का समय—

विप्राणां व्रतबन्धनं निगदितं गर्भाज्जनेर्वाऽष्टमे
वर्षे वाप्यथ पञ्चमे क्षितिभुजां षष्ठे तथैकादशे।
वैश्यानां पुनरष्टमेऽप्यथ पुनः स्याद् द्वादशे वत्सरे
कालेऽथ द्विगुणे गते निगदिते गौणं तदाहुर्बुधाः ॥ ३९ ॥

अन्वयः—गर्भात् वा जनेः 'सकाशात्' अष्टमे वर्षे अपि वा पञ्चमे वर्षे विप्राणां व्रतबन्धनं निगदितम्। अथ, 'गर्भात् वा जनेः' षष्ठे तथा एकादशे वर्षे चितिभुजां (क्षत्रियाणाम्) 'व्रतबन्धनं' निगदितम्। अथ अष्टमे, पुनः (वा) द्वादशे वर्षे वैश्यानां 'व्रतबन्धनं निगदितम्'। अथ 'सर्वेषामेव' निगदिते काले द्विगुणे गते 'सति' बुधाः तत् (व्रतबन्धनम्) गौणं (मध्यमम्) आहुः ॥ ३९ ॥

भाषार्थः—गर्भाधानसे या जन्मकालसे ८ वें या ५ वें वर्षमें ब्राह्मणोंका ६ ठे या ११ वें वर्षमें क्षत्रियोंका, ८ वें या १२ वें वर्षमें वैश्योंका उपनयन समय कहा गया है और कहे गये समयसे दूना समय बीतनेपर पण्डितोंने उपनयनको गौण (मध्यम) माना है ॥ ३९ ॥

वि०—उपनयनके समय नित्य काम्य और गौण ये तीन प्रकारके हैं। जिनमें—

आधानादष्टमे वर्षे जन्मतो वाऽग्रजन्मनाम्।
राज्ञामेकादशे मौञ्जी–बन्धनं द्वादशे विशाम् ॥

श्रीनारदजीके इस वचनके अनुसार गर्भसे या जन्मसे ब्राह्मणोंका ८ वें वर्षमें, क्षत्रियोंका ११ वें वर्षमें और वैश्योंका १२ वें वर्षमें उपनयनका 'नित्य समय' है।

तथा–ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यं विप्रस्य पञ्चमे।
राज्ञो बलार्थिनः षष्ठे, वैश्यस्यार्थार्थिनोऽष्टमे ॥

श्रीमनुके इस वाक्यसे ब्राह्मणोंका गर्भ या जन्मसे ५ वें वर्षमें क्षत्रियोंका ६ ठे वर्षमें और वैश्योंका ८ वें वर्षमें उपनयन काल है। परन्तु इसमें फलश्रुति देखनेके कारण यह **'काम्य-समय'** है।

एवं—आषोडशाद् ब्राह्मणस्य सावित्री नातिवर्त्तते।
आद्वाविंशात् क्षत्रबन्धोराचतुर्विंशतेर्विशः॥
अत ऊर्ध्वं त्रयोऽप्येते यथाकालमसंस्कृताः।
सावित्रीपतिता व्रात्या भवन्त्यार्यविगर्हिताः॥

श्रीमनुके इस वचनके अनुसार उपनयनके नित्य कालसे (८।११।१२) द्विगुण काल (१६।२२।२४) तक गौण काल रहता है। उसके बाद उपनयन नहीं होने पर मनुष्य पतित होता है। इस लिये ब्राह्मणोंका १६ वें वर्ष तक, क्षत्रियोंका २२ वें वर्षतक और वैश्योंका २४ वें वर्षतक, उपनयन अवश्य हो जाना चाहिये॥ ३९॥

उपनयनका मुहूर्त्त—

क्षिप्रध्रुवाहिचरमूलमृदुत्रिपूर्वारौद्रेऽर्कविद्गुरुसितेन्दुदिने व्रतं सत्।
द्वित्रीषुरुद्ररविदिक्प्रमिते तिथौ च कृष्णादिमत्रिलवकेऽपि न चापराह्णे॥

अन्वयः—क्षिप्रध्रुवाहिचरमूलमृदुत्रिपूर्वारौद्रे 'नक्षत्रे' अर्क-विद्-गुरु-सिते-न्दु-दिने, द्वित्रीषु-रुद्र-रवि-दिक्-प्रमिते तिथौ, च (चकारात् शुक्लपक्षे) कृष्णादिमत्रिलवके अपि व्रतं सत् 'भवति' परञ्च, अपराह्णे व्रतं सत् न भवति॥ ४०॥

भाषार्थः—क्षिप्रसंज्ञक, ध्रुवसंज्ञक, आश्लेषा, चरसंज्ञक, मूल, मृदुसंज्ञक, तीनों पूर्वा और आर्द्रा इन २२ नक्षत्रोंमें, रवि, बुध, बृहस्पति, शुक्र और सोमवारमें[1], २।३।५।११।१२।१० तिथियोंमें, शुक्ल पक्षमें, तथा कृष्णपक्षके प्रथम तृतीयांश (अर्थात् कृष्णपक्षमें पञ्चमी तिथितक) में उपनयन शुभ होता है। परन्तु उपनयन अपराह्ण (दिनके तीसरे त्रिभाग) में नहीं होता है ४०॥

वि०—आचार्यके मतसे-ह०, अश्वि०, पुष्य, ३ उ०, रो०, आश्ले०, स्वा०, पुन०, श्र०, ध०, श०, मू०, मृ०, रे०, चि०, अनु०, ३ पू०, आर्द्रा ये २२ नक्षत्र उपनयनमें शुभ है। परन्तु—

"हस्तत्रये च श्रवणत्रये च धातृद्वये स्युत्तरमैत्रभेषु।
पौष्णद्वये चादितिभद्वये च शस्तं द्विजानां खलु मौञ्जिकर्म॥"

श्रीवसिष्ठजीके इस वचनसे, और—

"मैत्रे विष्णुत्रये हस्तत्रयके चोत्तरात्रये।
धातृद्वयादितीज्यान्त्यदस्रर्क्षेषूपनायनम्॥"

---

१. ब्राह्मणोंके लिये रविवार और क्षत्रियोंके लिये मङ्गलवार शुभ हैं। सामवेदियोंके लिये मङ्गलवार अत्यन्त प्रशस्त है।

श्रीकश्यप मुनिके इस वचनसे, तथा—

"कृत्तिका-भरणी-मूल-ज्येष्ठार्द्रासु विशाखयोः।
पूर्वात्रये च सार्पर्क्षे न कुर्यादौपनायनम्" चकारान्मघायामपि।

इस गुरुके वचनसे–उपनयनमें–ह० चि० स्वा० श्र० ध० श० रो० मृ० ३ उ० अनु० रे० अ० पुन० पुष्य ये १६ नक्षत्र शुभ (आर्ष) हैं और भ० कृ० आ० ज्ये० मू० वि० ३ पू० आश्ले० म० ये ११ नक्षत्र अशुभ (अनार्ष) हैं। ब्राह्मणके लिये पुनर्वसु भी निषिद्ध कहा गया है। जैसे—

"चन्द्रतारानुकूलेषु ग्रहाब्देषु शुभेष्वपि।
पुनर्वसौ कृतो विप्रः पुनः संस्कारमर्हति॥" राजमार्तण्डे।

श्रीपतिने—

"अश्विनीमृगचित्रासु हस्ते स्वात्यां च शक्रभे।
पुष्ये च पूर्वाफल्गुन्यां श्रवणे पौष्णभे तथा।
वासवे शततारासु व्रतबन्धं प्रशस्यते॥"

इस वचनसे अ० मृ० चि० ह० स्वा० ज्ये० पुष्य पूफ० श्र० रे० ध० श० इन १२ नक्षत्रों को उपनयनमें शुभ बताये हैं।

मत ग्रहण करनेमें सर्वोत्तम तो आर्ष-(ऋषि सम्बन्धी) मत है, परन्तु देशाचार भी मानना एक धारा हो गयी है, इसलिये आर्षमतके साथ देशाचार (जहाँ जिन नक्षत्रोंका ग्रहण किया जाता हो उस–) का पालन करना चाहिये।

उपनयनमें २६ वें श्लोकके अनुसार उत्तरायणके ५ मासोंमें चैत्र मासको अत्यन्त ही प्रशस्त माना है। यहाँ तक कहा गया है कि **"मधुं विनोपनीतस्तु पुनः संस्कारमर्हति"** अर्थात् जिसका उपनयन चैत्रमें नहीं हो, उसका फिर उपनयन करना चाहिये। चैत्रमें उपनयन होनेमें कितने दोषोंका परिहार भी बताया गया है।

जैसे–रत्नकोशमें—

"गोचराष्टकवर्गाभ्यां यदि शुद्धिर्न लभ्यते।
तदोपनयनं कार्यं चैत्रे मीनगते रवौ॥"

तथा गुरु—

हरौ सिंहांशके जीवे नीचर्क्षे नीचभागके।
मौञ्जीबन्धः शुभः प्रोक्तश्चैत्रे मीनगते रवौ॥ ४०॥

उपनयनमें निन्दित ग्रहसंस्था—

कवीज्य-चन्द्र-लग्नपा रिपौ मृतौ व्रतेऽधमाः।
व्ययेऽब्ज-भार्गवौ तथा तनौ मृतौ सुते खलाः॥ ४१॥

अन्वयः—कवीज्यचन्द्रलग्नपाः 'लग्नात्' रिपौ मृतौ 'च स्थिताः स्युस्तदा' व्रते

अधमाः 'भवन्ति'। अब्ज-भार्गवौ व्यये, खलाः (पापग्रहाः) तनो मृतौ सुते च तथा (अधमा भवन्ति) ॥ ४१ ॥

भाषार्थः—उपनयनके लग्नसे छठे और आठवें स्थानोंमें शुक्र, गुरु, चन्द्रमा और लग्नेश हों तो शुभ नहीं होते। एवं चन्द्र और शुक्र लग्नसे १२ वें हों तो अशुभ होते हैं, और पापग्रह लग्नमें या लग्नसे ८ वें और ५ वें स्थानोंमें हों तो अशुभ होते हैं। अर्थात् ऐसी लग्नस्थितिमें उपनयन नहीं करना चाहिये ॥ ४१ ॥

उपनयनमें लग्नशुद्धि—

व्रतबन्धेऽष्टषड्रिष्फवर्जिताः शोभनाः शुभाः ।
त्रिपडाये खलाः पूर्णो गोकर्कस्थो विधुस्तनौ ॥ ४२ ॥

अन्वयः—व्रतबन्धे शोभनाः (शुभग्रहाः) 'लग्नात्' अष्ट-षड्-रिःफवर्जिताः स्युः 'तदा' शुभाः भवन्ति। खलाः त्रिषडाये स्थिताः शुभाः 'भवन्ति', 'तथा' पूर्णः विधुः गोकर्कस्थः तनौ शुभः 'भवति' ॥ ४२ ॥

भाषार्थः—उपनयनमें शुभग्रह लग्नसे ८।६।१२ स्थानोंमें नहीं हों, पापग्रह ३।६।११ स्थानोंमें हों तो शुभ होते हैं और पूर्ण (शुक्लपक्षका) चन्द्रमा वृष (अपनी उच्च) राशि, या कर्क (अपने गृह) राशिमें स्थित होकर लग्नमें हो तो शुभ होता है। अन्यथा चन्द्रमा लग्नमें शुभ नहीं होता ॥ ४२ ॥

ब्राह्मणादि वर्णोंके और वेदोंके स्वामी—

विप्राधीशौ भार्गवेज्यौ कुजार्कौ
राजन्यानामोषधीशो विशां च।
शूद्राणां ज्ञश्चान्त्यजानां शनिः स्या-
च्छाखेशाः स्युर्जीवशुक्रारसौम्याः ॥ ४३ ॥

अन्वयः—भार्गवेज्यौ विप्राधीशौ 'स्याताम्'। कुजार्कौ राजन्यानां 'अधीशौ स्याताम्'। ओषधीशः (चन्द्रः) विशाम् अधिपः 'स्यात्'। ज्ञश्च शूद्राणां अधिपः, तथा, शनिः अन्त्यजानां अधिपः स्यात्। अथ, जीव-शुक्रारसौम्याः शाखेशाः (वेदानामधिपाः) स्युः ॥ ४३ ॥

भाषार्थः—शुक्र और बृहस्पति ब्राह्मणोंके स्वामी हैं। मङ्गल और सूर्य क्षत्रियोंके स्वामी हैं। चन्द्रमा वैश्योंका, बुध शूद्रोंका और शनि अन्त्यजों (अछूतों) का स्वामी है।

बृहस्पति ऋग्वेदका, शुक्र यजुर्वेदका, मङ्गल सामवेदका और बुध अथर्ववेद का स्वामी है ॥ ४३ ॥

वर्णेश और वेदाधिप कहनेका प्रयोजन—

शाखेशवारतनुवीर्यमतीव शस्तं
शाखेशसूर्यशशिजीवबले व्रतं सत् ।
जीवे भृगौ रिपुगृहे विजिते च नीचे
स्याद्वेदशास्त्रविधिना रहितो व्रतेन ॥ ४४ ॥

अन्वयः—'व्रते' शाखेश-वार-तनुवीर्यम् अतीवशस्तं 'भवति'। तथा, शाखेश-सूर्य-शशि-जीव-बले-व्रतं सत् 'भवति'। अथ, जीवे भृगौ च रिपुगृहे विजिते नीचे 'च गते सति' व्रतेन 'व्रती जनः' वेदशास्त्रविधिना रहितः स्यात् ॥ ४४ ॥

भाषार्थः—शाखेश (वेदाधिप) के वार, लग्न और गोचर बल उपनयनमें अत्यन्त प्रशस्त हैं। अर्थात् जिसकी जो शाखा है उसका उपनयन उस शाखेशके वारमें शाखेशके लग्नमें और शाखेशके बली रहने पर शुभ होता है। एवं शाखेश, सूर्य, चन्द्रमा और बृहस्पतिके बली रहने पर उपनयन शुभ होता है। यदि उपनयन कालमें गुरु और शुक्र (शाखेश और वर्णेश भी) अपने शत्रुकी राशिमें हों, युद्धमें हारे हों या अपनी नीच राशिमें हों तो उपनयन वाला बालक वेदों और शास्त्रोंसे रहित (अर्थात् मूर्ख) होता है ॥ ४४ ॥

वि०—जो ग्रह अपने उच्च, अपनी राशि, मित्रगृही और शुभ वर्गमें रहता है वह बली होता है।

मङ्गल आदि ५ ग्रहोंमें किसी दो आदि ग्रहोंके १ राशिमें होनेको युद्ध कहते हैं; उसमें जो ग्रह दक्षिण ओर रहता है, कान्तिहीन, विवर्ण, रूक्ष और दूसरे ग्रहसे आच्छादित देखा जाता है वह पराजित (हारा) कहा जाता है।

ऋग्वेद वालोंके लिये गुरुवार, धनु और मीन लग्न, यजुर्वेदियोंके लिये शुक्रवार, वृष और तुला लग्न, सामवेदियोंके लिये मङ्गलवार और मेष-वृश्चिक लग्न, अथर्ववेदियोंके लिये बुधवार और मिथुन-कन्या लग्न उपनयनमें शुभ है। एवं ब्राह्मणोंके लिये गुरु-शुक्रवार क्षत्रियोंके मङ्गल-रविवार और वैश्योंके सोमवार वर्णेश होनेके कारण शुभ हैं ॥ ४४ ॥

जन्ममासादिमें व्रतबन्धनका समावेश—

जन्मर्क्षमासलग्नादौ व्रते विद्याधिको व्रती ।
आद्यगर्भेऽपि विप्राणां क्षत्रादीनामनादिमे ॥ ४५ ॥

अन्वयः—विप्राणां आद्यगर्भे अपि क्षत्रादीनां अनादिमे गर्भे जन्मर्क्ष-मास-लग्नादौ व्रते 'सति' व्रती जनः विद्याधिकः 'भवति' ॥ ४५ ॥

भाषार्थः—जन्मके नक्षत्र, जन्ममास, जन्मलग्न 'आदि शब्दसे जन्म तिथि वगैरहमें भी' ब्राह्मणोंके प्रथम (ज्येष्ठ) बालकोंका भी उपनयन होने पर बालक अधिक विद्वान् होते हैं। परन्तु क्षत्रिय-वैश्योंके ज्येष्ठके अतिरिक्त (दूसरे आदि) बालकोंके उपनयन होनेसे अधिक विद्वान् होते हैं। तात्पर्य यह है कि क्षत्रियों और वैश्योंके ज्येष्ठ बालकोंका उपनयन जन्मर्क्ष, जन्म मासादिमें नहीं करे और द्वितीय आदिका करे; परन्तु ब्राह्मण-बालकोंका उपनयन चाहे वह बालक बड़ा (प्रथम) हो या दूसरा आदि हो, जन्मर्क्ष जन्ममासादिमें भी करे।
जैसे शौनकने कहा है—

"जन्मोदये जन्मसु तारकासु मासे तथा जन्मतिथौ च राशौ।
व्रतेन विप्रोऽल्पपरिश्रुतोऽपि प्रज्ञाविशेषैः प्रथितः पृथिव्याम् ॥
गर्भाष्टमे गर्गपराशराद्यैः फलं यदुक्तं व्रतबन्धने तु।
ततोऽधिकं जन्मसु तारकासु मासेऽथवा जन्मनि वाडवानाम् ॥"

इससे यह सिद्ध है कि ब्राह्मणके प्रत्येक बालकका उपनयन जन्मर्क्ष जन्म मासादिमें अत्यन्त शुभ हैं ॥ ४५ ॥

उपनयन आदिमें गुरुशुद्धि—

बटुकन्याजन्मराशेस्त्रिकोणायद्विसप्तगः।
श्रेष्ठो गुरुः खषट्त्र्याद्ये पूजयाऽन्यत्र निन्दितः ॥ ४६ ॥

अन्वयः—बटु-कन्या-जन्मराशेः त्रिकोणायद्विसप्तगः गुरुः श्रेष्ठः 'भवति'। ख-षट्-त्र्याद्ये पूजया 'शुभः स्यात्'। अन्यत्र निन्दितः 'भवति' ॥ ४६ ॥

भाषार्थः—उपनयन आदि शुभकार्योंमें लड़केकी जन्मराशिसे और विवाहमें लड़कीकी जन्मराशिसे बृहस्पति ९।५।११।२।७ स्थानोंमें हो तो शुभ होता है। १०।६।३।१ इन स्थानोंमें हो तो पूजा करने पर शुभ होता है और अन्यत्र (अर्थात् जन्मराशिसे ४।८।१२ स्थानोंमें) अशुभ होता है ॥ ४६ ॥

अशुभ गुरुका अपवाद—

स्वोच्चे स्वभे स्वमैत्रे वा स्वांशे वर्गोत्तमे गुरुः।
रिष्फाष्टतुर्यगोऽपीष्टो नीचारिस्थः शुभोऽप्यसन् ॥ ४७ ॥

अन्वयः—स्वोच्चे स्वभे स्वमैत्रे स्वांशे वा वर्गोत्तमे 'वर्त्तमानः' गुरुः रिष्फाष्टतुर्यगः अपि इष्टः 'भवति'। तथा, नीचारिस्थः शुभः अपि 'गुरुः' असन् 'भवति' ॥ ४७ ॥

भाषार्थः—अपने उच्च-(कर्क राशि) में, अपने गृह (धनु-मीन राशि) में, अपने मित्रकी राशिमें, किसी भी राशिमें अपने नवांशके अन्दर रहने पर और अपने वर्गोत्तम[1] नवांशमें रहनेवाला गुरु 'लड़का-लड़कीकी जन्मराशिसे' १२।८।४ स्थानोंमें रहने पर भी शुभ ही होता है। यदि गुरु अपने नीच-(मकर राशि) में और शत्रुग्रहकी राशिमें हो तो 'जन्मराशिसे' शुभ होने पर भी अशुभ होता है ॥ ४७ ॥

वि०—लड़का-लड़कीके उपनयन-विवाहादिमें यदि उक्त प्रकारसे बृहस्पतिकी शुद्धि नहीं होती हो तो अष्टकवर्गसे बृहस्पतिकी शुद्धि देखनी चाहिये। क्योंकि राजमार्त्तण्डने कहा है कि—'**अष्टवर्गेण ये शुद्धास्ते शुद्धाः सर्वकर्मसु। सूक्ष्माऽष्टवर्गसंशुद्धिः स्थूला शुद्धिस्तु गोचरे**' ॥ अर्थात् अष्टवर्गकी शुद्धि ही वास्तव शुद्धि है। अष्टकवर्गका विचार और उसका चक्र जातकपारिजातकी मेरी सुधाशालिनी टीका अध्याय १९ वें में देखिये।

यदि लड़के या लड़कीका संस्कार काल बीत रहा हो वहाँ गुरुशुद्धि नहीं होने पर भी उपनयन-विवाह कर ही लेना चाहिये। ऐसा वराहमिहिरने भी कहा है—

"पूजाभिलाषं प्रति निस्पृहेऽपि कुर्याद् गुरौ शुद्धिविवर्जितेऽपि।
वराड्यलाभे शुभदं विवाहं वदन्ति गर्ग-च्यवनादिमुख्याः ॥"

इससे यह सिद्ध होता है कि विहित समयके भीतर ही गुरु शुद्धि आदि देखनी चाहिये।

गुरु शुद्धि नहीं बनने पर उपनयनके लिये चैत्र मास प्रशस्त माना गया है। जैसे—

**"गोचराष्टकवर्गाभ्यां यदि शुद्धिर्न जायते। तदोपनयनं कार्यं चैत्रे मीनगते रवौ ॥
हरौ सिंहांशके जीवे नीचर्क्षे नीचभागगे। मौञ्जीबन्धः शुभः प्रोक्तश्चैत्रे मीनगते रवौ ॥"**

गुरुने कहा है ॥ ४७ ॥

उपनयनमें निषिद्धकाल—

कृष्णे प्रदोषेऽनध्याये शनौ निश्यपराह्णके ।
प्राक्सन्ध्यागर्जिते नेष्टो व्रतबन्धो गलग्रहे ॥ ४८ ॥

अन्वयः—कृष्णे (कृष्णपक्षे) प्रदोषे, अनध्याये, शनौ, निशि, अपराह्णके, प्राक्सन्ध्यागर्जिते 'सति' तथा गलग्रहे व्रतबन्धः इष्टः न 'स्यात्' ॥ ४८ ॥

भाषार्थः—कृष्ण पक्षमें (पञ्चमी तिथिके बाद) प्रदोषवाले दिनमें[2], अनध्यायमें[3], शनिवारमें, रातमें, दिनके तीसरे भागमें, जिस दिन प्रातःकाल

---

१. किसी भी राशिमें उसी राशिका नवांश वर्गोत्तम कहलाता है।

२. प्रदोष आगेके ५५ वें श्लोकमें कहा जायगा।

३. अनध्याय आगे ५४ वें श्लोकमें देखिये।

बादल गरजे उस दिनमें और गलग्रह[1] में उपनयन शुभ नहीं होता ॥ ४८ ॥

वि०—प्रदोष, अनध्याय और गलग्रहमें मुण्डन, विद्यारम्भ आदि भी शुभ नहीं होते। अनध्यायोंमें नित्य (अष्टमी आदि) नैमित्तिक (मन्वादि युगादि) अनध्याय भी गिनना चाहिये ॥ ४८ ॥

उपनयनके लग्नमें सूर्यादि ग्रहोंके नवांशका फल—

क्रूरो जडो भवेत्पापः पटुः षट्कर्मकृद्वटुः ।
यज्ञार्थभाक् तथा मूर्खो रव्याद्यंशे तनौ क्रमात् ॥ ४९ ॥

अन्वयः—तनौ (व्रतबन्धलग्ने) रव्याद्यंशे क्रमात् वटुः क्रूरः, जडः, पापः, पटुः, षट्कर्मकृत्, यज्ञार्थभाक् तथा मूर्खः भवेत् ॥ ४९ ॥

भाषार्थः—उपनयनके लग्नमें यदि सूर्यका नवांश हो तो वह बालक क्रूरबुद्धि हो, चन्द्रमाका नवांश हो तो जड़ (मूर्ख) हो, मङ्गलके नवांशमें पापी हो, बुधके नवांशमें पण्डित हो, गुरुके नवांशमें छ कर्म (अध्ययन, अध्यापन, यजन, याजन, दान और प्रतिग्रह) का कर्त्ता हो, शुक्रके नवांशमें यज्ञकर्त्ता और धनवान् हो, तथा शनिके नवांशमें मूर्ख हो ॥ ४९ ॥

चन्द्रमाके नवांशमें विशेषोक्ति—

विद्यानिरतः शुभराशिलवे पापांशगते हि दरिद्रतरः ।
चन्द्रे स्वलवे बहुदुःखयुतः कर्णादितिभे धनवान्स्वलवे ॥५०॥

अन्वयः—चन्द्रे शुभराशिलवे 'गते सति' व्रती जनः विद्यानिरतः 'भवति' । चन्द्रे पापांशगते हि (निश्चयेन) व्रती दरिद्रतरः 'भवति' । चन्द्रे स्वलवे सति व्रती बहुदुःखयुतः 'भवति' । किन्तु स्वलवे चन्द्रे कर्णादितिभे व्रती धनवान् 'भवति' ॥५०॥

भाषार्थः—उपनयनके समय चन्द्रमा किसी भी राशिमें यदि शुभ राशिके नवांशमें हो तो वह (उपनीत) बालक विद्यामें निपुण हो। यदि चन्द्रमा पापराशिके नवांशमें हो तो वह बालक बहुत दरिद्र (गरीब) होता है। यदि चन्द्रमा अपने (कर्कके) नवांशमें हो तो बहुत दुःखी होता है। परन्तु यदि चन्द्रमा श्रवण और पुनर्वसु नक्षत्रका होकर अपने नवांशमें हो तो वह बालक धनी होता है, अर्थात् पुनर्वसु या श्रवण नक्षत्रमें उपनयन वालेको चन्द्रमाके अपने नवांशमें रहने पर भी शुभफल ही होता है ॥ ५० ॥

---

१. त्रयोदश्यादि चत्वारि सप्तम्यादि दिनत्रयम् ।
चतुर्थी चैकतः प्रोक्ता अष्टावेते गलग्रहाः ।
अर्थात् ४।७।८।९।१३।१४।१५।१ तिथियां गलग्रह हैं ।

वि०—श्रवण नक्षत्रकी मकर राशि होनेसे उसमें ७ वां नवांश कर्कका होता है जो श्रवण के ४ थे चरणमें पड़ता है और पुनर्वसुके ३ चरण मिथुन राशिके हैं; मिथुन राशिमें कर्कका नवांश होता ही नहीं है। पुनर्वसुके ४ थे चरणमें कर्कराशि होनेसे उसमें कर्कका नवांश होता है; इसलिये श्रवण और पुनर्वसुके ४ थे चरणमें उपनयन हो तो चन्द्रमाके स्वनवांशका दोप नहीं लगेगा ॥ ५० ॥

उपनयनके लग्नसे केन्द्रवर्ती ग्रहोंके फल—

राजसेवी वैश्यवृत्तिः शस्त्रवृत्तिश्च पाठकः ।
प्राज्ञोऽर्थवान् म्लेच्छसेवी केन्द्रे सूर्यादिखेचरैः ॥ ५१ ॥

अन्वयः—सूर्यादिखेचरैः 'व्रतबन्धलग्नात्' केन्द्रे 'गतैः' क्रमात 'व्रती जनः' 'राज-सेवी, वैश्यवृत्तिः, शस्त्रवृत्तिः, पाठकः, प्राज्ञः, अर्थवान्, म्लेच्छसेवी 'च' भवेत् ॥५१॥

भाषार्थः—उपनयनके लग्नसे यदि सूर्य केन्द्रमें हो तो वह (उपनीत) बालक राजाका नौकर हो। चन्द्रमा केन्द्रमें हो तो व्यापारी, मङ्गल हो तो अस्त्र-शस्त्रका व्यवहार करनेवाला हो। बुध हो तो विद्या पढ़ानेवाला (अध्यापक) हो। गुरु हो तो उत्तम विद्वान् हो। शुक्र हो तो धनवान् हो और शनि केन्द्रमें हो तो म्लेच्छोंका सेवक होता है ॥ ५१ ॥

उपनयनमें ग्रहोंके संयोगका फल—

शुक्रे जीवे तथा चन्द्रे सूर्य-भौमाऽर्किसंयुते ।
निर्गुणः क्रूरचेष्टः स्यान्निर्घृणः सद्युते पटुः ॥ ५२ ॥

अन्वयः—शुक्रे जीवे तथा चन्द्रे (प्रत्येकं) सूर्य-भौमार्किसंयुते 'सति, व्रती क्रमात्' निर्गुणः, क्रूरचेष्टः तथा निर्घृणः स्यात्। सद्युते 'सति' पटुः स्यात् ॥ ५२ ॥

भाषार्थः—शुक्र, बृहस्पति, चन्द्रमा (इनमें कोई भी या सभी) यदि सूर्यके साथ हों तो उपनीत बालक निर्गुण (गुणहीन) होवे। मङ्गलके साथ हों तो हिंसाशील होवे और शनिके साथ हों तो दयाहीन होवे। यदि वे हो (शु. बृ. च.) ग्रह शुभग्रहके साथ हों तो वह बालक बुद्धिमान् और विद्वान् हो ॥ ५२ ॥

ग्रहनवांशगत चन्द्रफल—

विधौ सितांशगे सिते त्रिकोणगे तनौ गुरौ ।
समस्तवेदविद् व्रती यमांशगेऽतिनिर्घृणः ॥ ५३ ॥

अन्वयः—विधौ सितांशगे, सिते त्रिकोणगे, गुरौ तनौ 'गते सती' व्रती समस्तवे-दवित् 'भवति'। तथा, 'विधौ' यमांशगे 'सति' व्रती अतिनिर्घृणः 'भवति' ॥ ५३ ॥

भाषार्थः—उपनयनके समय चन्द्रमा शुक्रके नवांशमें हो, शुक्र लग्नसे ५।९ में हो और बृहस्पति लग्नमें हो तो उपनीत बालक सभी वेदोंका ज्ञाता होता है। यदि चन्द्रमा शनिके नवांशमें हो बृहस्पतिलग्नमें और शुक्र त्रिकोण (५।९) में हो तो वह बालक अत्यन्त दयाहीन और असभ्य होता है ॥ ५३ ॥

नोट—किसी भी कार्यमें सर्वगुण सम्पन्न लग्न और मुहूर्त्तका मिलना प्रायः असम्भव रहता है, अतः लग्नमें विशिष्ट दोषोंको त्याग कर गुणाधिक्य देखकर कार्य करना चाहिये। शुभाशुभ प्रकरणके ४२ वें श्लोककी सहायता सर्वत्र लेनी पड़ती है ॥ ५३ ॥

उपनयनमें अनध्याय—

शुचिशुक्रपौषतपसां दिगश्विरुद्रार्कसङ्ख्यसिततिथयः।
भूतादित्रितयाष्टमि सङ्क्रमणं च व्रतेष्वनध्यायाः ॥५४॥

अन्वयः—शुचि-शुक्र-पौष-तपसां 'मासानां क्रमात्' दिगश्विरुद्रार्क-सङ्ख्यसित-तिथयः, भूतादित्रितयाष्टमि, सङ्क्रमणं च व्रतेषु अनध्यायाः 'भवन्ति' ॥ ५४ ॥

भाषार्थः—आषाढ़ शुक्ल पक्षकी १०, ज्येष्ठ शुक्ल पक्षकी २, पौष शुक्ल पक्षकी ११ और माघ शुक्ल पक्षकी १२ तिथि, तथा प्रत्येक मासके शुक्ल और कृष्ण दोनों पक्षोंकी १।८।१४।१५।३० तिथियां और सङ्क्रान्तिके दिन ये उपनयनमें अनध्याय हैं, अर्थात् इनमें उपनयन नहीं करना चाहिये ॥ ५४ ॥

वि०—श्रीवसिष्ठादि ऋषियोंने अनध्यायमें उपनयन होने पर उस बालकका फिर उपनयन लिखा है। जैसे—

पापांशकगते चन्द्रे स्वाधिनीचस्थितेऽपि वा।
अनध्याये चोपनीतः पुनः संस्कारमर्हति ॥

वस्तुतः 'उपनीयते अनेनेति उपनयनम्' इस व्युत्पत्तिसे बालकको उप अर्थात् वेदके समीप लेजानेका नाम उपनयन है, अतः उपनयन वेदाध्ययनके लिये किया जाता है कि द्विजाति उपनयनके बाद ही वेदके अधिकारी हो सकते हैं और वेदाध्ययनमें अनध्याय त्याज्य हैं। जैसे गौतमने कहा है—

पक्षद्वये चतुर्दश्योरष्टमीद्वितये तथा।
पक्षादावपि पक्षान्ते ब्रह्म नाधीयते नरैः ॥

और स्मृति में—

सिता ज्येष्ठे द्वितीया च आषाढे दशमी सिता।
चतुर्थी द्वादशी माघे एताः सोपपदाः स्मृताः ॥

इसलिये अनध्यायोंमें उपनयन (वेदारम्भका मूल कारण) त्याज्य कहा गया है ॥५४॥

प्रदोषका लक्षण—

अर्क–तर्क–त्रि–तिथिषु प्रदोषः स्यात्तदग्रिमैः ।
रात्र्यर्ध-सार्धप्रहर-याममध्य-स्थितैः क्रमात् ॥ ५५ ॥

अन्वयः—अर्क–तर्क–त्रि–तिथिषु क्रमात् रात्र्यर्ध–सार्धप्रहर–याममध्यस्थितैः तदग्रिमैः 'तिथिभिः' प्रदोषः 'स्यात्' ॥ ५५ ॥

भाषार्थः—द्वादशी तिथिमें आधी रातके पहले ही यदि त्रयोदशी लगे, षष्ठी तिथिमें डेढ़ प्रहर रातके पहले ही यदि सप्तमी लगे और तृतीया तिथिमें एक प्रहर रातके पहले ही यदि चतुर्थी लगे तो वे तीनों प्रदोष कहे जाते हैं ॥ ५५ ॥

वि०—प्रदोष नित्य और निमित्त वश दो प्रकार के है। जिनमें 'प्रदोषो रजनीमुखम्' अर्थात् सूर्यास्तकालके बाद रातका प्रारम्भिक समय प्रदोष हैं, यह 'प्रदोष नैत्यिक है और इस ५५ वें श्लोकमें जो तिथि के भेदसे प्रदोष कहा गया है वह नैमित्तिक है। इन प्रदोषोंमें वेदों और वेदाङ्गोंका अध्ययनाध्यापन निषेध कहा गया के। जैसे—

चतुर्थी याममेकं तु सार्धयामे च सप्तमी।
अर्धरात्रं त्रयोदश्यां प्रदोषो रजनीमुखम् ॥
अत्र नाध्यापयेद् वेदं वेदाङ्गानि च सर्वथा।
अत्राध्ययनशीलस्य प्रदोषः सर्वघातकः ॥ इति गर्गः ॥

ग्रन्थकारने अपनी टीकामें लिखा है कि जिस दिन सन्ध्याकालमें प्रदोष हो उस दिनमें उपनयन नहीं करना चाहिये। (देखिये ४८ वें श्लोककी टीका प्रमिताक्षरा या पीयूषधारा) ॥५५॥

ब्रह्मौदन पाकमें विशेषता—

व्रतबन्ध (उपनयन) के बाद उसी दिन सायंकाल ब्रह्मौदन नामक संस्कार होता है। यदि उपनयनके बाद ब्रह्मौदन पाकसे पहले किसी प्रकारका उत्पात आदि हो तो वहाँ शान्ति पूर्वक ब्रह्मौदन करे—

प्राग्ब्रह्मौदनपाकाद् व्रतबन्धानन्तरं यदि चेत् ।
उत्पातानध्ययनोत्पत्तावपि शान्तिपूर्वकं तत्स्यात् ॥ ५६ ॥

अन्वयः—व्रतबन्धानन्तरं ब्रह्मौदनपाकात् प्राक् चेद् यदि उत्पातानध्ययनोत्पत्तौ अपि शान्तिपूर्वकं तत् 'ब्रह्मौदनं' स्यात् ॥ ५६ ॥

भाषार्थः—यदि उपनयनके बाद और ब्रह्मौदन पाकके पहले अकालवृष्टि आदि उत्पात और अनध्याय आपड़े तो वहाँ शान्ति करके ब्रह्मौदन करना चाहिये।

शान्तिका प्रकार यह है—

स्वस्तिवाचनपूर्वं तु हवनं कारयेद् बुधः।
प्रधानं पायसं साज्यं द्रव्यं शान्तियुजो भवेत् ॥

सूक्तं बृहस्पतेर्विद्वान् पठेद् विद्यासमृद्धये ।
गायत्रीं युंजते मन्त्रः प्रायश्चित्तं तु सर्पिषा ॥
धेनुं सवत्सकां दद्यादाचार्याय पयस्विनीम् ।
शिलां होमविधेः पश्चात् स्थापयेत् तत्र संसदि ॥
ब्राह्मणान् भोजयेत् पश्चात् ततो ब्रह्मौदनं चरेत् ॥ इति ॥ ५६ ॥

प्रत्येक वेदके अनुसार उपनयनमें विहित नक्षत्र—

वेदक्रमाच्छशिशिवाहिकरत्रिमूलपूर्वासु पौष्णकरमैत्रमृगादितीज्ये ।
ध्रौवेषु चाश्विवसुपुष्यकरोत्तरेशकर्णे मृगान्त्यलघुमैत्रधनादितौ सत् ॥

अन्वयः—शशिशिवाहिकरत्रिमूलपूर्वासु, पौष्णकरमैत्रमृगादितीज्ये ध्रौवेषु च, अश्विवसुपुष्यकरोत्तरेशकर्णे, मृगान्त्यलघुमैत्रधनादितौ वेदक्रमाद् व्रतं सत् स्यात् ॥५७॥

भाषार्थः—मृगशिरा, आर्द्रा, आश्लेषा, हस्त, चित्रा, स्वाती, मूल और तीनों पूर्वा नक्षत्रोंमें ऋग्वेदियोंका; रेवती, हस्त, अनुराधा, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य और ध्रुवसंज्ञक नक्षत्रोंमें यजुर्वेदियोंका; अश्विनी, धनिष्ठा, पुष्य, हस्त, तीनों उत्तरा, आर्द्रा और श्रवणमें सामवेदियोंका, और मृगशिरा, रेवती, लघुसंज्ञक, अनुराधा, धनिष्ठा तथा पुनर्वसुमें अथर्ववेदियोंका उपनयन शुभ होता है ॥ ५७ ॥

नोट—४० वें श्लोकमें ग्रन्थकारके मतसे जो २२ नक्षत्र उपनयनमें विहित लिखे गये हैं उन्हीं नक्षत्रोंको ४ वेदोंमें अपने २ अधिकार वश ग्रन्थकारने यहाँ भी लिखे हैं ॥ ५७ ॥

उपनयनादि शुभकार्योंमें माताके रजस्वला होनेपर परिहार—

नान्दीश्राद्धोत्तरं मातुः पुष्पे लग्नान्तरे न हि ।
शान्त्या चौलं व्रतं पाणिग्रहः कार्योऽन्यथा न सत् ॥५८॥

अन्वयः—नान्दीश्राद्धोत्तरं मातुः पुष्पे जाते सति, लग्नान्तरे च न हि सति 'तदानीमेव' शान्त्या चौलं व्रतं पाणिग्रहः कार्यः। यथा (लग्नान्तरप्राप्तौ तु) 'चौलादिकं' सत् न 'भवति' ॥ ५८ ॥

भाषार्थः—मुण्डन, उपनयन, विवाह आदि शुभकर्मोंमें नान्दीश्राद्धके बाद यदि बालककी माता रजस्वला हो जाय और उसके बाद फिर दूसरा लग्न (शुभ मुहूर्त्त) नहीं मिलता हो तो उसी दिन विधिपूर्वक शान्ति करके मुण्डन, उपनयन, विवाह (अभीष्ट कर्त्तव्य) करना चाहिये, अन्यथा (सूतकमें या सूतकके बाद दूसरा लग्न बनता हो तो) शुभ नहीं होता ॥ ५८ ॥

वि०—शान्तिकी विधि यह है कि—एक माषा सुवर्णकी लक्ष्मी बनाकर उस लक्ष्मीकी श्रीसूक्तसे विधिपूर्वक पूजन करे और प्रत्येक मन्त्रसे पायसकी आहुति देवे (हवन करे)

उसके बाद अभिषेक करके मङ्गल कार्यका आरम्भ करे ।

वस्तुतः जब नान्दीश्राद्धके बाद रजस्वला हो तब तो उसका सूतक ही नहीं लगता। क्योंकि—'आरम्भे सूतकं न स्यादनारम्भे तु सूतकम्' इस वाक्यसे किसी भी कार्यके आरम्भ हो जानेके बाद अगर सूतककी प्रवृत्ति हो तो उसमें वह सूतक नहीं लगता। शुभकार्योंमें नान्दीश्राद्ध, मातृका-पूजा वगैरह कार्यका आरम्भिक अङ्ग है। क्योंकि उनके सङ्कल्पमें तत्कार्य वाक्य जोड़े जाते हैं। अतः नान्दीश्राद्ध ही उस कार्यका आरम्भ है, इस लिये ऐसा सूतक नहीं लगना चाहिये ॥ ५८ ॥

क्षत्रियोंके छूरिकाबन्धनका मुहूर्त—

विचैत्रव्रतमासादौ विभौमास्ते विभूमिजे ।
छूरिकाबन्धनं शस्तं नृपाणां प्राग्विवाहतः ॥ ५९ ॥

अन्वयः—नृपाणां विवाहतः प्राक् विचैत्रव्रतमासादौ विभौमास्ते विभूमिजे 'वारे' छूरिकाबन्धनं शस्तं 'भवति' ॥ ५९ ॥

भाषार्थः—उपनयनके बाद और विवाहसे पहले चैत्रमासको छोड़कर उपनयनके मासादिमें, मङ्गलका अस्तकाल और मङ्गलवारको छोड़कर अन्य वारादिमें क्षत्रियोंका छूरिकाबन्धन (कमरमें कृपाण बान्धना) शुभ होता है।

वि०—क्षत्रियोंमें छूरिकाबन्धनकी प्रथा है और वह विवाहका एक प्रधान भूषण माना जाता है इसलिये विवाहसे पूर्व छूरिकाबन्धन होता है। वह छूरिकाबन्धन उपनयनके दिनमें भी उपनयन हो जाने पर करना चाहिये ॥ ५९ ॥

केशान्तकर्म और समावर्तनके मुहूर्त—

केशान्तं षोडशे वर्षे चौलोक्तदिवसे शुभम् ।
व्रतोक्तदिवसादौ हि समावर्तनमिष्यते ॥ ६० ॥

अन्वयः—षोडशे वर्षे चौलोक्तदिवसे केशान्तं शुभं 'भवति'। तथा च, व्रतोक्तदिवसादौ समावर्त्तनं हि (निश्चयेन) इष्यते ॥ ६० ॥

भाषार्थः—जन्मसे १६ वें और मुण्डनमें कहे गये मुहूर्तमें केशान्त कर्म शुभ होता है। एवं-उपनयनके दिनादिमें समावर्तन कर्म शुभ होता है ॥ ६० ॥

वि०—उपनयनके बाद ब्रह्मचर्यावस्थामें रहनेपर ब्रह्मचारियोंका केशच्छेदन निषेध होनेके कारण ब्रह्मचर्यके समाप्त होनेपर केशच्छेदन होता है। उसीको केशान्तकर्म कहते हैं। वह भी प्रत्येक द्विजाति (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) के लिये पृथक् २ कालमें कहा गया है। जैसे-मनुः—

केशान्तं षोडशे वर्षे ब्राह्मणस्य विधीयते ।
राजन्यबन्धोर्द्वाविंशे वैश्यस्य ह्यधिके ततः ॥

इस केशान्तकर्मको गोदान कर्म भी कहते हैं। उसके बाद समावर्तन कर्म अर्थात् ब्रह्मचर्यकी समाप्ति होती है और उसके बाद गृहस्थाश्रममें जाकर विवाह होता है। जैसे वसिष्ठजीने कहा है—

अधीत्य वेदांश्च तदर्थशास्त्राण्यभ्यस्य लब्ध्वा स्वगुरोरनुज्ञाम्।
कुर्यात् समावर्त्तनकर्म पश्चाद् गोदानतः पाणिनिपीडनात् प्राक् ॥ ६० ॥

इति संस्कारप्रकरणम् ॥ ५ ॥

अथ विवाहप्रकरणम् ॥ ६ ॥

इस प्रकरणमें विवाह सम्बन्धी प्रत्येक उपयुक्त विषयोंका प्रतिपादन होनेके कारण इसका नाम विवाह प्रकरण रखा गया है। पहले यह जानना आवश्यक है कि विवाह क्यों किया जाता है और उसके कितने भेद हैं? इसका उत्तर यह है कि "नापुत्रस्य लोकोऽस्ति" इस श्रुति और "अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गं नैव च नैव च" इस व्यासके वाक्यसे पुत्रहीन मनुष्यकी कहीं भी गति नहीं होती इसलिये स्वर्गादि सुखका मूलभूत कारण पुत्रकी उत्पत्तिकी कामनासे मनुष्यको विवाह करना पड़ता है, और—

अनाश्रमी न तिष्ठेत क्षणमेकमपि द्विजः।
आश्रमादाश्रमं गच्छेदेष धर्मः सनातनः ॥

इस प्रमाणसे अन्य प्रत्येक आश्रमोंका आदि और पोषक होनेके कारण गृहस्थाश्रम सर्वश्रेष्ठ बताया गया है अतः गृहस्थाश्रमकी रक्षाके लिये विवाह करना परमावश्यक होता है। विवाह—

"ब्राह्मो दैवस्तथा चार्षः प्राजापत्यस्तथाऽऽसुरः।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः[१] ॥"

इस मनुके वचनसे ८ प्रकारके हैं; जिनमें ब्राह्म, दैव, आर्ष और प्राजापत्य विवाह अनुकूल (कथित) कालमें किये जाते हैं और आसुर, गान्धर्व, राक्षस और पैशाच ये ४ विवाह सर्वदा (जब कभी) किये जाते हैं। इस पुण्य भूमि कर्मक्षेत्र भारतवर्षमें ब्राह्म, दैव, आर्ष और प्राजापत्य विवाहकी ही प्रधानता है, जिनमें विवाहोत्तर फलके लिये विवाहोपयुक्त समयकी आवश्यकता होती है। क्योंकि विवाहानन्तर स्त्री-पुरुषोंकी अनुकूलता रहनेपर ही पुत्रादिकी उत्पत्ति और विविध सुखोंकी प्राप्ति होती है।

जैसे याज्ञवल्क्यने कहा है—

"यत्रानुकूल्यं दम्पत्योस्त्रिवर्गस्तत्र वर्धते।"

---

१. प्रत्येक विवाहके लक्षण याज्ञवल्क्यने कहे हैं—

ब्राह्मो विवाह आहूय दीयते शक्त्यलङ्कृता। तज्जः पुनात्युभयतः पुरुषानेकविंशतिम् ॥
यज्ञस्थऋत्विजे दैव आदायार्षस्तु गोद्वयम्। चतुर्दश प्रथमजः पुनात्युत्तरजश्च षट् ॥
इत्युक्त्वा चरतां धर्मं सह या दीयतेऽर्थिने। स कायः पावयेत्तज्जः षट् षट् वंश्यान् सहात्मना ॥
आसुरो द्रविणादानाद् गान्धर्वः समयान्मिथः। राक्षसो युद्धहरणात् पैशाचः कन्यकाछलात् ॥

स्त्रीपुरुषोंकी अनुकूलता ज्यौतिषशास्त्रोक्त लग्नवश होती है, अतः इस प्रकरणमें वैवाहिक शुभ लग्नका विशद विवेक किया जायगा ।

विवाहमें समयकी प्रधानता—

भार्या त्रिवर्गकरणं शुभशीलयुक्ता
शीलं शुभं भवति लग्नवशेन तस्याः ।
तस्माद्विवाहसमयः परिचिन्त्यते हि
तन्निघ्नतामुपगताः सुतशीलधर्माः ॥ १ ॥

अन्वयः—शुभशीलयुक्ता भार्या त्रिवर्गकरणं 'भवति' । तस्याः शुभं शीलं लग्नवशेन भवति । हि (यस्मात्) सुत-शील-धर्माः तन्निघ्नतां उपगताः, तस्मात् विवाहसमयः परिचिन्त्यते ॥ १ ॥

भाषार्थः—सुन्दर स्वभाववाली स्त्री अर्थ-धर्म-काम इन तीन वर्गोंको देती है । परन्तु स्त्रीका उत्तम स्वभाव विवाहके लग्नवश होता है । जिसलिये पुत्र, स्वभाव और धर्म विवाह-लग्नके अधीन होते हैं, अतः विवाह-समयका विचार किया जाता है ॥ १ ॥

वि०—यहाँ यह शङ्का उठती है कि-जन्मकालिक ग्रहनक्षत्रादिसूचित शुभाशुभ फल तो अनिवार्य है तो फिर शुभ शीलादिकी कामनासे विवाहका समय क्यों शोचा जाता है ? इसका उत्तर यह है कि-किसी भी कार्यमें शुभ समय जनित अपूर्व फल जन्मान्तरीय दुर्गुणोंका भी परिहार करता है, इसलिये प्रत्येक कार्यमें प्राक्तन दुष्कृतियोंके प्रशमन-पूर्वक उसकी निर्विघ्न पूर्त्तिके लिये शुभ समयका विचार अवश्य ही करना चाहिये । यों ही श्रीसत्याचार्यने कहा है-

शुभलग्नक्रियारम्भजनिताः पूर्वसम्भवाः ।
सम्पदः सर्वलोकानां ज्योतिस्तत्र प्रयोजनम् ॥ १ ॥

प्रश्न पूछनेका नियम और प्रश्नलग्नसे विवाहका योग—

आदौ सम्पूज्य रत्नादिभिरथ गणकं वेदयेत्स्वस्थचित्तं
कन्योद्वाहं दिगीशानलहयविशिखे प्रश्नलग्नाद्यदीन्दुः ।
दृष्टो जीवेन सद्यः परिणयनकरो गोतुलाकर्कटाख्यं
वा स्यात्प्रश्नस्य लग्नं शुभखचरयुतालोकितं तद्विदध्यात् ॥२॥

अन्वयः—आदौ रत्नादिभिः गणकं सम्पूज्य, अथ (अनन्तरं) स्वस्थचित्तं 'गणकं प्रति' कन्योद्वाहं वेदयेत् । यदि इन्दुः प्रश्नलग्नात् दिगीशानलहयविशिखे 'स्थितः' जीवेन दृष्टः 'भवेत् तदा' सद्यः परिणयनकरः स्यात् । वा, गोतुलाकर्कटाख्यं प्रश्नस्य

लग्नं शुभखचरयुतालोकितं 'भवेत् तदा' तत् (परिणयनम्) विदध्यात् ॥ २ ॥

भाषार्थः—पहले यथाशक्ति रत्न आदि (द्रव्य-वस्त्र-फल-फूल) से ज्यौतिषीकी पूजा करके प्रसन्न चित्त ज्यौतिषीसे कन्याके विवाहका प्रश्न पूछे। यदि प्रश्नलग्नसे १०।११।३।७।५ स्थानोंमें किसी स्थानमें चन्द्रमा स्थित होकर बृहस्पतिसे देखा जाता हो तो शीघ्र ही विवाह होता है। अथवा यदि वृष, तुला, कर्क राशिका लग्न हो और शुभ ग्रहोंसे युक्त या दृष्ट हो तो भी विवाह होता है 'ऐसा फल कहना चाहिये' ॥ २ ॥

वि०—इसी तरह लड़केके विवाहका भी विचार करना चाहिये ॥ २ ॥

प्रश्नलग्नसे कन्या और वरकी प्राप्तिका विचार—

विषमभांशगतौ शशि-भार्गवौ तनुगृहं बलिनौ यदि पश्यतः ।
रचयतो वरलाभमिमौ यदा युगलभांशगतौ युवतिप्रदौ ॥ ३ ॥

अन्वयः—बलिनौ शशिभार्गवौ विषमभांशगतौ यदि तनुगृहं पश्यतः 'तदा कन्यायाः' वरलाभं रचयतः। यदा इमौ (बलिनौ शशिभार्गवौ) युगलभांशगतौ 'तथा तनुगृहं पश्यतः तदा वरस्य' युवतिप्रदौ 'भवतः' ॥ ३ ॥

भाषार्थः—कन्याके विवाहके प्रश्न कालमें चन्द्रमा और शुक्र दोनों बली होकर विषम राशि और विषम ही राशिके नवांशमें हों तथा प्रश्नलग्नको देखते हों तो कन्याके लिये वरका लाभ (अर्थात् उस कन्याका विवाह होगा ऐसा) कहना। एवं-लड़केके विवाहके प्रश्नकालमें यदि बली चन्द्रमा और शुक्र दोनों समराशियोंमें और समराशिके ही नवांशमें होकर प्रश्नलग्नको देखते हों तो वरके लिये स्त्रीप्रद होते हैं। अर्थात् उस लड़केका विवाह होगा, ऐसा कहना चाहिये ॥ ३ ॥

प्रश्नलग्नसे कन्याका वैधव्य योग—

षष्ठाष्टस्थः प्रश्नलग्नाद्यदीन्दुर्लग्ने क्रूरः सप्तमे वा कुजः स्यात् ।
मूर्ताविन्दुः सप्तमे तस्य भौमो रण्डा सा स्यादष्टसंवत्सरेण ॥ ४ ॥

अन्वयः—यदि इन्दुः प्रश्नलग्नात् षष्ठाष्टस्थः 'तदा सा कन्या अष्टसंवत्सरेण रण्डा स्यात्।' वा लग्ने क्रूरः तस्य सप्तमे कुजः 'तदा अष्टसँव्वत्सरेण रण्डा स्यात्'। वा, इन्दुः मूर्तौ तस्य सप्तमे भौमः, 'तदा सा अष्टसँव्वत्सरेण रण्डा स्यात्' ॥ ४ ॥

भाषार्थः—प्रश्न लग्नसे ६ ठे या ८ वें स्थानमें यदि चन्द्रमा हो १, अथवा लग्नमें कोई पापग्रह हो और उससे ७ वें स्थानमें मङ्गल हो २, अथवा चन्द्रमा

प्रश्नलग्नमें हो और ७ वें स्थानमें मङ्गल हो ३, तो इन तीनों योगोंमें वह कन्या आठ वर्षके भीतर ही रांड़ (विधवा) होगी, ऐसा कहना चाहिये ॥ ४ ॥

वि०—सप्तम स्थानमें अन्य भी पापग्रहसे उक्त फल होता है। अर्थात् लग्न और सप्तम स्थानोंमें पाप ग्रह हों तो ८ वें वर्षके भीतर रण्डा हो। ऐसी स्थिति जन्मकुण्डलीमें भी रहने पर यही फल कहना चाहिये ॥ ४ ॥

प्रश्नलग्नसे कन्याको कुलटा और मृतवत्सा होनेका योग—

प्रश्नतनोर्यदि पापनभोगः पञ्चमगो रिपुदृष्टशरीरः ।
नीचगतश्च तदा खलु कन्या सा कुलटा त्वथवा मृतवत्सा ॥ ५ ॥

अन्वयः—यदि 'कश्चित्' पापनभोगः (पापग्रहः) प्रश्नतनोः 'सकाशात्' पञ्चमगः रिपुदृष्टशरीरः नीचगतश्च 'भवेत्' तदा सा कन्या खलु, (निश्चयेन) कुलटा अथवा तु मृतवत्सा 'स्यात्' ॥ ५ ॥

भाषार्थः—यदि कोई पापग्रह प्रश्नके लग्नसे ५ वें स्थानमें हो तथा अपने शत्रु ग्रहसे दृष्ट होकर नीच राशिमें स्थित हो तो वह कन्या निश्चय कुलटा (व्यभिचारिणी) अथवा मृतवत्सा[१] होवे ॥ ५ ॥

प्रश्नलग्नमें विवाहभङ्ग योग—

यदि भवति सितातिरिक्तपक्षे तनुगृहतः समराशिगः शशाङ्कः ।
अशुभखचरवीक्षितोऽरिरन्ध्रे भवति विवाहविनाशकारकोऽयम् ॥६॥

अन्वयः—यदि सितातिरिक्तपक्षे (कृष्णपक्षे) 'प्रश्नः भवेत्, तत्र समराशिगः शशाङ्कः तनुगृहतः अरिरन्ध्रे 'स्थितः' अशुभखचरवीक्षितश्च 'स्यात् तदा' अयं विवाहविनाशकारकः भवति ॥ ६ ॥

भाषार्थः—यदि कृष्णपक्षमें प्रश्न पूछा जाय और उस समय चन्द्रमा सम (२।४।६।८।१०।१२.) राशिका होकर प्रश्नलग्नसे ६ ठे या ८ वें स्थानमें हो तथा पापग्रहसे देखा जाता हो तो वह चन्द्रमा विवाहको नाश करनेवाला होता है। तात्पर्य यह है कि ऐसे योगमें विवाहका प्रश्न हो तो कहना चाहिये कि विवाह नहीं होगा ॥ ६ ॥

कन्याके वैधव्य योगकी शान्ति—

जन्मोत्थं च विलोक्य बालविधवायोगं विधाय व्रतं
सावित्र्या उत पैप्पलं हि सुतया दद्यादिमां वा रहः ।

---

१. जिसके बच्चे जन्म लेकर मर जाते हैं उस स्त्रीको मृतवत्सा कहते हैं ।

सल्लग्नेऽच्युतमूर्तिपिप्पलघटैः कृत्वा विवाहं स्फुटं
दद्यात्तां चिरजीविनेऽत्र न भवेद्दोषः पुनर्भूभवः ॥ ७ ॥

अन्वयः—'प्रश्नलग्नात् यथा बालविधवायोगो विचार्यते तथैव' जन्मोत्थञ्च (जन्मलग्नादपि) बालविधवायोगं विलोक्य हि (निश्चयेन) सुतया सावित्र्याः व्रतं उत (तथा) पैप्पलं व्रतं विधाय इमां (सुताम्) 'चिरजीविने वराय' दद्यात्। वा, सल्लग्ने रहः (एकान्ते) अच्युतमूर्ति-पिप्पल-घटैः स्फुटं विवाहं कृत्वा तां चिरजीविने 'वराय' दद्यात्। 'तथा कृते' अत्र पुनर्भूभवः दोषः न भवेत् ॥ ७ ॥

भाषार्थः—प्रश्नलग्नसे और जन्म लग्नसे भी यदि कन्याको बालविधवा योग लगता हो तो उस कन्यासे सावित्री व्रत और पिप्पल व्रत कराकर दीर्घजीवी वरको वह कन्या देवे। अर्थात् शान्ति करके जिस वरकी आयु उत्तम हो उसके साथ उस कन्याका विवाह करावे। अथवा शुभमुहूर्त्तमें एकान्त स्थानमें विष्णुकी मूर्ति, पिप्पलका पेड़ और घट (कलश) से पद्धतिके अनुकूल उस लड़कीका विवाह कराकर बादमें उसका विवाह चिरजीवी वरके साथ करावे। ऐसा करने पर उस कन्याका वैधव्य दोष नष्ट हो जाता है। यहाँ विष्णुकी मूर्ति-पिप्पल-घटोंसे विवाह कराने पर भी उसे पुनर्विवाहका दोष नहीं लगता ॥ ७ ॥

वि०—सावित्री व्रत ज्येष्ठ अमावास्याको होता है। यह व्रत तीन दिनोंमें (अर्थात् ज्येष्ठ कृष्ण त्रयोदशीसे अमावस तक) सम्पन्न होता है। असमर्थतामें सिर्फ अमावसको ही व्रत किया जाता है। इस व्रतको वैधव्य परिहारके लिये स्त्रियाँ करती हैं। इस व्रतका विधान भविष्य पुराणमें इस तरह है—

अमायाञ्च यथा ज्यैष्ठे वटमूले महासती। त्रिरात्रोपोषिता नारी विधिनाऽनेन पूजयेत् ॥
गृहीत्वा बालुकां पात्रे प्रस्थ[1]मात्रां युधिष्ठिर !। ततो वंशमये पात्रे वस्त्रयुग्मेन वेष्टिते ॥
सावित्रीप्रतिमां कुर्यात् सौवर्णीं वाऽपि मृन्मयीम्।
सार्धं सत्यवता, साध्वी फलनैवेद्यदीपकैः ॥
रजन्यां कण्ठसूत्रैश्च शुभैः कुङ्कुमकेशरैः। पूजयेत् परया भक्त्या वित्तशाठ्यविवर्जिता ॥
[2]सावित्र्याख्यानकं वापि वाचयीत द्विजोत्तमैः।
रात्रौ जागरणं कृत्वा प्रभाते विमले ततः ॥
तामपि ब्रह्मणे दत्त्वा प्रणिपत्य क्षमापयेत्।

प्रतिमा दान करनेका मन्त्र—

सावित्रीयं मया दत्ता सहिरण्या महासती। ब्रह्मणः प्रीणनायापि ब्राह्मणः प्रतिगृह्यताम् ॥

---

१. प्रस्थ = एक सेर।

२. सावित्रीका उपाख्यान श्रीदेवीभागवतमें देखिये।

पिप्पलव्रत—चैत्र या आश्विन मासके कृष्णपक्षकी तृतीयासे १ मास तक किया जाता है । उसकी फलश्रुति और विधि इस तरह है—

"बलवद्विधवायोगे बाल्ये सति मृगीदृशाम् । पिता रहसि कुर्वीत तद्व्रतं शास्त्रसम्मतम् ॥
सुदिने शुभनक्षत्रे चन्द्रताराबलान्विते । अवैधव्यकरे योगे लग्ने ग्रहबलान्विते ॥
व्रतारम्भं प्रकुर्वीत बालवैधव्यनाशनम् । सुस्नातां चित्रवस्त्राढ्यां कन्यां पितृगृहाद्बहिः॥
नीत्वाऽश्वत्थसमीपस्थाने यद्वा बदरिकाश्रये । आलबालं प्रकुर्वीत विपुलं मृदुकर्षितम् ॥
कुमार्याचार्यनिर्दिष्टं कृत्वा संकल्पमादरात् । करकाम्बुप्रपूर्णेन सेचनं प्रतिवासरम् ॥
चैत्रे वाऽऽश्विनमासे च तृतीयाऽसितपक्षतः।यावत्कृष्णतृतीयाऽन्या मासमेकं यथाविधि॥
ब्राह्मणानां तथा स्त्रीणां पूजनं च समाचरेत् ।
तदाशिषाऽऽप्नुयात् कन्या सौभाग्यं च सुखान्वितम् ॥
प्रतिमां पार्वतीशानीं वैणवे भाजनेऽर्चयेत् । चन्दनाक्षतदूर्वाद्यैर्बिल्वपत्रैर्यथाविधि ॥
उपचारैर्यथाशक्त्या नैवेद्यैः प्रतिवासरम् ।
एवं व्रतप्रभावेण बालवैधव्यनिष्कृतिः ॥
जायते कन्यकानां च ततः पाणिग्रहक्रिया" ॥

कुम्भविवाह, अश्वत्थविवाह और विष्णुप्रतिमाविवाहकी विधि इनकी पद्धतियोंमें विशद रूपमें लिखी हैं। ये तीनों विवाह कन्याके विवाह दिनमें ही विवाह होनेके पहले कराये जाते हैं ।

कन्याओंके वैधव्यदोषकी शान्तिके लिये विष्णुप्रतिमा, कुम्भ और अश्वत्थसे विवाह कराने पर फिर पुरुषसे विवाह करानेमें पुनर्विवाहका दोष नहीं लगता। क्योंकि धर्मशास्त्रमें कहा है—

यत्किञ्चित् कथितं शास्त्रे शान्तिकं पतिरक्षणे । तत्पापमपि नो पापं येन धर्मोऽभिरक्ष्यते ॥

एवम्—

स्वर्णाम्बुपिप्पलानाञ्च प्रतिमा विष्णुरूपिणी । तया सह विवाहे च पुनर्भूत्वं न जायते ॥
लक्ष्मीनारायणप्रीत्यै या दत्ता कन्यका बुधैः । तारयेत् सकलं दातुः कुलं पूर्वापरं सदा ॥
चन्द्रगन्धर्ववह्न्यम्बुशिवसोमस्मरा इमे । पतयः कन्यकानां च बाल्यात् सन्ति सदैव ते ॥
तदुद्वाहविधिर्यत्नात् कृतो नो जनयेदघम् ।
यथालिभुक्तं कमलं देवानां पूजनाय वै ।
अर्हं भवति, सर्वत्र तथा कन्या नृणां भवेत् ॥ इति ।

इसलिये दो मनुष्योंके साथ ही विवाह कराने पर पुनर्विवाहका दोष लागू होता है ॥७॥

प्रश्नलग्नसे कन्याकी सन्ततिका विचार—

प्रश्नलग्नक्षणे यादृशापत्ययुक् स्वेच्छया कामिनी तत्र चेदाव्रजेत् ।
कन्यका वा सुतो वा तदा पण्डितैस्तादृशापत्यमस्या विनिर्दिश्यते ॥

अन्वयः—प्रश्नलग्नक्षणे 'काचित्' कामिनी स्वेच्छया यादृशापत्ययुक् तत्र चेत् आव्रजेत् तदा पण्डितैः अस्याः (कन्यायाः) तादृशापत्यं कन्यका वा सुतः विनिर्दिश्यते ॥ ८ ॥

भाषार्थः—प्रश्नलग्नके समय कोई दूसरी स्त्री जिस तरहकी सन्तान (कन्या या पुत्र) के साथ अपनी इच्छासे वहाँ आ जाय उसी तरहकी सन्तान (कन्या या पुत्र) इस लड़कीकी भी पण्डितोंको कहना चाहिये ॥ ८ ॥

वि०—प्रश्नकालमें जैसी सन्तानवाली अन्य स्त्री वहाँ उपस्थित हो वैसी ही सन्तान इस कन्याकी भी हो, परन्तु प्रश्नके समय यदि दूसरी स्त्री वहाँ नहीं आवे तो ऐसा नहीं कहना चाहिये कि इस कन्याको सन्तान नहीं होगी। यह केवल प्रश्नका शकुन है। विशेष फलका विचार जन्मकुण्डलीसे ही करना चाहिये ॥ ८ ॥

प्रश्नकालमें निमित्तवश शुभाशुभ फल—

शङ्खभेरीविपञ्चीरवैर्मङ्गलं जायते वैपरीत्यं तदा लक्षयेत् ।
वायसो वा खरः श्वा शृगालोऽपि वा प्रश्नलग्नक्षणे रौति नादं यदि ॥

अन्वयः—प्रश्नलग्नक्षणे शङ्खभेरीविपञ्चीरवैः मङ्गलं जायते। अथ यदि, वायसः, वा खरः, वा श्वा, शृगालः अपि नादं रौति तदा वैपरीत्यं लक्षयेत् ॥ ९ ॥

भाषार्थः—प्रश्नके समय यदि शङ्ख, मृदङ्ग, वीणा आदिके शब्द हों, तथा और भी हाथी, घोड़ा, छत्र, चामर आदि माङ्गलिक वस्तुओंका दर्शन हो तो, विवाह में मङ्गल (कल्याण) कहना चाहिये। यदि प्रश्नकालमें कौआ, गधा, कुत्ता, सियारके शब्द सुन पड़े 'तथा और भी ऊँट, भैंस, उल्लू, भालू, छुछुन्दर आदिके शब्द या दर्शन हों तो' विवाहमें अमङ्गल (विघ्न) कहना चाहिये ॥ ९ ॥

कन्यावरणका मुहूर्त्त—

विश्वस्वातीवैष्णवपूर्वात्रयमैत्रैर्वस्वाग्नेयैर्वा करपीडोचितऋक्षैः ।
वस्त्रालङ्कारादिसमेतैः फलपुष्पैः सन्तोष्यादौ स्यादनु कन्यावरणं हि ॥

अन्वयः—विश्वस्वातीवैष्णवपूर्वात्रयमैत्रैः वस्वाऽग्नेयैः 'नक्षत्रैः' वा करपीडोचितऋक्षैः, हि (निश्चयेन) आदौ वस्त्रालङ्कारादिसमेतैः फलपुष्पैः 'कन्यां' सन्तोष्य, अनु (पश्चात्) कन्यावरणं स्यात् ॥ १० ॥

भाषार्थः—उत्तराषाढ़, स्वाती, श्रवण, तीनों पूर्वा, अनुराधा, धनिष्ठा और कृत्तिका इन नक्षत्रोंमें अथवा विवाहोक्त [1]नक्षत्रोंमें पहले वस्त्र, अलङ्करण, द्रव्य, रत्न, फल और फूलोंसे कन्याको सन्तुष्ट करके उसके बाद कन्याका वरण होता है ॥१०॥

वि०—वरकन्याके विवाहकी बात ठीक हो जाने पर लड़की वाला अपने मनोनुकूल लक्षणयुक्त कन्याको देखकर कन्यावालेके साथ यह व्यवस्था करता है कि अब इस लड़कीके लिये

---

१. विवाहके नक्षत्र इसी प्रकरणके ५५ वें श्लोकमें देखिये।

आपको वर खोजनेकी आवश्यकता नहीं है, मैं आपकी लड़कीके साथ अपने लड़केको ब्याहूँगा; इसीको कन्यावरण कहते हैं। इसमें कन्याको लड़कावाला वस्त्रालङ्करण आदि देकर लड़की का वरण करता है।

कन्याके अनुकूल और प्रतिकूल लक्षण मनुने कहे हैं—

अव्यङ्गाङ्गीं सौम्यनाम्नीं हंसवारणगामिनीम् ।
तनुलोमकेशदशनां मृद्वङ्गीमुद्वहेत् स्त्रियम् ॥
नोद्वहेत् कपिलां कन्यां नाधिकाङ्गीं च रोगिणीम् ।
नालोमिकां नातिलोमां न वाचाटां न पिङ्गलाम् ॥
ऋक्षवृक्षनदीनाम्नीं नान्त्यपर्वतनामिकाम् ।
न पक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नीं न विभीषणनामिकाम् ॥ १० ॥

वरवरणका मुहूर्त—

धरणिदेवोऽथवा कन्यकासोदरः शुभदिने गीतवाद्यादिभिः संवृतः ।
वरवृतिं वस्त्रयज्ञोपवीतादिना ध्रुवयुतैर्वह्निपूर्वात्रयैराचरेत् ॥११॥

अन्वयः—शुभदिने, ध्रुवयुतैः वह्नि[illegible]त्रयैः नक्षत्रैः धरणिदेवः (ब्राह्मणः) अथवा कन्यकासोदरः गीतवाद्यादिभिः संवृतः 'सन्' वस्त्रयज्ञोपवीतादिना वरवृतिं आचरेत्।११

भाषार्थः—शुभ दिन (शुभ तिथ्यादि) में ध्रुवसंज्ञक, कृत्तिका और तीनों पूर्वा नक्षत्रोंमें ब्राह्मण (कन्या पक्षका पुरोहित आदि) अथवा कन्याका सोदर भाई गान-वाद्य आदि माङ्गलिक उपकरणोंके साथ वस्त्र, यज्ञोपवीत, फल, फूल, द्रव्य आदि (यथाशक्त्युपलब्ध) वस्तुओंसे वरका वरण करे। अर्थात् वरको तिलक चढ़ावे ॥ ११ ॥

वि०—कन्यावरणके समान ही अर्थका वरवरण भी होता है। कन्यावाला कन्याके अनुरूप वरको पसन्द कर उसके साथ अपनी कन्याके विवाहका निश्चय करनेके लिये वरका वरण करे। वरके अनुकूल लक्षण वसिष्ठजीने ये लिखे हैं—

कुलं च शीलं च सनाथतां च विद्यां च वित्तं च वपुर्वयश्च ।
वरे गुणान् सप्त परीक्ष्य देया कन्या बुधैः शेषमचिन्तनीयम् ॥

वरके दुर्गुण—

सितकुष्ठिन्यपस्मारे ब्रह्मघ्ने राजयक्ष्मणि ।
अन्धे च परिवित्तौ च बधिरे दूरदेशगे ॥
व्यसनासक्तचित्ते च न देया कन्यका बुधैः ॥ ११ ॥

कन्याका विवाहकाल और ग्रहशुद्धि—

गुरुशुद्धिवशेन कन्यकानां समवर्षेषु षडब्दकोपरिष्टात् ।

रविशुद्धिवशाच्छुभो वराणामुभयोश्चन्द्रविशुद्धितो विवाहः ॥१२॥

अन्वयः—कन्यकानां 'जन्मतः' षडब्दकोपरिष्टात् समवर्षेषु गुरुशुद्धिवशेन, वराणां रविशुद्धिवशात्, 'तथा च' उभयोः (कन्या-वरयोः) चन्द्रविशुद्धितः विवाहः शुभः भवति ॥ १२ ॥

भाषार्थः—कन्याओंके जन्मसे ६ वर्षके ऊपर सम (८।१०) वर्षोंमें गुरुकी शुद्धिसे[1] वरोंकी रवि[2]-शुद्धिसे और कन्या वर दोनोंकी चन्द्रशुद्धिसे विवाह होना शुभ है ॥ १२ ॥

वि०—धर्मशास्त्रोंमें ८, ९, १०वें वर्षोंमें ही कन्याका विवाह लिखा गया है । जैसे—

अष्टवर्षा भवेद् गौरी नववर्षा च रोहिणी ।
दशवर्षा भवेत् कन्या अत ऊर्ध्वं रजस्वला ॥
गौरीं ददद् ब्रह्मलोकं सावित्रं रोहिणीं ददत् ।
कन्यां ददत् स्वर्गलोकमतः परमसद्गतिम् ॥ प्राप्नोतीतिशेषः ॥

इससे यह सिद्ध होता है कि ११वें वर्षमें कन्यायें रजस्वला होती हैं । रजस्वला कन्याका विवाह परम निन्दित है । जैसे—

माता चैव पिता चैव ज्येष्ठो भ्राता तथैव च ।
त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम् ॥
यावन्तः ऋतवस्तस्याः समतीयुः पतिं विना ।
तावन्त्यो भ्रूणहत्याः स्युस्तस्य यो न ददाति ताम् ॥

अर्थात् विना व्याही कन्याकी जितनी ऋतुयें निष्फल जाती हैं उतनी ही भ्रूण (बाल-) हत्याका पाप उसके पिता आदिको लगता है । इसलिये ११वें वर्षके पहले ही कन्याका विवाह करना आवश्यक है । वस्तुतः ऐसा देखा जाता है कि ११, १२ वर्षकी विना व्याही कितनी कन्यायें व्यभिचारसे भ्रूणहत्या कर डालती हैं । अतः इस महापातकसे बचनेके लिये उनके रजस्वला होनेके पूर्व ही विवाह आवश्यक है । इसलिये श्रीवसिष्ठजीने लिखा है—

रजो हि दृष्टं यदि कन्यकायाः कुलद्वयं दुर्गतिमेति तस्याः ।
तस्मान्नितान्तं च तदुक्तकालं नोल्लंघ्य पाणिग्रहणं विधेयम् ॥

यदि कन्याके आवश्यक समयमें गुरुशुद्धि नहीं भी होती हो तो उसकी शान्ति करके विवाह करना चाहिये । १०वें वर्षके बाद गुरुशुद्धिकी आवश्यकता नहीं ।

---

१. गुरुशुद्धि संस्कारप्रकरणके ४६वें श्लोकमें कही गई है ।

२. जन्मराशिसे ३।६।१०।११ में शुभ, २।५।९ में पूज्य और १।७।४।८।१२ में सूर्य अशुभ होते हैं । जैसे—

श्रेष्ठो रविस्त्रिदशलाभविपत्तसंस्थो मध्यो द्विपञ्चमगतो नवमे तथैव ।
जन्माष्टसप्तहिबुकान्त्यविनाशकारी सद्भिस्त्रिधा निगदिता रविशुद्धिरेषा ॥

मूल पद्यमें आचार्यने समवर्षमें ही कन्याका विवाह कहा है, परन्तु प्राचीनाचार्योंने ९ वें वर्षमें (रोहिणीका) विवाह पुण्यप्रद लिखा है । इसलिये गर्भकालसे १० वां वर्षका ग्रहण उपयुक्त होगा, अर्थात् जन्मसे नवें वर्षके प्रथम ३ मास छोड़कर शेष ९ मासोंमें विवाह शुभ होगा । पुरुषोंके लिये समय नहीं कहा गया, तथापि पुरुषोंके जन्मसे विषम वर्षोंमें विवाह होना शुभ है । यों ही श्रीनारदजीने कहा है—

युग्मेऽब्दे जन्मतः स्त्रीणां शुभदं पाणिपीडनम् ।
एतत्पुंसामयुग्मेऽब्दे व्यत्यये नाशनं तयोः ॥ १२ ॥

विवाहमें विहित मास—

मिथुनकुम्भमृगाऽलिवृषाजगे मिथुनगेऽपि रवौ त्रिलवे शुचेः ।
अलिमृगाजगते करपीडनं भवति कार्तिकपौषमधुष्वपि ॥ १३ ॥

अन्वयः—मिथुनकुम्भमृगालिवृषाजगे रवौ सति करपीडनं भवति । मिथुनगे अपि रवौ शुचेः त्रिलवे तथा अलिमृगाजगते रवौ कार्तिक-पौष-मधुषु अपि मासेषु करपीडनं भवति ॥ १३ ॥

भाषार्थः—मिथुन, कुम्भ, मकर, वृश्चिक, वृष और मेष इन छै राशियोंमें सूर्यके रहनेपर विवाह होता है । यदि सूर्य मिथुन राशिमें रहें तो आषाढ़ मासके प्रथम त्रिभागमें ([1]अर्थात् शुक्ल पक्षकी पड़िवासे १० मी तक) वृश्चिकमें रहें तो कार्तिकमासमें, मकरमें रहें तो पौष मासमें और मेष राशिमें रहें तो चैत्रमासमें भी विवाह करना चाहिये ॥ १३ ॥

वि०—विवाह आदि शुभकार्योंमें सौर मास ही प्रशस्त हैं । यद्यपि कार्त्तिक, पौष और चैत्र मास विवाहमें विहित नहीं हैं परन्तु जब सूर्य कार्तिक चान्द्रमासमें ही वृश्चिकमें चले जायें तो वह सौर मानसे अगहन हो जाता है, एवं पौषमें मकर राशिमें सूर्यके जानेसे माघमास और चैत्रमें मेषराशिमें जानेसे वैशाख हो जाता है; इसलिये ऐसी अवस्थामें कार्त्तिक-पौष-चैत्रमें भी विवाह शुभ है । सारांश यह है कि इसमें सूर्यका राशिसञ्चार देखना चाहिये ॥ १३ ॥

जन्म मासादिमें विवाहका विधि-निषेध—

आद्यगर्भसुतकन्ययोर्द्वयोर्जन्ममासभतिथौ करग्रहः ।
नोचितोऽथ विबुधैः प्रशस्यते चेद् द्वितीयजनुषोः सुतप्रदः ॥१४॥

अन्वयः—द्वयोः आद्यगर्भसुतकन्ययोः जन्मासभतिथौ करग्रहः न उचितः । अथ चेत् द्वितीयजनुषोः द्वयोः करग्रहः भवेत्तदा 'जन्ममासभतिथौ अपि' विबुधैः प्रशस्यते, यतः असौ सुतप्रदः भवति ॥ १४ ॥

---

१. यहाँ चान्द्रमासके अनुसार प्रथम शुक्लपक्ष दूसरा कृष्णपक्ष होता है ।

भाषार्थः—यदि वर और कन्या दोनों ही ज्येष्ठ हों तो उनके जन्ममास, जन्म नक्षत्र और जन्मतिथिमें विवाह नहीं करना चाहिये। यदि वर-कन्या दोनों द्वितीय गर्भके हों तो जन्म मासादिमें भी विवाह पण्डितोंने पुत्रदायक कहा है। अर्थात् ज्येष्ठ सन्तानका ही जन्ममासादिमें विवाह निषेध है, छोटेका नहीं ॥ १४ ॥

विवाहमें ज्येष्ठमासका विधि-निषेध—

ज्येष्ठद्वन्द्वं मध्यमं सम्प्रदिष्टं त्रिज्येष्ठं चेन्नैव युक्तं कदाऽपि ।
केचित्सूर्यं वह्निगं प्रोज्झ्य चाऽऽहुर्नैवाऽन्योन्यं ज्येष्ठयोः स्याद्विवाहः॥

अन्वयः—ज्येष्ठद्वन्द्वं 'विवाहे' मध्यमं सम्प्रदिष्टम्। चेत् त्रिज्येष्ठं 'स्यात् तदा तत्' कदापि युक्तं नैव 'भवेत्'। केचित् (भारद्वाजादयः) वह्निगं सूर्यं प्रोज्झ्य 'विवाहं' आहुः। तथा, अन्योन्यं ज्येष्ठयोः विवाहः 'शुभावहः' नैव स्यात् ॥ १५ ॥

भाषार्थः—विवाहमें दो ज्येष्ठ (ज्येष्ठ मास और ज्येष्ठ कन्या या वर) मध्यम माने गये हैं। तीन ज्येष्ठ (ज्येष्ठमास और वर-कन्या दोनों ज्येष्ठ) हों तो कभी भी शुभ नहीं हैं। किसी (भारद्वाज आदि) आचार्यका मत है कि जब तक सूर्य कृत्तिका नक्षत्रमें हों तब तक बरा कर उसके बाद ज्येष्ठमें भी विवाह करना चाहिये। अर्थात् ज्येष्ठमें कृत्तिका गत सूर्य ही निन्दित है, तथा वर और कन्या यदि दोनों ज्येष्ठ हों तो उनका विवाह शुभ नहीं होता ॥ १५ ॥

वि०—वर कन्याकी ज्येष्ठता अपनी २ माताके प्रथम गर्भकी लेनी चाहिये। पुत्र या कन्यामें पृथक् २ ज्येष्ठता नहीं है। यही आर्षमत है ॥ १५ ॥

एक कुलमें विवाह आदिका समय—

सुतपरिणयात्षण्मासान्तः सुताकरपीडनं
न च निजकुले तद्वद्वा भण्डनादपि मुण्डनम् ।
न च सहजयोर्देये भ्रात्रोः सहोदरकन्यके
न सहजसुतोद्वाहोऽब्दार्धे शुभे न पितृक्रिया ॥ १६ ॥

अन्वयः—सुतपरिणयात् षण्मासान्तः निजकुले सुताकरपीडनं न 'कर्त्तव्यम्' च (तथा) मण्डनात् (विवाहतः) तद्वद् (षण्मासान्तः) मुण्डनं अपि न 'कर्तव्यम्'। सहजयोः भ्रात्रोः सहोदरकन्यके च न देये। अब्दार्धे सहजसुतोद्वाहः न 'कार्यः'। तथा च, शुभे पितृक्रिया न कार्या ॥ १६ ॥

भाषार्थः—अपने कुलमें (तीन पुरुषके भीतर) पुत्रके विवाहसे ६ मास तक कन्याका बिबाह नहीं करना चाहिये। एवं कन्या या पुत्रके विवाहसे

६ मास तक किसीका मुण्डन भी नहीं करना चाहिये। दो सोदर भाइयोंका[1] विवाह दो सोदर कन्याओंसे नहीं करना चाहिये। दो सोदर भाइयों या बहनोंका विवाह ६ मास के मध्य नहीं करना चाहिये और शुभकार्यमें पितृक्रिया (श्राद्ध) भी नहीं करना चाहिये ॥ १६ ॥

वि०—यदि दो भाई या दो बहन यमल (एक गर्भके) हों तो उन दोनोंका उपनयन या विवाह या मुण्डन छ मासके मध्य एक ही दिनमें तथा एक ही मण्डपमें भी कर सकते हैं। जैसे पराशरजीने कहा है—

एकस्मिन् वत्सरे चैव वासरे मण्डपे तथा।
कर्त्तव्यं मङ्गलं स्वस्रोर्भ्रात्रोर्यमलजातयोः ॥ १६ ॥

विवाहका दिन निश्चय होनेके बाद वरकन्याके कुलमें मरणाशौच होनेपर विवाह-मुहूर्तका निर्णय—

वध्वा वरस्याऽपि कुले त्रिपूरुषे नाशं व्रजेत्कश्चन निश्चयोत्तरम्।
मासोत्तरं तत्र विवाह इष्यते शान्त्याऽथवा सूतकनिर्गमे परैः ॥१७॥

अन्वयः—निश्चयोत्तरं वध्वाः, वरस्य अपि त्रिपूरुषे कुले यदि कश्चन नाशं व्रजेत् 'तदा' तत्र मासोत्तरं विवाहः इष्यते। अथवा परैः (अन्यैः आचार्यैः) सूतकनिर्गमे 'सति, मासमध्ये अपि शान्त्या विवाहः इष्यते ॥ १७ ॥

भावार्थः—विवाहका निश्चय हो जानेके बाद कन्याके अथवा वरके कुल (तीन पुरुषके भीतर) में कोई मर जाय तो उसके एक मासके बाद विवाह करना चाहिये। कितने आचार्यों (मेधातिथि आदि) का मत यह है कि आवश्यकमें मरणाशौच बीत जानेपर (अर्थात् मृत व्यक्तिका श्राद्धादि बीत जानेपर) शान्ति करके मासके भीतर भी विवाह करना चाहिये ॥ १७ ॥

वि०—सपिण्डमें किसीके मरणमें १ मास बराना चाहिये। परन्तु यदि कन्या या वरके पिता-माता आदि की मृत्यु हो तो विशेष अशौच होता है। जैसे—

"वरवध्वोः पिता माता पितृव्यश्च सहोदरः।
एतेषां प्रतिकूलं चेन्महाविघ्नकरं भवेत् ॥
पिता पितामहश्चैव माता वाऽपि पितामही।
पितृव्यः स्त्री सुतो भ्राता भगिनी वा विवाहिता ॥
एभिरेव विपन्नैश्च प्रतिकूलं बुधैः स्मृतम्।
वाग्दानानन्तरं यत्र कुलयोः कस्यचिन्मृतिः ॥

---

१. एक वरको सोदर दो कन्यायें नहीं देनी चाहिये।
'सपुत्रीद्वयमेकस्मै प्रदद्यात्तु कदाचन' इति वसिष्ठोक्तेः।

तदा सँवत्सरादूर्ध्वं विवाहः शुभदो भवेत् ।
पितुराशौचमब्दं स्यात् तदर्धं मातुरेव हि ॥
मासत्रयं तु भार्यायाः, तदर्धं भ्रातृ-पुत्रयोः" ।

इन वचनोंके अनुसार पिताके मरनेपर १ वर्ष, माताके मरनेपर ६ मास, स्त्रीके ३ मास और भाई तथा पुत्रके १॥ मास तक अशौच रहते हैं। परन्तु सङ्कटावस्थामें प्रतिकूल समयमें भी शान्तिपूर्वक विवाह करना ही चाहिये। कहा भी है—

दुर्भिक्षे राष्ट्रभङ्गे च पित्रोर्वा प्राणसंशये ।
प्रौढायामपि कन्यायां प्रतिकूलं न दुष्यति ॥
सङ्कटे समनुप्राप्ते याज्ञवल्क्येन योगिना ।
शान्तिरुक्ता गणेशस्य कृत्वा तां शुभमाचरेत् ॥

इसमें शान्ति श्रीगणेशजीकी विशिष्ट पूजा और कुष्माण्डी हवनसे होती है ॥ १७ ॥

विवाहके बाद अपने कुलमें मुण्डनादिका निषेध—

चूडा व्रतं चाऽपि विवाहतो व्रताच्चूडा च नेष्टा पुरुषत्रयान्तरे ।
वधूप्रवेशाच्च सुताविनिर्गमः षण्मासतो वाऽब्दविभेदतः शुभः ॥१८॥

अन्वयः—विवाहतः 'षण्मासमध्ये' पुरुषत्रयान्तरे चूडा न इष्टा, व्रतं च न इष्टं 'भवति'। व्रतात् चूडा च न इष्टा। वधूप्रवेशात् सुताविनिर्गमश्च न 'इष्टः'। परन्तु, षण्मासतः (षण्मासानन्तरं) वा अब्दविभेदतः (वर्षभेदात् षण्मासमध्ये अपि) 'विवाहादिः' शुभः 'भवति' ॥ १८ ॥

भाषार्थः—अपने त्रिपुरुष कुलमें विवाहके बाद ६ मास तक मुण्डन और उपनयन शुभ नहीं हैं। एवं उपनयनसे ६ मास तक मुण्डन शुभ नहीं होता। पुत्रवधू-प्रवेशसे ६ मास तक कन्याका विनिर्गम (पतिगृह गमन, अर्थात् द्विरागमन) भी नहीं करना चाहिये। प्रत्येक कार्यसे ६ मासके बाद दूसरा शुभ कार्य शुभ होता है, किन्तु यदि वर्ष (संवत्) बदल जाय तो ६ मासके भीतर भी शुभ होता है। अर्थात् यदि माघमें विवाह हो तो वैशाखमें (६ मासके भीतर ही) मुण्डन-उपनयन हो सकते हैं; क्योंकि यहाँ सँवत् बदल जाता है ॥ १८ ॥

आश्लेषा-मूल-ज्येष्ठा-विशाखा नक्षत्रमें उत्पन्न कन्याके फल—

श्वश्रूविनाशमहिजौ सुतरां विधत्तः
कन्या-सुतौ निऋतिजौ श्वशुरं हतश्च ।
ज्येष्ठाभजाततनया स्वधवाग्रजं च
शक्राग्निजा भवति देवरनाशकर्त्री ॥ १९ ॥

अन्वयः—अहिजौ (आश्लेषानक्षत्रोत्पन्नौ) कन्यासुतौ सुतरां (निश्चयेन) श्वश्रूविनाशं विधत्तः । निर्ऋतिजौ (मूलोत्पन्नौ) कन्या-सुतौ चकारान्निश्चयेन श्वशुरं हतः (नाशयतः) । ज्येष्ठाभजाततनया स्वधवाग्रजं हन्ति । च (तथा) शक्राग्निजा (विशाखानक्षत्रोत्पन्ना) कन्या देवरनाशकर्त्री भवति ॥ १९ ॥

भाषार्थः—आश्लेषा नक्षत्रमें जन्म लेनेवाले कन्या और बालक अपनी श्वश्रू (सास) का नाश करते हैं । मूल नक्षत्रमें उत्पन्न कन्या और बालक अपने श्वशुरका नाश करते हैं । ज्येष्ठा नक्षत्रवाली कन्या अपने पतिके ज्येष्ठ भाईका और विशाखा नक्षत्रवाली कन्या अपने देवर (पतिके छोटे भाई) का नाश करती है ॥१९॥

चरण भेदसे मूलादि नक्षत्रोत्पन्न कन्याका परिहार—

द्वीशाद्यपादत्रयजा कन्या देवरसौख्यदा ।
मूलान्त्यपादसार्पाद्यपादजाते तयोः शुभे ॥ २० ॥

अन्वयः—द्वीशाद्यपादत्रयजा कन्या देवरसौख्यदा 'भवति'। मूलान्त्यपाद-सार्पाद्यपादजाते 'कन्ये' तयोः (श्वश्रू-श्वशुरयोः) शुभे 'भवतः' ॥ २० ॥

भाषार्थः—विशाखा नक्षत्रके प्रथम ३ चरणोंमें उत्पन्न कन्या देवरको सुख देती है । मूलके ४ थे चरणवाली कन्या (वर भी) श्वशुरके लिये और आश्लेषाके प्रथम चरणवाली कन्या (वर भी) सासके लिये शुभ है ॥ २० ॥

वि०—१९ वें श्लोकमें यह बताया गया है कि विशाखा नक्षत्रकी कन्या देवरको नाश करती है । वहाँ यह समझना चाहिये कि विशाखाके चौथे चरणकी कन्या ही देवरको नाश करती है, पहले ३ चरणवाली नहीं ।

मूलके कन्यावर श्वशुरनाशक बताये गये हैं, परन्तु मूलके चौथे चरणवाले नहीं । एवं आश्लेषामें सासका नाश कहा गया है, परन्तु आश्लेषाके प्रथम चरणमें नहीं । अर्थात् विशाखाका चौथा चरण, मूलका प्रथम ३ चरण और आश्लेषाका २,३,४ चरण अशुभ हैं । परन्तु ज्येष्ठा नक्षत्रका परिहार नहीं है ॥ २० ॥

इस तरह प्रश्नकालमें और वर-कन्याकी जन्मकुण्डलीसे दोनोंके गुण दोषोंका विचार करके वर-कन्याके जन्मनक्षत्रोंका मेलापक विचारना चाहिये, जिसे गणना कहते हैं ।

पहले यह प्रश्न उठता है कि यह गणना क्यों की जाती है । इसका उत्तर यह है कि—विवाहमें वर-कन्याका, नौकरीमें सेव्य-सेवकका एवं मैत्री आदिमें दोनों मनुष्योंका मानसिक सम्बन्ध कैसा होगा; इसके विचारके लिये चन्द्रमाकी स्थिति देखनी पड़ती है । क्योंकि जीव मात्रके मानस अङ्गका अधिष्ठाता चन्द्रमा है[1] । चन्द्रमाके नक्षत्राश्रित होनेके कारण नक्षत्रके आधार पर ही मनुष्योंके मानसिक सम्बन्ध निर्भर हैं, इसलिये विवाह आदिमें वर-कन्याके जन्म नक्षत्रोंकी सम्बन्धिता देखी जाती है कि इन दोनोंका मनोयोग कैसा होगा ।

---

१. "......शीतकरस्तु चेतः" इत्युक्तेः ।

नक्षत्रोंके सम्बन्ध विचारनेके लिये किसी आचार्यने (नारदजीने) १२ प्रकारके और किसी (गर्ग) आचार्यने १८ प्रकारके कूट (प्रीति भेद) बताये हैं। परन्तु उनमें कितने कूटों को भिन्न-भिन्न दैशिक होनेके कारण ग्रन्थकर्त्ताने-सार्वदैशिक आठ कूटोंका विवरण किया है, जो आगे कहे जाते हैं।

विवाहके मेलापकमें आठ कूट—

वर्णो वश्यं तथा तारा योनिश्च ग्रहमैत्रकम्।
गणमैत्रं भकूटं च नाडी चैते गुणाधिकाः ॥ २१ ॥

अन्वयः—वर्णः, वश्यं, तथा तारा, योनिः, च (पुनः) ग्रहमैत्रकं, गणमैत्रं, भकूटं, च (पुनः) नाडी च एते च (अष्टौ) गुणाधिकाः 'भवन्ति' ॥ २१ ॥

भाषार्थः—१ वर्ण, २ वश्य, ३ तारा, ४ योनि, ५ ग्रहमैत्री, ६ गणमैत्री, ७ भकूट और ८ नाडी ये ८ प्रकारके कूट हैं, जो क्रमसे एक २ अधिक गुणवाले हैं। अर्थात् वर्णका = १ गुण। वश्यके = २। ताराके = ३। योनिके = ४। ग्रहमैत्रीके=५। गणमैत्रीके=६। भकूटके = ७ और नाडीके = ८ गुण होते हैं ॥ २१ ॥

वि०—इन आठों कूटोंका गुणयोग ३६ है, जिसमें अर्धाधिक (१८ से अधिक) वर-कन्याका गुणयोग आने पर दोनोंका विवाह किया जाता है, अर्धाल्पमें नहीं।

ऐसा भी प्रमाण है कि यदि वरकन्याका भकूट शुद्ध हो तो भी १६से कम गुणैक्य निन्दित होते हैं। १६ से २० तक मध्यम, २० से ३० तक उत्तम और ३० से ३६ तक उत्तमोत्तम होते हैं। परन्तु दुष्ट भकूट में २० तक निन्दित, २० से २५ तक मध्यम, २५ से ३० तक श्रेष्ठ और ३० से ३६ तक उत्तमोत्तम होते हैं। जैसे—

गुणैः षोडशभिर्निन्द्यं मध्यमा विंशतिस्तथा।
श्रेष्ठं त्रिंशद्गुणं यावत् परतस्तूत्तमोत्तमम् ॥
सद्भकूट इति ज्ञेयं दुष्टकूटे तु चान्यथा।
निन्द्यं गुणैर्विंशतिभिर्मध्यं बाणाधिकैर्मतम् ॥
तत्परैः पञ्चभिः श्रेष्ठं ततः श्रेष्ठतरं गुणैः। इति ॥ २१ ॥

१ वर्णगुणका विचार—

द्विजा झषालिकर्कटास्ततो नृपा विशोऽङ्घ्रिजाः।
वरस्य वर्णतोऽधिका वधूर्न शस्यते बुधैः ॥ २२ ॥

अन्वयः—झषालिकर्कटाः राशयः द्विजाः (विप्रवर्णाः) ततः त्रिराशयः नृपाः (क्षत्रियाः) ततः विशः (वैश्यवर्णाः) ततः अङ्घ्रिजाः (शूद्रवर्णाः), 'भवन्ति'। वरस्य वर्णतः अधिका (अधिकवर्णा) वधूः बुधैः न शस्यते ॥ २२ ॥

भाषार्थः—मीन-वृश्चिक-कर्क राशि विप्रवर्ण हैं। मेष-धनु-सिंह क्षत्रिय

वर्ण हैं। वृष-मकर-कन्या वैश्य वर्ण और मिथुन-कुम्भ-तुला-शूद्रवर्ण हैं। यदि वरके वर्णसे कन्याका वर्ण अधिक (उत्तम) हो तो उस वरके लिये वह कन्या शुभ नहीं होती, ऐसा पण्डितने कहा है ॥ २२ ॥

वि०—कन्याके वर्णसे वरका उत्तम अथवा समान हो तो दोनोंका वर्ण गुण १ होता है, अन्यथा गुण नहीं होता।

राशियोंके वर्ण—

वर्ण	ब्राह्मण	क्षत्रिय	वैश्य	शूद्र
राशि	कर्क, वृश्चिक, मीन	सिंह, धनु, मेष	कन्या, मकर, वृष	तुला, कुम्भ, मिथुन

वर-कन्याका वर्णगुणबोधक चक्र—

कन्यावर्ण—		वरवर्ण			
		ब्राह्मण	क्षत्रिय	वैश्य	शूद्र
	ब्राह्मण	१	०	०	०
	क्षत्रिय	१	१	०	०
	वैश्य	१	१	१	०
	शूद्र	१	१	१	१

वरके वर्णसे कन्याका वर्ण उत्तम होने पर ऐसा फल है—

वर्णश्रेष्ठा तु या नारी हीनवर्णस्तु यः पुमान्।
विवाहं यदि कुर्वीत तस्या भर्त्ता न जीवति ॥

परन्तु कन्यासे वरका राशिवर्ण अल्प होने पर भी यदि वरका [1]राशिपति कन्याके राशिपतिसे उत्तम वर्णका[2] हो तो वहाँ उस राशिकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। जैसे—

हीनवर्णो यदा राशी राशीशो वर्ण उत्तमः।
तदा राशीश्वरो ग्राह्यस्तद्राशिं नैव चिन्तयेत् ॥

---

१. राशिपति आगे ३९वें श्लोकमें कहे जायेंगे।

२. बृहस्पति-शुक्र ब्राह्मण, सूर्य-मङ्गल क्षत्रिय, चन्द्रमा वैश्य, बुध, शूद्र और शनि चाण्डाल वर्ण हैं। संस्कार प्रकरणका ४३वाँ श्लोक देखिये।

उदाहरण—

वर राम चित्रा नक्षत्रका तृतीय चरण तुला राशि-कन्या सीता शतभिषा नक्षत्रका तृतीय चरण कुम्भ राशि है। इन दोनोंकी वैवाहिक गणना करनी है। यहाँ वर और कन्या दोनों शूद्र वर्ण हैं इसलिये एक वर्ण होनेसे दोनोंका वर्णगुण १ हुआ ॥ २२ ॥

२ वश्यगुणका विचार—

हित्वा मृगेन्द्रं नर-राशिवश्याः सर्वे तथैषां जलजास्तु भक्ष्याः ।
सर्वेऽपि सिंहस्य वशे विनाऽलिं ज्ञेयं नराणां व्यवहारतोऽन्यत् ॥

अन्वयः—'मृगेन्द्रं हित्वा सर्वे राशयः' नरराशिवश्याः 'भवन्ति' तथा एषां (नरराशीनां) जलजाः 'राशयः' तु भक्ष्याः 'भवन्ति'। एवं, अलिं विना सर्वे अपि राशयः सिंहस्य वशे भवन्ति। अतः अन्यत् नराणां व्यवहारतः ज्ञेयम् ॥ २३ ॥

भाषार्थः—सिंहको[1] छोड़कर सभी राशि नर (मिथुन, कन्या, तुला) राशिके वश्य होते हैं और सभी जलचर राशि (कर्क, मकर, कुम्भ, मीन) नरराशिके भक्ष्य होते हैं। [2]वृश्चिकके विना सभी राशि सिंहराशिके वश्य होते हैं। इससे अधिक वश्य-भक्ष्य लोगोंके व्यवहारसे जानना चाहिये ॥ २३ ॥

वि०—वश्य विचारमें दोनोंके सख्य (मैत्री), वैर और भक्ष्य ये तीन भेद हैं, जिनमें दोनोंकी मैत्री रहने पर २ गुण, वैर और भक्ष्यमें शून्य गुण, वश्य और वैरमें १ गुण, तथा वश्य और भक्ष्यमें १/२ आधा गुण होता है। यहाँ भी ध्यान रहे कि वरकी अपेक्षा कन्या भक्ष्य या वश्य होनी चाहिये।

वश्य २	घर				
	२	नर	चतु	जल	की.
कन्या	नर	२	१	१/२	१
	चतु	१	२	१	०
	जल	१/२	१	२	१
	की.	१	०	१	२

१. मनुष्य केवल सिंहसे हार मानता है इसलिये सिंह नरराशिका वश्य नहीं है।
२. वृश्चिक (बीछा) से सिंह भी लाचार होता है, क्योंकि वह डंकमार है।

ग्रन्थकारके मतसे–मेष, वृष, सिंह और धनु ये ४ चतुष्पद; मिथुन, कन्या और तुला ये ३ द्विपद; कर्क, मकर, कुम्भ और मीन ये ४ जलचर और वृश्चिक राशि कीट संज्ञक है ।

उदाहरण—

वर रामकी राशि तुला द्विपद है और कन्या सीताकी राशि कुम्भ जलचर है, इसलिये वरकी कन्या भक्ष्य हुई, तथा इसमें गुण ½ हुआ ॥ २३ ॥

३ तारागुणका विचार—

कन्यर्क्षाद्वरभं यावत् कन्याभं वरभादपि ।
गणयेन्नवहृच्छेषे त्रीष्वद्रिभमसत्स्मृतम् ॥ २४ ॥

अन्वयः—कन्यर्क्षाद् वरभं यावत्, वरभाद् अपि कन्याभं यावत् गणयेत्, 'ततः तत्' नवहृत्, शेषे त्रिष्वद्रिभं चेत् 'तदा तत्' असत् स्मृतम् ॥ २४ ॥

भावार्थः—कन्याके नक्षत्रसे वरके नक्षत्र तक और वरके नक्षत्रसे भी कन्याके नक्षत्र तक गिने । अलग २ दोनोंमें ९ से भाग देनेपर यदि ३, ५, ७ शेष बचें तो तारा शुभ नहीं होती और शेष यदि १।२।४।६।८।० हो तो शुभ होती है ॥२४॥

वि०—यदि तारा विचारमें दोनों ओर अशुभ तारा (३ । ५ । ७) हो तो तारा गुण शून्य होता है । यदि एक ओर शुभ तारा दूसरी ओर अशुभ तारा होतो १½ गुण होता है, तथा यदि दोनों ओर शुभ तारा (१।२।४।६।८।०) हो तो पूर्ण गुण ३ होते हैं । चक्र देखिये ॥

तारागुणबोधक चक्र—

गुण ३		वर तारा								
कन्यातारा—	तारा	१	२	३	४	५	६	७	८	९
	१	३	३	१½	३	१½	३	१½	३	३
	२	३	३	१½	३	१½	३	१½	३	३
	३	१½	१½	०	१½	०	१½	०	१½	१½
	४	३	३	१½	३	१½	३	१½	३	३
	५	१½	१½	०	१½	०	१½	०	१½	१½
	६	३	३	१½	३	१½	३	१½	३	३
	७	१½	१½	०	१½	०	१½	०	१½	१½
	८	३	३	१½	३	१½	३	१½	३	३
	९	३	३	१½	३	१½	३	१½	३	३

उदाहरण—

वर राम चित्रा नक्षत्रका तृतीय चरण तुला राशि-कन्या सीता शतभिषा नक्षत्रका तृतीय चरण कुम्भ राशि है। इन दोनोंकी वैवाहिक गणना करनी है। यहाँ वर और कन्या दोनों शूद्र वर्ण हैं इसलिये एक वर्ण होनेसे दोनोंका वर्णगुण १ हुआ ॥ २२ ॥

२ वश्यगुणका विचार—

हित्वा मृगेन्द्रं नर-राशिवश्याः सर्वे तथैषां जलजास्तु भक्ष्याः ।
सर्वेऽपि सिंहस्य वशे विनाऽलिं ज्ञेयं नराणां व्यवहारतोऽन्यत् ॥

अन्वयः—'मृगेन्द्रं हित्वा सर्वे राशयः' नरराशिवश्याः 'भवन्ति' तथा एषां (नरराशीनां) जलजाः 'राशयः' तु भक्ष्याः 'भवन्ति'। एवं, अलिं विना सर्वे अपि राशयः सिंहस्य वशे भवन्ति। अतः अन्यत् नराणां व्यवहारतः ज्ञेयम् ॥ २३ ॥

भाषार्थः—सिंहको[1] छोड़कर सभी राशि नर (मिथुन, कन्या, तुला) राशिके वश्य होते हैं और सभी जलचर राशि (कर्क, मकर, कुम्भ, मीन) नरराशिके भक्ष्य होते हैं। [2]वृश्चिकके विना सभी राशि सिंहराशिके वश्य होते हैं। इससे अधिक वश्य-भक्ष्य लोगोंके व्यवहारसे जानना चाहिये ॥ २३ ॥

वि०—वश्य विचारमें दोनोंके सख्य (मैत्री), वैर और भक्ष्य ये तीन भेद हैं, जिनमें दोनोंकी मैत्री रहने पर २ गुण, वैर और भक्ष्यमें शून्य गुण, वश्य और वैरमें १ गुण, तथा वश्य और भक्ष्यमें ½ आधा गुण होता है। यहाँ भी ध्यान रहे कि वरकी अपेक्षा कन्या भक्ष्य या वश्य होनी चाहिये।

वश्य २		घर			
	२	नर	चतु	जल	की.
कन्या	नर	२	१	½	१
	चतु	१	२	१	०
	जल	½	१	२	१
	की.	१	०	१	२

१. मनुष्य केवल सिंहसे हार मानता है इसलिये सिंह नरराशिका वश्य नहीं है।
२. वृश्चिक (बीछा) से सिंह भी लाचार होता है, क्योंकि वह डंकमार है।

ग्रन्थकारके मतसे–मेष, वृष, सिंह और धनु ये ४ चतुष्पद; मिथुन, कन्या और तुला ये ३ द्विपद; कर्क, मकर, कुम्भ और मीन ये ४ जलचर और वृश्चिक राशि कीट संज्ञक है।

उदाहरण—

वर रामकी राशि तुला द्विपद है और कन्या सीताकी राशि कुम्भ जलचर है, इसलिये वरकी कन्या भक्ष्य हुई, तथा इसमें गुण ½ हुआ ॥ २३ ॥

३ तारागुणका विचार—

कन्यर्क्षाद्वरभं यावत् कन्याभं वरभादपि ।
गणयेन्नवहृच्छेषे त्रीष्वद्रिभमसत्स्मृतम् ॥ २४ ॥

अन्वयः—कन्यर्क्षाद् वरभं यावत्, वरभाद् अपि कन्याभं यावत् गणयेत्, 'ततः तत्' नवहृत्, शेषे त्रिष्वद्रिभं चेत् 'तदा तत्' असत् स्मृतम् ॥ २४ ॥

भावार्थः—कन्याके नक्षत्रसे वरके नक्षत्र तक और वरके नक्षत्रसे भी कन्याके नक्षत्र तक गिने। अलग २ दोनोंमें ९ से भाग देनेपर यदि ३, ५, ७ शेष बचें तो तारा शुभ नहीं होती और शेष यदि १।२।४।६।८।० हो तो शुभ होती है ॥२४॥

वि०—यदि तारा विचारमें दोनों ओर अशुभ तारा (३ । ५ । ७) हो तो तारा गुण शून्य होता है। यदि एक ओर शुभ तारा दूसरी ओर अशुभ तारा होतो १½ गुण होता है, तथा यदि दोनों ओर शुभ तारा (१।२।४।६।८।०) हो तो पूर्ण गुण ३ होते हैं। चक्र देखिये ॥

तारागुणबोधक चक्र—

गुण ३	वर तारा								
कन्यातारा— तारा	१	२	३	४	५	६	७	८	९
१	३	३	१½	३	१½	३	१½	३	३
२	३	३	१½	३	१½	३	१½	३	३
३	१½	१½	०	१½	०	१½	०	१½	१½
४	३	३	१½	३	१½	३	१½	३	३
५	१½	१½	०	१½	०	१½	०	१½	१½
६	३	३	१½	३	१½	३	१½	३	३
७	१½	१½	०	१½	०	१½	०	१½	१½
८	३	३	१½	३	१½	३	१½	३	३
९	३	३	१½	३	१½	३	१½	३	३

उदाहरण—

वर रामके चित्रासे कन्या सीताके शतभिषा नक्षत्र तक गिननेपर ११ में ९ का भाग देनेसे शेष तारा २। एवं कन्याके नक्षत्र शतभिषासे वरके चित्रा तक १८ में ९ का भाग देने पर शेष ० हुआ, अतः तारा ९ हुई। इसलिये ९वीं और २ री ताराओंके गुण ३ हुए ॥ २४ ॥

४. योनिगुणका विचार—

अश्विन्यम्बुपयोर्हयो निगदितः स्वात्यर्कयोः कासरः
सिंहो वस्वजपाद्भयोः समुदितो याम्यान्त्ययोः कुञ्जरः ।
मेषो देवपुरोहितानलभयोः कर्णाम्बुनोर्वानरः
स्याद्वैश्वाभिजितोस्तथैव नकुलश्चान्द्राब्जयोन्योरहिः ॥२५॥
ज्येष्ठामैत्रभयोः कुरङ्ग उदितो मूलार्द्रयोः श्वा तथा
मार्जारोऽदितिसार्पयोरथ मघायोन्योस्तथैवोन्दुरुः ।
व्याघ्रो द्वीशभचित्रयोरपि च गौरर्यम्णबुध्न्यर्क्षयो-
र्योनिः पादगयोः परस्परमहावैरं भयोन्योस्त्यजेत् ॥२६॥

अन्वयः—अश्विन्यम्बुपयोः 'योनिः' हयः निगदितः। स्वात्यर्कयोः कासरः (महिषः), वस्वजपाद्भयोः सिंहः, तथा याम्यान्त्ययोः 'योनिः' कुञ्जरः समुदितः। देवपुरोहितानलभयोः मेषः, कर्णाम्बुनोः वानरः, तथैव वैश्वाभिजितोः 'योनिः' नकुलः स्यात्। चान्द्राब्जयोन्योः अहिः (सर्पः), ज्येष्ठामैत्रभयोः 'योनिः' कुरङ्गः उदितः। तथा मूलार्द्रयोः 'योनिः' श्वा उदितः। अथ अदितिसार्पयोः 'योनिः' मार्जारः, तथैव मघायोन्योः उन्दुरुः, द्वीशभचित्रयोः 'योनिः' व्याघ्रः, अपि च अर्यम्णबुध्न्यर्क्षयोः गौः 'योनिः' उदिता। पादगयोः(श्लोकचरणाश्रितयोः) भयोन्योः परस्परमहावैरं त्यजेत् ॥

भावार्थः—अश्विनी-शतभिषाकी योनि अश्व (घोड़ा), स्वाती–हस्तकी कासर (भैंस), धनिष्ठा–पूर्वभाद्रकी सिंह, भरणी–रेवतीकी हस्ती, पुष्य–कृत्तिकाकी मेष (भेंड़ा), श्रवण-पूर्वाषाढ़की वानर, उत्तराषाढ़-अभिजित्‌की नेवला, मृगशिरा-रोहिणीकी सर्प, ज्येष्ठा-अनुराधाकी हरिण, मूल-आर्द्राकी कुक्कुर, पुनर्वसु-आश्लेषाकी बिड़ाल, मघा-पूर्वफल्गुनीकी मूषक, विशाखा चित्राकी व्याघ्र और उत्तरफल्गुनी–उत्तर भाद्रकी गौ योनि होती है। श्लोकके एक-एक चरणमें नक्षत्रोंकी कही गयी दो-दो योनियोंमें परस्पर महावैर होता है, इन्हें विवाहमें त्यागना चाहिये।

जैसे घोड़ा-भैंसा, सिंह-हस्ती, भेंड़ा-वानर, नेवला-सर्प, हरिण-कुक्कुर, बिड़ाल-मूषक और व्याघ्र-गौ इनमें परस्पर वैर होता है। उक्त योनिवाले कन्या-वरका विवाह नहीं होना चाहिये ॥ २५-२६ ॥

वि०—योनियोंके[1] महावैरमें गुणका अभाव०, वैरमें गुण १, उदासीनतामें २, मित्रतामें ३ और अतिमित्रता (एक ही योनि) में ४ गुण होते हैं। स्पष्टताके लिये चक्र देखिये।

योनिगुण [illegible] चक्र—

नक्षत्र	अ. श.	स्वा. ह.	ध पू. भा.	भ. रे.	पुष्य कृ.	श्र. पू. षा.	उ. षा. अभि.	मृ. रो.	ज्ये. अ.	मू. आर्द्रा	पुन श्ले.	म. पू. फ.	वि. चि.	उ. फ. उ. भा.
योनि	अ.	महिष	सिंह	गज	मेष.	वा.	नकु.	सर्प	मृग	श्वा	मार्जा	मूष	व्या	गौ.
अश्व	४	०	१	१	३	२	२	२	२	२	२	२	१	२
महिष	०	४	१	१	३	२	२	१	२	२	२	२	१	३
सिंह	१	१	४	०	१	१	१	२	१	१	१	२	१	२
गज	१	२	०	४	१	१	२	२	२	१	१	२	१	१
मेष	२	३	१	१	४	०	३	१	३	२	१	२	१	३
वानर	२	२	१	१	०	४	२	१	२	१	२	२	१	२
नेकुल	२	२	१	२	३	२	४	०	२	१	२	२	१	२
सर्प	१	१	२	२	१	१	०	४	१	१	१	१	२	१
मृग	२	२	१	२	३	२	२	१	४	०	२	२	१	२
श्वान	२	२	१	१	२	१	१	१	०	४	१	१	१	१
मार्जार	२	२	१	१	१	२	२	१	२	१	४	०	३	२
मूष	२	२	२	२	२	२	२	१	२	१	०	४	२	२
व्याघ्र	१	१	१	१	१	१	१	२	१	१	३	२	४	०
गौ	२	३	१	१	३	२	२	१	२	१	२	२	०	४

वरकन्याकी नक्षत्रयोनिकी वैरिता रहनेपर भी यदि वश्य गुण ठीक हो तो **"योनेरथो वैरिभावः स तु कार्ये वियोगदः। राशिवश्यं च यद्यस्ति कारयेन्न तु दोषभाक्"** इस वचनसे विवाह करना चाहिये ॥ २५-२६ ॥

१. योनियोंकी मैत्री आदि व्यवहारसे समझिये।

उदाहरण—

वर रामकी भयोनि व्याघ्र और कन्या सीताकी भयोनि अश्व इन दोनोंमें वैर होनेसे योनि गुण १ हुआ ॥ २५-२६ ॥

५. ग्रहमैत्री विचार—

मित्राणि द्युमणेः कुजेज्यशशिनः शुक्रार्कजौ वैरिणौ
सौम्यश्चास्य समो विधोर्बुध-रवी मित्रे, न चास्य द्विषत् ।
शेषाश्चास्य समाः, कुजस्य सुहृदश्चन्द्रेज्यसूर्याः, बुधः
शत्रुः, शुक्र-शनी समौ, च शशभृत्सूनोः सिताहस्करौ ॥२७॥
मित्रे, चाऽस्य रिपुः शशी, गुरु-शनि-क्ष्माजाः समा, गीष्पते-
र्मित्राण्यर्क-कुजेन्दवो, बुध-सितौ शत्रू, समः सूर्यजः ।
मित्रे सौम्य-शनी कवेः शशि-रवी शत्रू, कुजेज्यौ समौ,
मित्रे शुक्र-बुधौ शनेः शशि-रवि-क्ष्माजा द्विषोऽन्यः समः ॥२८॥

अन्वयः—द्युमणेः (सूर्यस्य)-कुजेज्यशशिनः मित्राणि, शुक्रार्कजौ वैरिणौ, सौम्यः अस्य समः 'भवति'। विधोः (चन्द्रस्य)-बुधरवी मित्रे, अस्य च द्विषत् (शत्रुः) 'कोपि' न, शेषाः अस्य (चन्द्रस्य) समाः 'भवन्ति'। कुजस्य—चन्द्रेज्यसूर्याः सुहृदः, बुधः शत्रुः, शुक्रशनी समौ 'भवतः'। शशभृत्सूनोः (बुधस्य)—सिताहस्करौ मित्रे, अस्य (बुधस्य) शशी रिपुः, गुरु–शनि–क्ष्माजाः समाः 'भवन्ति'। गीष्पतेः (बृहस्पतेः)—अर्ककुजेन्दवः मित्राणि, बुध-सितौ शत्रू, सूर्यजः समः। कवेः (शुक्रस्य)—सौम्य–शनी मित्रे, शशिरवी शत्रू, कुजेज्यौ समौ। तथा शनेः-शुक्र–बुधौ मित्रे, शशि–रवि–क्ष्माजाः द्विषः, अन्यः, समः 'भवति'॥ २७–२८ ॥

भाषार्थः—सूर्यके—मङ्गल-गुरु-चन्द्रमा मित्र, शुक्र-शनि, शत्रु और बुध सम हैं।

चन्द्रमाके—बुध-सूर्य मित्र और मङ्गल–गुरु–शुक्र–शनि सम हैं। चन्द्रमाका शत्रु कोई ग्रह नहीं है।

मङ्गलके—चन्द्र-गुरु-सूर्य मित्र, बुध शत्रु और शुक्र–शनि सम हैं।

बुधके—शुक्र-सूर्य मित्र, चन्द्रमा शत्रु और गुरु–शनि–मङ्गल सम हैं।

बृहस्पतिके—सूर्य-मङ्गल-चन्द्रमा मित्र, बुध-शुक्र शत्रु और शनि सम हैं।

शुक्रके—बुध-शनि मित्र, चन्द्र-सूर्य शत्रु और मङ्गल-गुरु सम हैं।

शनिके—शुक्र-बुध मित्र, चन्द्र-सूर्य मङ्गल शत्रु और गुरु सम हैं ॥२७-२८॥

ग्रहमैत्री चक्र—

राशि	सिंह	कर्क	मेष वृश्चिक	मिथुन कन्या	धनु मीन	वृष तुला	कुम्भ मकर
ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
मित्र	चं. मं. बृ.	सू. बु.	चं. बृ. सू.	शु. सू.	सू. चं. मं.	बु. श.	शु. बु.
शत्रु	शु. श.	०	बु.	चं.	बु. शु.	चं. सू.	र. चं. मं.
सम	बु.	मं. बृ. शु. श.	शु. श.	मं. बृ. श.	श.	मं. बृ.	बृ.

वि०—इस चक्रसे वर-कन्याके राशिपतियोंकी मित्र-शत्रु-समता देखकर ग्रहमैत्रीका गुण विचारना चाहिये । उसकी रीति यों है—यदि वर-कन्याका राशीश एक ही हो अथवा दोनोंमें परस्पर मैत्री हो तो ५ गुण; एक मित्र, दूसरा सम हो तो ४ गुण; दोनों सम हों तो ३ गुण; एक मित्र दूसरा शत्रु हो तो २ गुण; एक सम दूसरा शत्रु हो तो० गुण जानना चाहिये । स्पष्टताके लिये चक्र देखिये ॥ २७–२८ ॥

मैत्री गुणबोधकचक्र—

मैत्री—	वर-राशीश						
कन्या-राशीश— ५	सू.	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.
सू.	५	५	५	४	५	०	०
चं.	५	५	४	२	४	१	१
मं.	५	४	५	१	५	३	१
बु.	४	२	१	५	१	५	४
बृ.	५	४	५	१	५	१	३
शु.	०	१	३	५	१	५	५
श.	०	१	१	४	३	५	५

उदाहरण—

वर रामका राशिपति शुक्र और कन्या सीताका राशीश शनि, इनमें परस्पर मैत्री होनेसे ग्रहमैत्रीके ५ गुण हुए।

नोट—वर-कन्याके राशीशोंमें शत्रुता रहने पर भी यदि दोनोंकी राशियोंके नवांशपतियोंमें मित्रता हो, या नवांशपति एक ही हों तो—

"राशिनाथे विरुद्धेऽपि सबलांशकाधिपौ।
तन्मैत्र्येऽपि च कर्त्तव्यं दम्पत्योः शुभमिच्छता॥"

इस वसिष्ठजीके वचनसे विवाह शुभ ही होता है॥ २७-२८॥

ग्रहमैत्रीकी उपपत्ति—

श्रीसत्याचार्यके—

५ १२ २
"सुहृदस्त्रिकोणभवनाद् ग्रहस्य सुतभे व्ययेऽथ धनभवने।
४ ८ ९
स्वजने निधने धर्मे स्वोच्चे च भवन्ति न शेषाः॥"

इस वचनसे ग्रहोंके अपने २ मूलत्रिकोण[1] से ५, १२, २, ४, ८, ९ राशियोंके स्वामी और उच्चराशीश इनमें 'द्व्येकानुक्तभपान् सुहृत्-सम-रिपून् सञ्चिन्त्य नैसर्गिकान्' इस वराहके वचनसे दो राशिके पति मित्र, एक राशिपति सम और जो राशि नहीं कही गई हों उनके पति शत्रु होते हैं। इसलिये सूर्यके मूलत्रिकोण सिंहसे ५, १२, २, ४, ८, ९, राशि क्रमसे ९, ४, ६, ८, १२, १ और उच्च राशि १ इनमें ९, १२ दो राशिपति गुरु, ४ का पति चन्द्रमा (एक ही राशिपति होनेसे) और ८, १ का पति मङ्गल ये तीन ग्रह मित्र हुए। ६ एक राशिका पति बुध सम हुआ और अनुक्त २, ७, का पति शुक्र तथा १०।११ का पति शनि ये दोनों शत्रु हुए। इसी तरह चन्द्रमा आदिके मित्र-शम-शत्रु उपपन्न होते हैं॥ २७-२८॥

६. गण-विचार—

रक्षो-नराऽमरगणाः क्रमतो मघाहिवस्विन्द्रमूलवरुणानलतक्षराधाः।
पूर्वोत्तरात्रयविधातृयमेशभानि मैत्रादितीन्दुहरिपौष्णमरुल्लघूनि॥२९॥

निजनिजगणमध्ये प्रीतिरत्युत्तमा स्या-
दमर-मनुजयोः सा मध्यमा सम्प्रदिष्टा।
असुर-मनुजयोश्चेन्मृत्युरेव प्रदिष्टो
दनुज-विबुधयोः स्याद्वैरमेकान्ततोऽत्र॥ ३०॥

---

१. ग्रहोंके मूलत्रिकोण—'सिंहो वृषः प्रथमषष्ठहयाङ्गतौलिकुम्भास्त्रिकोणभवनानि भवन्ति सूर्यात्' के अनुसार सूर्यादिके ५,२,१,६,९,७,११ राशि मूलत्रिकोण हैं।

अन्वयः—मघाऽहिवस्विन्द्रमूलवरुणानलतक्षराधाः, पूर्वोत्तरात्रयविधातृयमेश-भानि, मैत्रादितीन्दुहरिपौष्णमरुल्लघूनि क्रमतः रक्षो-नरामरगणाः 'भवन्ति' ॥

निजनिजगणमध्ये 'विवाहे सति, वरकन्ययोः' अत्युत्तमा प्रीतिः स्यात् । अमर-मनुजयोः विवाहे सा (प्रीतिः) मध्यमा सम्प्रदिष्टा । असुर-मनुजयोः 'विवाहः' चेत् 'तदा' मृत्युः एव प्रदिष्टः । दनुज-विबुधयोः 'विवाहे सति' अत्र एकान्ततः वैरं स्यात् ॥ २९-३० ॥

भाषार्थः—मघा, आश्लेषा, धनिष्ठा, ज्येष्ठा, मूल, शतभिषा, कृत्तिका, चित्रा और विशाखा ये ९ नक्षत्र 'राक्षस' गण हैं ।

तीनों पूर्वा, तीनों उत्तरा, रोहिणी, भरणी और आर्द्रा ये ९ नक्षत्र 'नर' गण हैं ।

अनुराधा, पुनर्वसु, मृगशिरा, श्रवण, रेवती, स्वाती, हस्त, अश्विनी और पुष्य ये ९ नक्षत्र 'देव' गण हैं ।

अपने २ गणमें विवाह हो तो वर-कन्यामें अत्युत्तम प्रेम होता है । देवगण और नरगणमें विवाह हो तो मध्यम प्रेम होता है । राक्षसगण और मनुष्यगणमें विवाह होने पर मृत्यु होती है और राक्षसगण-देवगणमें विवाह होने पर वर-कन्यामें एकान्त वैर (शत्रुत्व) होता है ॥ २९-३० ॥

वि०—मूल श्लोकसे वर-कन्याके गणका विचार करके गण-सम्बन्धी गुणका विचार यों करे—वर-कन्याका गण एक ही हो तो ६ गुण, देवता और मनुष्यमें ५ गुण [1] देवता—राक्षमें तथा नर राक्षसमें शून्य ० गुण होता है । जैसे—

षड्गुणा गुणसादृश्ये पञ्च स्युः सुरमानुषे । नार्या देवो नरः पुंसश्चत्वारो वा गुणास्त्रयः[1] ॥
देव-राक्षसयोः शून्यं तथैव नररक्षसोः । पुंसो रक्षोगणो यत्र नार्या देवोऽथवा नरः ॥
गुणौ द्वौ क्रमतश्चैको गुणो ग्राह्योऽन्यथा न हि ॥ इति ।

गण-गुणबोधक चक्र—

गण	वर गण		
६	देव	नर	राक्षस
कन्या गण देव	६	४	२
कन्या गण नर	५	६	१
कन्या गण राक्षस	०	०	६

१. यदि कन्या देव, वर नरगण हो तो ४, वर राक्षस कन्या देव हो तो २, वर राक्षस कन्या नर हो तो १ गुण होता है ।

वर-कन्याके गुण दोष रहने पर भी यदि दोनोंकी ग्रहमैत्री या नवांशपतिकी मैत्री बनती हो तो विवाह शुभ ही होता है। जैसे गर्गने कहा है—

ग्रहमैत्री च राशिश्च विद्यते नियतं यदि।
न गणाभावजनितं दूषणं स्याद् विरोधदम्॥ इति।

उदाहरण—

वर रामका गण राक्षस और कन्या सीताका गण राक्षस दोनों एक गण होनेसे दोनोंमें अत्युत्तम प्रेम और गुण ६ हुए॥ २९-३०॥

७. भकूट—विचार—

मृत्युः षडष्टके ज्ञेयोऽपत्यहानिर्नवात्मजे।
द्विर्द्वादशे निर्धनत्वं द्वयोरन्यत्र सौख्यकृत्॥ ३१॥

अन्वयः—'वरकन्ययोः' षडष्टके 'विवाहे सति' मृत्युः ज्ञेयः। नवात्मजे अपत्यहानिः 'ज्ञेयः'। द्विर्द्वादशे निर्धनत्वं ज्ञेयम्। अन्यत्र द्वयोः सौख्यकृत् भवति॥ ३१॥

भाषार्थः—वर-कन्याकी राशि परस्पर ६-८ हो तो विवाह होनेपर मृत्यु होती है। ९-५ में सन्तानकी हानि होती है। २-१२ में दरिद्रता होती है और अन्यत्र (अर्थात् ३-११, ४-१०, ७-७ तथा एक ही राशिमें) विवाह शुभ होता है॥ ३१॥

वि०—पुरुषकी राशिसे कन्याकी राशि ५ वीं अशुभ है किन्तु ९ वीं शुभ है। एवं वरकी राशिसे कन्याकी राशि २ री अशुभ है परन्तु १२ वीं शुभ है। जैसे ज्योतिःप्रकाशमें कहा गया है—

पुंसो गृहात् सुतगृहे सुतहा च कन्या, धर्मे स्थिता सुतवती पतिवल्लभा च।
द्विर्द्वादशे धनगृहे धनहा च कन्या रिःफे स्थिता धनवती पतिवल्लभा च॥

समसप्तक और चतुर्थ-दशमको शुभ कहा गया है परन्तु मकर-कर्क, सिंह-कुम्भ इन दोनों समसप्तकोंमें वैर होता है। एवं तुला मकरसे, सिंह वृषसे, कर्क मेषसे, मीन मिथुनसे, कन्या-धनुसे, वृश्चिक-कुम्भसे इन वर-वधूके चतुर्थ-दशकोंमें भी शुभ नहीं होता। जैसे—

मृगः कुलीरेण, घटेन सिंहो वैरप्रदः स्यात् समसप्तकोऽयम्।
तुलामृगेणाथ वृषेण सिंहो मेषेण कीटो मिथुनेन मीनः॥
चापेन कन्या घटभेन चालिर्दुर्भाग्यदैन्ये दशतुर्यकेऽस्मिन्।

अतः निष्कर्ष यह निकला कि ३-६, ४-७, ५-८, ९-१२, १०-१, ११-२ इनके चतुर्थ-दशक ही शुभ हैं और सम-सप्तकमें ४-१०, ५-११ ये ही दो अशुभ हैं।

समसप्तक, तृतीयैकादश और चतुर्थ दशकको राजकूट बताया गया है। जैसे—

एकराशौ च दम्पत्योः शुभं स्यात् समसप्तके।
चतुर्थे दशमे चैव तृतीयैकादशे तथा॥

परन्तु इसमें भी अशुभ सप्तक और चतुर्थ-दशकको बरा कर ही विवाह करना चाहिये ।

इस राजकूट की प्रशंसा इस तरह है कि—

न राजकूटे ग्रहवरिताऽस्ति न वर्णदोषो न च नाडिदोषः ।
दोषो भवेन्नैत्र गणत्रयस्य भृग्वङ्गिराद्याः मुनयो वदन्ति ॥

षट्काष्टकमें भी यदि दोनों राशीशोंकी मैत्री होती हो, या दोनोंका राशीश एक ही ग्रह हो तो वह मित्र षट्काष्टक कहाता है । वे मित्र षट्काष्टक १-८, २-७, ४-९, ५-१२, ६-११, १०-३ ये ही छै हैं । जैसे कहा भी हैं—

मित्रषट्काष्टकं कीटमेषयोर्वृषजूकयोः ।
कर्किचापभयोर्मीनसिंहयोर्मृगयुग्मयोः ॥
कन्यकाकुम्भयोरन्यत् प्रयत्नाद्धि विवर्जयेत् ॥ इति ।

मित्र षट्काष्टकमें विवाह शुभ होता है ॥ ३१ ॥

शुद्ध-भकूट-गुणबोधक-चक्र—

भकूट	वरकी राशि											
कन्याकी राशि	७	मे.	वृ.	मि.	क.	सि.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कु.	मी.
मे.	७	०	७	७	०	०	७	७	०	७	७	०
वृ.	०	७	०	७	७	०	७	७	०	०	७	७
मि.	७	०	७	०	७	७	०	०	७	७	०	७
क.	७	७	०	७	०	७	७	०	७	०	७	०
सि.	०	७	७	०	७	०	७	७	०	०	०	७
क.	०	०	७	७	०	७	०	७	७	०	७	७
तु.	७	७	०	७	७	०	७	०	७	७	०	०
वृ.	७	७	०	०	७	७	०	७	०	७	७	०
ध.	७	०	७	७	०	७	७	०	७	०	७	७
म.	७	०	७	०	०	०	७	७	०	७	०	७
कु.	७	७	०	०	०	७	०	०	७	०	७	०
मी.	७	७	७	०	७	७	०	०	७	७	०	७

उदाहरण—

वर रामकी राशि तुलासे कन्या सीताकी राशि कुम्भ ५ वीं पड़ती है, इसलिये नव-पञ्चकमें भकूटका गुण शून्य ० मिला ॥ ३१ ॥

दुष्ट भकूटका परिहार—

प्रोक्ते दुष्टभकूटके परिणयस्त्वेकाधिपत्ये शुभो-
ऽथो राशीश्वरसौहृदेऽपि गदितो नाड्यृक्षशुद्धिर्यदि ।
अन्यर्क्षेंऽशपयोर्बलित्वसखिते नाड्यृक्षशुद्धौ तथा
ताराशुद्धिवशेन राशिवशताभावे निरुक्तो बुधैः ॥३२॥

अन्वयः—प्रोक्ते दुष्टभकूटके-'वरकन्याराश्योः' एकाधिपत्ये 'सति' नाड्यृक्षशुद्धौ परिणयः शुभः स्यात् ।

अथो राशीश्वरसौहृदे अपि यदि नाड्यृक्षशुद्धिः स्यात् 'तदा दुष्टभकूटके' परिणयः शुभः गदितः ।

अन्यर्क्षे 'तयोः' अंशपयोः बलित्वसखिते नाड्यृक्षशुद्धौ 'दुष्टभकूटके' परिणयः शुभः स्यात् ।

तथा नाड्यृक्षशुद्धौ ताराशुद्धिवशेन दुष्टभकूटके परिणयः शुभः स्यात् । अथ च, राशिवशताभावे अपि नाड्यृक्षशुद्धौ 'दुष्टभकूटके' बुधैः परिणयः शुभः निरुक्तः ॥३२॥

भाषार्थः—पूर्व (३१ वें श्लोकमें) कहे गये दुष्ट भकूटमें यदि वर कन्याके राशिपति एक ही ग्रह हो जाय और नाड़ी शुद्ध हो तो विवाह शुभ होता है ।

अथवा दुष्ट भकूटमें भी यदि दोनों राशीशोंकी परस्पर मैत्री हो और नाड़ी[1] नक्षत्र शुद्ध हों तो विवाह शुभ होता है ।

अन्य राशिमें (अर्थात् वर-कन्याके षट्काष्टक दोषमें दोनों राशीशोंकी शत्रुता भी रहने पर) यदि दोनोंके नवांशपतियोंकी परस्पर मैत्री हो और दोनों बली हों तथा नाड़ी नक्षत्र शुद्ध हों तो विवाह शुभ होता है ।

एवं दुष्ट भकूटमें यदि दोनोंकी तारायें (कन्यर्क्षाद् वरभं यावद्, इत्यादि) शुद्ध हों और नाड़ी नक्षत्र भी शुद्ध हों तो विवाह शुभ होता है ;

एवं यदि दुष्ट भकूटमें, राशीशोंकी मैत्रीके अभावमें, राशिकी वश्यता (अर्थात् कन्याकी राशि वरराशिका वश्य) हो तथा नाड़ी शुद्ध हो तो विवाह शुभ होता है ॥ ३२ ॥

वि०—दुष्ट भकूट रहने पर 'एकाधिपत्य' १, राशीशमैत्री २, नवांशपतिकी मैत्री ३, ताराशुद्धि ४, और राशिवश्यता ५, ये पाँच प्रकारके परिहार बताये गये हैं । जिनमें प्रत्येकमें नाड़ीकी शुद्धि आवश्यक है । क्योंकि नाड़ी शुद्धिके विना कोई भी गुण शुद्ध नहीं होते । जैसे कहा है—

---

१. नाड़ीका विचार आगे ३४ वें श्लोकमें देखिये ।

'सदा नाशयत्येकनाडीसमाजो भकूटादिकान् सप्त भेदान् प्रशस्तान्' इति ॥

उक्त (वर-कन्या राम-सीताके) उदाहरणमें नव-पञ्चक होनेके कारण दुष्ट भकूट है, परन्तु दोनोंके राशीशों (शुक्र-शनि) की परस्पर मैत्री है और दोनोंकी नाड़ी भी भिन्न न होनेसे शुद्ध है, इसलिये यहाँ दुष्ट भकूटका परिहार हो गया ॥ ३२ ॥

दुष्ट-गण-भकूट-ग्रहकूटोंका परिहार—

मैत्र्यां राशिस्वामिनोरंशनाथद्वन्द्वस्यापि स्याद्गणानां न दोषः ।
खेटारित्वं नाशयेत्सद्भकूटं खेटप्रीतिश्चापि दुष्टं भकूटम् ॥ ३३ ॥

अन्वयः—'वरकन्ययोः' राशिस्वामिनोः मैत्र्याम्, अंशनाथद्वन्द्वस्य अपि मैत्र्यां गणानां दोषः न स्यात् । सद्भकूटं खेटारित्वं नाशयेत् । खेटप्रीतिश्चापि दुष्टं भकूटं नाशयेत् ॥ ३३ ॥

भाषार्थः—यदि वर-कन्या दोनोंके राशीशोंकी परस्पर मित्रता हो अथवा दोनोंके नवांशपतियोंकी मैत्री हो तो गणका दोष नहीं लगता । शुभ भकूट (३-११, ४-१०, ७-७ या एक राशिका कन्या-वर) ग्रहशत्रुता (वर-कन्याके राशिशोंकी शत्रुता) दोषका नाश करता है और ग्रहमैत्री दुष्ट भकूट (६-८, ९-५, २-१२) का नाश करता है ।

तात्पर्य यह है कि कन्या-वरकी भकूटशुद्धि और ग्रहमैत्री इन दोनोंमें कोई एक अवश्य होनी चाहिए ॥ ३३ ॥

८. नाड़ीविचार—

ज्येष्ठारौद्रार्यमाम्भःपतिभयुगयुगं दास्रभं चैकनाडी,
पुष्येन्दुत्वाष्ट्रमित्रान्तकवसुजलभं योनिबुध्न्ये च मध्या ।
वाय्वग्निव्यालविश्वोडुयुगयुगमथो पौष्णभं चापरा स्याद्
दम्पत्योरेकनाड्यां परिणयनमसन्मध्यनाड्यां हि मृत्युः ॥३४॥

अन्वयः—ज्येष्ठारौद्रार्यमाम्भःपतिभयुगयुगं दास्रभं च एकनाडी 'ज्ञेया' । पुष्येन्दुत्वाष्ट्रमित्रान्तकवसुजलभं योनिबुध्न्ये च मध्या 'नाड़ी ज्ञेया' । अथो वाय्वग्निव्यालविश्वोडुयुगयुगं पौष्णभं च अपरा 'नाड़ी' स्यात् । दम्पत्योः (वर-कन्ययोः) एकनाड्यां परिणयनं असत् 'भवति' । 'तयोः' मध्यनाड्यां हि (निश्चयेन) मृत्युः 'भवति' ॥ ३४ ॥

भाषार्थः—ज्येष्ठा, आर्द्रा, उत्तरा फल्गुनी, शतभिषा इन प्रत्येकसे दो-दो नक्षत्र (अर्थात् ज्ये. मू, आ. पुन, उ. फ. ह, श. पू. भा,) और अश्विनी--ये ९ नक्षत्र आदि नाड़ीके हैं ।

पुष्य, मृगशिरा, चित्रा, अनुराधा, भरणी, धनिष्ठा, पूर्वाषाढ़, पूर्वफल्गुनी और उत्तरभाद्र ये ९ नक्षत्र मध्य नाड़ीके हैं।

स्वाती, कृत्तिका, आश्लेषा, उत्तराषाढ़ इनसे दो-दो नक्षत्र (अर्थात् स्वा. वि., कृ. रो., श्ले. म., उ. षा. श्र.) और रेवती ये ९ नक्षत्र अन्त्य-नाड़ीके हैं।

यदि वर-कन्या दोनोंकी एक ही नाड़ी हो तो विवाह शुभ नहीं होता और यदि दोनोंकी एक ही मध्या नाड़ी होवे तो निश्चय मृत्यु होती है ॥ ३४ ॥

वि०—इस नाड़ीको फणिचक्र भी कहते हैं, क्योंकि इन २७ नक्षत्रोंको सर्पकी आकृति बनानेसे तीनों नाड़ियोंके ९, ९ नक्षत्र ठीक बन जाते हैं। स्पष्टताके लिये चक्र देखिये—

नाड़ी चक्र—

आदिनाड़ी	अ.	आ.	पुन.	उफ.	ह.	ज्ये.	मू.	श.	पूभा.
मध्यनाड़ी	भ.	मृ.	पु.	पूफ.	चि.	अनु.	पूषा.	ध.	उभा.
अन्त्यनाड़ी	कृ.	रो.	श्ले.	म.	स्वा.	वि.	उषा.	श्र.	रे.

नाड़ी गुण बोधक चक्र—

नाड़ी		वर नाड़ी		
	८	आदि	मध्य	अन्त्य
कन्या नाड़ी	आदि	०	८	८
	मध्य	८	०	८
	अ.	८	८	०

उदाहरण—

वर रामकी नाड़ी मध्या और कन्या सीताकी नाड़ी आदि है इसलिये यहाँ नाड़ी गुण ८ मिले।

मन्तव्यः—वर-कन्याकी गणनामें वर्ण आदि ८ कूट बनाये गये हैं जिनमें सबसे प्रधान नाडीको ही माना गया है अर्थात् हर हालत में नाड़ीकी शुद्धि अवश्य रहनी चाहिये। जैसे—

भवनपतिसुहृत्त्वं स्यात्तथैकाधिपत्यं यदि भवनवशित्वं चैव षट्काष्टकेऽपि।
शुभकृदिह विवाहोऽन्योन्यताराविशुद्धौ यदि खलु फणिचक्रे स्यान्न नाडीसमाजः।

श्रीपतिने लिखा है।

एवं—'त्रिनाडी सर्वदेशेषु वर्जनीया प्रयत्नतः' इस वचनके अनुसार यह त्रिनाड़ी दोष सर्वथा त्याज्य है ।

अत्यावश्यकमें यदि नाड़ी शुद्धि नहीं मिले तो उसकी शान्ति 'गुरुने' यों लिखी है—

दोषापनुत्तये नाड्या मृत्युञ्जयजपादिकम् ।
विधाय ब्राह्मणांश्चैव तर्पयेत् काञ्चनादिना ॥
हिरण्मयीं दक्षिणां च दद्याद्वर्णादिकूटके ।
गावोऽन्नं वसनं हेम सर्वदोषापहारकम् ॥ इति ॥ ३४ ॥

नाड़ीदोष और गणदोषका परिहार—

राश्यैक्ये चेद्भिन्नमृक्षं द्वयोः स्यान्नक्षत्रैक्ये राशियुग्मं तथैव ।
नाडीदोषो नो गणानां च दोषो नक्षत्रैक्ये पादभेदे शुभं स्यात् ॥

अन्वयः—द्वयोः (वर-कन्ययोः) राश्यैक्ये 'सति' चेत् ऋक्षं भिन्नं स्यात्, तथैव 'द्वयोः' नक्षत्रैक्ये 'सति' चेद् राशियुग्मं स्यात् तदा नाडीदोषः गणानां च दोषः न 'भवेत्' । एवं, नक्षत्रैक्ये 'अपि' पादभेदे 'सति' शुभं स्यात् ॥ ३५ ॥

भाषार्थः—यदि वर-कन्या दोनोंकी राशि एक ही हो और नक्षत्र भिन्न २ हों, तथा दोनोंका नक्षत्र एक हो और राशि भिन्न २ हों तो ऐसी अवस्थामें नाड़ीका दोष तथा गणका दोष नहीं लगता है । इसी तरह यदि वर-कन्याका नक्षत्र एक ही हो परन्तु चरण भिन्न २ हों तो भी शुभ होता है, अर्थात् एक नाड़ीका दोष नहीं लगता ॥ ३५ ॥

वि०—इस श्लोकका तात्पर्य यह है कि वर-कन्याके राशि-नक्षत्र एक ही नहीं हों । नक्षत्र एक हो तो राशि भिन्न होनी चाहिये और राशि एक हो तो नक्षत्र भिन्न-भिन्न होने चाहिये ।

जैसे शतभिषा और पूर्वभाद्रका ३ चरण, यहाँ राशि एक ही है, परन्तु नक्षत्र दो हैं; इसलिये यहाँ राक्षस-मनुष्य गणका दोष और एक नाड़ी का दोष नहीं लगेगा ।

एवं पूर्वभाद्रका ३ चरण और चौथा चरण, इन दोनोंमें नक्षत्र एक ही है, किन्तु राशि भिन्न-भिन्न है; अतः यहाँ भी नाडीका दोष नहीं लगेगा ।

वर कन्याकी एक राशि भिन्न नक्षत्रमें भी वरका नक्षत्र ही प्रथम होना चाहिये । स्त्रीके नक्षत्रसे द्वितीय नक्षत्र वरका शुभ नहीं होता । जैसे गर्गाचार्यने कहा है—

एकराशौ पृथग् धिष्ण्ये पुंतारा प्रथमा भवेत् ।
अतीव शोभना प्रोक्ता, स्त्रीतारा चेत्त्वशोभना ॥

इसी बातको ग्रन्थकार आगे श्लोकमें कहेंगे ।

नौकरी-ऋण-विवाह-ग्रामवासमें नक्षत्रमेलापक—

सेव्याधमर्णयुवतीनगरादिभं चेत्पूर्वं हि भृत्यधनिभर्तृपुरादिसद्भात् ।

सेवाविनाशधननाशनभर्तृनाशग्रामादिसौख्यहृदिदं क्रमशः प्रदिष्टम् ॥

अन्वयः—सेव्याधमर्णयुवतीनगरादिभं चेत् (यदि) भृत्य-धनि-भर्तृ-पुरादिस-ज्ञात् पूर्वं (प्रथमं) स्यात् तदा क्रमशः सेवाविनाश-धननाश-भर्तृनाश-ग्रामादि-सौख्यहृत् इदं 'फलं' प्रदिष्टम् ॥ ३६ ॥

भावार्थः—नौकरीमें—मालिकका नक्षत्र नौकरके नक्षत्रसे पूर्व हो तो सेवाका नाश होता है। कर्ज देनेमें—यदि ऋणी (ऋण लेने वाले) का नक्षत्र धनी (महाजन) के नक्षत्रसे पूर्व हो तो ऋणका नाश होता है, अर्थात् वह धन नहीं मिलता। विवाहमें—स्त्रीका नक्षत्र वरके नक्षत्रसे पूर्व हो तो वरका नाश होता है और ग्रामवासके विचारमें—ग्रामका नक्षत्र बसने वालेके नाम नक्षत्रसे पूर्व हो तो ग्रामसुखका नाश होता है ॥ ३६ ॥

वि०—कन्याके नक्षत्रसे दूसरा नक्षत्र वरका हो तो उसे मुहूर्त्त मार्त्तण्डकारने 'नृदूर' दोष कहा है और उसे अशुभ बताया है, परन्तु राशिपति और नक्षत्र योनिकी मैत्री रहने पर उक्त दोषका परिहार भी कहा है। जैसे—

'स्त्रीभान्ना निकटे नृदूरमशुभं खेटोडुमैत्र्योः शुभम्' ॥ इति ॥

उपर्युक्त प्रकारोंसे विवाहमें कन्या-वरकी गणनाका विचार करके पूर्वोक्त ८ कूटोंके गुणोंका योग करना चाहिये। गुणोंका योग यदि १६ से अल्प हो तो वह निन्दित समझा जाता है। उससे अधिक उत्तरोत्तर शुभ होता है। जैसे—

गुणाः षोडशभिरल्पा निन्द्या मध्यास्तु विंशतिः।
श्रेष्ठास्त्रिंशद् गुणाः प्रोक्ताः परतस्तूत्तमोत्तमाः ॥ इति ।

मन्तव्यः—गणनासे यदि गुणकी अल्पता हो लेकिन यदि निन्दित गण, भकूट, नाड़ी इत्यादिका परिहार होता हो तो ऐसी अवस्थामें विवाह करना चाहिये।

यदि वर-कन्याके जन्मनक्षत्र ज्ञात नहीं हो तो उनके पुकारके नामसे ही गणना विचारनी चाहिये। एकका जन्म नक्षत्र ज्ञात हो, दूसरे का नहीं ज्ञात हो, तो भी दोनोंके पुकार नामसे ही गिनना चाहिये। जैसे श्री वसिष्ठजीने कहा है—

"अज्ञातजन्मनां नृणां नामभे परिकल्पना।
तेनैव चिन्तयेत् सर्वं राशिकूटादि जन्मवत् ॥
जन्मभं जन्मधिष्ण्येन नामधिष्ण्येन नामभम्।
व्यत्ययेन यदा योऽयं दम्पत्योर्निधनप्रदम्" ॥ इति ॥

पूर्वोक्त वर-कन्या (राम-सीता) के उदाहरणमें गुणोंका योग = (वर्ण १ + वश्य ½ + तारा ३ + योनि १ + ग्रहमैत्री ५ + गण ६ + भकूट ० + नाडी ८) = गुण २४½ हुए। गणनासे गुण २४½ हैं, नाडी शुद्ध है और दोनोंकी ग्रहमैत्री है; इसलिये इनका विवाह उत्तम बनता है ॥ ३६ ॥

सुगमता से गुणयोग जानने का कोष्ठक—

वर के नक्षत्र—

[illegible]	चि. २	चि. २	स्वा.	वि.३	वि.१	अनु.	ज्ये.	मू.	पू.षा. ॥	पू.षा. ३॥	उ. १
९	१३	२२॥	२६॥	२२॥	१९॥	२६॥	१५	१३	२६	२७	२४॥
१९	६	१४॥	२९॥	२२॥	१९॥	१७॥	१९॥	२०	१९	२०	२७
५॥	१८॥	२७॥	१५॥	१९॥	१६॥	२०॥	२६॥	२४॥	१८	१९	१४
१	२३॥	२२॥	१०॥	१४॥	२१॥	२५॥	३१॥	२०	१२॥	१३॥	९॥
६	२०	१९	१५॥	९॥	१६॥	३०॥	२४॥	१४	१९	२०	२२॥
७	१३	१०	२५	१७॥	२३॥	२२॥	२५॥	१५	१२	११	१८
४	२१	१४	२७	१९॥	१४	११	१३	२३	१९	१८	२४
३॥	२७	२०	२७	२०	१३॥	१७	४	१६	२८	२७	२७
४॥	२५॥	१८॥	२७	२१	१३॥	२०॥	५	१३	२७	२६	२७
८	२०॥	२०	२७	२०	१९	२६	१०॥	८	२१	२०॥	२१॥
७	१२	११॥	२६	२१	२०	१९	२२	१७	११	११॥	२२॥
०	२६	२५॥	११॥	१६॥	१५॥	२०	२६	२२॥	१६	१६॥	८॥
६॥	२२॥	२५॥	११॥	१७॥	२४॥	२६॥	२४	२४	२०	२१	११॥
२॥	८॥	११॥	२५॥	१९॥	२६॥	२४॥	२४॥	१९	१९	१९	२७
६॥	१४॥	१७॥	२६॥	१७॥	२४॥	२३॥	१९॥	१९॥	२६	२७	२८
३॥	२४॥	१६॥	२५॥	१६॥	१८	२७	१३	१५॥	२९॥	२८॥	२९॥
८	२७	१९	२६॥	१७॥	१९॥	२६	१२	१४	२७	२६	२७॥
७	२८	२०	१९	२६॥	२८	११	२५	२८	१४	१३	२१
०	[illegible]	[illegible]	२७	३४॥	२४॥	७॥	२१॥	२८	[illegible]	[illegible]	[illegible]

(२) वर्णगुण

वर का

कन्या का	विप्र	क्षत्रिय	वैश्य	शूद्र
विप्र	१	०	०	०
क्षत्रिय	१	१	०	०
वैश्य	१	१	१	०
शूद्र	१	१	१	१

(३) वश्यगुण

वर का

कन्या का / वैश्य	च.	द्वि.	जल.	कौ.
च.	२	१	१	२
द्वि.	१	२	१	०
ज.	१	॥	२	२
की.	१.	०	१	२

(४) तारा गुण

वर का

कन्या का

तारा.	१	२	३	४	५	६	७	८	९
१	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३	३
२	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३	३
३	१॥	१॥	०	१॥	०	१।	०	१॥	१॥
४	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३	३
५	१॥	१॥	०	१॥	०	१॥	०	१॥	१॥
६	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३	३
७	१॥	१॥	०	१॥	०	१॥	०	१॥	१॥
८	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३	३
९	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३	३

(५) योनिगुण

वर का

कन्या का

योनि	अश्व	गज	छाग	सर्प	श्वान	मार्जार	मूषक	गो	महिष	व्याघ्र	मृग	वानर	नकुल	सिंह
अश्व	४	२	३	२	२	२	२	३	१	१	३	२	२	१
गज	२	४	३	२	२	२	२	२	३	२	२	३	२	०
छाग	३	३	४	३	२	३	२	३	३	१	३	०	३	१
सर्प	२	२	३	४	२	२	१	१	२	२	२	२	[illegible]	[illegible]
श्वान	३	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	१	१	२	[illegible]	१	०	२	२	१
मार्जार	२	२	३	२	१	४	०	२	२	१	२	२	२	२
मूषक	२	२	२	१	१	०	४	२	२	२	२	२	२	१
गो	३	२	३	१	२	२	२	४	३	०	३	२	३	१
महिष	१	३	३	२	२	२	२	३	४	१	२	२	२	३
व्याघ्र	१	२	१	२	१	१	२	०	१	४	१	१	२	२
मृग	३	२	३	२	०	२	२	३	२	१	४	२	२	२
वानर	२	३	०	२	२	२	२	२	२	१	२	४	२	३
नकुल	२	२	३	०	२	२	२	२	३	२	२	२	४	२
सिंह	१	०	१	२	१	२	१	१	३	२	२	३	२	४

(१) वर-कन्या के मेलापक विचारने के लिये होड़ाचक्र—

नक्षत्रों के चरणाक्षर	चू. चे. चो. ला.	ली. लू. ले. लो.	अ. ई. उ. ए.	ओ. वा. वी. वू.	वे. वो. का. की.	कु. घ. ङ. छ.	के. को. हा. ही.	हू. हे. हो. डा	डी. डू. डे. डो.
नक्षत्र	अश्विनी	भरणी	कृत्तिका	रोहिणी	मृगशिरा	आर्द्रा	पुनर्वसु	पुष्य	श्लेषा
वर्ण	क्षत्रिय	क्षत्रिय	क्षत्रि १ वैश्य ३	वैश्य	वैश्य २ शूद्र २	शूद्र	शूद्र ३ विप्र १	विप्र	विप्र
वश्य	चतुष्पद	चतुष्पद	चतुष्पद	चतुष्पद	चतु० २ नर २	नर	नर ३ जलचर १	जलचर	जलचर
योनि	अश्व	गज	छाग	सर्प	सर्प	श्वा.	मार्जार	छाग	मार्जार
योनिवैर	महिष	सिंह	वानर	नकुल	नकुल	हरिण	मूषक	वानर	मूषक
राशीश	मंगल	मंगल	मंगल १ शुक्र ३	शुक्र	शुक्र २ बुध २	बुध	बुध ३ चन्द्र १	चन्द्र	चन्द्र
गण	देव	नर	राक्षस	नर	देव	नर	देव	देव	राक्षस
राशि	मेष	मेष	मेष १ वृष ३	वृष	वृष २ मिथुन २	मिथुन	मिथुन ३ कर्क १	कर्क	कर्क
नाड़ी	आदि	मध्य	अन्त्य	अन्त्य	मध्य	आदि	आदि	मध्य	अन्त्य

नक्षत्रों के चरणाक्षर	मा. मी. मू. मे.	मो. टा. टी. टू.	टे. टो. पा. पी.	पू. ष. ण. ठ.	पे. पो. रा. री.	रू. रे. रो. ता.	ती. तू. ते. तो.	ना. नी. नू. ने.	नो. या. यी. यू.
नक्षत्र	मघा	पूर्वा फ.	उत्तरा फ.	हस्त	चित्रा	स्वाती	विशा.	अनुरा.	ज्येष्ठा
वर्ण	क्षत्री	क्षत्री	क्षत्री १ वैश्य ३	वैश्य	वैश्य २ शूद्र २	शूद्र	शूद्र ३ विप्र १	विप्र	विप्र
वश्य	चतुष्प.	चतुष्प.	चतु. १ नर ३	नर	नर	नर	नर ३ कीट १	कीट	कीट
योनि	मूषक	मूषक	गौ	महिष	व्याघ्र	महिष	व्याघ्र	हरिण	हरिण
योनिवैर	मार्जार	मार्जार	व्याघ्र	अश्व	गौ	अश्व	गौ	श्वा.	श्वा.
राशीश	सूर्य	सूर्य	सूर्य १ बुध ३	बुध	बुध २ शुक्र २	शुक्र	शुक्र ३ मंगल १	मंगल	मंगल
गण	राक्षस	नर	नर	देव	राक्षस	देव	राक्षस	देव	राक्षस
राशि	सिंह	सिंह	सिंह १ कन्या ३	कन्या	कन्या २ तुला २	तुला	तुला ३ वृ. १	वृश्चिक	वृश्चिक
नाड़ी	अन्त्य	मध्य	आदि	आदि	मध्य	अन्त्य	अन्त्य	मध्य	आदि

नक्षत्रों के चरणाक्षर	ये. यो. भा. भी	भू. ध. फ. ढ.	भे. भो. ज. जी.	खी. खू. खे. खो.	गा. गी. गू. गे.	गो. सा. सी. सू.	से. सो. दा. दी.	दू. थ. झ. ञ.	दे. दो. चा. ची.
नक्षत्र	मूल	पूर्वाषा	उ. षा.	श्रवणा	धनिष्ठा	शत.	पू. भा.	उ. भा.	रेवती
वर्ण	क्षत्री	क्षत्री	क्षत्री १ वैश्य ३	वैश्य	वैश्य २ शूद्र २	शूद्र	शूद्र ३ विप्र १	विप्र	विप्र
वश्य	नर	नर ½ चतु ३½	चतु.	चतु १½ जल २½	जल २ नर २	नर	नर ३ जल १	जलचर	जलचर
योनि	श्वा.	वानर	नकुल	वानर	सिंह	अश्व	सिंह	गौ	गज
योनिवैर	हरिण	छाग	सर्प	छाग	गज	महिष	गज	व्याघ्र	सिंह
राशीश	गुरु	गुरु	गुरु १ शनि ३	शनि	शनि २	शनि	शनि ३ गुरु १	गुरु	गुरु
गण	राक्षस	नर	नर	देव	राक्षस	राक्षस	नर	नर	देव
राशि	धनुः	धनुः	धनुः १ मकर ३	मकर	मकर २ कुम्भ २	कुम्भ	कुं. ३ मीन १	मीन	मीन
नाड़ी	आदि	मध्य	अन्त्य	अन्त्य	मध्य	आदि	आदि	मध्य	अन्त्य

नोट—इस होड़ाचक्र से वर-कन्या के पुकार नाम से भी नक्षत्र आदि का ज्ञान करके आगे के गुणबोधकचक्र से गुणैक्य निकाले जाते हैं। जैसे—वर राम का नक्षत्र चित्रा का उत्तरार्ध और कन्या सीता का नक्षत्र शतभिषा है। वर के चित्रा उत्तरार्ध के और कन्या के शतभिषा-नक्षत्र के सामने कोष्ठ में गुणयोग २४॥ निकला। जो पहले उदाहरण में भी निकाला गया है।

(२) वर्णगुण

वर का

कन्या का

	विप्र	क्षत्रिय.	वैश्य	शूद्र
विप्र	१	०	०	०
क्षत्रिय	१	१	०	०
वैश्य	१	१	१	०
शूद्र	१	१	१	१

(३) वश्यगुण

वर का

कन्या का

वैश्य	च.	द्वि.	जल.	कौ.
च.	२	१	१	२
द्वि.	१	२	१	०
ज.	१	॥	२	२
की.	१.	०	१	२

(४) तारा गुण

वर का

कन्या का

तारा.	१	२	३	४	५	६	७	८	९
१	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३	३
२	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३	३
३	१॥	१॥	०	१॥	०	१।	०	१॥	१॥
४	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३	३
५	१॥	१॥	०	१॥	०	१॥	०	१॥	१॥
६	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३	३
७	१॥	१॥	०	१॥	०	१॥	०	१॥	१॥
८	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३	३
९	३	३	१॥	३	१॥	३	१॥	३	३

(५) योनिगुण

वर का

कन्या का

योनि	अश्व	गज	छाग	सर्प	श्वान	मार्जार	मूषक	गो	महिष	व्याघ्र	मृग	वानर	नकुल	सिंह
अश्व	४	२	३	२	२	२	२	३	१	१	३	२	२	१
गज	२	४	३	२	२	२	२	२	३	२	२	३	२	०
छाग	३	३	४	३	२	३	२	३	३	१	३	०	३	१
सर्प	२	२	३	४	२	२	१	१	२	२	२	२	[illegible]	[illegible]
श्वान	३	[illegible]	[illegible]	[illegible]	४	१	१	२	[illegible]	[illegible]	०	२	२	१
मार्जार	२	२	३	२	१	४	०	२	२	१	२	२	२	२
मूषक	२	२	२	१	१	०	४	२	२	२	२	२	२	१
गो	३	२	३	१	२	२	२	४	३	०	३	२	३	१
महिष	१	३	३	२	२	२	२	३	४	१	२	२	२	३
व्याघ्र	१	२	१	२	१	१	२	०	१	४	१	१	२	२
मृग	३	२	३	२	०	२	२	३	२	१	४	२	२	२
वानर	२	३	०	२	२	२	२	२	२	१	२	४	२	३
नकुल	२	२	३	०	२	२	२	२	३	२	२	२	४	३
सिंह	१	०	१	२	१	२	१	१	३	२	२	३	२	४

(६) ग्रहमैत्रीगुण

वर का

कन्या का

ग्रह	सू.	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.
सू.	५	५	५	४	५	०	०
चं.	५	५	४	१	४	॥	॥
म.	५	४	५	॥	५	५	४
बु.	४	१	॥	५	॥	५	४
बृ.	५	४	५	॥	५	॥	३
शु.	०	॥	६	५	॥	५	५
श.	०	॥	॥	४	३	५	५

(७) गणमैत्रीगुण

वर का

कन्या का

गण	देव	मनु.	राक्षस
देव	६	५	१
मनु.	६	६	०
राक्षस	०	०	६

(८) भकूटगुण

वर का

कन्या का

राशि	मे.	वृ.	मि.	क.	सि.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कु.	मी.
मे.	७	०	७	७	०	७	७	०	०	७	७	०
वृ.	०	७	०	७	७	०	०	७	०	०	७	७
मि.	७	०	७	०	७	७	०	०	७	०	०	७
क.	७	७	०	७	०	७	७	०	०	७	०	०
सि.	०	७	७	०	७	०	७	७	०	०	७	०
क.	०	०	७	७	०	७	०	७	७	०	०	७
तु.	७	०	०	७	७	०	७	०	७	७	०	०
वृ.	०	७	०	०	७	७	०	७	०	७	७	०
ध.	०	०	७	०	०	७	७	०	७	०	७	७
म.	७	०	०	७	७	०	७	७	०	७	०	७
कु.	७	७	०	०	७	०	०	७	७	०	७	०
मी.	०	७	७	०	०	७	०	०	७	७	०	७

(९) नाड़ीगुण

वर का

कन्या का

नाड़ी	आदि	मध्य	अन्त्य
आदि	०	८	८
मध्य	८	०	८
अन्त्य	८	८	०

(१०) वर-कन्या की गणना में सुगमता से गुणयोग जानने का कोष्ठक—

वर के नक्षत्र—

कन्या के नक्षत्र—

नक्षत्र	अ.	भ.	कृ. १	कृ. ३	रो.	मृ. २	मृ. २	आ.	पुन. ३	पु. १	पुष्य.	श्ले.	म.	पू.	उ. १	उ. ३	ह	चि. २	चि. २	स्वा.	वि. ३	वि. १	अनु.	ज्ये.	मू.	पू. षा. ॥	पू. षा. ३॥	उ. १	उ. ३	श्र. १॥	श्र. २॥	ध. २	ध. २	श.	पू. ३	पू. १	उ.	रे.
अ.	२८	३३	२८॥	१८॥	२१॥	२२॥	२६	१७	१८	२२॥	३५॥	२७	२२	२६	१७॥	११	९	१३	२२॥	२६॥	२२॥	१९॥	२६॥	१५	१३	२६	२७	२४॥	२६	२६	२४	२१	२१	१५	१६	१४॥	२४॥	२६
भ.	३४	२८	२९	१९	२२॥	१३॥	१७	२६	२६	३०॥	२३॥	२४॥	२१	१९	२८	२१॥	१९	६	१४॥	२९॥	२२॥	१९॥	१७॥	१९॥	२०	१९	२०	२७	२८॥	२८	२६	१०	१०	२०	२४	२२॥	१६॥	२८
कृ. १	२७॥	२७॥	२८	१६॥	९	१५॥	१९	२०	२१	२५॥	२६॥	२३॥	१७॥	२१	२२	१५॥	१५॥	१८॥	२७॥	१५॥	१९॥	१६॥	२०॥	२६॥	२४॥	१८	१९	१४	१५॥	११॥	१०॥	२५	२५	२७	१९॥	१७॥	१९॥	११॥
कृ. ३	१८॥	१८॥	१९	२८	१९	२५॥	१६॥	१७॥	१८॥	२२	२३	२०	१९॥	२३	२४	२१	२१	२३॥	२२॥	१०॥	१४॥	२१॥	२५॥	३१॥	२०	१२॥	१३॥	९॥	१४	११	१०	२३॥	२९॥	३१	२३॥	२०	२२	१४
रो.	२३॥	२३॥	१०	१९	२८	३६	२७	२३॥	२३॥	२७	२६	१३	१२॥	२६॥	२८	२५	२६	२०	१९	१५॥	९॥	१६॥	३०॥	२४॥	१४	१९	२०	२२॥	१७	१९	१८	२०	२६	२४॥	३०॥	२७	२६	१९
मृ. २	२२॥	१३॥	१८॥	२८	३४	२६	२०	२५	२३॥	२६	२७	२२	२१॥	१७॥	२५॥	२३॥	२७	१३	१०	२५	१७॥	२३॥	२२॥	२५॥	१५	१२	११	१८	२१	२४॥	२४॥	१३	१९	२७	२९॥	२६॥	१७	२७
मृ. २	२७	१८	२१	१८॥	२५॥	२०	२८	३३	३१॥	१९॥	१०॥	१५॥	२४	२०॥	२८॥	३०॥	३४	२१	१४	२७	१९॥	१४	११	१३	२३	१९	१८	२४	२०॥	२५	२५	१२	१३	२१	२३॥	२७॥	१७	२७
आ.	१९	२७	२१	१८॥	२४॥	२६	३४	२८	२५	१३	२०॥	१३॥	२३॥	२९॥	२२॥	२४॥	२३॥	२७	२०	२७	२०	१३॥	१७	४	१६	२८	२७	२७	२२॥	२२॥	२२॥	१७	१८	११	१६	१९	२७	२७
पुन. ३	१९	२६	२२	१९॥	२३॥	२४॥	३२॥	२४	२८	१६	२३	१६॥	२२॥	२७॥	२१॥	२३॥	२३॥	२५॥	१८॥	२७	२१	१३॥	२०॥	५	१३	२७	२६	२७	२७॥	२२॥	२३॥	१७॥	१८॥	११	१७	१९॥	२७॥	२८
पुन. १	२१॥	२८	२३॥	२०	२४	२५	१९	१०॥	१४॥	२८	३५	२८॥	१५॥	२०	१४॥	१७	१८	२०॥	२०	२७	२०	१९	२६	१०॥	८	२१	२०॥	२१॥	२८॥	२५	२७	२१	१२॥	७	११	१७	२५	२५॥
पुष्य:	३०॥	२१॥	२६॥	२३	२४	१७	१०	१८	२१॥	३५	२८	३०	१८॥	१४॥	२३॥	२६	२७	१२	११॥	२६	२१	२०	१९	२२	१७	११	११॥	२२॥	२६	२४	२५	१३	४॥	१४॥	१८	२४	१८	२७
श्ले.	२५	२३॥	२२॥	१९	१२	२१	१३	१२	१५	२८॥	२८॥	२८	१५	१५॥	१७॥	२०॥	२७	२६	२५॥	११॥	१६॥	१५॥	२०	२६	२२॥	१६	१६॥	८॥	१२	१३	१३	२७	१८॥	१८॥	१२॥	१८॥	२०	१२
म.	२१	२१	१७॥	१८॥	११॥	१९॥	२२॥	२३॥	२१॥	१६॥	१८॥	१६	२८	३०	२६॥	१६॥	१६॥	२२॥	२५॥	११॥	१७॥	२४॥	२६॥	२४	२४	२०	२१	११॥	५॥	५॥	४॥	१८॥	२४॥	२५॥	१८॥	१७॥	१८॥	१२
पू. फा.	२७	१९	२१	२२	२५॥	१७॥	२०॥	२८॥	२७॥	२२॥	१६॥	१६॥	३०	२८	३४	२४	२२॥	८॥	११॥	२५॥	१९॥	२६॥	२४॥	२४॥	१९	१९	१९	२७	२१	१९॥	१८॥	४॥	११॥	१५॥	२४॥	२३॥	१६॥	२४॥
उ. फा. १	१८॥	२७	२२	२३	२७	२५॥	२८॥	२१॥	२१॥	१६॥	२५॥	१८॥	२६॥	३४	२८	१८	१६॥	१४॥	१७॥	२६॥	१७॥	२४॥	२३॥	१९॥	१९॥	२६	२७	२८	२२	२१	२०	११॥	१८॥	१२॥	१६॥	१५॥	२६॥	२४॥
उ. फा. ३	१३	२१॥	१६॥	२१	२५	२३॥	३०॥	२३॥	२३॥	१९॥	२८॥	२१॥	१७॥	२५	१९	२८	२५॥	२४॥	१६॥	२५॥	१६॥	१८	२७	१३	१५॥	२९॥	२८॥	२९॥	२६	२५	२५	१६॥	१६॥	१०॥	१४॥	१८	२९	२७
ह.	१०	२०	१६॥	२१	२६	२६	३३	२३॥	२३॥	१९॥	२८॥	२१॥	१७॥	२२॥	१७	२६	२८	२७	१९	२६॥	१७॥	१९॥	२६	१२	१४	२७	२६	२७॥	१३	२४	२४	१९	१९	६॥	१४॥	१९	२७	[illegible]
चि. २	१३	६	१९	२५॥	२०	१२	१९	२६	२४॥	२०॥	१२॥	२६॥	२३॥	९॥	१५॥	२४॥	२७	२८	२०	१९	२६॥	२८	११	२५	२६	१४	१३	२१	१७॥	१९	१९	१८	१८	२४	१८॥	२२	११	[illegible]
चि. २	२२॥	१५॥	२८॥	२३॥	२०	१२	१३	२२	१८॥	२०	१२	२६	२५॥	१०	१७॥	१७॥	२०	[illegible]	[illegible]	२७	३४॥	२४॥	७॥	२१॥	२८	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	२७	२६	२०	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	२१
स्वा.	२७॥	२९॥	१७॥	१२॥	१६॥	२७	२७	२६	२६॥	२८	२८	१५॥	१३॥	२५॥	२५॥	२५॥	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	१०	२२॥	१८॥	२५	२७	२६	१८	[illegible]	[illegible]	२३॥	[illegible]	[illegible]	२०	१५	११॥	२०	[illegible]
वि. ३	२२॥	२२॥	२०॥	१५॥	१०॥	१४॥	१९॥	२१	२१	२२॥	२१॥	१९	१७॥	१९॥	१८॥	१७॥	१८॥	२७॥	३४॥	१८	२८	१८	१७	२१॥	२८	२२	२१	१३	१७॥	[illegible]	१७॥	३२॥	२६॥	२६	२२	१६॥	१३॥	५
वि. १	१६॥	१६॥	१४॥	१९॥	१४॥	२३॥	१३	१४॥	१४॥	१९	१८	१५॥	२१॥	२३॥	२१॥	१८	१९	२८	२३॥	८	१६	२८	२७	३१॥	२३॥	१७॥	१७॥	९॥	१२	[illegible]	१२	२७	२७	२६॥	२२॥	२१	१८	९॥
अनु.	२४॥	१४॥	१९॥	२४॥	२७॥	२०॥	११	१६	२१॥	२६॥	१८	२१	२४॥	२०॥	२९॥	२६	२७	१२	७॥	२२॥	१७	२८	२८	३१	१६॥	१४॥	१४॥	२२	२५	[illegible]	२६	१२	१२	२२	२४॥	२४	१८	२७
ज्ये.	१२	१८॥	२४॥	२९॥	२२॥	२३॥	१३	३	६	१०॥	२०	२६	३१	२६॥	१६॥	१३	१२	२५॥	२०॥	२०॥	२०॥	३१॥	३०	२८	१५	१७॥	१७॥	१७॥	२०	२१	२०	२५	२५	१९	११	९॥	२१	२१
मू.	१२	२०	२४॥	१९	१३	१४	२१	१५	१२	८॥	१७॥	२४	२५	१९	९॥	१३	१३	२७	२७	२१	२७	२४॥	१६॥	१६	२८	२८	२७	२५॥	१५॥	[illegible]	१०॥	३१॥	२५	२१॥	११	१७॥	२५॥	२७
पू. षा. ॥	२६	१९	१८	१२॥	१९	११	१९	२७	२७	२३॥	१३॥	१७॥	२१	१९	२७	२८॥	२७	१२	१२	२७	२०	१६॥	१८॥	१८॥	२८	२८	२७	३३	२३	२३॥	२३॥	८॥	१६॥	२३॥	३१॥	३२॥	२३॥	३२॥
पू. षा. ३॥	२७	२०	१९	१३॥	२०	१२	१८	२६	२६	२३॥	१३॥	१७॥	२१	१९	२७	२७	२६	११	११	२६	१९	१८॥	१८॥	१९॥	२७	२७	२८	३४	२४	२४	२३॥	८॥	१५॥	२२॥	२९॥	३२॥	२३॥	३२॥
उ. षा. १	२५॥	२७	१४	८॥	११॥	१८	२४	२६	२६	२३॥	२४॥	९॥	११॥	२७	२८	२८॥	२७॥	२०	२०	१९	१२	११॥	२५॥	१९॥	२५॥	३३	३४	२८	१८	१६	१५	१५	२२॥	२२॥	२८॥	३१॥	३२॥	२३॥
उ. षा. ३	२८	२९॥	१६॥	१४	१७	२२॥	२०॥	२२॥	२२॥	२७	२८॥	१३	६॥	२२	२३	२६	२५	१७॥	२४॥	२३॥	१६॥	१४	२८	२२	१६॥	२६	२५	१९	१८	२६	२५	२५॥	१७॥	१७॥	२३॥	३०॥	३२॥	२३॥
श्र. १॥	२८	२७	१४॥	१२	१८	२४॥	२४	२१॥	२१॥	२७	२५	१५	१७॥	१९॥	२०	२४	२५	१९	२६	२३॥	१६॥	१४	२८	२३	१७॥	२३॥	२४॥	१७	२५	२८	२७	३०	२२	१८॥	२३॥	३१॥	३०॥	२२॥
श्र. २॥	२७	२६	१३॥	१०	१७	२६	२३॥	२१	२३॥	२८	२६	१५	६॥	१८॥	२०॥	२३॥	२३॥	१८॥	२५॥	२३	१६	१४	२८	२३	१६	२५	२५॥	१५	२४	२७	२८	३०	२०॥	१८	२३	३२॥	३१॥	२४॥
ध. २	२०॥	१०॥	२६	२३॥	१७	१२	८॥	१७॥	१७॥	२२	१३	२८	१८॥	४॥	१२॥	१६	२२	१६॥	२३॥	२६	३०	२८	१४	२८	२१	९	९॥	१६॥	२५॥	२८	२१	२८	१८॥	२३॥	२१	२६॥	१५॥	२२॥
ध. २	२०	११	२६	३०॥	२०॥	२७	१०	१९	१९	१४	५	२०	२५॥	११॥	१९॥	१७॥	२१	१८	१९	२२	२५॥	१६॥	१२	२६	२९॥	१७॥	१६॥	१३॥	१८॥	२१	२१	२०	२८	२२	२८॥	१८॥	७॥	१४॥
श.	१५	२१	२८	३२॥	२७॥	२५	१८	१०	१०	७॥	१५	२०	२६॥	२०॥	१३॥	११॥	८॥	२६	२४॥	१९	२६	२६॥	२१	१९॥	२२॥	२४॥	२३॥	२३॥	१८॥	१८॥	१८॥	२५	३३	२८	१९	९	१७॥	१६॥
पू. ३	१८	२५	२०	२४॥	२५॥	३१॥	२४॥	१७	१७	१३॥	२०॥	१४	१९॥	२५॥	१७॥	१५॥	१७॥	१८॥	१९॥	२८	२१	२१॥	२७॥	१२	१५॥	३१॥	३०॥	२९॥	२४॥	२५॥	२५॥	२०॥	२७॥	१९	२८	१८	२३	२०॥
पू. १	१४॥	२१॥	१६॥	१९	२६	२६	२५॥	१८	१८	१८	२५	१८॥	१६॥	२२॥	१४॥	१६॥	१८॥	१९॥	१२॥	२१	१४	२१	२७	११॥	१५	३१	३१॥	३०॥	२८॥	२९॥	३०॥	२५॥	१७	७॥	१६॥	२८	३३	३०॥
उ.	२४॥	१७॥	१८॥	२१	२५	१७	१६॥	२५॥	२७	२६	१९	२०	१७॥	१५॥	२५॥	२७॥	२६	९॥	१०॥	१९॥	१२	१९	२०	२२	२४	२२	२२॥	३१॥	२९॥	२८॥	२९॥	१४॥	६	१६॥	२१॥	३३	२८	२९
रे	२५	२४॥	११॥	१४	१७	२६	२५॥	२४	२५॥	२४॥	२७	१३	१२	२२	२२	२४॥	२६॥	२०॥	१३॥	११	५॥	१२॥	२७	२२	२७	३०॥	३०	२१	१९	२०	२२॥	२२॥	१४	१६	१८	२९॥	३३	२८

प्राचीन मतसे वर्ग विचार—

अकचटतपयशवर्गाः खगेशमार्जारसिंहशुनाम् ।
सर्पाऽऽखुमृगादीनां निजपञ्चमवैरिणामष्टौ ॥ ३७ ॥

अन्वयः—खगेश-मार्जार-सिंह-शुनाम्, सर्पाखु-मृगादीनाम्, निजपञ्चमवैरिणाम् 'क्रमात्' अष्टौ अ-क-च-ट-त-प-य-श-वर्गाः 'भवन्ति' ॥ ३७ ॥

भावार्थः—अ वर्ग-(अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ ओ औ) का गरुड़, कवर्ग-(क ख ग घ ङ) का मार्जार (बिलाव), चवर्ग-(च छ ज झ ञ) का सिंह, टवर्ग-(ट ठ ड ढ ण) का श्वान (कुत्ता), तवर्ग-(त थ द ध न) का सर्प, पवर्ग-(प फ ब भ म) का मूष, यवर्ग-(य र ल व) का मृग और शवर्ग-(श ष स ह) का भेंड़ा वर्गाधीश (स्वामी) होता है। जिनमें अपने २ से पाँचवाँ २ शत्रु होता है।

जैसे—गरुड़ और सर्पमें, मार्जार-मूषमें, सिंह-मृगमें श्वान-भेंड़में परस्पर वैर होता है।

तात्पर्य यह है कि गरुड़-सर्प इत्यादि परस्पर वैर वाले वर्गके कन्या-वरमें विवाह नहीं होना चाहिये। वर-कन्या दोनोंका एक ही वर्ग हो या वर्गाधीशोंकी मैत्री (शत्रुता नहीं) हो तो विवाह करना चाहिये। यह विचार मैत्री और नौकरीमें मालिक-नौकरके वर्गोंसे भी करना चाहिये ॥ ३७ ॥

नक्षत्रोंकी पूर्व-मध्य-परभाग-संज्ञावश स्त्रीपुरुषके समागममें मेलापक—

पौष्णेशशाक्राद्रससूर्यनन्दाः पूर्वार्ध-मध्याऽपरभागयुग्मम् ।
भर्ता प्रियः प्राग्युजिभे स्त्रियाः, स्यान्मध्ये द्वयोः प्रेम, परे प्रिया स्त्री ॥

अन्वयः—पौष्णेशशाक्राद् रस-सूर्य-नन्दाः 'क्रमात्' पूर्वार्ध-मध्यापरभागयुग्मं 'स्यात्'। प्राग्युजिभे स्त्रियाः भर्ता प्रियः स्यात्। मध्ये द्वयोः प्रेम स्यात्। परे 'भर्तुः' स्त्री प्रिया 'स्यात्' ॥ ३८ ॥

भावार्थः—रेवतीसे ६ नक्षत्र (रे. अ. भ. कृ. रो. मृ.) प्रथम भाग, आर्द्रासे १२ नक्षत्र (आ. पुन. पुष्य. श्ले. म. पूफ. उफ. ह. चि. स्वा. वि.

अनु.) मध्य भाग और ज्येष्ठासे ९ नक्षत्र (ज्ये. मू. पूषा. उषा. श्र. ध. श. पूभा. उभा.) पर भाग कहलाते हैं।

प्रथम भागके नक्षत्रमें वर-कन्या (अथवा जिस किसी स्त्री पुरुष) के समागम होनेमें स्त्रीको स्वामी प्रिय होता है। मध्य भागवाले नक्षत्रोंमें समागम होनेसे स्त्री-पुरुष दोनोंमें परस्पर प्रीति होती है और पर भागवाले नक्षत्रमें पुरुषको स्त्री प्यारी होती है ॥ ३८ ॥

वि०—विवाहमें भी यदि वर-कन्या दोनोंके नक्षत्र मध्यम भागमें पड़ें तो अत्युत्तम समझना चाहिये ॥ ३८ ॥

इति मेलापकविचारः।

इस तरह वर-कन्याका मेलापक विचार करके आगे विवाहका मुहूर्त्त कहेंगे। जिसमें कितने गुण-दोषोंका उद्घाटन होगा। आगे (४२ वें श्लोकमें) यह कहा जायगा कि लग्नमें शुभ ग्रहोंके वर्ग शुभ और पापग्रहोंके वर्ग अशुभ होते हैं। गृह, होरा, द्रेष्काण, नवांश, द्वादशांश और त्रिंशांश ये ६ वर्ग कहे जायेंगे। जिनमें प्रथम राशि और नवांशका विचार यहाँ कहा जाता है—

राशिपति और नवांशविचार—

कुजशुक्रसौम्यशशिसूर्यचन्द्रजाः कविभौमजीवशनिसौरयो गुरुः।
इह राशिपाः क्रियमृगास्यतौलिकेन्दुभतो नवांशविधिरुच्यते बुधैः ॥

अन्वयः—इह कुज-शुक्र-सौम्य-शशि-सूर्य-चन्द्रजाः, कवि-भौम-जीव-शनि-सौरयः-गुरुः 'एते' क्रमेण राशिपाः 'भवन्ति'। तथा, बुधैः क्रिय-मृगास्य-तौलिकेन्दु-भतः नवांशविधिः उच्यते ॥ ३९ ॥

भाषार्थः—मेषका मङ्गल, वृषका शुक्र, मिथुनका बुध, कर्कका चन्द्रमा, सिंहका सूर्य, कन्याका बुध, तुलाका शुक्र, वृश्चिकका मङ्गल, धनुका बृहस्पति, मकर और कुम्भका शनि और मीनका बृहस्पति ये सब राशिपति हैं।

मेष, मकर, तुला और कर्क राशिसे पण्डितोंने नवांशकी रीति कही है। अर्थात् मेष-सिंह-धनु राशियोंमें मेषसे आरम्भ होकर धनु तकके ९ नवांश होते हैं। वृष-कन्या-मकर राशियोंमें मकरसे कन्या तकके ९ नवांश, मिथुन-तुला-कुम्भ राशियोंमें तुलासे मिथुन तकके ९ नवांश और कर्क-वृश्चिक-मीन राशियोंमें कर्कसे मीन तकके ९ नवांश होते हैं। स्पष्टताके लिये चक्र देखिये ॥ ३९ ॥

वि०—सूर्य और चन्द्रमा एक २ राशिके स्वामी हैं । शेष ग्रह (मं. बु. बृ. शु. श.) दो २ राशिके स्वामी हैं । इसकी उपपत्ति यह है कि जातक ग्रन्थोंमें सूर्य-चन्द्रमा महाराजा, मङ्गल सेनापति, बुध राजकुमार, गुरु-शुक्र मन्त्री और शनि दूत बताये गये हैं । जैसे—

राजानौ रविशीतगू क्षितिसुतो नेता कुमारो बुधः
सूरिर्दानवपूजितश्च सचिवौ प्रेष्यः सहस्रांशुजः । इति ॥

वराहमिहिरने कहा है । राजा सूर्य अपने स्वभावके अनुरूप सिंह पर बैठे और राजा चन्द्रमा भी जलमय होनेके कारण जलचर राशि कर्कपर आसन जमाये । उसके बाद दोनों राजा अपनी २ ओरसे राजकुमार बुधको एक २ राशि (सूर्य कन्या और चन्द्रमा मिथुन) दिये । उसके बाद शुक्र मन्त्रीको तुला-वृष मिले उसके बाद सेनापति मङ्गलको दोनों वृश्चिक और मेष दिये । उसके बाद गुरुको धनु-मीन दिये और दूत शनिको मकर-कुम्भ मिले । इस तरह और ग्रह दोनों राजाओंसे दो २ राशि पाकर द्विराशिपति बनगये, सूर्य-चन्द्र एक राशिपति ही रह गये । चक्र देखकर प्रतीति कीजिये ।

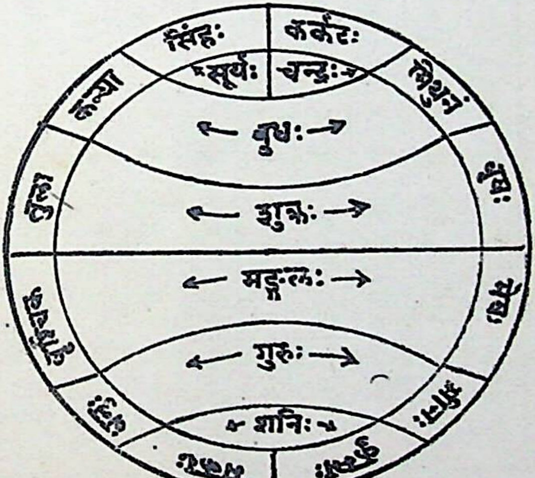

नवांश—एक राशिके नववें भागको कहते हैं, इसलिये प्रत्येक राशिमें ९ नवांश होते हैं । एक २ नवांशका मान=३०° ÷ ९ =) ३° । २०′ (तीन अंश वीश कला) होता है । इसे भी नवांश चक्रमें देखिये ॥ ३९ ॥

नवांश जानने का चक्र—

नवांशखण्ड	मेष.	वृष	मिथु.	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चि.	धनुः	मकर	कुम्भ	मीन
प्र. ३°।२०'	१ मं.	१० श.	७ शु.	४ चं.	१ मं.	१० श.	७ शु.	४ चं.	१ मं.	१० श.	७ शु.	४ चं.
द्वि. ६°।४०'	२ शु.	११ श.	८ मं.	५ सू.	२ शु.	११ श.	८ मं.	५ सू.	२ शु.	११ श.	८ मं.	५ सू.
तृ. १०°।०	३ बु.	१२ बृ.	९ बृ.	६ बु.	३ बु.	१२ बृ.	९ बृ.	६ बु.	३ बु.	१२ बृ.	९ बृ.	६ बु.
च. १३°।२०'	४ चं.	१ मं.	१० श.	७ शु.	४ चं.	१ मं.	१० श.	७ शु.	४ चं.	१ मं.	१० श.	७ शु.
पं. १६°।४०'	५ सू.	२ शु.	११ श.	८ मं.	५ सू.	२ शु.	११ श.	८ मं.	५ सू.	२ शु.	११ श.	८ मं.
ष. २०°।०	६ बु.	३ बु.	१२ बृ.	९ बृ.	६ बु.	३ बु.	१२ बृ.	९ बृ.	६ बु.	३ बु.	१२ बृ.	९ बृ.
स. २३°।२०'	७ शु.	४ चं.	१ मं.	१० श.	७ शु.	४ चं	१ मं.	१० श.	७ शु.	४ चं.	१ मं.	१० श.
अ. २६°।४०'	८ मं.	५ सू.	२ शु.	११ श.	८ मं.	५ सू.	२ शु.	११ श.	८ मं.	५ सू.	२ शु.	११ श.
न. ३०°।०	९ बृ.	६ बु.	३ बु.	१२ बृ.	९ बृ.	६ बु.	३ बु.	१२ बृ.	९ बृ.	६ बु.	३ बु.	१२ बृ.

उदाहरण—

जैसे सूर्य राश्यादि १०।९°।५'।२०" का नवांश विचारना है तो यहाँ सूर्य कुम्भ राशिके ९ वें अंशपर होनेसे तृतीय नवांश खण्डमें है। कुम्भ राशिमें तुला आदिके नवांश होते हैं, इसलिये तुलासे तीसरा धनुके नवांशमें सूर्य पड़े। इसी तरह सर्वत्र जानना चाहिये ॥ ३९ ॥

होराविचार—

समगृहमध्ये शशिरविहोरा । विषमभमध्ये रविशशिनोः सा ॥४०॥

अन्वयः—'समगृहमध्ये क्रमेण' शशि-रविहोरा 'भवति'। विषमभमध्ये सा (होरा) 'क्रमेण रवि-शशिनोः 'भवति' ॥ ४० ॥

भावार्थः—सम (वृष-कर्क-कन्या-वृश्चिक-मकर-मीन) राशियोंमें पहले चन्द्रमाकी होरा उसके बाद सूर्यकी होरा होती है और विषम (मेष-मिथुन-सिंह-तुला-धनु-कुम्भ) राशियोंमें पहले सूर्यकी, बादमें चन्द्रमाकी होरा होती है ॥४०॥

वि०—यहाँ राशिके आधेको होरा कहते हैं, इस लिये प्रत्येक राशिमें पन्द्रह अंशकी दो २ होरायें होती हैं। जातक ग्रन्थोंमें होराके सम्बन्धमें और भी मतान्तर हैं, परन्तु यहाँ होरा केवल सूर्य चन्द्रमाकी ही मानी गई है ॥ ४० ॥

होरा जाननेका चक्र—

राशि-	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	कं.	तु.	वृश्चि.	ध.	म.	कु.	मी.
१—१५ तक	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.
१६—३० तक	चं.	सू.	चं.	सू.	चं	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.	चं.	सू.

त्रिंशांश और द्रेष्काणका विचार—

शुक्र-ज्ञ जीव-शनि-भूतनयस्य बाण-
शैलाष्टपञ्चविशिखाः समराशिमध्ये ।
त्रिंशांशको विषमभे विपरीतमस्माद्
द्रेष्काणकाः प्रथमपञ्चनवाधिपानाम् ॥ ४१ ॥

अन्वयः—समराशिमध्ये बाण-शैलाष्ट-पञ्च-विशिखाः 'अंशाः, क्रमेण' शुक्र-ज्ञ-जीव-शनि-भूतनयस्य त्रिंशांशकः 'भवति'। विषमभे अस्माद् विपरीतं भवति। तथा, प्रथम-पञ्च-नवाधिपानां द्रेष्काणका भवन्ति ॥ ४१ ॥

भावार्थः—सम (२।४।६।८।१०।१२) राशियोंमें प्रथम ५ अंश शुक्रके, उसके बाद ७ अंश बुधके, ८ अंश गुरुके, ५ अंश शनिके और ५ अंश मङ्गलके त्रिंशांश होते हैं। विषम (१।३।५।७।९।११) राशियोंमें विपरीत होता है अर्थात् प्रथम ५ अंश मङ्गलके, उसके बाद ५ अंश शनिके, ८ अंश गुरुके, ७ अंश बुधके और ५ अंश शुक्रके त्रिंशांश होते है।

प्रत्येक राशिमें प्रथम राशि, पाँचवीं राशि और नववीं राशिके पति प्रथम-द्वितीय-तृतीय-द्रेष्काणके पति होते हैं। अर्थात् किसी भी राशिमें प्रथम १० अंशों का पति उसी राशिका पति होता है। ११ से २० अंश तकका पति उस राशिसे पञ्चमेश ग्रह होता है और २१ से ३० अंश तकका पति उस राशिका नवमेश ग्रह होता है। स्पष्टताके लिये चक्र देखें ॥ ४१ ॥

द्रेष्काण चक्र—

राशि-	मे.	वृ.	मि.	क.	सि.	कं.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी.
प्र.द्रे.१०° तक	१मं	२शु.	३ बु.	४ चं.	५सू	६ बु.	७शु.	८ मं.	९बृ	१० श.	११ श.	१२ बृ.
द्वि.द्रे.२०° तक	५सू	६ बु.	७शु.	८ मं.	९बृ	१० श.	११ श.	१२ बृ.	१मं	२ शु.	३ बु.	४ चं.
तृ.द्रे.३०° तक	९बृ	१० श.	११ श.	१२ बृ.	१मं	२शु.	३ बु.	४ चं.	५सू	६ बु.	७शु.	८ मं.

उदाहरण—सूर्य १०।९°।५'।२०" कुम्भमें ९ अंशपर होनेसे प्रथम द्रेष्काणमें पड़े जिसका पति शनि हुआ ॥ ४१ ॥

त्रिंशांश चक्र—

राशि-	मे.	वृ.	मि.	क.	सि.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी.
प्र.त्रिं.	मं ५	शु५	मं ५	शु५	मं ५	शु५	मं ५	शु५	मं ५	शु५	मं ५	शु५
द्वि.त्रिं.	श ५	बु.७	श५	बु.७	श ५	बु.७	श५	बु.७	श ५	बु.७	श ५	बु.७
तृ.त्रिं.	बृ ८	बृ ८	बृ ८	बृ ८	बृ ८	बृ ८	बृ ८	बृ ८	बृ ८	बृ ८	बृ ८	बृ ८
च.त्रिं.	बु.७	श ५	बु.७	श ५	बु.७	श५	बु.७	श५	बु.७	श ५	बु.७	श ५
पं.त्रिं.	शु५	मं ५	शु५	मं ५	शु५	मं ५	शु५	मं ५	शु५	मं ५	शु५	मं ५

उदाहरण—सूर्य १०।९°।५'।२०" कुम्भ (विषम) राशिके ९° पर होनेसे दूसरे त्रिंशांश में पड़े अतः त्रिंशांश-पति शनि हुआ ॥ ४१ ॥

द्वादशांश विचार और षड्वर्गका फल—

> स्याद् द्वादशांश इह राशित एव गेहं
> होराऽथ दृक्कनवमांशकसूर्यभागाः ।
> त्रिंशांशकश्च षडिमे कथितास्तु वर्गाः
> सौम्यैः शुभं भवति चाऽशुभमेव पापैः ॥ ४२ ॥

अन्वयः—इह राशितः एव द्वादशांशः स्यात् । अथ, गेहं, होरा, दृक्-नवमांशक-सूर्यभागाः, त्रिंशांशकश्च इमे तु षड्वर्गाः कथिताः । तेषु, सौम्यैः वर्गैः शुभं, पापैश्च वर्गैः अशुभं 'फलं' भवति ॥ ४२ ॥

भाषार्थः—किसी भी राशिमें उसी राशिसे आरम्भ करके १२ द्वादशांश होते हैं । प्रत्येक खण्ड २॥ अंश होता है । इस तरह लग्न, होरा, द्रेष्काण, नवांश, द्वादशांश और त्रिंशांश ये छै वर्ग कहे गये हैं । शुभ ग्रहोंके वर्ग शुभ और पाप ग्रहोंके वर्ग अशुभ फल करते हैं ॥ ४२ ॥

वि०—विवाहादि शुभकार्योंके लग्नमें जहाँ तक शुभ ग्रहोंके अधिक वर्ग अपेक्षित हैं ।

द्वादशांशचक्र—

राशि	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं.	क.	तु.	वृ.	ध.	म.	कुं.	मी.
अंश २°।३०′	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
५°।०	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१
७°।३०′	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२
१०°।०	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३
१२°।३०′	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४
१५।°०	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५
१७°।३०′	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६
२०°।०	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७
२२°।३०′	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८
२५°।०	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९
२७°।३०′	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
३०°।०	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११

उदाहरण—सूर्य १०।९°।५′।२० कुम्भ राशिके ९ वें अंशपर होनेसे चौथे द्वादशांशमें पड़े । कुम्भसे चौथा वृषका द्वादशांश हुआ, जिसका पति शुक्र है ॥ ४२ ॥

इस तरह वर्ग विचार करके आगे विवाहमें वर्जनीय दोषोंका विवरण होगा । कितने दोषोंका उद्घाटन तो प्रथम (शुभाशुभ) प्रकरणमें ही हो गया है, और भी इस (विवाह) प्रकरणके अन्तमें आचार्य स्वयं कहेंगे ।

त्रिविध गण्डान्त-दोष—

ज्येष्ठापौष्णभसार्पभान्त्यघटिकायुग्मं च मूलाश्विनी-
पित्र्यादौ घटिकाद्वयं निगदितं तद्भस्य गण्डान्तकम् ।

कर्काल्यण्डजभान्ततोऽर्धघटिका सिंहाश्वमेषादिगा
पूर्णान्ते घटिकात्मकं त्वशुभदं नन्दातिथेश्चादिमम् ॥४३॥

अन्वयः—ज्येष्ठा-पौष्णभ-सार्पभान्त्यघटिकायुग्मं च (तथा) मूलाश्विनीपित्र्यादौ घटिकाद्वयं तत् भस्य गण्डान्तकं निगदितम्। कर्काल्यण्डजभान्ततः अर्धघटिका, सिंहाश्वमेषादिगा च 'अर्धघटिका, तल्लग्नगण्डान्तकं निगदितम्'। तथा, पूर्णान्ते घटिकात्मकं नन्दातिथेश्च आदिमं 'घटिकात्मकं' तिथिगण्डान्तकं निगदितं, 'एतत्त्रयन्तु' अशुभदं निगदितम् ॥ ४३ ॥

भाषार्थः—ज्येष्ठा-रेवती-आश्लेषाके अन्तकी दो घड़ी और मूल-अश्विनी-मघाके आदिकी दो घड़ी यह 'नक्षत्र गण्डान्त' कहलाता है।

कर्क-वृश्चिक-मीन लग्नोंके अन्तकी आधी घड़ी (३० पल) और सिंह-धनु-मेष-लग्नोंके आदिकी आधी घड़ी यह 'लग्नगण्डान्त' कहलाता है।

पूर्णा (५।१०।१५) तिथिके अन्तकी १ घड़ी और नन्दा (१।६।११) तिथिके आदिकी १ घड़ी यह 'तिथिगण्डान्त' कहलाता है। ये तीनों गण्डान्त अशुभ होते हैं। अर्थात् शुभकार्योंमें इन गण्डान्तोंको त्यागना चाहिये। गण्डान्तमें बच्चोंका जन्म होना भी अशुभ है। देखिये नक्षत्र प्रकरणका ५७ वाँ श्लोक ॥ ४३ ॥

वि०—गण्डान्तका दूसरा नाम है सन्धि। वस्तुतः २७ नक्षत्रोंमें जिन २ नक्षत्रों पर राशि पूर्णरूपसे बट जाती है वे ही ३ सन्धियाँ नक्षत्रगण्डान्त हैं। जैसे—आश्लेषा नक्षत्रके अन्तमें कर्क राशिका अन्त और मघामें सिंहका प्रवेश होता है। ज्येष्ठाके अन्तमें वृश्चिक राशिका अन्त और मूलमें धनुका प्रवेश, एवं रेवतीके अन्तमें मीनका अन्त और अश्विनीमें मेषका प्रवेश होता है। इसलिये कर्क-सिंहकी सन्धि १, वृश्चिक-धनुकी सन्धि २ और मीन-मेषकी सन्धि ३, ये तीन नक्षत्र गण्डान्त कहे गये हैं। लग्नगण्डान्तमें भी यही युक्ति समझिये। क्योंकि जिन राशियोंकी सन्धि नक्षत्रगण्डान्न है उन्हीं लग्नोंकी सन्धि लग्नगण्डान्त है।

इसी तरह जिन २ तिथियों पर सूर्य-चन्द्रमाका अन्तर[1] पूर्ण राशि होता है, उन तिथियों में ही तिथिगण्डान्त होता है। जैसे पञ्चमीके अन्तमें सूर्य-चन्द्रका अन्तर पूर्ण २ राशि, दशमीके अन्तमें पूर्ण ४ राशि और पूर्णमासीके अन्तमें पूर्ण ६ राशि होता है इसलिये पञ्चमी-षष्ठीकी सन्धि १, दशमी-एकादशीकी सन्धि २, पूर्णिमा-पड़िवाकी सन्धि ३, ये तीन तिथि-गण्डान्त कहे गये हैं।

गण्डान्तमें जन्म होने पर उसकी शान्ति[2] अवश्य करनी चाहिये, अथवा कमसे-कम ६ मास तक उस बच्चेको उसका पिता नहीं देखे। जैसे लिखा है—

---

१. प्रत्येक तिथिके अन्तमें सूर्य-चन्द्रका अन्तर १२ अंश होता है।

२. गण्डान्तकी शान्ति पीयूषधारा और प्रमिताक्षरा टीकामें देखिये।

सर्वेषां गण्डजातानां परित्यागो विधीयते ।
वर्जयेद्दर्शनं तावद्यावत् षाण्मासिको भवेत् ॥

विवाहादिमें गण्डान्तोंका परिहार यों है—यदि चन्द्रमा बली हो तो तिथि गण्डान्त नहीं लगता, गुरु बली हो तो लग्नगण्डान्त नहीं लगता, तथा 'अभिजित्' नामके मुहूर्त्तमें[1] किसी भी गण्डान्तका दोष नहीं लगता । जैसे वसिष्ठने कहा है—

गण्डान्तदोषमखिलं मुहूर्त्तोऽभिजिदाह्वयः ।
हन्ति यद्वन्मृगव्याधः पक्षिसङ्घमिवाखिलम् ॥ इति ॥ ४३ ॥

कर्त्तरी दोष—

लग्नात्पापावृज्वनृजू व्ययार्थस्थौ यदा तदा ।
कर्त्तरी नाम सा ज्ञेया मृत्युदारिद्र्यशोकदा ॥ ४४ ॥

अन्वयः—ऋज्वनृजू 'द्वौ' पापौ यदा लग्नात् व्ययार्थस्थौ 'स्यातां' तदा सा कर्त्तरी नाम ज्ञेया । 'कर्त्तरी' मृत्यु-दारिद्र्य-शोकदा 'भवति' ॥ ४४ ॥

भाषार्थः—लग्नसे १२ वें स्थानमें मार्गी पापग्रह और २ रे स्थानमें वक्री पापग्रह हों तो उसे कर्त्तरी योग कहते हैं । यह कर्त्तरी योग शुभकार्यमें मरण दरिद्रता और अनेक शोकोंको देता है ।

तात्पर्य यह है कि लग्नके आगे-पीछे क्रमसे वक्री और मार्गी पापग्रह हों तो उस लग्नमें कोई शुभकार्य नहीं करना चाहिये ॥ ४४ ॥

वि०—कर्त्तरी कैंचीको कहते हैं । जैसे कैंचीके दोनों धारोंके बीच कपड़ा कागज़ आदि वस्तु पड़नेपर कट जाती है, उसी तरह दूसरे और बारहवें भावगत दो पापोंके बीच लग्नरूपी शरीरका नाश होता है । इसलिये आचार्योंने उसे कर्त्तरी दोष कहा है ।

यदि दूसरेमें मार्गी और बारहवेंमें वक्री पापग्रह हों तो दोनोंका संयोग नहीं होगा, अतः वहाँ यह दोष लागू नहीं होगा ।

इसकी उपपत्ति यह है—कि दूसरे स्थानका वक्री ग्रह पीछे लौट कर लग्नपर पहुँचेगा और बारहवें स्थानका मार्गी ग्रह आगे चलकर लग्न पर पहुँचेगा; दोनोंका योग लग्नपर होने से लग्नको नष्ट करता है ॥ ४४ ॥

ग्रहयोगसे चन्द्रमाका फल—

चन्द्रे सूर्यादिसंयुक्ते दारिद्र्यं मरणं शुभम् ।
सौख्यं सापत्न्यवैराग्ये पापद्वययुते मृतिः ॥ ४५ ॥

अन्वयः—चन्द्रे सूर्यादिसंयुक्ते 'सति, क्रमेण' दारिद्र्यं, मरणं, शुभं, सौख्यं, सापत्न्यवैराग्ये-'इति' फलं ज्ञेयम् । अथ, पापद्वययुते 'चन्द्रे सति' मृतिः भवति ॥४५॥

---

१. मुहूर्त्तोंका विवरण आगे ५२-५३ वें श्लोकमें होगा ।

भाषार्थः—विवाहके समयमें यदि चन्द्रमा सूर्यके साथ हो तो दरिद्रता, मङ्गलके साथ हो तो मरण, बुधके साथ हो तो शुभ, गुरुके साथ हो तो सौख्य, शुक्रके साथ हो तो सपत्नी (सौत) और शनिके साथ हो तो वैराग्य ऐसा फल देता है। यदि चन्द्रमा दो पाप ग्रहोंके साथ हो तो मरण कराता है ॥ ४५ ॥

वि०—किसी भी पापग्रहके साथ चन्द्रमाका फल अशुभ ही कहा गया है। शुभग्रहोंमें बुध-गुरुके साथ शुभ फल और शुक्रके साथ सपत्नी (शत्रुता) कही गयी है।

यदि चन्द्रमा अपनी राशि (४) या उच्च (२) या मित्रगृही (५।३।६) में अर्थात् २।३।४।५।६। इन पाँच राशियोंमें हो तो युति दोष नहीं लगता। जैसे श्रीनारदजीने कहा है-

स्वक्षेत्रगः स्वोच्चगो वा मित्रक्षेत्रगतो विधुः।
युतिदोषाय न भवेद्दम्पत्योः श्रेयसे तदा ॥ इति ॥ ४५ ॥

अष्टम लग्नका दोष और उसका परिहार—

जन्मलग्नभयोर्मृत्युराशौ नेष्टः करग्रहः।
एकाधिपत्ये राशीशमैत्र्ये वा नैव दोषकृत् ॥ ४६ ॥

अन्वयः—जन्मलग्नभयोः मृत्युराशौ 'लग्नगते सति' करग्रहः इष्टः न स्यात्। अथ तयोः जन्मलग्न-भ-मृत्युराश्योः एकाधिपत्ये, वा राशीशमैत्र्ये 'सति' दोषकृत् नैव स्यात् ॥ ४६ ॥

भाषार्थः—जन्मलग्न या जन्मराशिसे ८ वें लग्नमें विवाह शुभ नहीं होता। लेकिन यदि जन्मलग्न या जन्मराशिका पति और विवाह लग्नका पति एक ही ग्रह हो अथवा दोनों राशिपतियोंमें मित्रता हो तो वहाँ ८ वें लग्नका भी दोष नहीं लगता ॥ ४६ ॥

जैसे जन्मलग्न या जन्मराशि मेष हो और विवाह लग्न वृश्चिक हो तो यहाँ एकाधिपत्य होनेसे दोष नहीं लगेगा। एवं जन्मलग्न या जन्मराशि सिंह और विवाहलग्न मीन हो तो यहाँ राशीशोंकी मैत्री होनेसे दोष नहीं लगेगा ॥ ४६ ॥

नोटः—यह विचार वर-कन्या दोनोंकी जन्मराशि जन्मलग्नसे करना चाहिये ॥ ४६ ॥

अष्टम लग्न दोषका परिहार—

मीनोक्षकर्कालिमृगस्त्रियोऽष्टमं लग्नं यदा नाष्टमगेहदोषकृत्।
अन्योन्यमित्रत्ववशेन सा वधूर्भवेत्सुतायुर्गृहसौख्यभागिनी ॥४७॥

अन्वयः—मीनोक्षकर्कालिमृगस्त्रियः एते राशयः यदा 'वरकन्ययोः जन्मलग्नभयोः' अष्टमं लग्नं 'स्युस्तदा तत्' अष्टमगेहदोषकृत् न 'भवेत्'। यतः तथा सति अन्योन्य-मित्रत्ववशेन सा वधूः सुतायुर्गृहसौख्यभागिनी भवेत् ॥ ४७ ॥

भाषार्थः—वर-कन्याकी जन्मराशि या जन्मलग्नसे ८ वाँ लग्न यदि मीन, वृष, कर्क, वृश्चिक, मकर या कन्या राशिका हो तो अष्टम राशि सम्बन्धी दोष नहीं लगता। क्योंकि ऐसी अवस्थामें विवाह लग्नेश और जन्मराशीश या जन्मलग्नेशकी परस्पर मैत्री होनेसे वह स्त्री पुत्र-आयु-गृह-सौख्योंको भोगने वाली होती है ॥ ४७ ॥

वि०—सिंहका आठवाँ मीन, यहाँ सूर्य-गुरुकी परस्पर मैत्री।
तुलाका „ वृष „ दोनोंका एकाधिपत्य।
धनुका „ कर्क „ गुरु-चन्द्रकी मैत्री।
मेषका „ वृश्चिक „ एकाधिपत्य।
मिथुनका „ मकर „ बुध-शनिमें मैत्री।
और—कुम्भका „ कन्या „ „ „ होनेके कारण उक्त ६ राशियोंमें दोष नहीं लगता है।

दूसरा परिहार यह है कि यदि अष्टमेश केन्द्र (१।४।७।१०) में हो उसे शुभग्रह देखता हो अथवा अष्टमेश अपने या शुभग्रहके नवांशमें हो, उच्चमें हो, अपनी राशिमें हो, या मित्रकी राशिमें हो तो अष्टम लग्नका दोष नहीं लगता। यों ही गुरुने कहा है—

लग्नादष्टमराशीशः केन्द्रगः शुभवीक्षितः।
यद्यष्टमगतस्योक्तं दोषमाशु व्यपोहति ॥
रन्ध्रेशः स्व-शुभांशस्थस्तुङ्गस्वक्षेत्रमित्रगः।
अष्टमस्थानदोषो हि विनश्यति न संशयः ॥ इति ॥ ४७ ॥

लग्नमें जन्मकालीन अष्टम और द्वादश भावसम्बन्धी दोष—

मृतिभवनांशो यदि च विलग्ने तदधिपतिर्वा न शुभकरः स्यात्।
व्ययभवनं वा भवति तदंशस्तदधिपतिर्वा कलहकरः स्यात् ॥४८॥

अन्वयः—यदि 'वर-कन्ययोः, जन्मकालीनः' मृतिभवनांशः, वा तदधिपतिः 'विवाहस्य' विलग्ने 'भवेत् तदा' शुभकरः न स्यात्। तथा, व्ययभवनं, वा तदंशः, वा तदधिपतिः यदि विलग्ने 'भवेत् तदा' कलहकरः स्यात् ॥ ४८ ॥

भाषार्थः—वर-कन्याके जन्मकालीन आठवें भावका नवांश या अष्टमेश ग्रह यदि विवाह लग्नमें पड़े तो शुभ नहीं होता है। एवं जन्मकालीन १२ वाँ भाव, या उसका नवांश, या व्ययेश ग्रह यदि विवाहके लग्नमें पड़े तो वर-कन्या दोनोंमें कलह (झगड़ा) होता है ॥ ४८ ॥

वि०—इस श्लोकका तात्पर्य यह है कि विवाह लग्नमें वर-कन्याके जन्मकालिक लग्न

और राशिसे ८ वें और १२ वें भाव सम्बन्धी राशि, नवांश, राशिपति इनका सर्वथा त्याग करना चाहिये ॥ ४८ ॥

शुभकार्योंमें वर्ज्य; नक्षत्रोंकी विषघटी—

खरामतो ३० ऽन्त्यादितिवह्निपित्र्यभे
खवेदतः ४० के रदत ३२ श्च सार्पभे ।
खबाणतो ५० ऽश्वे धृतितो १८ ऽर्यमाम्बुपे
कृते–२० र्भगत्वाष्ट्रभविश्वजीवभे ॥ ४९ ॥
मनो–१४ र्द्विदैवानिलसौम्यशाक्रभे
कुपक्षतः २१ शैवकरेऽष्टि १६ तोऽजभे ।
युगाश्वितो २४ बुध्न्यभतोययाम्यभे
खचन्द्रतो १० मित्रभवासवश्रुतौ ॥ ५० ॥
मूलेऽङ्गबाणा–५६ द्विषनाडिकाः कृता
वर्ज्याः शुभेऽथो विषनाडिका ध्रुवाः ।
निघ्ना भभोगेन खतर्क–६० भाजिताः
स्पष्टा भवेयुर्विषनाडिकास्तथा ॥ ५१ ॥

अन्वयः—अन्त्यादितिवह्निपित्र्यभे खरामतः, के खवेदतः, सार्पभे च रदतः, अश्वे खबाणतः, अर्यमाम्बुपे धृतितः, भगत्वाष्ट्रभविश्वजीवभे कृतेः, द्विदैवानिलसौम्यशाक्रभे मनोः, शैवकरे कुपक्षतः, अजभे अष्टितः, बुध्न्यभतोययाम्यभे युगाश्वितः, मित्रभवासवश्रुतौ खचन्द्रतः, मूले अङ्गबाणात् कृताः (चतस्रः) नाड्यः विषनाडिका 'भवन्ति'। ताः विषनाडिकाः, शुभे (शुभकार्ये) वर्ज्याः। अथो, विषनाडिका ध्रुवाः भभोगेन निघ्नाः, तथा खतर्कभाजिताः 'तदा' स्पष्टाः विषनाडिका भवेयुः ॥ ४९–५१ ॥

भाषार्थः—रेवती-पुनर्वसु-कृत्तिका मघा नक्षत्रोंमें ३० दण्डके बाद, रोहिणीमें ४० दण्डके बाद, आश्लेषामें ३२ के बाद, अश्विनीमें ५० दण्डके बाद, उत्तरा फल्गुनी और शतभिषामें १८ दण्डके बाद, पूर्वा फल्गुनी, चित्रा, उत्तराषाढ़ और पुष्य नक्षत्रोंमें २० के बाद, विशाखा, स्वाती, मृगशिरा और ज्येष्ठा नक्षत्रोंमें १४ दण्डके बाद, आर्द्रा और हस्तमें २१ दण्डके बाद, पूर्वभाद्रमें

१६ दण्डके बाद, उत्तरभाद्र-पूर्वाषाढ़-भरणीमें २४ दण्डके बाद, अनुराधा-घनिष्ठा-श्रवणामें १० दण्डके बाद और मूलमें ५६ दण्डके बाद ४, ४ दण्ड मध्यम मानसे विषघटी होती है। ये विष घड़ियाँ शुभकार्योंमें वर्जनीय हैं।

इन विषनाड़ी ध्रुवाओं (४ दण्ड) को नक्षत्रके भभोग मानसे गुणकर ६० से भाग देने पर जो लब्धि हो वह स्पष्ट विषनाड़ी होती है ॥ ४९-५१ ॥

उदाहरण—

जैसे किसी नक्षत्रका भभोगमान ६४ दण्ड है तो ४ को ६४ से गुणकर २५६ इसमें ६० का भाग देनेसे २५६ ÷ ६० = ४।१६ लब्धि चार दण्ड सोलह पला स्पष्ट विषघटी हुई। ऐसे ही सर्वत्र समझिये ॥ ४९-५१ ॥

उपपत्ति—

नक्षत्रोंका मान मध्यम रूपसे ६० घटी मानकर उस परसे विषनाड़ी ध्रुवा मध्यमा ४ घटी मानी गयी है। परन्तु नक्षत्रोंका मान (भभोग) साठ घटीसे न्यूनाधिक होती रहती है। इसलिये यदि ६० दण्डमें ४ घटी तो स्पष्ट भभोगमें क्या ? इस अनुपातसे फल स्पष्ट विष-घटी होती है $\frac{४ \times \text{भभोग}}{६०}$ = स्प·वि·घ·। अतः उपपन्न हो गया ॥ ४९-५१ ॥

वि०—विवाह-व्रत-चूडासु गृहारम्भप्रवेशयोः।
यात्रादिशुभकार्येषु विघ्नदा विषनाडिकाः ॥

इस प्रमाणसे शुभकार्योंमें विषनाड़ीका त्याग अवश्य करना चाहिये।

नक्षत्रोंकी विषघटीकी तरह तिथियों और वारोंमें भी विषघड़ियाँ बतायीं गई हैं। जैसे दैवज्ञमनोहरमें—

तिथिविषघटी—

तिथीषुनागाद्रिगिरीषुवारिधिर्गजाद्रिदिक्पावकदिग्विभास्कराः।
मुनीभसङ्ख्याः प्रथमातिथेः क्रमात् परं विषं स्याद् घटिकाचतुष्टयम् ॥

वारविषघटी—

नखा द्वयं द्वादश दिक् च शैला बाणाश्च तत्त्वानि यथाक्रमेण।
सूर्यादिवारेषु परं चतस्रो नाड्यो विषं स्याद् खलु वर्जनीयम् ॥

सुगमतासे तिथिवार-नक्षत्रोंकी विषघटी जाननेके लिये कोष्ठक दिये जाते हैं। तिथि-वार-नक्षत्रोंके नीचे जो अङ्क लिखे हैं उनके बादकी चार घड़ी विषघटी समझिये।

१. नक्षत्रविषघटी—

नक्षत्रमें	अ.	भ.	कृ.	रो.	मृ.	आ	पुन	पुष्य	श्ले	म.	पू. फ.	उ.फ.	ह.	चि.
दण्डके बाद	५०	२४	३०	४०	२४	२१	३०	२०	३२	३०	२०	१८	२१	२०

नक्षत्रमें	स्वा.	वि.	अनु.	ज्ये	मू.	पूषा.	उषा.	श्र.	ध.	श.	पू.	उ.	रे.
दण्डके बाद	१४	१४	१०	१४	५६	२४	२०	१०	१०	१८	१६	२४	३०

२. तिथि-विषघटी—

तिथियोंमें	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५
दण्डके बाद	१५	५	८	७	७	५	४	८	७	१०	३	१०	१३	७	८

३. वार-विषघटी—

वारोंमें	र.	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.
दण्डके बाद	२०	२	१२	१०	७	५	२५

विषघटी दोषका परिहार—

यदि चन्द्रमा लग्नसे ४।७।५।९।१० भावमें हो अथवा लग्नेश १।४।७।१० स्थानमें हो और शुभग्रहोंसे देखा जाता हो तो विषनाड़ीका दोष नहीं लगता।

अथवा-चन्द्रमा या लग्नेश शुभ राशिमें या अपने षड्वर्गमें होकर मित्र ग्रहसे दृष्ट हो तो विषनाड़ीका दोष नहीं लगता। जैसे—गुरुने कहा है—

चन्द्रो विषघटीदोषं हन्ति केन्द्रत्रिकोणगः।
लग्नं विना शुभैर्दृष्टः केन्द्रे वा लग्नपस्तथा॥
विषनाड्युत्थितं दोषं हन्ति सौम्यर्क्षगः शशी।
मित्रदृष्टोऽथवा स्वीयवर्गस्थो लग्नपोऽपि वा॥ इति ॥ ४९-५१ ॥

शुभाशुभ प्रकरणके ५६ वें श्लोकमें कहा गया है कि "धिष्ण्ये प्रोक्तं स्वामितिथ्यंशकेऽस्य" अर्थात् नक्षत्रमें कहा गया कार्य उसके मुहूर्तमें करना चाहिये, इसलिये यहाँ दिनमें १५ मुहूर्त्त और रातमें १५ मुहूर्त कहे जाते हैं—

दिनके १५ मुहूर्तोंके नाम—

गिरिशभुजगमित्राः पित्र्यवस्वम्बुविश्वे-
ऽभिजिदथ च विधाताऽपीन्द्र इन्द्रानलौ च ।
निर्ऋतिरुदकनाथोऽप्यर्यमाथो भगः स्युः
क्रमश इह मुहूर्ता वासरे बाणचन्द्राः ॥ ५२ ॥

अन्वयः—गिरिशभुजगमित्राः पित्र्यवस्वम्बुविश्वे, अभिजित्, अथ च विधाता, अपि च इन्द्रः, इन्द्रानलौ, निर्ऋतिः उदकनाथः, अपि (तथा) अर्यमा, अथो भगः 'इमे' वासरे बाणचन्द्राः (पञ्चदश) मुहूर्ताः क्रमशः स्युः ॥ ५२ ॥

भाषार्थः—दिनमें १५ मुहूर्त होते हैं, जिनके नाम नक्षत्रेशोंके नाम पर हैं। जैसे—१-गिरिश (आर्द्रा), २-भुजग (आश्लेषा), ३-मित्र (अनुराधा), ४-पित्र्य (मघा), ५-वसु (धनिष्ठा), ६-अम्बु (पूर्वाषाढ़), ७-विश्वेदेव (उत्तराषाढ़), ८-अभिजित्, ९-विधाता (रोहिणी), १०-इन्द्र (ज्येष्ठा), ११-इन्द्राग्नि (विशाखा), १२-निर्ऋति (मूल), १३-उदकनाथ-(शतभिषा), १४-अर्यमा (उत्तराफल्गुनी) और १५-भग (पूर्वा फल्गुनी) ॥ ५२ ॥

वि०—दिनके प्रत्येक मुहूर्तोंका प्रमाण दिनमानके १५ वें भागके समान होता है ॥५२॥

रातके १५ मुहूर्तोंके नाम—

शिवोऽजपादादष्टौ स्युर्भेशा अदितिजीवकौ ।
विष्णवर्कत्वाष्ट्रमरुतो मुहूर्ता निशि कीर्तिताः ॥ ५३ ॥

अन्वयः—शिवः, अजपादात् अष्टौ भेशाः (नक्षत्रपतयः) अदिति-जीवकौ, विष्णवर्कत्वाष्ट्रमरुतः 'इमे पञ्चदश' निशि (रात्रौ) क्रमशः मुहूर्ताः कीर्तिताः ॥ ५३ ॥

भाषार्थः—रातमें १५ मुहूर्त कहे गये हैं। जिनके नाम नक्षत्रेशोंके नामपर ये हैं—१-शिव (आर्द्रा), अजपातसे ८ नक्षत्रेश अर्थात् २-अजपात् (पूर्व-भाद्र), ३-अहिर्बुध्न्य (उत्तर भाद्र), ४-पूषा (रेवती), ५-अश्विनी कुमार (अश्विनी), ६-यम (भरणी), ७-अग्नि (कृत्तिका), ८-ब्रह्मा (रोहिणी), ९-चन्द्र (मृगशिरा), १०-अदिति (पुनर्वसु), ११-जीव (पुष्य), १२-विष्णु (श्रवण), १३-अर्क (हस्त), १४-त्वाष्ट्र (चित्रा) और १५-मरुत् (स्वाती) ॥ ५३ ॥

वि०—रात्रिमानके १५ वें भागके समान रातके प्रत्येक मुहूर्तोंका प्रमाण समझिये।

जिस नक्षत्रमें जो कार्य करना हो वह कार्य उस नक्षत्र पतिके मुहूर्तमें भी कर सकते हैं। जैसे किसीको अनुराधाका कार्य करना हैं, लेकिन इष्ट दिनमें भरणी नक्षत्र है, तो उस दिन जब अनुराधा (मित्र) का मुहूर्त हो उस समय अपने कार्यको करे ॥ ५३ ॥

दिनके भेदसे त्याज्य मुहूर्त—

रवावर्यमा ब्रह्मरक्षश्च सोमे कुजे वह्निपित्र्ये बुधे चाभिजित्स्यात् ।
गुरौ तोयरक्षो भृगौ ब्रह्मपित्र्ये शनावीशसार्पौ मुहूर्ता निषिद्धाः ॥

अन्वयः—रवौ-अर्यमा, सोमे-ब्रह्मरक्षः, कुजे वह्निपित्र्ये, बुधे च—अभिजित्, गुरौ-तोयरक्षः, भृगौ-ब्रह्मपित्र्ये, शनौ-ईशसार्पौ 'इमे' मुहूर्ता निषिद्धाः 'सन्ति' ॥ ५४ ॥

भाषार्थः—रविवारमें अर्यमा (उत्तरा फल्गुनी) नामका मुहूर्त, सोमवारमें ब्रह्म और राक्षस (रोहिणी-मूल), मङ्गलवारमें वह्नि और पित्र्य, (कृत्तिका-मघा) बुधवारमें अभिजित्, गुरुवारमें तोय और रक्ष (पूर्वाषाढ़-मूल), शुक्रवारमें ब्रह्म और पित्र्य (रोहिणी-मघा) और शनिवारमें ईश और सार्प (आर्द्रा-आश्लेषा)-ये मुहूर्त निषिद्ध हैं। अर्थात् उक्त दिनोंमें उक्त मुहूर्तोंको त्यागना चाहिये। स्पष्टता के लिये चक्र देखिये ॥ ५४ ॥

त्याज्य मुहूर्त्तका चक्र—

वार-	रवि	सोम	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
त्याज्य मुहूर्त संख्या दिनमें	१४	९।१२	४	८	६।१२	४।९	११२
त्याज्य मुहूर्त संख्या रातमें	०	८	७	०	०	८	१

नोटः—शुभाशुभ प्रकरणके ३८-३९ श्लोकोंमें इन मुहूर्त्तोंको त्याज्य कहा जा चुका है ॥५४॥

विवाहमें विहित नक्षत्र और अभिजित्का मान—

निर्वेधैः शशिकरमूलमैत्रपित्र्य-
ब्राह्मान्त्योत्तरपवनैः शुभो विवाहः ।
रिक्ताऽमारहिततिथौ शुभेऽह्नि वैश्व-
प्रान्त्यांघ्रिः श्रुतितिथिभागतोऽभिजित्स्यात् ॥५५॥

अन्वयः—शशिकरमूलमैत्रपित्र्यब्राह्मान्त्योत्तरपवनैः 'एभिः' निर्वेधैः 'नक्षत्रैः' रिक्ताऽमारहिततिथौ, शुभे अह्नि विवाहः शुभः भवति। अथ, वैश्वप्रान्त्याङ्घ्रिश्रुति-तिथिभागतः अभिजित् 'नक्षत्रं' स्यात् ॥ ५५ ॥

भाषार्थः—पञ्चशलाका वेधसे रहित-मृगशिरा, हस्त, मूल, अनुराधा, मघा, रोहिणी, रेवती, तीनों उत्तरा और स्वाती-इन ११ नक्षत्रोंमें, रिक्ता (४।९।१४) और अमावास्याको छोड़कर अन्य तिथियोंमें और शुभवारोंमें विवाह करना शुभ है।

उत्तराषाढ़का चतुर्थ चरण और श्रवणका पहला पञ्चदशांश (१५ वाँ भाग) मिलाकर (मध्यम मानसे १९ दण्ड) अभिजित् नक्षत्र होता है। अर्थात् अभिजित् नक्षत्रका अलग स्वतन्त्र मान नहीं है, वह उत्तराषाढ़ और श्रवणके मध्य ही भुगत जाता है ॥ ५५ ॥

वि०—शुक्ल पक्षमें १, ४, ८, ९, १४ तिथियाँ और कृष्ण पक्षमें ४।८।९।६ १२।१३।१४।१५ तिथियाँ विवाहमें त्याज्य हैं। विवाहसे लेकर चतुर्थी दिन तक श्राद्ध दिन और अमावस तिथि का पड़ना शुभ नहीं है[1]। जैसे श्रीवसिष्ठजीने कहा है—

शुक्लद्वितीयादित एव कृष्णे पक्षे दशम्यन्तगताः प्रशस्ताः।
तास्वष्टमी-स्कन्द-गणेश-दुर्गाश्चतुर्दशी चापि तिथिर्विवर्ज्या ॥

एवं 'शुभेऽह्नि' इस वाक्यसे यह सिद्ध होता है कि सोम-बुध-गुरु-शुक्र-वार ही विवाहमें शुभ हैं। रवि-मङ्गल-शनिवार त्याज्य हैं। दिनके सम्बन्धमें भी प्राचीन आचार्योंका यही सिद्धान्त है कि शुभग्रहके दिन ही विवाहमें प्रशस्त हैं। जैसे लिखा है—

गुरु-शुक्र-बुधेन्दूनां दिनेषु सुभगा भवेत्।
सूर्यार्किभूमिपुत्राणां दिनेषु कुलटा भवेत् ॥

एवम्-वसिष्ठः—

वाराः प्रशस्ताः शुभखेचराणां सूर्यार्किवारौ खलु मध्यमौ तौ।
त्याज्यः सदा भूमिसुतस्य वारः कामार्कतिथ्योरपि तौ प्रदोषौ ॥

श्रीवसिष्ठजीके मतसे रवि और शनि मध्यम होने पर भी त्रयोदशीमें रविवार और द्वादशीमें शनिवार अत्यन्त दुष्ट कहा गया है। मङ्गलवारको तो सदा त्याज्य ही कहा गया है।

पूर्वोक्त विचारोंसे पापग्रहोंके दिन और रिक्ता आदि तिथियाँ विवाहमें मुनियोंके मतसे निन्दित हैं, लेकिन देखा जाता है कि आजकल बहुत लोग मङ्गलवार-शनिवार-रिक्ता तिथियों में भी विवाह कराते हैं। ऐसा करने वालोंका कथन है कि—"न वारदोषाः प्रभवन्ति रात्रौ विशेषतोऽर्कावनिभूशनीनाम्" अर्थात् वारका दोष रातमें नहीं लगता। विशेषकर रवि-मङ्गल-शनिवारका दोष रातमें रहता ही नहीं। इसलिये रवि, मङ्गल और शनिवारको रातमें विवाहमें कोई दोष नहीं है।

---

१. "विवाहमारभ्य चतुर्थिमध्ये श्राद्धं दिनं दर्शदिनं यदि स्यात्।
वैधव्यमाप्नोति तदाऽऽशु कन्या जीवेत् पतिश्चेदनपत्यता स्यात् ॥" (पीयूषधारा)

यहाँ मेरा यह मत है कि वचन व्यापक होना चाहिये। यदि वारका दोष रातमें लगता ही नहीं तो विवाहके अतिरिक्त कार्योंको (गृहारम्भ, गृहप्रवेश, वधूप्रवेश आदि) मङ्गल या रविवारकी रातमें क्यों नहीं करते, और रातमें दिक् शूल दोष क्यों मानते, केवल विवाह ही क्यों करते हैं ? तब तो प्रायः यही उत्तर मिलेगा कि 'ऐसा व्यवहार नहीं है'। वाह रे व्यवहार ?। अस्तु, आर्षमतका अवलम्बन तो अवश्य ही श्रेय है, लेकिन व्यवहारवादी भी मानेंगे नहीं। ग्रन्थकारका मत यही है कि 'रिक्तामारहिततिथौ शुभेऽह्नि' अर्थात् रिक्ता-अमावसको छोड़कर अन्य तिथियों और शुभ (चं. बु. बृ. शु.) वारोंमें ही विवाह शुभ है ॥ ५५ ॥

ऊपरके श्लोकमें विवाह के ११ नक्षत्र वेधरहित कहे गये हैं इसलिये आगे दो श्लोकोंमें वेधका विधान करेंगे।

विवाहमें पञ्चशलाका वेध

वेधोऽन्योन्यमसौ विरिञ्च्यभिजितोर्याम्यानुराधर्क्षयो-
र्विश्वेन्द्वोर्हरिपित्र्ययोर्ग्रहकृतो हस्तोत्तराभाद्रयोः ।
स्वातीवारुणयोर्भवेन्निर्ऋतिभादित्योस्तथोफान्त्ययोः
खेटे तत्र गते तुरीयचरणाद्योर्वा तृतीयद्वयोः ॥ ५६ ॥

अन्वयः—विरिञ्च्यभिजितोः याम्यानुराधर्क्षयोः, विश्वेन्द्वोः, हरिपित्र्योः, स्वातीवारुणयोः, निर्ऋतिभादित्योः, तथा उफान्त्ययोः असौ ग्रहकृतः अन्योन्यं वेधः भवति। तत्र गते खेटे 'सति' तुरीयचरणाद्योः, वा तृतीयद्वयोः 'चरणयोः' अन्योन्यं वेधः 'भवति' ॥ ५६ ॥

भाषार्थः—रोहिणी-अभिजित; भरणी-अनुराधा; उत्तराषाढ़-मृगशिरा; श्रवण-मघा; हस्त-उत्तराभाद्र; स्वाती-शतभिषा; मूल-पुनर्वसु; उत्तराफाल्गुनी-रेवती इन दो-दो नक्षत्रोंमें परस्पर ग्रहकृत वेध होता है। एवं इन दो-दो नक्षत्रोंमें ग्रहके रहनेपर चतुर्थ-प्रथम चरणोंमें और तृतीय-द्वितीय चरणोंमें परस्पर वेध होता है ॥ ५६ ॥

उदाहरण—

जैसे—कोई ग्रह रोहिणी नक्षत्रपर हो तो अभिजित् और अभिजित् पर हो तो रोहिणी नक्षत्र विद्ध होता है। इसी तरह प्रत्येकको समझिये। इसे नक्षत्र वेध कहते हैं। एवं यदि कोई ग्रह भरणीके चौथे चरणपर हो तो अनुराधाका प्रथम चरण विद्ध; तृतीय चरणपर हो तो अनुराधाका दूसरा चरण विद्ध, भरणीके २ चरणपर हो तो अनुराधाका ३ रा चरण विद्ध और भरणीके प्रथम चरणपर हो तो अनुराधाका चौथा चरण विद्ध कहलाता है। इसे चरणवेध कहते हैं। इसी तरह पूर्वोक्त प्रत्येक नक्षत्रोंमें विचारिये ॥ ५६ ॥

वि०—उपर्युक्त नक्षत्रोंका वेध यदि पापग्रहसे हो तो उस सम्पूर्ण नक्षत्रका त्याग करना चाहिये । यदि शुभग्रहसे वेध हो तो केवल चरण ही त्याज्य होता है । जैसे श्रीनारदजी ने कहा है—

पादमेव शुभैर्विद्धमशुभैर्नैव कृत्स्नतः ।

एवं कश्यपजीने कहा है—

क्रूरविद्धं युतं धिष्ण्यं क्रूराक्रान्तं च कृत्स्नभम् ।
मणिहेममयं हर्म्यं भूताक्रान्तमिव त्यजेत् ॥

नक्षत्रोंका वेध पञ्चशलाका और सप्तशलाका दो प्रकारसे विचारा जाता है । जिसमें विवाहमें पञ्चशलाका वेध ही अधिकसम्मत माना गया है । जैसे श्रीवसिष्ठजीने—

पञ्चशलाकाचक्रे पाणिग्रहणे भवेधविधिरुक्तः ।
शस्तः शुभमित्रकृतः, सप्तशलाकाज इतरत्र ॥

एवं श्रीपतिने—

वधूप्रवेशने दाने वरणे पाणिपीडने ।
वेधः पञ्चशलाकाख्येऽन्यत्र सप्तशलाकजः ॥

ऐसा कहा है । इस लिये विवाहमें पञ्चशलाका वेध ही विचारना चाहिये ।
पञ्चशलाका वेधका उद्धार चक्रमें देखिये ॥ ५६ ॥

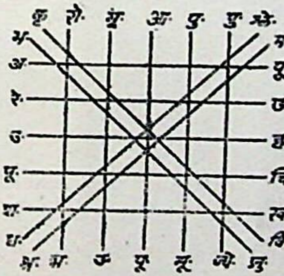

नक्षत्रोंका सप्तशलाका वेध—

शाक्रेज्ये शतभानिले जलशिवे पौष्णार्यमर्क्षे वसु-
द्वीशे वैश्वसुधांशुभे हयभगे सार्पानुराधे मिथः ।

हस्तोपान्तिमभे त्रिधातृविधिभे मूलादिती त्वाष्ट्रभा-
जाङ्घ्री याम्यमघे कृशानुहरिभे विद्धे कुभृद्रेखिके ॥५७॥

अन्वयः—कुभृद्रेखिके (सप्तशलाके चक्रे) शाक्रेज्ये, शतभानिले, जलशिवे, पौष्णार्यमर्क्षे, वसुद्वीशे, वैश्वसुधांशुभे, हयभगे, सार्पानुराधे, हस्तोपान्तिमभे, विधातृविधिभे, मूलादिती, त्वाष्ट्रभाजाङ्घ्री, याम्यमघे, कृशानुहरिभे, मिथः विद्धे भवतः ॥ ५७ ॥

भाषार्थः—सप्त-शलाका चक्रमें ज्येष्ठा-पुष्य, शतभिषा-स्वाती, पूर्वाषाढ़-आर्द्रा, रेवती-उत्तरा फल्गुनी, धनिष्ठा-विशाखा, उत्तराषाढ-मृगशिरा, अश्विनी-पूर्वा फल्गुनी, आश्लेषा-अनुराधा, हस्त-उत्तरभाद्र, रोहिणी-अभिजित्, मूल-पुनर्वसु, चित्रा-पूर्वभाद्र, भरणी-मघा और कृत्तिका-श्रवण इन दो-दो नक्षत्रोंमें परस्पर वेध होता है।

स्पष्टताके लिये सप्तशलाका चक्र देखिये ॥ ५७ ॥

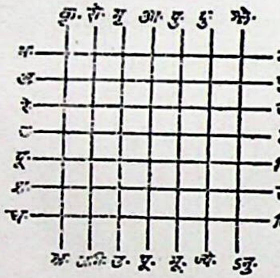

वि०—यहाँ भी शुभ ग्रहसे वेध होने पर केवल उस नक्षत्रका चरण त्यागना चाहिये और पापग्रहसे वेध होने पर सम्पूर्ण नक्षत्र त्यागना चाहिये।

दीपिकाकार, भोज और वराहके मतसे विवाहमें सप्तशलाका वेध भी विचारना चाहिये। क्योंकि लिखा है—

यस्याः शशी सप्तशलाकभिन्नः पापैरपापैरथवा विवाहे ।
उद्वाहवस्त्रेण सुसंवृताङ्गी श्मशानभूमिं रुदती प्रयाति ॥ 'दीपिका'

एवं—

विद्धे सप्तशलाकाख्ये विधवा लग्नवासरा ।
पुनर्यात्यचिरान्नारी मुखाग्नौ मुखचन्द्रिकाम् ॥ 'भोजः'

अर्थात् सप्तशालावेधयुक्त नक्षत्रमें ब्याही कन्या बहुत शीघ्र विधवा हो जाती है ।

पूर्व (५६ वें) श्लोकमें पञ्चशलाका वेध ही त्याज्य कहा गया है और यहाँ सप्तशलाकावेध-का भी प्रमाण मिलता है, इसलिये जहाँ तक हो सके दोनों विचार लेना चाहिये । यदि दोनों शुद्ध नहीं हों तो पञ्चशलाका चक्र अवश्य शुद्ध होना चाहिये ॥ ५७ ॥

पापाक्रान्तादि नक्षत्रोंका परिहार—

ऋक्षाणि क्रूरविद्धानि क्रूरभुक्तादिकानि च ।
भुक्त्वा चन्द्रेण मुक्तानि शुभार्हाणि प्रचक्षते ॥ ५८ ॥

अन्वयः—क्रूरविद्धानि, क्रूरभुक्तादिकानि च ऋक्षाणि 'यदि' चन्द्रेण भुक्त्वा मुक्तानि 'स्युस्तदा तानि' शुभार्हाणि प्रचक्षते ॥ ५८ ॥

भाषार्थः—जो नक्षत्र पापग्रहोंसे विद्ध और पापग्रहोंसे त्यक्त, भोग्य, या युक्त हों एवं त्रिविधोत्पातसे युक्त हों वे यदि चन्द्रमासे भुक्त होकर मुक्त हों (अर्थात् चन्द्रमा उस नक्षत्रका एकबार भोगकर लेवे) तो विवाह आदिमें शुभ होते हैं ॥५८॥

वि०—शुभाशुभ प्रकरणके ३२ वें श्लोकमें बताया गया है कि-"षण्मासं ग्रहभिन्नभं त्यज शुभे यौद्धं तथोत्पातभम्" अर्थात् पाप ग्रहसे विद्ध नक्षत्र, ग्रहयुद्ध वाला नक्षत्र और उत्पातवाला नक्षत्र ६ मास तक शुभकार्यमें त्याज्य हैं। उसकेलिये यहाँ यह परिहार बताया जाता है कि ऐसे दुष्ट नक्षत्र चन्द्रमासे एकबार भुक्त हो जानेपर शुद्ध हो जाते हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि कोई भी नक्षत्र किसी भी दोषसे युक्त क्यों न हो, लेकिन वह एक ही मास तक दुष्ट रहता है। क्योंकि २७ वें दिन तो वह चन्द्रमासे भुक्त होकर मुक्त हो ही जायगा ॥ ५८ ॥

विवाहमें लत्ता दोष—

ज्ञराहुपूर्णेन्दुसिताः स्वपृष्ठे भं सप्तगोजातिशरैर्मितं हि ।
संलत्तयन्तेऽर्कशनीज्यभौमाः सूर्याष्टतर्काग्निमितं पुरस्तात् ॥ ५९ ॥

अन्वयः—ज्ञ-राहु-पूर्णेन्दु-सिताः 'ग्रहाः' स्वपृष्ठे 'क्रमेण' सप्त-गो-जाति-शरैः मितं भं हि (निश्चयेन) संलत्तयन्ते । तथा, अर्क-शनी-ज्य-भौमाः 'ग्रहाः' पुरस्तात् 'क्रमेण' सूर्या-ष्ट-तर्का-ग्निमितं संलत्तयन्ते ॥ ५९ ॥

भाषार्थः—बुध जिस नक्षत्रपर रहता है उससे पीछे ७ वें नक्षत्रको, राहु

अपने पीछे[1] ९ वेंको, पूर्णचन्द्रमा अपने पीछे २२ वेंको और शुक्र अपने पीछे ५ वें नक्षत्रको लात मारता है। एवं सूर्य अपने आगे १२ वें नक्षत्रको, शनि ८ वेंको, बृहस्पति ६ ठेंको और मङ्गल ३रे नक्षत्रको लत्तित करता (लात मारता) है ॥५९॥

वि०—इस लत्ता दोषसे युक्त नक्षत्र विवाहमें त्याज्य है। किसी भी ग्रहसे लत्तित नक्षत्र शुभ नहीं होता। जैसे श्रीवराह भी कहे हैं—

रविलत्ता वित्तहरी, नित्यं कौजी विनिर्दिशेन्मरणम्।
चान्द्री नाशं कुर्याद्, बौधी नाशं वदन्त्येव ॥
सौरी मरणं कथयति, बन्धुविनाशं बृहस्पतेर्लत्ता।
मरणं लत्ता राहोः कार्यविनाशं भृगोर्वदति ॥ इति ॥५९॥

विवाहमें पात दोष—

हर्षणवैधृतिसाध्यव्यतिपातकगण्डशूलयोगानाम्।
अन्ते यन्नक्षत्रं पातेन निपातितं तत्स्यात् ॥ ६० ॥

अन्वयः—हर्षण-वैधृति-साध्य-व्यतिपातक-गण्ड-शूल-योगानां अन्ते यत् नक्षत्रं 'भवति' तत् पातेन निपातितं स्यात् ॥ ६० ॥

भाषार्थः—हर्षण-वैधृति, साध्य, व्यतिपात, गण्ड और शूल—इन ६ योगोंके अन्तमें जो चान्द्र (दैनिक) नक्षत्र पड़ता है वह पात दोषसे दूषित होता है। पात दोषसे दूषित नक्षत्र विवाहमें त्याज्य हैं ॥ ६० ॥

वि०—नारद और वसिष्ठजीके मतसे पात दोषका विचार इस तरह हैं-सूर्यके नक्षत्रसे आश्लेषा, मघा, अनुराधा, चित्रा, श्रवण और रेवती तक गिननेपर जो सङ्ख्यायें हों, अश्विनीसे उतनी सङ्ख्यावाले नक्षत्र पातदूषित होते हैं। जैसे यदि सूर्य हस्तमें हो तो भरणी, मृगशिरा, मघा, स्वाती, शतभिषा और पूर्वभाद्र पातदूषित होंगे। जैसे—

सूर्यभात् सार्पपित्र्यान्त्यत्वाष्ट्रमित्रोडुविष्णुभे।
सङ्ख्यया दिनभे तावदाश्विभाद् पातदुष्टभम् ॥ 'नारदः'।
रविभादहिपितृमित्रत्वाष्ट्रभहरिपौष्णभेषु गणितेषु।
अश्विनभाद्रिन्दुयुतो तावति वै पतति गणनया पातः ॥ 'वसिष्ठः' ॥६०॥

क्रान्तिसाम्य नामका महापात दोष—

पञ्चास्याजौ गोमृगौ तौलिकुम्भौ कन्यामीनौ कर्क्यली चापयुग्मे।
तत्राऽन्योन्यं चन्द्रभान्वोर्निरुक्तं क्रान्तेः साम्यं नो शुभं मङ्गलेषु ॥

---

१. राहु वक्रगति होनेके कारण क्रम गणनासे ९ वें नक्षत्रको लत्तित करता है। अर्थात् यदि राहु अश्विनीमें हो तो उससे पीछे ९ वाँ आश्लेषा होगा।

अन्वयः—पञ्चास्याजौ, गो-मृगौ, तौलि-कुम्भौ, कन्या-मीनौ, कर्यली, चाप-युग्म, तत्र अन्योन्यं 'स्थितयोः' चन्द्रभान्वोः क्रान्तेः साम्यं निरुक्तम्। तत् मङ्गलेषु शुभं नो 'भवति' ॥ ६१ ॥

भाषार्थः—सिंह-मेष, वृष-मकर, तुला-कुम्भ, कन्या-मीन, कर्क-वृश्चिक और धनु-मिथुन इन दो-दो राशियोंमें सूर्य और चन्द्रमाके परस्पर (सूर्य सिंहमें चन्द्रमा मेषमें, अथवा सूर्य मेषमें चन्द्रमा सिंहमें; इसी तरह और राशियोंमें भी) रहनेपर क्रान्तिसाम्य नामक 'महापात' दोष होता है। जो मङ्गल-(शुभ) कार्योंमें शुभ नहीं होता ॥ ६१ ॥

वि०—यह महापात दोष वैधृति और व्यतीपात योगके नामसे दो प्रकारका है।

एकायनगतौ स्यातां सूर्याचन्द्रमसौ यदा।
तद्युतौ मण्डले क्रान्त्योस्तुल्यत्वे वैधृताभिधः ॥
विपरीतायनगतौ चन्द्राकौं क्रान्तिलिप्तिकाः।
समास्तदा व्यतीपातो भगणार्धं तयोर्युतौ ॥[1]

सूर्य सिद्धान्तके इस वचनमें जब सायन सूर्य-चन्द्रमाका योग १२ राशिके समान होता है (जैसे—२+१०, ३+९, ४+८, ५+७, ७+५, १+११) तो दोनोंके भिन्न गोल और एक अयन होते है, तथा दोनोंके भुजांश समान होनेसे स्थानीया क्रान्ति भी तुल्य होती है, अतः इसे वैधृत नामक महापात कहते हैं।

जब सायन सूर्य और चन्द्रमाका योग ६ राशिके समान होता है। (जैसे—१+५, २+४, ४+२, ५+१) तो दोनोंके भिन्न अयन और एक गोल होते हैं, तथा दोनोंके भुजांश तुल्य होनेसे क्रान्ति भी तुल्य ही होती है, अतः इसे व्यतीपात नामक महापातक कहते हैं।

क्रान्तिसाम्यबोधक चक्र—

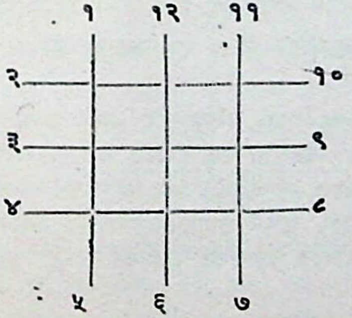

१. इसको विशेष उपपत्ति सूर्यसिद्धान्तके हमारे 'श्रीतत्त्वामृत' भाष्यमें देखिये। (पाताधिकार १-२ श्लोक)।

प्रकृत श्लोकमें आचार्यने उदाहरणके लिये ५+१=६...(१); २+१०=१२...(२); ७+११=६...(३); ६+१२=६...(४); ४+८=१२...(५); ९+३=१२...(६) ये ६ ही भेद बताये। वस्तुतः पूर्ण २ राशिके योगसे क्रान्ति साम्यके सभी भेद ग्राह्य हैं।

पाठकोंको इस महापातको ढूढ़नेकी आवश्यकता नहीं है। वे पञ्चाङ्गमें लिखे व्यतीपात और वैधृति योगको ही समझें।

यह महापात इसलिये अशुभ कहा गया है कि जब सूर्य-चन्द्रमाकी क्रान्ति तुल्य होती है तो दोनोंके समान किरणोंके संयोगसे एक विचित्र क्रोधाग्निकी उत्पत्ति होती है; जिससे उस समय मङ्गलकार्य बाधित होते हैं। जैसे सूर्य सिद्धान्तमें कहा है—

तुल्यांशुजालसम्पर्कात् तयोस्तु प्रवहाहतः।[1]
तादृक्क्रोधोद्भवो वह्निर्लोकाभावाय जायते॥ ६१॥

खार्जूर वा एकार्गल दोष—

व्याघातगण्डव्यतिपातपूर्वशूलान्त्यवज्रे परिघातिगण्डे।
[2]योगे विरुद्धे त्वभिजित्समेतः खार्जूरमर्काद्विषमे शशी चेत् ॥६२॥

अन्वयः—व्याघात-गण्ड-व्यतिपात-पूर्व-शूलान्त्यवज्रे परिघातिगण्डे 'च' विरुद्धे योगे तु यदा अभिजित्समेतः शशी (चन्द्रः) अर्कात् विषमे 'नक्षत्रे' स्थितः चेद् भवेत् तदा खार्जूरं स्यात्॥ ६२॥

भाषार्थः—जिस दिन व्याघात, गण्ड, व्यतीपात, विष्कम्भ, शूल, वैधृत वज्र, परिघ, अतिगण्ड—इन विरुद्ध (अशुभ) योगोंमें कोई एक योग पड़ा हो उस दिन यदि सूर्यके नक्षत्रसे चन्द्रमाका नक्षत्र विषम (१।३।५।७ इत्यादि) हो तो खार्जूर दोष होता है। यहाँ चन्द्रमाके नक्षत्रकी गिनती अभिजित् नक्षत्रके सहित होती है। सूर्य नक्षत्रसे चन्द्रनक्षत्र सम (२।४।६।८ आदि) हो तो खार्जूर दोषका दूसरा नाम **एकार्गल** है। यह खार्जूर या एकार्गल दोष विवाहमें त्याज्य है॥ ६२॥

वि०—इस खार्जूर दोषका विचार वसिष्ठ और नारद मुनिके मतसे इस प्रकार है कि एक खड़ी रेखा और १२ पड़ी रेखाओंसे चक्र बनाकर ऊपरकी खड़ी रेखा पर वैधृत योगमें चित्रा, अतिगण्ड योगमें अनुराधा, एवं–परिघमें मघा, व्यतिपातमें आश्लेषा, विष्कम्भमें अश्विनी, व्याघातमें पुनर्वसु, गण्डमें मूल, शूलमें मृगशिरा और वज्र योगमें पुष्य नक्षत्रको रखकर सूर्य-चन्द्र-नक्षत्रको देखे। दोनोंके नक्षत्र एक रेखा पर पड़नेसे खार्जूर दोष समझे। इसमें श्रीवसिष्ठजीका वचन—

---

१. सूर्य सिद्धान्त पाताधिकारमें ३...५ श्लोक देखिये।

२. 'एकार्गलाख्यो ह्यभिजित्समेतो दोषः शशी चेद्विषमर्क्षगोऽर्कात्' ऐसा भी पाठान्तर है।

अन्त्यातिगण्डपरिघव्यतिपातपूर्वंव्याघातगण्डवरशूलमहाशनीषु ।
चित्रानुराधपितृपन्नगदस्त्रभेषु सादित्यमूलशशिसूरिषु मूर्धभेषु ॥
रेखामेकामूर्ध्वगां षट् च सप्त तिर्यक्कृत्वाऽप्यत्र खार्जूरचक्रे ।
तिर्यग्रेखासंस्थयोश्चन्द्रभान्वोर्दृक्संपातो दोष एकार्गलाख्यः ॥

स्पष्टार्थ चक्र देखिये—

योगके भेदसे शीर्ष नक्षत्र									
दुष्टयोग	वैधृति	अतिगं.	परि.	व्यती.	विष्कं.	व्या.	गण्ड	शूल	वज्र
नक्षत्र	चित्रा	अनु.	मघा	श्ले.	अश्वि.	पुन.	मूल	मृग.	पुष्य

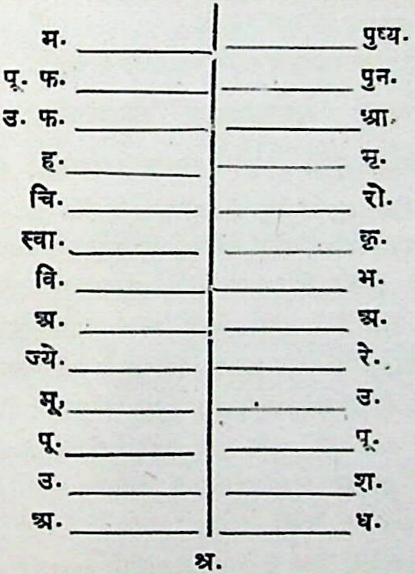

उदाहरण—पाठकोंको सुगमतासे समझनेके लिये दिखलाया जाता है कि व्यतीपात योगके दिन आश्लेषाको शीर्षपर रखकर देखे, यदि मघा नक्षत्रमें सूर्य और पुष्यमें चन्द्रमा हो तो उसे खार्जूर दोष जानिये । एवं सर्वत्र समझना चाहिये ॥ ६२ ॥

वि०—नारदके मतसे अभिजितकी गणना नहीं होती । देखिये नारदीय संहिता अध्याय ७, श्लोक ५–७ ॥ ६२ ॥

उपग्रह दोष—

शराष्टदिक्शक्रनगातिधृत्यस्तिथिधृतिश्च प्रकृतेश्च पञ्च ।
उपग्रहाः सूर्यभतोऽब्जताराः शुभा न देशे कुरुबाह्लिकानाम् ॥६३॥

अन्वयः—सूर्यभतः अब्जताराः (चन्द्रनक्षत्राणि) 'यदि' शराष्टदिक्शक्रनगातिधृत्यः तिथिः धृतिः च (पुनः) प्रकृतेः (एकविंशतिमारभ्य) पञ्च 'एतावन्मिताः स्युः तदा' उपग्रहाः 'भवन्ति, ते, कुरुबाह्लिकानां देशे शुभाः न 'भवन्ति' ॥ ६३ ॥

भाषार्थः—सूर्य जिस नक्षत्र पर हो उससे ५।८।१०।१४।७।१९।१५।१८।२१।२२।२३।२४।२५ वें नक्षत्रों पर यदि चन्द्रमा हो तो उपग्रह दोष समझना चाहिये। यह उपग्रह दोष कुरुदेश (जो दिल्लीके आसपास है) और बाह्लिक (काश्मिरके पश्चिम) देशोंमें शुभ नहीं होता। अर्थात् उपग्रह दोष कुरु-बाह्लिक देशोंमें ही त्याज्य है, अन्यत्र नहीं ॥ ६३ ॥

पात-उपग्रह-लत्ता दोषोंका परिहार और अर्धयाम दोष—

पातोपग्रहलत्तासु नेष्टोऽङ्घ्रिः खेटपत्समः ।
वारस्त्रिघ्नोऽष्टभिस्तष्टः सैकः स्यादर्धयामकः ॥ ६४ ॥

अन्वयः—पातोपग्रहलत्तासु 'दोषेषु' खेटपत्समः अङ्घ्रिः इष्टः न 'भवति'। अथ, वारः त्रिघ्नः, अष्टभिः तष्टः, सैकः 'तदा' अर्धयामकः स्यात् ॥ ६४ ॥

भाषार्थः—पात, उपग्रह और लत्ता दोषोंमें दोषकारी ग्रहके चरणके समान नक्षत्रका चरण अशुभ होता है। अर्थात् पात और उपग्रह योगोंमें सूर्य नक्षत्रके जिस चरण पर हो वही चरण पात-उपग्रह दोष वाले नक्षत्रका त्याज्य है सम्पूर्ण नक्षत्र नहीं। एवं लत्ता दोषमें लत्ताकारी ग्रह जिस चरण पर हो, लत्तित नक्षत्रका वही चरण त्याज्य है, अन्य नहीं। इसी तरह खार्जूर दोषमें भी समझना चाहिये।

अर्धयाम—इष्ट वारकी सङ्ख्याको ३ से गुणकर ८ से भाग देवे, शेषमें १ जोड़नेसे उतने सङ्ख्यक उस दिनमें अर्धयाम समझे ॥ ६४ ॥

उदाहरण—जैसे गुरुवारके दिन अर्धयाम विचारनेमें इष्टवारकी सङ्ख्या (रविवारसे गिनने पर) ५ को ३ से गुणा किया तो १५ हुए, आठसे भाग देने पर शेष ७ में १ जोड़ा तो ८ वाँ अर्धयाम हुआ।

विशेषोपपत्तिः—

दिनमानके आठवें भागको अर्धयाम (देश भेदसे अर्धप्रहरा, कालवेला) कहते हैं। ये अर्धयाम दिन और रातमें ८, ८ होते हैं। जिनमें—

"मनीषिणोऽर्धप्रहराद् द्वितीयादारभ्य सर्वेष्वपि मङ्गलेषु ।
भौमोशनःसूर्यबुधार्किचन्द्रसुरेज्यवारेषु विवर्जयन्ति ॥"

श्री श्रीपतिके इस वचनसे मङ्गलवारमें २ रा, शुक्रमें ३ रा, रविवारमें ४ था, बुधमें ५ वाँ, शनिमें ६ ठा, सोममें ७ वाँ और गुरुवारमें ८ वाँ अर्धप्रहरा शुभकार्योंमें त्याज्य है। यहाँ रव्यादिवार क्रमसे $\frac{\text{र.}}{४}$ । $\frac{\text{चं.}}{७}$ । $\frac{\text{मं.}}{२}$ । $\frac{\text{बु.}}{५}$ । $\frac{\text{बृ.}}{८}$ । $\frac{\text{शु.}}{३}$ । $\frac{\text{श.}}{६}$ । ये अर्धप्रहरा हुए। यहाँ देखा जाता है कि एकसे दूसरे दिनका अर्धप्रहरा प्रत्येक दिनमें ३ अधिक है। जैसे—४, ७, २, ५, ८, ३, ६। रव्यादि दिनकी सङ्ख्यायें १, २, ३, ४, ५, ६, ७ हैं। इसलिये रविवारमें ४ था अर्धप्रहरा = दिनसङ्ख्या × ३ + १। एवं सोमवारमें ७ वाँ अर्धप्रहरा = दिन सं २ × ३ + १। मङ्गलवारमें २ रा अर्धप्रहरा = (दिन सं० ३ × ३ + १) ÷ ८ = २। एवं सर्वत्र समझिये। दिन भरमें अर्धप्रहराकी सङ्ख्या ८ होनेके कारण अधिकतामें ८ का भाग दिया जाता है। अतः 'वारस्त्रिघ्नोऽष्टभिस्तष्टः सैकः स्यादर्धयामकः' यह उपपन्न हुआ ॥ ६४ ॥

यद्यपि अर्धप्रहराके सम्बन्धमें 'निधनं प्रहरार्धं तु' इस तरहका श्रीवासिष्ठादि मुनियोंका आर्ष वचन पाया जाता है तथापि इसे बहुत प्रदेशोंमें लोग नहीं त्यागते। परन्तु मिथिला, बङ्गाल, नेपाल आदि प्रदेशोंमें यह अर्धयाम अति दूषित समझा जाता है ॥ ६४ ॥

कुलिक दोष—

शक्रार्कदिग्वसुरसाब्ध्यश्विनः कुलिका रवेः ।
रात्रौ निरेकास्तिथ्यंशाः शनौ चान्त्योऽपि निन्दितः ॥६५॥

अन्वयः—रवेः (रव्यादिवारक्रमात्) शक्रार्कदिग्वसुरसाब्ध्यश्विनः 'एतत्सङ्ख्यकाः' तिथ्यंशाः कुलिकाः 'भवन्ति'। रात्रौ एते तिथ्यंशाः निरेकाः कुलिकाः भवन्ति। शनौ च अन्त्योऽपि तिथ्यंशः निन्दितः भवति ॥ ६५ ॥

भाषार्थः—रविवारमें १४ वाँ, सोमवारमें १२ वाँ, मङ्गलवारमें १० वाँ, बुधमें ८ वाँ, गुरुवारमें ६ ठा, शुक्रमें ४ था और शनिवारमें २ रा तिथ्यंश (मुहूर्त) कुलिक कहलाता है। रातमें १ घटाकर शेषतुल्य मुहूर्त (अर्थात् रविकी रातमें १३ वाँ, सोमकी रातमें ११ वाँ, मङ्गलमें ९ वाँ, बुधमें ७ वाँ, गुरुमें ५ वाँ, शुक्रमें ३ रा और शनिकी रातमें १ ला मुहूर्त) कुलिक होता है। शनिवारमें अन्तिम (१५ वाँ) मुहूर्त भी निन्दित है ॥ ६५ ॥

वि०—यह श्लोक शुभाशुभ प्रकरणके ३७ वें श्लोकसे उपपन्न होता है। उपपत्ति और चक्र वहीं देखिये ॥ ६५ ॥

वारोंमें अर्धयाम और कुलिक मुहूर्त्त चक्र—

वाराः—		रवि	सोम	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
अर्धयाम		४	७	२	५	८	३	६
कुलिक	दिने	१४	१२	१०	८	६	४	२
मुहूर्ताः	रात्रौ	१३	११	९	७	५	३	१।१५

यद्यपि शुभाशुभ प्रकरणके ३८-३९ श्लोकोंमें प्रत्येक वारोंमें दुष्ट मुहूर्त्तोंकी गणना की गयी है तथापि वहाँ मुहूर्त्तोंका परिचय नहीं होनेके कारण अर्धयाम कुलिक आदि विशिष्ट दोषोंका यथार्थ ज्ञानके लिये आचार्यने यहाँ उनका पुनः उल्लेख किया है ॥ ६५ ॥

मासभेदसे दग्ध तिथियाँ—

चापान्त्यगे गोघटगे पतङ्गे कर्काजगे स्त्रीमिथुने स्थिते च।
सिंहालिगे नक्रधटे समाः स्युस्तिथ्यो द्वितीयाप्रमुखाश्च दग्धाः ॥

अन्वयः—पतङ्गे (सूर्ये) चापान्त्यगे, गोघटगे, कर्काजगे, स्त्री-मिथुने स्थिते, सिंहालिगे, नक्रघटे च 'स्थिते सति' द्वितीयाप्रमुखाः समाः तिथ्यः दग्धाः स्युः ॥६६॥

भाषार्थः—सूर्य जब धनु और मीन राशिमें हों तो द्वितीया, वृष और कुम्भमें हों तो चतुर्थी, कर्क और मेषमें षष्ठी, कन्या और मिथुनमें अष्टमी, सिंह और वृश्चिकमें हों तो दशमी, मकर और तुलामें हों तो द्वादशी तिथि दग्ध होती है। इन दग्ध तिथियोंको शुभकार्योंमें वराना चाहिये ॥ ६६ ॥

जामित्र दोष—

लग्नाच्चन्द्रान्मदनभवनगे खेटे न स्यादिह परिणयनम्।
किं वा बाणाशुगमितलवगे जामित्रं स्यादशुभकरामिदम् ॥६७॥

अन्वयः—'विवाहकाले' लग्नात् वा चन्द्रात्, मदनभवनगे खेटे (कस्मिंश्चिद् ग्रहे) सति इह परिणयनं न स्यात्। किं वा 'लग्नात् चन्द्राद् वा' बाणाशुगमित-लवगे (पञ्चपञ्चाशत्सङ्ख्यके नवांशे गतवति) ग्रहे सति सूक्ष्मं जामित्रं स्यात्। इदं 'जामित्र' विवाहे अशुभकरं स्यात् ॥ ६७ ॥

भाषार्थः—विवाह कालिक लग्नसे या चन्द्रमासे ७ वीं राशिपर किसी भी

ग्रहके रहने पर जामित्र दोष होता है, इसमें विवाह शुभ नहीं है। तात्पर्य यह है कि किसी ग्रहसे ७ वीं राशिमें लग्न या चन्द्रमा का होना शुभ नहीं है।

अथवा लग्नसे या चन्द्रमासे ५५ वें नवांश पर किसी ग्रहके रहने पर सूक्ष्म जामित्र होता है जो विवाहमें अशुभ है ॥ ६७ ॥

वि०—लग्नसे या चन्द्रमासे ७ वें स्थानमें ग्रहके रहने पर 'सर्वे जामित्रसंस्था विदधति मरणम्' इस वसिष्ठजी के वचनसे विवाह नहीं करना चाहिये। इससे यह सिद्ध हुआ कि लग्नसे या चन्द्रमासे ७ वीं राशि सम्पूर्ण (३० अंश) त्याज्य है। परन्तु वह सम्पूर्ण राशि त्याज्य नहीं है, इसके लिये लिखते हैं कि 'किं वा बाणाशुगमितलवगे' याने लग्नसे या चन्द्रमासे ५५ वें नवांशको ही वराना चाहिये। जैसे यदि लग्न या चन्द्रमा मेषके दूसरे नवांशमें हो तो उससे ५५ वाँ नवांश तुलाका दूसरा नवांश होगा, उसीको त्यागना चाहिये। क्योंकि मेषके शेष ८ नवांश और तुलाके २ नवांश तथा मध्यमें वृष-मिथुन-कर्क-सिंह-कन्या इन ५ राशियोंके ४५ नवांश; सब मिलकर ५५ नवांश हुए।

इसका निष्कर्ष यह निकला कि लग्न या चन्द्रमा जितने अंशपर हों उससे ७ वीं राशिके उतने ही अंशवाले ग्रह त्याज्य हैं।

इस जामित्र दोषका परिहार इस प्रकार है कि यदि चन्द्रमा अपने उच्च, स्वराशि, मित्र-राशि शुभवर्ग आदिमें रहे तो जामित्र आदि दोष नहीं लगते। जैसे—

स्वोच्चेऽथवा स्वभवने स्फुरदंशुजालः सौम्यालये हितगृहे शुभवर्गगो वा।
जामित्रकादिपरिसञ्चितदोषराशिं हत्वा ददाति बहुशः सुखमेव चन्द्रः ॥ ६७ ॥

पूर्वोक्त एकार्गल आदि दोषोंका परिहार—

एकार्गलोपग्रहपातलत्ताजामित्रकर्तर्युदयास्तदोषाः।
नश्यन्ति चन्द्रार्कबलोपपन्ने लग्ने यथार्काभ्युदये तु दोषा ॥ ६८ ॥

अन्वयः—लग्ने चन्द्रार्कबलोपपन्ने 'सति' एकार्गलोपग्रहपातलत्ताजामित्रकर्तर्युदयास्तदोषाः नश्यन्ति। यथा अर्काभ्युदये (सूर्योदये) दोषा (रात्रिः) नश्यति ॥६८॥

भावार्थः—विवाह कालिक लग्न यदि चन्द्रमा और सूर्यके बलसे युक्त हो तो एकार्गल, उपग्रह, पात, लत्ता, जामित्र, कर्तरी, उदयास्त आदि सभी दोष नाश हो जाते हैं। जैसे सूर्यका उदय होनेसे रात्रि नाश होती है। तात्पर्य यह है कि विवाह कालमें सूर्य-चन्द्रके बल परमावश्यक हैं ॥ ६८ ॥

इस तरह व्यापक रूपसे दोषोंका परिहार कह कर देश भेदसे कितने दोषोंका परिहार कहेंगे।

देशभेदसे दोषोंका परिहार—

उपग्रहर्क्षं कुरुबाह्लिकेषु कलिङ्गवङ्गेषु च पातितं भम् ।
सौराष्ट्रशाल्वेषु च लत्तितं भं त्यजेत्तु विद्धं किल सर्वदेशे ॥६९॥

अन्वयः—कुरुबाह्लिकेषु उपग्रहर्क्षम्, कलिङ्गवङ्गेषु च पातितं भम्, च (पुनः) सौराष्ट्रशाल्वेषु लत्तितं भम् 'विवाहे' त्यजेत् । तथा विद्धं तु सर्वदेशे किल (निश्चयेन) त्यजेत् ॥ ६९ ॥

भाषार्थः—कुरुक्षेत्र और बाह्लिक[1] देशोंमें उपग्रह दोष, कलिङ्ग[2] और बङ्गाल देशोंमें पात नक्षत्र, सौराष्ट्र[3] और शाल्व[4] देशोंमें लत्ता दूषित नक्षत्र त्याज्य है और विद्ध (पञ्चशलाका चक्रमें ग्रहसे वेधित) नक्षत्र प्रत्येक देशमें त्याज्य है ॥

दोषोंके सम्बन्धमें भी कहीं २ मतान्तर देखे जाते हैं, इस लिये इसमें देशाचार व्यवस्था भी कर्त्तव्य है ॥ ६९ ॥

सूर्य-चन्द्रमाके नक्षत्र वश दश दोष—

शशाङ्कसूर्यर्क्षयुतेर्भशेषे खं भूयुगाङ्गानि दशेशतिथ्यः ।
नागेन्दवोऽङ्केन्दुमिता नखाश्चेद्भवन्ति चैते दशयोगसञ्ज्ञाः ॥७०॥

अन्वयः—शशाङ्कसूर्यर्क्षयुतेः भशेषे (सप्तविंशतिभक्तावशिष्टे) चेत् खं भूयुगाङ्गानि दशेशतिथ्यः नागेन्दवः अङ्केन्दुमिताः नखा 'भवन्ति' तदा च एते 'क्रमेण' 'वक्ष्यमाणाः' दशयोगसंज्ञाः भवन्ति ॥ ७० ॥

भाषार्थः—सूर्य और चन्द्रमा क्रमसे २ जिस २ नक्षत्रमें हों उन नक्षत्रोंकी संख्या (अश्विनी आदि) के योगमें २७ से भाग देनेपर यदि ०,१,४,६,१०,११, १५,१८,१९,२० ये अङ्क शेष हों तो क्रमसे (आगे वक्ष्यमाण) दश योग होते हैं । ॥ ७० ॥

दश योगोंके नाम और फल—

वाताभ्राग्निमहीपचोरमरणं रुग्वज्रवादाः क्षति-
र्योगाङ्के दलिते समे मनुयुतेऽथौजे तु सैकेऽर्धिते ।

---

१. बाह्लिक देश काश्मीरको कहते हैं ।

२. कलिङ्ग देश उड़ीसा और मद्रासके मध्यवर्ती प्रदेशका नाम है ।

३. सौराष्ट्र देशका नाम आजकल सूरत है ।

४. शाल्व देश हिमालयके निकटवर्ती प्रदेशको कहते हैं ।

भं दास्रादथ सम्मितास्तु मनुभी रेखाः क्रमात्संलिखेद्
वेधोऽस्मिन् ग्रहचन्द्रयोर्न शुभदः स्यादेकरेखास्थयोः ॥७१॥

अन्वयः—वाताभ्राग्निमहीपचोरमरणं रुग्वज्रवादाः क्षतिः 'एते दश योगाः नामसदृशफला ज्ञेयाः'। समे योगाङ्के 'सति, तस्मिन्' दलिते मनुयुते 'च कृते' अथ ओजे (विषमे योगाङ्के) 'तस्मिन्' सैके अर्धिते 'च कृते सति शेषतुल्यं' दास्रात् भं स्यात्। अथ मनुभिः सम्मिताः रेखाः क्रमात् संलिखेत्। अस्मिन् 'चक्रे' एकरेखास्थयोः ग्रहचन्द्रयोः वेधः शुभदः न स्यात् ॥ ७१ ॥

भाषार्थः—पूर्व (७० वें) श्लोकद्वारा ० शेष हो तो वात, १ शेषमें मेघ, ४ शेषमें अग्नि, ६ में राजा, १० में चोर, ११ में मरण, १५ में रोग, १८ में वज्र, १९ में वाद और २० शेषमें क्षति नामका योग होता है। प्रत्येक योगमें उस २ वस्तुके द्वारा भय होता है। जैसे ० शेषमें वात रोगका भय, १ शेषमें मेघका भय इत्यादि।

यदि योगका अङ्क सम (४।६।१०।१८।२०) आवे तो उसके आधेमें १४ जोड़कर और योगका अङ्क विषम (१।११।१५।१९) आवे तो उसमें १ जोड़कर आधा करने पर जो संख्या हो अश्विनी नक्षत्रसे उतनी ही सङ्ख्यावाला नक्षत्र समझना चाहिये। उसके बाद १४ रेखायें तिरछी खींचे, उनमें प्रथम रेखाके एक ओर आये हुए नक्षत्रको रखकर क्रमशः (अभिजित् सहित) प्रत्येक नक्षत्रोंका निवेश करे। इस चक्रमें जो ग्रह जिस नक्षत्रमें हो वहाँ उस ग्रहको लिखना चाहिये। एक रेखामें किसी ग्रह और चन्द्रमाके पड़ने पर वेध होता है। जो वेध विवाहमें शुभ नहीं है ॥ ७१ ॥

उदाहरण—

७० और ७१ दोनों श्लोक उदाहरणके स्पष्ट किये जाते हैं। कल्पना किया कि चन्द्रमा रोहिणीमें और सूर्य धनिष्ठामें हैं तो दोनोंके नक्षत्रोंका योग ४+२४=२८ में २७ का भाग देनेसे शेष १ हुआ, अतः मेघ योग हुआ। अब योगाङ्क १ विषम होनेके कारण इसमें एक जोड़कर २ का आधा किया तो १ हुआ, अतः अश्विनी नक्षत्र हुआ ॥ ७१ ॥

वि०—इस १४ रेखावाले चक्रमें चन्द्रमाको किसी ग्रहसे वेध होने पर ही अशुभ होता है, अन्यथा नहीं।

यदि विवाहलग्न गुरु या शुक्रसे युक्त वा दृष्ट हो तो इन दश योगोंका भी दोष नहीं लगता। जैसे श्री भारद्वाज और व्यासजीने कहा है—

"गुरौ लग्नाधिपे शुक्रे सवीर्ये लग्नकेन्द्रगे।
दशदोषा विनश्यन्ति यथाऽग्नौ तूलराशयः ॥

शुक्रेण गुरुणा वाऽपि संयुतं दृष्टमेव च।
दशयोगसमायुक्तमपि लग्नं शुभावहम्" इति ॥ ७१ ॥

दाक्षिणात्य-पञ्च-बाण दोष—

लग्नेनाढ्या याततिथ्योऽङ्कतष्टाः शेषे नागद्व्यब्धितर्केन्दुसंख्ये।
रोगो वह्नी राजचौरौ च मृत्युर्बाणश्चायं दाक्षिणात्यप्रसिद्धः ॥७२॥

अन्वयः—याततिथ्यः लग्नेन आढ्याः अङ्कतष्टाः 'कार्याः' तत्र, नागद्व्यब्धितर्केन्दुसङ्ख्ये शेषे सति 'क्रमेण' रोगः, वह्निः, राज-चौरौ, मृत्युश्च बाणः स्यात्। अयं बाणः दाक्षिणात्यप्रसिद्धः ज्ञेयः ॥ ७२

भाषार्थः—शुक्ल पक्षकी पड़िवासे बीती हुई तिथियोंकी सङ्ख्यामें लग्न-राशिकी सङ्ख्या जोड़कर उसमें ९ से भाग देनेपर यदि ८ शेष बचे तो रोग बाण, २ शेषमें अग्नि बाण, ४ शेषमें राज बाण, ६ शेषमें चोर बाण और १ शेषमें मृत्यु बाण होता है। यह पञ्च बाण दक्षिणात्य (महाराष्ट्र) देशोंमें प्रसिद्ध है। अर्थात् दक्षिण देशोंमें ही ये पाँच बाण विवाहमें त्याज्य हैं। अन्य देशोंमें इन्हें विचारनेकी भी आवश्यकता नहीं है ॥ ७२ ॥

व्यासजीके मतसे बाणदोष और उसका अपवाद—

रसगुणशशिनागाब्ध्याढ्यसंक्रान्तियातां-
शकमितिरथ तष्टाऽङ्कैर्यदा पञ्च शेषाः।
रुग-नल-नृप-चौरा मृत्युसञ्ज्ञश्च बाणो
नवहृतशरशेषे शेषकैक्ये सशल्यः ॥ ७३ ॥

अन्वयः—रस-गुण-शशि-नागाब्ध्याढ्यसङ्क्रान्तियातांशकमितिः अङ्कैः तष्टा 'कार्या', अथ 'तत्र' यदा पञ्च शेषाः 'स्युः' तदा 'क्रमेण' रुग-नल-नृप-चौराः मृत्यु-संज्ञश्च बाणः स्यात्। पुनः शेषकैक्ये नवहृतशरशेषे 'सति' सशल्यः 'बाणः' स्यात् ॥

भाषार्थः—सूर्यकी सङ्क्रान्तिसे बीते हुए अंशोंकी सङ्ख्या (सूर्यांश) में अलग २ क्रमसे ६, ३, १, ८, ४ जोड़कर ९ से भाग देनेपर यदि प्रथम स्थानमें ५ शेष हो तो रोग बाण, दूसरे स्थानमें ५ शेष हो तो अग्निबाण, तीसरेमें राजबाण, चौथेमें चौरबाण और पाँचवेंमें मृत्युबाण समझना चाहिये। पुनः शेषोंके योगमें ९ से भाग देनेपर यदि ५ शेष हो तो 'सशल्य' बाण समझना चाहिये। जो अल्प-दोषवाला होता है। अन्य शेषवाला बाण अधिक दुष्ट है ॥

व्यासमतके बाण भी महाराष्ट्र देशोंमें ही त्याज्य हैं, अन्यत्र नहीं ॥ ७३ ॥

समय, कर्म और वार भेदसे बाणदोषका परिहार—

रात्रौ चौररुजौ दिवा नरपतिर्वह्निः सदा सन्ध्ययो-
र्मृत्युश्चाथ शनौ नृपो विदि मृतिर्भौमेऽग्निचौरौ रवौ ।
रोगोऽथ व्रत–गेहगोप–नृपसेवा–यान–पाणिग्रहे
वर्ज्याश्च क्रमतो बुधै रुगनलक्ष्मापालचौरा मृतिः ॥७४॥

अन्वयः—चौर-रुजौ 'बाणौ' रात्रौ 'वर्ज्यौ'। नरपतिः बाणः दिवा 'वर्ज्यः'। वह्निः (अग्निबाणः) सदा (सर्वकाले) 'वर्ज्यः'। मृत्युश्च सन्ध्ययोः 'वर्ज्यः'।

अथ शनौ (शनिवारे) नृपः (राजबाणः) 'वर्ज्यः' विदि (बुधवारे) मृतिः 'बाणो वर्ज्यः'। भौमे अग्नि–चौरौ वर्ज्यौ। रवौ रोगः 'वर्ज्यः'।

अथ व्रत–गेहगोप–नृपसेवा–यान–पाणिग्रहे बुधैः क्रमतः रुग–नल–क्ष्मापाल–चौराः मृतिश्च 'बाणाः' वर्ज्याः ॥ ७४ ॥

भाषार्थः—रातमें चोर और रोग बाणोंको त्यागना चाहिये। दिनमें राज बाण, अग्निबाणको सर्वदा, और दोनों सन्ध्याओंमें मृत्यु बाणको त्यागना चाहिये।

शनिवारमें राजबाण, बुधवारमें मृत्युबाण, मङ्गलवारमें अग्नि–चौर और रविवारमें रोग बाणको त्यागना चाहिये।

उपनयनमें रोगबाण गृहसंस्कारमें अग्निबाण राजसेवामें राजबाण, यात्रामें चौरबाण और विवाहमें मृत्युबाण त्यागना चाहिये ॥ ७४ ॥

वि०—जिस समयमें जिस वारमें और जिस कर्ममें जो बाण निन्दित कहे गये हैं उनका ही त्याग करना चाहिये। उससे अन्य प्रसङ्गमें अन्यान्य बाण त्याज्य नहीं हैं। वार और समयके वश बाणकी प्राप्ति रहनेपर भी कर्म–प्रधान बाणका ही त्याग करना चाहिये। जैसे—कल्पना कीजिये कि किसीका उपनयन बुधवारमें करना है। उस दिन राजबाण और मृत्यु बाणकी प्राप्ति है तो समय और वार भेदसे दोनों बाण दुष्ट हैं, परन्तु कर्म (उपनयन) में प्रधान रोग बाणकी प्राप्ति नहीं हो तो उन दोनों बाणोंको शङ्का नहीं करनी चाहिये ॥ ७४ ॥

ग्रहदृष्टिका विवरण—

त्र्याशं त्रिकोणं चतुरस्रमस्तं पश्यन्ति खेटाश्चरणाभिवृद्ध्या ।
मन्दो गुरुर्भूमिसुतः परे च क्रमेण सम्पूर्णदृशो भवन्ति ॥ ७५ ॥

अन्वयः—'सर्वेऽपि' खेटाः त्र्याशं, त्रिकोणं, चतुरस्रं, अस्तं चरणाभिवृद्ध्या 'क्रमेण' पश्यन्ति। तथा, मन्दः, गुरुः, भूमिसुतः, परे (रवि–चन्द्र–बुध–शुक्राः) चकारात् सर्वे अपि ग्रहाः 'तेषु' सम्पूर्णदृशः भवन्ति ॥ ७५ ॥

भाषार्थः—कोई भी ग्रह जिस राशिमें रहता है उससे ३।१० वें स्थानोंको १ चरणसे, ५।९ वेंको २ चरणसे, ४।८ वेंको ३ चरणसे और ७ वें स्थानको ४ चरण (पूर्ण) दृष्टिसे देखता है। किन्तु शनि ३।१० वेंको, बृहस्पति ५।९ वेंको, मङ्गल ४।८ वेंको और सभी ग्रह अपनेसे ७ वें स्थानको पूर्णदृष्टिसे देखते हैं॥

उत्पत्तिः—

तीसरा स्थान पराक्रम और १० वाँ राज्य कहलाता है। जैसे पराक्रम (उद्यम) और राज्यकार्यमें अधिक रक्षकोंके कारण मनुष्योंकी दृष्टि स्वभावतः कम रहती है उसी तरह ग्रहोंकी भी दृष्टि ३ रे (पराक्रम) और १० वें (राज्य) स्थानपर १ चरण होती है। ५ वाँ स्थान विद्या और पुत्र तथा ९ वाँ भाग्य और धर्म कहलाता है। जैसे पुत्र और धर्मकी रक्षाके लिये लोगोंकी दृष्टि राज्यदृष्टिसे अधिक होती है उसी तरह ग्रह भी ५ वें और नववें स्थानोंको २ चरण दृष्टिसे देखते हैं। ४ था स्थान सुख और ८ वां आयु कहलाता है। जिस तरह मनुष्योंको अपने सुख और आयुके ऊपर अधिक यत्न रमता है, वैसे ही ग्रह भी ४थे और ८ वें स्थानोंको ३ चरण दृष्टिसे देखते हैं। ७ वाँ स्थान स्त्री भाव कहलाता है। देखा जाता है कि देव-दानव-मानव-पशु-पक्षी-कीटादि जीवमात्र स्त्रीके ऊपर विशेषतः सचेष्ट रहते हैं, इसी तरह ग्रह भी ७ वें (स्त्री) स्थानको पूर्णदृष्टिसे देखते हैं।

एकं—शनि भृत्य ग्रह, गुरु मन्त्री और मङ्गल सेनापति ग्रह हैं। भृत्य (दूत) का कर्तव्य है कि वह सदा पराक्रम और राष्ट्ररक्षा में तत्पर रहे। इसलिये शनि पराक्रम (३) और राज्य (१०) को पूर्णरूपसे देखता है। विद्या बुद्धि और धर्मकी रक्षा गुरु (मन्त्री) के अधीन है, अतएव गुरु ग्रह भी विद्या (५) और धर्म (९) की पूर्ण दृष्टिसे देखते हैं। आयु और सुखकी रक्षा सदा सेनापति के अधीन है, अतएव मङ्गल ग्रह चौथे (सुख) और आठवें (आयु) को पूर्ण देखता है। स्त्रीकी रक्षा सबको आवश्यक होती है, अतः सभी ग्रह ७ वीं (स्त्री) राशिको पूर्ण देखते हैं, यह सर्वथा युक्तियुक्त है॥ ७५॥

उदयास्तशुद्धि—

यदा लग्नांशेशो लवमथ तनुं पश्यति युतो
भवेद्वाऽस्य वोढुः शुभफलमनल्पं रचयति।

लवद्यूनस्वामी लवमदनभं लग्नमदनं
प्रपश्येद्वा वध्वाः शुभमितरथा ज्ञेयमशुभम् ॥ ७६ ॥

अन्वयः—यदा लग्नांशेशः लवं अथ वा तनुं पश्यति वा युतः भवेत् 'तदा' अयं वोढुः (वरस्य) अनल्पं शुभफलं रचयति। अथ, लवद्यूनस्वामी लवमदनभं वा लग्नमदनं प्रपश्येत् 'तदा' वध्वाः (कन्यकायाः) शुभं रचयति। अतः, इतरथा 'चेद्भवेत् तदा' अशुभं ज्ञेयम् ॥ ७६ ॥

भाषार्थः—विवाह-कालिक-लग्नगत-नवांशका स्वामी नवांश राशिको या लग्नको देखता हो अथवा उसमें स्थित हो तो वरको अत्यन्त शुभफल देता है। एवं लग्नगत नवांशसे सप्तम नवांशका स्वामी सप्तम नवांशको या लग्नसे ७ वीं राशिको देखता हो तो वह कन्याको शुभफल देता है। इससे अन्यथा (विपरीत) हो तो अशुभ समझना चाहिये ॥ ७६ ॥

वि०—पाठकोंकी सुगमताके लिये उदाहरणसे स्पष्ट किया जाता है। जैसे कल्पना कीजिये कि मेषलग्नमें मिथुनका नवांश है। नवांशपति बुध तुलामें रहकर मिथुनको देखेगा, या स्वयं मिथुनमें ही हो तो यह उदय शुद्धिका प्रथम प्रकार है।

दूसरा प्रकार यह है कि यदि मेष लग्नमें मिथुनका नवांश हो और बुध मकरमें बैठकर नवांश को नहीं देखेगा किन्तु मेषको (लग्नको) देखेगा तब लग्न शुद्धि समझिये।

एवं मेषलग्नगत मिथुन नवांशसे ७ वाँ नवांश धनुका स्वामी गुरु धनको देखे या स्वयं धनुमें रहे, अथवा लग्नसे ७ वीं राशि तुलाको देखे तो अस्तशुद्धिके दो भेद होते हैं ॥ ७६ ॥

लग्नेश और नवांशेशकी दृष्टिसे शुभाशुभ—

लवेशो लवं लग्नपो लग्नगेहं प्रपश्येन्मिथो वा शुभं स्याद्वरस्य।
लवद्यूनपोंऽशद्युनं लग्नपोऽस्तं मिथो वेक्षते स्याच्छुभं कन्यकायाः ७७

अन्वयः—लवेशः लवं, लग्नपः लग्नगेहं वा मिथः यदि प्रपश्येत्, 'तदा' वरस्य शुभं स्यात्। तथा, लवद्यूनपः अंशद्युनं, लग्नपः अस्तं वा मिथः ईक्षते 'तदा' कन्यकायाः शुभं स्यात् ॥ ७७ ॥

भाषार्थः—विवाहमें लग्नगत नवांशपति नवांश राशिको और लग्नेश लग्नको देखता हो, अथवा दोनोंमें परस्पर दृष्टि हो (अर्थात् लग्नेश नवांशको और नवांशेश लग्नको देखते हों) तो वरको शुभ होता है। एवं नवांश से ७ वीं राशिका स्वामी नवांशसे ७ वीं राशिको और लग्नेश लग्नसे ७ वीं राशिको देखें अथवा दोनोंकी परस्पर दृष्टि हो तो कन्याका शुभ होता है ॥ ७७ ॥

उदयास्तशुद्धिमें प्रकारान्तर—

लवपतिशुभमित्रं वीक्षतेऽशं तनुं वा
परिणयनकरस्य स्याच्छुभं शास्त्रदृष्टम् ।
मदनलवपमित्रं सौम्यमंशद्युनं वा
तनुमदनगृहं चेद्वीक्षते शर्म वध्वाः ॥ ७८ ॥

अन्वयः—लवपतिशुभमित्रं अंशं वा तनु वीक्षते 'तदा' परिणयनकरस्य (वरस्य) शास्त्रदृष्टं शुभं स्यात् । तथा, मदनलवपमित्रं सौम्यं अंशद्युनं वा तदनुमदनगृहं चेत् वीक्षते 'तदा' वध्वाः शर्म (शुभं) स्यात् ॥ ७८ ॥

भाषार्थः—लग्नगत नवांशपतिका मित्र शुभ ग्रह होकर यदि नवांश वा लग्नको देखता हो तो वरको शास्त्रोक्त शुभफल देता है । एवं सप्तम नवांश पतिका मित्र शुभग्रह हो तथा वह ७ वें नवांशको देखता हो अथवा लग्नसे ७ वीं राशि को देखता हो तो कन्याको शुभफल करता है ॥ ७८ ॥

विवाहादिमें सङ्क्रान्तिका दोष—

विषुवायनेषु परपूर्वमध्यमान्दिवसांस्त्यजेदितरसङ्क्रमेषु हि ।
घटिकास्तु षोडश शुभक्रियाविधौ परतोऽपि पूर्वमपि सन्त्यजेद्बुधः ॥

अन्वयः—विषुवायनेषु 'सङ्क्रान्तिषु' परपूर्वमध्यमान् दिवसान् त्यजेत् । इतरसङ्क्रमेषु परतः पूर्वं अपि षोडश घटिकाः शुभक्रियाविधौ बुधः हि (निश्चयेन) सन्त्यजेत् ॥ ७९ ॥

भाषार्थः—विषुव (मेष-तुला) और अयन (मकर-कर्क) सङ्क्रान्तिमें परपूर्व और मध्य ये तीन दिन शुभकार्योंमें त्याज्य हैं । अन्य ८ सङ्क्रान्तियोंमें सङ्क्रान्तिसे पूर्व और पश्चात् १६ दण्ड पण्डितोंको त्यागने चाहिये ॥ ७९ ॥

वि०—आजकल 'रवेर्दग्धं दिनत्रयम्' इस वचनके अनुसार सङ्क्रान्तिसे पूर्व दिन (मासान्त), पर दिन (मासादि) और सङ्क्रान्ति ये तीन दिन शुभ कार्योंमें त्यागे जाते हैं ॥ ७९ ॥

प्रत्येक ग्रहोंकी सङ्क्रान्ति घटी—

देवद्वयङ्कर्तवोऽष्टाष्टौ नाड्योऽङ्काः खनृपाः क्रमात् ।
वर्ज्याः सङ्क्रमणेऽर्कादेः प्रायोऽर्कस्यातिनिन्दिताः ॥८०॥

अन्वयः—अर्कादेः सङ्क्रमणे क्रमात् देवद्वयङ्कर्तवः अष्टाष्टौ अङ्काः खनृपाः नाड्यः वर्ज्याः । तेषु, अर्कस्य प्रायः अतिनिन्दिता भवन्ति ॥ ८० ॥

भाषार्थः—सूर्यकी सङ्क्रान्तिमें ३३ घटी, चन्द्रमाकी सङ्क्रान्तिमें २ घटी, मङ्गलकी ९ घटी, बुधकी ६ घटी, बृहस्पतिकी ८८ घटी, शुक्रकी ९ घटी और शनिकी १६० घटी त्याज्य हैं। जिनमें सूर्यकी सङ्क्रान्ति घटी अधिक निन्दित है ॥ ८० ॥

वि०—किसी भी ग्रहके राशिसञ्चार (एक राशिसे दूसरी राशिमें जाने) को उस ग्रहकी सङ्क्रान्ति कहते हैं। जब ग्रहका राशिसञ्चार होता है उससे पूर्व और पश्चात् दोनों मिलकर उनको सङ्क्रान्ति घटी कही गई हैं ॥ ८० ॥

उपपत्तिः—किसी भी ग्रहका बिम्बगोल जितने कालमें राशियोग बिन्दूको पार करता है उतना समय उस ग्रहकी सङ्क्रान्ति घटी कही जाती है। वे सङ्क्रान्ति-घड़ियाँ ग्रहोंके बिम्ब और गतिमानके अनुसार अलग २ न्यूनाधिक होती हैं। यद्यपि ग्रहोंका स्पष्ट सङ्क्रान्तिकाल स्पष्ट ग्रहबिम्ब और स्पष्टगतिके अनुसार होना चाहिये। परन्तु आचार्यने स्वल्पान्तरसे ग्रहोंके मध्यबिम्ब और मध्यगतिके अनुसार मध्य संङ्क्रान्ति घटी ही कही है। ग्रहोंकी सङ्क्रान्ति घटी लानेके लिये यह अनुपात होता है कि ग्रहमध्यगतिमें ६० घटी तो ग्रहमध्यबिम्बकलामें क्या= ग्रह सं० घ० = $\frac{\text{६०} \times \text{ग्र. विं. क.}}{\text{ग्र. ग. क.}}$। यहां ग्रहबिम्बकला और ग्रह गतिकलाके स्थानमें अपने २ मानसे उत्थापन देने पर प्रत्येक ग्रहको अलग २ सङ्क्रान्ति घटी होती है। जैसे सूर्यकी सं. घ. = $\frac{\text{६०} \times \text{३२}'\text{।३१}''\text{।}}{\text{५९}'\text{।८}'}$ = ३३ घटी (स्वल्पान्तरसे)। चन्द्रमाकी सं.घ. = $\frac{\text{६०} \times \text{३२}'\text{१०}''\text{।९}''}{\text{७९०}'\text{।३५}''}$ = २ घटी, स्व.। एवं प्रत्येक ग्रहका समझिये ॥ ८० ॥

ग्रहोंकी मध्यमा गति और बिम्बकला—

ग्रह—	रवि	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
मध्यमा गति	५९'।८"	७९०'।३५"	३१'।२६"	५९'।८"	५'।	५९'।८'	२'
बिम्बकला	३२'।३१"।३३	३२'।०"।९"	४'।४५"	६'।२५"	७'।४५"	९'।	५'।४५"

पङ्गु, अन्ध और बधिर लग्न—

घस्रे तुलाली बधिरौ मृगाश्वौ रात्रौ च सिंहाजवृषा दिवान्धाः।
कन्यानृयुक्कर्कटका निशान्धा दिने घटोऽन्त्यो निशि पङ्गुसंज्ञः ॥८१

अन्वयः—तुलाली घस्रे बधिरौ, मृगाश्वौ रात्रौ बधिरौ 'भवतः'। सिंहाजवृषाः च दिवान्धाः, कन्यानृयुक्कर्कटकाः निशान्धाः 'भवन्ति'। तथा, घटः दिने, अन्त्यः निशि पङ्गुसंज्ञः 'भवति' ॥ ८१ ॥

भाषार्थः—तुला और वृश्चिक दिनमें, मकर और धनु रातमें बधिर होते हैं। सिंह, मेष और वृष दिनमें, कन्या, मिथुन और कर्क लग्न रातमें अन्धे होते हैं। कुम्भ लग्न दिनमें और मीन लग्न रातमें पंगु (लंगड़ा) होता है ॥ ८१ ॥

अन्य मतसे पङ्ग्वन्धादि लग्न—

बधिरा धन्वितुलालयोऽपराह्णे मिथुनं कर्कटकोऽङ्गना निशान्धाः।
दिवसान्धा हरिगोक्रियास्तु कुब्जा मृगकुम्भान्तिमभानि सन्ध्ययोर्हि ॥

अन्वयः—धन्वितुलालयः अपराह्णे बधिराः 'भवन्ति।' मिथुनं कर्कटकः अङ्गना 'एते' निशान्धाः 'भवन्ति'। हरिगोक्रियास्तु दिवसान्धाः 'भवन्ति'। मृगकुम्भान्तिमभानि सन्ध्ययोः हि (निश्चयेन) कुब्जाः 'भवन्ति' ॥ ८२ ॥

भाषार्थः—धनु, तुला और वृश्चिक लग्न अपराह्नमें बहिर होते हैं। मिथुन कर्क और कन्या लग्न रातमें अन्धे होते हैं। सिंह, वृष और मेष लग्न दिनमें अन्धे होते हैं। एवं मकर, कुम्भ और मीन लग्न दोनों सन्ध्याओंमें पङ्गु होते हैं ॥ ८२ ॥

बधिरादि लग्नोंके फल—

दारिद्र्यं बधिरतनौ दिवान्धलग्ने वैधव्यं शिशुमरणं निशान्धलग्ने।
पंग्वङ्गे निखिलधनानिनाशमीयुः सर्वत्राधिपगुरुदृष्टिभिर्न दोषः ॥८३॥

अन्वयः—बधिरतनौ विवाहे कृते 'सति' दारिद्र्यं स्यात्। दिवान्धलग्ने स्त्रियाः वैधव्यं स्यात्। निशान्धलग्ने विवाहे सति शिशुमरणं स्यात्। पङ्ग्वङ्गे विवाहे सति वरकन्ययोः निखिलधनानि नाशं ईयुः। परन्तु सर्वत्र अधिपगुरुदृष्टिभिः दोषः न स्यात् ॥ ८३ ॥

भाषार्थः—बधिर लग्नमें विवाह होने पर दरिद्रता (गरीबी) होवे। दिनान्धलग्नमें विवाह होने पर कन्या विधवा हो जाय (वरकी मृत्यु होवे)। निशान्ध लग्नमें सन्तानोंका मरण हो और पङ्गु लग्नमें विवाह होने पर उसकी सारी सम्पत्तियां नाश होवें। परन्तु प्रत्येक लग्नमें लग्नेश और बृहस्पतिकी यदि दृष्टि रहें तो कुछ भी दोष नहीं लगता। अर्थात् ऐसी अवस्थामें शुभ ही होता है ॥ ८३ ॥

नोट—जो लग्न जिस समयमें अन्ध, बधिर या पङ्गु कहा गया है उसका फल उसी कालमें कहना चाहिये। जैसे मीनको रातमें पङ्गु कहा गया है, तो रातमें मीन लग्नमें विवाह होनेपर सम्पत्तिकी हानि कहेंगे।

पङ्गु अन्धादि लग्न गौड़ और मालव देशमें ही त्याज्य हैं । देखिये पहले प्रकरणका १९ वां श्लोक ॥ ८३ ॥

विवाहमें प्रशस्त नवांश—

कार्मुकतौलिककन्यायुग्मलवे झषगे वा ।
यर्हि भवेदुपयामस्तर्हि सती खलु कन्या ॥ ८४ ॥

अन्वयः—कार्मुक-तौलिक-कन्या-युग्मलवे, वा झषगे लवे यर्हि उपयामः भवेत् तर्हि सा कन्या खलु (निश्चयेन) सती भवेत् ॥ ८४ ॥

भाषार्थः—यदि धनु, तुला, कन्या, मिथुन अथवा मीनके नवांशमें विवाह हो तो वह कन्या अवश्य सती (पतिव्रता) होवे ॥ ८४ ॥

वि०—किसी भी लग्नमें धनु-तुला-कन्या और मिथुनके नवांश विवाहमें ग्राह्य हैं । मीनका नवांश सर्वसम्मत नहीं है, किन्तु आवश्यकमें उसका ग्रहण होता है; इसलिये आचार्यने मीन नवांशको 'झषगे वा' इस वाक्यसे विकल्प पक्षमें रखा हैं ॥ ८४ ॥

पूर्वोक्त नवांशोंमें विशेषता—

अन्त्यनवांशे न च परिणेया का न वर्गोत्तममिह हित्वा ।
नो चरलग्ने चरलवयोगं तौलिमृगस्थे शशभृति कुर्यात् ॥ ८५ ॥

अन्वयः—इह वर्गोत्तमं हित्वा अन्त्यनवांशे (नवमे नवांशे) च काचन 'कन्या' न परिणेया । तथा, शशभृति (चन्द्रे) तौलिमृगस्थे 'सति' चरलग्ने चरलवयोगं नो कुर्यात् ॥ ८२ ॥

भाषार्थः—वर्गोत्तमको छोड़कर किसी भी राशिके अन्तिम (९ वें) नवांशमें किसी कन्याका विवाह नहीं करना चाहिये । जिस राशिका अन्तिम नवांश वर्गोत्तम हो उसमें विवाह करना चाहिये । परन्तु जब चन्द्रमा तुला और मकर राशिमें हो तो वहां चर लग्नके चर नवांशमें भी विवाह नहीं करना चाहिये । अर्थात् यहां वर्गोत्तम भी शुभ नहीं होता ॥ ८५ ॥

वि०—किसी भी राशिमें उसी राशिका नवांश वर्गोत्तम कहलाता है । प्रत्येक राशिका ९वां नवांश अशुभ होता है । परन्तु यदि वह नवांश उस राशिका अपना ही हो तो शुभ होता है । जैसे—मिथुन, कन्या, धनु और मीन राशियोंमें ९ वां नवांश अपना ही होता है, इसलिये वह वर्गोत्तम होनेके कारण शुभ होता है । यदि चन्द्रमा तुला या मकरमें रहे तो वहां चरराशिका वर्गोत्तम भी अशुभ ही होता है ॥ ८५ ॥

लग्नभङ्ग योग—

व्यये शनिः खेऽवनिजस्तृतीये भृगुस्तनौ चन्द्रखला न शस्ताः ।

लग्नेट् कविग्लौश्च रिपौ मृतौ ग्लौर्लग्नेट्शुभाराश्च मदे च सर्वे ॥८६॥

अन्वयः—'विवाहलग्नात्' शनिः व्यये, अवनिजः खे, भृगुः तृतीये, चन्द्रखलाः तनौ शस्ताः न 'भवन्ति'। तथा, लग्नेट् (लग्नेशः) कविः (शुक्रः) ग्लौः (चन्द्रमाः) 'एते' रिपौ, न शस्ता भवन्ति। च (पुनः) ग्लौः (चन्द्रः) लग्नेट् (लग्नेशः) शुभाराश्च मृतौ (अष्टमे) न शस्ताः। तथा सर्वे ग्रहाः मदे (सप्तमे) न शस्ताः 'भवन्ति' ॥ ८६ ॥

भाषार्थः—लग्नसे १२ वें शनि, १० वें मङ्गल, ३ रे शुक्र, चन्द्रमा और कोई भी पापग्रह लग्नमें रहने पर शुभ नही है। लग्नेश, शुक्र और चन्द्रमा ये ६ ठे स्थानमें शुभ नहीं होते। चन्द्रमा, लग्नेश, कोई भी शुभग्रह और मङ्गल ८ वें स्थान में शुभ नहीं होते, तथा लग्नसे ७ वें स्थानमें सभी ग्रह अशुभ ही होते हैं ॥ ८६ ॥

लग्न शुद्धिके लिये उक्त स्थानमें उक्त प्रत्येक ग्रहका त्याग करना चाहिये। विशेषकर ७, ८ वें स्थानोंमें किसी भी ग्रहका सर्वथा त्याग ही उत्तम है ॥ ८६ ॥

विवाह लग्नमें ग्रहोंके शुभ स्थान—

त्र्यायाष्टषट्सु रविकेतुतमोऽर्कपुत्रा-
स्त्र्यायारिगः क्षितिसुतो द्विगुणायगोऽब्जः।
सप्तव्ययाष्टरहितौ ज्ञगुरू सितोऽष्ट-
त्रिद्यूनषड्व्ययगृहान् परिहृत्य शस्तः ॥ ८७ ॥

अन्वयः—रविकेतुतमोर्कपुत्राः 'लग्नात्' त्र्यायाष्टषट्सु 'स्थानेषु शस्ताः भवन्ति'। क्षितिसुतः त्र्यायारिगः शस्तः। अब्जः द्विगुणायगः शस्तः। ज्ञगुरू सप्तव्ययाष्टरहितौ शस्तौ भवतः। तथा, सितः अष्ट-त्रि-द्यून-षड्-व्यय-गृहान् परिहृत्य 'अन्येषु' शस्तः भवति ॥ ८७ ॥

भाषार्थः—सूर्य, केतु, राहु और शनि ये लग्नसे ३।११।८।६ स्थानोंमें शुभ होते हैं। मङ्गल ३।११।६ स्थानोंमें शुभ होता है। चन्द्रमा २।३।११ स्थानों में शुभ होता है। बुध और बृहस्पति ७।१२।८ स्थानोंको छोड़कर अन्य स्थानोंमें शुभ होता हैं। (अर्थात् बुध-गुरु ७।८।२२ स्थानोंमें अशुभ हैं)। शुक्र ८।३।७।६।१२ स्थानोंको छोड़कर अन्य स्थानोंमें शुभ होता है ॥ ८७ ॥

कर्तरी आदि दोषोंका अपवाद—

पापौ कर्तरिकारकौ रिपुगृहे नीचास्तगौ कर्तरी-

दोषो नैव सितेऽरिनीचगृहगे तत्षष्ठदोषोऽपि न ।
भौमेऽस्ते रिपुनीचगे नहि भवेद्भौमोऽष्टमो दोषकृ-
न्नीचे नीचनवांशके शशिनि रिःफाष्टारिदोषोऽपि न ॥८८॥

अन्वयः—कर्तरिकारकौ पापौ रिपुगृहे वा नीचास्तगौ 'भवेतां' तदा कर्तरीदोषो नैव भवेत्। सिते अरिनीचगृहगे 'सति' तत्षष्ठदोषः अपि न भवेत्। भौमे अस्ते रिपुनीचगे वा अष्टमः भौमः दोषकृत् न हि भवेत्। तथा, शशिनि नीचे वा नीचनवांशके 'सति तस्य' रिःफाष्टारिदोषः अपि न भवेत् ॥ ८८ ॥

भाषार्थः—कर्तरी दोष करनेवाले दोनों पापग्रह यदि अपने शत्रुकी राशिमें या नीचमें या सूर्यके साथ अस्त हों तो कर्तरी दोष नहीं लगता। 'छठे स्थानमें शुक्र अशुभ होता है, लेकिन, यदि शुक्र अपने शत्रुकी राशिमें या नीच (कन्या) राशिमें हो तो उसके छठे स्थानमें रहने पर भी दोष नहीं होता। आठवेंमें मङ्गल दोषी कहा गया है, लेकिन यदि मङ्गल सूर्यके साथ अस्त हो या शत्रुकी राशिमें या नीच (कर्क) में हो तो उसका ८ वें स्थानका दोष नहीं लगता। एवं चन्द्रमा यदि नीच (वृश्चिक) राशि या नीच नवांशमें हो तो उसका छठे आठवें और १२ वें स्थानमें रहनेका दोष नहीं लगता ॥ ८८ ॥

वि०—इस श्लोकका सारार्थ यह है कि दुष्टयोगवाले ग्रह यदि स्वयं निर्बल हों तो उन दुष्ट योगोंका दोष लागू नहीं होता, बल्कि वे कार्यमें ग्राह्य होते हैं ॥ ८८ ॥

वर्ष आदि दोषोंका परिहार—

अब्दायनर्तुतिथिमासभपक्षदग्ध-
तिथ्यन्धकाणबधिराङ्गमुखाश्च दोषाः ।
नश्यन्ति विद्गुरुसितेष्विह केन्द्रकोणे
तद्वच्च पापविधुयुक्तनवांशदोषः ॥ ८९ ॥

अन्वयः—विद्-गुरु-सितेषु केन्द्रकोणे 'स्थितेषु' इह अब्दायनर्तुतिथिमासभपक्ष-दग्धतिथ्यन्धकाणबधिराङ्गमुखाश्च 'सर्वे' दोषाः नश्यन्ति। पापविधुयुक्तनवांशदोषश्च तद्वत् 'नश्यन्ति' ॥ ८९ ॥

भाषार्थः—बुध बृहस्पति और शुक्र ये यदि विवाहमें केन्द्र (१।४।१०)*

---

* यहां केन्द्रमें ७ वें को नहीं गिनना चाहिये। क्योंकि ७ वें में कोई भी ग्रह शुभ नहीं होता। देखिये श्लोक सं० ८६। इसलिये केन्द्र = १।४।१०।

त्रिकोण (९।५) में हों तो वर्ष, अयन, ऋतु, तिथि, मास, नक्षत्र, पक्ष, दग्धतिथि, अन्ध-कोण बधिरादि लग्न सम्बन्धी सभी दोषोंका नाश होता है। एवं पापग्रह तथा चन्द्रमासे युक्त नवांशका दोष भी नाश हो जाता है।

तात्पर्य यह है कि यदि विवाहके समय बुध, गुरु, शुक्र ये तीन ग्रह लग्नसे १।४।१०।५।९ स्थानोंमें हों तो कोई भी दोष लागू नहीं होता ॥ ८९ ॥

दोषोंका दूसरा परिहार—

केन्द्रे कोणे जीव आये रवौ च लग्ने चन्द्रे वाऽपि वर्गोत्तमे वा।
सर्वे दोषा नाशमायान्ति चन्द्रे लाभे तद्वद्दुर्मुहूर्तांशदोषाः ॥९०॥

अन्वयः—जीवे 'लग्नात्' केन्द्रे कोणे, वा रवौ आये वा लग्ने अपि वा वर्गोत्तमे 'सति' सर्वे दोषाः नाशं आयान्ति। तद्वत् चन्द्रे लाभे 'गतवति' दुर्मुहूर्त्तांशदोषाः नाशं आयान्ति ॥ ९० ॥

भाषार्थः—बृहस्पति यदि लग्नसे केन्द्र (१।४।१०) या कोण (५।९) में हो अथवा सूर्य लग्नसे ११ वें स्थानमें हो, अथवा चन्द्रमा लग्नमें या अपने वर्गोत्तम नवांशमें हो तो सभी दोष नाश हो जाते हैं। एवं चन्द्रमा यदि ११ वें स्थानमें हो तो [1]दुर्मुहूर्त्त दोष और पापनवांश दोष नाश होते हैं ॥ ९० ॥

वि०—यहां केन्द्रमें ७ को नहीं गिनना चाहिये। बुध, शुक्र और गुरु ये तीनों केन्द्र या कोणमें रहने पर दोषोंका नाश करते हैं। जैसे कश्यपजीने कहा है—

काव्ये गुरौ वा सौम्ये वा यदा केन्द्र-त्रिकोणगे।
नाशं यान्त्यखिला दोषाः पापानीव हरिस्मृतेः॥

पाठकोंको ध्यान रखना चाहिये कि उक्त योगोंमें कोई भी एक ग्रह कहे गये स्थानमें रहने पर दोषोंका परिहार करता है ॥ ९० ॥

दोषोंके परिहारमें ग्रहोंकी विशेषता—

त्रिकोणे केन्द्रे वा मदनरहिते दोषशतकं
हरेत्सौम्यः शुक्रो द्विगुणमपि लक्षं सुरगुरुः।
भवेदाये केन्द्रेऽङ्गप उत लवेशो यदि तदा
समूहं दोषाणां दहन इव तूलं शमयति ॥ ९१ ॥

अन्वयः—सौम्यः (बुधः) यदि त्रिकोणे वा मदनरहिते केन्द्रे 'भवेत् तदा' दोषशतकं हरेत्। शुक्रः 'तथा विधः, ततः' द्विगुणं दोषं हरेत्। सुरगुरुः अपि 'तथाविधः' लक्षं दोषं हरेत्। अथ, अङ्गपः (लग्नेशः) उत (अथवा) लवेशः (नवांशपतिः)

१. देखें पीछे ५४ वाँ श्लोक।

यदि 'लग्नात्' आये वा केन्द्रे भवेत् तदा दहनः तूलं इव दोषाणां समूहं शमयति ९१

भाषार्थः—बुध यदि त्रिकोण (५।९) या सप्तमके अतिरिक्त केन्द्र (अर्थात् १।४।१०) में हो तो १०० दोषोंको नाश करता है। यदि शुक्र उस तरह हो तो उससे दूने (२००) दोषोंको नाश करता है। यदि बृहस्पति उक्त स्थानमें हो तो लाख दोषोंको नाश करता है एवं यदि लग्नेश अथवा लग्नका नवांशेश लग्नसे ११ वें वा १।४।१० वें स्थानमें हो तो जैसे रूईकी ढरको आग बातकी बातमें नाश करती है उसी तरह दोषोंके समूहको नाश करता है।

तात्पर्य यह है कि विवाह कालमें लग्नसे १।४।१०।११ स्थानोंमें बुध, शुक्र या गुरु तथा लग्नेश या नवांशेश का होना शुभ होता है ॥ ९१ ॥

लग्नमें ग्रहोंका विंशोपक—

द्वौ द्वौ ज्ञभृग्वोः पञ्चेन्दौ रवौ सार्धत्रयो गुरौ ।
रामा मन्दागुकेत्वारे सार्धैकैकं विंशोपकाः ॥ ९२ ॥

अन्वयः—ज्ञभृग्वोः द्वौ द्वौ, इन्दौ पञ्च, रवौ सार्धत्रयः, गुरौ रामाः, मन्दागुकेत्वारे सार्धैकैकं विंशोपकाः भवन्ति ॥ ९२ ॥

भाषार्थः—बुध और शुक्रके २, २ चन्द्रमाके ५, सूर्यके ३॥, बृहस्पतिके ३ शनि, राहु-केतु, और मङ्गलके १॥ विंशोपक हैं ॥ ९२ ॥

वि०—इस श्लोकका भावार्थ यह है कि जिस ग्रहके लिये जो स्थान विवाहमें शुभ कहा गया है, उस स्थानमें उस ग्रहके रहनेपर प्रकृत श्लोकोक्त सङ्ख्याके तुल्य उस ग्रहका लग्नवल होता है। इस तरह विवाह लग्नमें ग्रहोंकी स्थितिसे उनके बलका योग करके शुभाशुभ फल विचारना चाहिये। प्रत्येक ग्रहके विंशोपकोंका योग २० होता है। यदि लग्नमें विंशोपकयोग ५ से कम हो तो उस लग्न का त्याग करे। ५ से १० तक अधम पक्ष समझे। १० से १५ तक मध्यम और १५ से २० तक उत्तम समझना चाहिये। यदि दूसरा लग्न नहीं मिले तो अधम पक्ष भी ग्राह्य होता है। इस तरह लग्नविंशोपकका विचार करके लग्नकी नियुक्ति करनी चाहिये ॥ ९२ ॥

ग्रहोंसे श्वशुर आदिका विचार—

श्वश्रूः सितोऽर्कः श्वशुरस्तनुस्तनुर्जामित्रपः स्याद्दयितो मनः शशी ।
एतद्बलं सम्प्रतिभाव्य तान्त्रिकस्तेषां सुखं सम्प्रवदेद्विवाहतः ॥९३॥

अन्वयः—सितः श्वश्रूः, अर्कः श्वशुरः, तनुः तनुः (लग्नं शरीरम्) जामित्रपः दयितः, शशी मनः स्यात्। 'विवाहकाले' तान्त्रिकः एतद् बलं सम्प्रतिभाव्य विवाहतः तेषां सुखं सम्प्रवदेत् ॥ ९३ ॥

भाषार्थः—शुक्र सास, सूर्य श्वशुर, लग्न अपना शरीर, सप्तमेश पति और चन्द्रमा मन होता है। विवाहके समय इन ग्रहोंका बल विचार कर ज्योतिषीको विवाहके बाद उस कन्याके सास आदि परिवारका सुख विचारना चाहिये। जो ग्रह बली और शुभ आदि वर्गमें हो उसका सुख और जो ग्रह दुर्बल अस्त और अशुभ वर्गमें हो उससे दुःख कहना चाहिये ॥ ९३ ॥

सङ्कीर्णजातियोंके विवाहका मुहूर्त—

कृष्णे पक्षे सौरिकुजार्केऽपि च वारे
वर्ज्ये नक्षत्रे यदि वा स्यात् करपीडा।
सङ्कीर्णानां तर्हि सुतायुर्धनलाभ-
प्रीतिप्राप्त्यै सा भवतीह स्थितिरेषा ॥ ९४ ॥

अन्वयः—कृष्णे पक्षे, अपि च सौरिकुजार्के वारे, वर्ज्ये नक्षत्रे वा यदि सङ्कीर्णानां करपीडा स्यात् तर्हि सा (करपीडा) सुतायुर्धनलाभप्रीतिप्राप्त्यै भवति, इह एषा स्थितिः अस्ति ॥ ९४ ॥

भाषार्थः—कृष्ण पक्षमें, शनि मङ्गल और रविवारमें तथा विवाहवर्जित नक्षत्रोंमें यदि सङ्कीर्ण (म्लेच्छ यवन आदि) जातियोंका विवाह हो तो पुत्र, आयु, धनलाभ और प्रीतिकी प्राप्ति होती है। इन सङ्कीर्ण जातियोंमें ऐसा व्यवहार है कि वे निन्दित समयमें ही विवाह किया करते हैं ॥ ९४ ॥

वि०—मूल पद्यके 'वर्ज्ये नक्षत्रे यदि वा' शब्दसे यह ध्वनि निकलती है कि विहित नक्षत्रोंमें भी सङ्कीर्णोंका विवाह शुभप्रद होता है। परन्तु प्रायः देखा जाता है कि उनके प्रत्येक कार्य हिन्दू मतसे विरुद्ध ही होते हैं, इसलिये वे निन्दित तिथि वार नक्षत्रोंमें ही विवाहादि करते हैं ॥ ९४ ॥

गान्धर्व आदि विवाहमें नक्षत्र शुद्धि—

गान्धर्वादिविवाहेऽर्काद्वेदनेत्रगुणेन्दवः ।
कुयुगाङ्गाग्निभूरामास्त्रिपद्यामशुभाः शुभाः ॥ ९५ ॥

अन्वयः—गान्धर्वादिविवाहे त्रिपद्यां (त्रिपदी-चक्रे) अर्कात् (सूर्य नक्षत्रात्) वेदनेत्रगुणेन्दवः कुयुगाङ्गाग्निभूरामाः 'क्रमेण' अशुभाः शुभाः भवन्ति ॥ ९५ ॥

भाषार्थः—गान्धर्व आदि विवाहमें त्रिपदी चक्रमें सूर्यके नक्षत्रसे ४ नक्षत्र अशुभ, उसके बाद २ शुभ, उसके बाद ३ अशुभ, १ शुभ, १ अशुभ, ४ शुभ,

६ अशुभ, ३ शुभ, १ अशुभ और ३ शुभ होते हैं। अशुभ नक्षत्राको छोड़कर शुभ नक्षत्रोंमें विवाह करना चाहिये।

वि०—१ प्राजापत्य, २ ब्राह्म, ३ दैव, ४ आर्ष, ५ गान्धर्व, ६ आसुर, ७ राक्षस और ८ पैशाच ये ८ प्रकारके विवाह इस प्रकरणके आदिमें लिखे गये हैं। जिनमें प्रथम ४ विवाहों का समय शास्त्रानुसार निश्चित है। परन्तु गान्धर्व, आसुर, राक्षस और पैशाच विवाह सर्व-कालमें (जब कभी) कहे गये हैं। जैसे श्रीपतिने लिखा है—

प्राजापत्य-ब्रह्म-दैवार्षसंज्ञाः कालेषूक्तेष्वेव कार्या विवाहाः।
गान्धर्वाख्यश्चासुरो राक्षसश्च पैशाचो वा सर्वकालं विधेयः॥

अत एव गान्धर्व आदिके सार्वकालिक होनेके नाते वर्ष मास दिन आदिकी शुद्धि नहीं विचार कर केवल त्रिपदी चक्रमें नक्षत्र शुद्धि बतायी गयी है ॥ ९५ ॥

इस प्रकार विवाहकी गणना और उसके ग्राह्याग्राह्य मुहूर्तके गुण दोषोंका विवरण करनेके बाद अब आगे विवाहसे पूर्व कर्त्तव्योंका विवरण और उसका समय बताया जा रहा है।

विवाहके उपकरणोंके आरम्भका मुहूर्त—

विधोर्बलमवेक्ष्य वा दलनकण्डनं वारकं
गृहाङ्गणविभूषणान्यथ च वेदिकामण्डपान् ।
विवाहविहितोडुभिर्विरचयेत्तथोद्वाहतो
न पूर्वमिदमाचरेत् त्रिनवषण्मिते वासरे ॥ ९६ ॥

अन्वयः—'वरकन्ययोः' विधोः बलं अवेक्ष्य वा (असम्भवे विधोः बलमदृष्ट्वाऽपि) अथवा विवाहविहितोडुभिः दलनकण्डनं वारकं गृहाङ्गणविभूषणानि वेदिकामण्डपान् विरचयेत्। तथा, उद्वाहतः पूर्वं त्रिनवषण्मिते वासरे इदं सर्वं न आचरेत् ॥ ९६ ॥

भाषार्थः—विवाहके पहले वर और कन्याका चन्द्रबल देखकर (अभावमें चन्द्रशुद्धि न मिलने पर भी) विवाहमें विहित नक्षत्रोंमें गेहूं आदिका पीसना, चावलके लिये धान आदिका कूटना, मङ्गल कलश, घर आङ्गनका विभुषण (लिपना पोतना चित्रकारी करना) वेदी और मण्डपकी रचना करनी चाहिये। परन्तु, विवाहसे पहले तीसरे, छठे और ९ वें दिनोंमें पूर्वोक्त कार्य नहीं होवे ॥९६॥

वेदीका प्रमाण और मण्डपोद्वासनका दिन—

हस्तोच्छ्राया वेदहस्तैः समन्तात्तुल्या वेदी सद्मनो वामभागे ।
युग्मे घस्रे षष्ठहीने च पञ्चसप्ताहे स्यान्मण्डपोद्वासनं सत् ॥९७॥

अन्वयः—सद्मनः (विवाहमण्डपात्) वामभागे हस्तोच्छ्राया समन्तात् वेदहस्तैः तुल्या वेदी कार्या । अथ विवाहानन्तरं, षष्ठहीने युग्मे घस्रे पञ्च-सप्ताहे च मण्डपोद्वासनं सत् स्यात् ॥ ९७ ॥

भाषार्थः—विवाह-मण्डपके बांये भागमें एक हाथ ऊँची और चारों ओर समान चार २ हाथ नापवाली वेदी करनी चाहिये । विवाहके बाद छठेको छोड़कर सम दिन (अर्थात् २, ४, ८, १० इत्यादि) और ५ वें तथा ७ वें दिनमें विवाह-मण्डपका उद्वासन (उठाना) शुभ होता है ॥ ९७ ॥

वि०—मङ्गल कार्योंका मण्डप १६ हाथ उत्तम, १२ हाथ मध्यम और १० हाथ अधम पक्ष है । जैसे—विवाह पटलमें—

मङ्गलेषु च सर्वेषु मण्डपो गृहमानतः ।
कार्यः षोडशहस्तो वा द्विषड्ढस्तो दशावधि ॥

उपनयन आदिमें मण्डप वटु (लड़के) के हाथ से और विवाहमें कन्याके हाथसे नापना चाहिये । यज्ञादिका मण्डप यज्ञकर्त्ता यजमानके हाथसे नापना चाहिये ॥ ९७ ॥

विवाहके पहले वर कन्याको तैल आदि लगाने का समय—

मेषादिराशिजवधूवरयोर्वटोश्च
तैलादिलापनविधौ कथिताऽत्र सङ्ख्या ।
शैला दिशः शर-दिगक्ष-नगाद्रि-बाणा
बाणाक्ष-बाण-गिरयो विबुधैस्तु कैश्चित् ॥ ९८ ॥

अन्वयः—कैश्चित् विबुधैस्तु मेषादिराशिजवधूवरयोः वटोः (व्रतिनः बालकस्य) च तैलादिलापनविधौ अत्र शैलाः, दिशः, शर-दिगक्ष-नगाद्रि-बाणाः बाणाक्ष-बाण-गिरयः 'इति' सङ्ख्या कथिता ॥ ९८ ॥

भाषार्थः—मेष आदि राशियोंमें जन्म लेनेवाले वर-कन्या और उपनयन वाले वटुके तेल आदि लगाने में पण्डितोंने दिनोंकी सङ्ख्या इस प्रकार कही है । मेषराशिमें ७ दिन, वृषमें १०, मिथुनमे ५, कर्कमें १०, सिंहमें ५, कन्यामें ७, तुलामें ७, वृश्चिकमें ५, धनुमें ५, मकरमें ५, कुम्भमें ५ और मीनमें ७ दिन । अर्थात् जिस वर कन्या या वटुकी जन्मराशि मेष है उसे ७ दिन पहले तेल उबटन आदि लगाना चाहिये । ऐसे ही प्रत्येक राशिवालोंको समझिये ॥ ९८ ॥

मण्डपादिमें स्तम्भ रोपणकी व्यवस्था—

सूर्येऽङ्गना-सिंह-घटेषु शैवे स्तम्भोऽलिकोदण्डमृगेषु वायौ ।
मीनाजकुम्भे निर्ऋतौ विवाहे स्थाप्योऽग्निकोणे वृषयुग्मकर्के ॥९९॥

अन्वयः—अङ्गना·सिंह·घटेषु 'स्थिते' सूर्ये शैवे (ईशानकोणे) अलि·कोदण्ड· मृगेषु स्थिते सूर्ये वायो, मीनाजकुम्भे निर्ऋतौ, तथा वृष·युग्म·कर्के अग्निकोणे विवाहस्तम्भः स्थाप्यः ॥ ९९ ॥

भाषार्थः—जब सूर्य कन्या·सिंह-तुला राशिमें हो तो मण्डपके ईशान कोणमें, वृश्चिक-धनु-मकरमें हों तो वायव्य कोणमें, कुम्भ-मीन-मेषमें हों तो नैर्ऋति कोणमें और वृष मिथुन-कर्कमें हो तो अग्निकोणमें विवाहमें स्तम्भका स्थापन करना चाहिये ॥ ९९ ॥

वि०—आजकल विवाहमें स्तम्भ स्थापन जिसे मण्डप पर वंशगड़ी तथा हरीशरोपण कहते हैं, वही है। यहां सन्देहका अवसर है कि विवाह तो वैशाख ज्येष्ठ आषाढ़ अग्रहण माघ और फाल्गुनमें ही बताया गया है परन्तु यहां स्तम्भ स्थापन प्रत्येक मासमें कहा जाता है, ऐसा क्यों ? इसका समाधान यही जान पड़ता है कि जैसे सङ्कीर्ण जातियोंके विवाहमें और गान्धर्व आदि विवाहोंमें कालका निश्चय नहीं है अर्थात् सर्वदा हो सकता है इसलिये ऐसे विवाहोंमें मण्डप पर स्तम्भ स्थापन उक्त मासक्रमसे करना चाहिये ॥ ९० ॥

गोधूलि लग्नकी प्रशंसा—

> नास्यामृक्षं न तिथि-करणं नैव लग्नस्य चिन्ता
> नो वा वारो न च लवविधिर्नो मुहूर्तस्य चर्चा ।
> नो वा योगो न मृतिभवनं नैव जामित्रदोषो
> गोधूलिः सा मुनिभिरुदिता सर्वकार्येषु शस्ता ॥ १०० ॥

अन्वयः—'यतः' सा गोधूलिः मुनिभिः सर्वकार्येषु शस्ता उदिता, 'अतः' अस्यां (गोधूल्याम्) ऋक्षं न चिन्त्यम्, तिथिकरणं न चिन्त्यम्, लग्नस्य चिन्ता नैव कार्या, वारः नैव चिन्त्यः, लवविधिश्च न चिन्त्यः, मुहूर्तस्य चर्चा नो कार्या; योगो वा नो चिन्त्यः, मृतिभवनं नैव चिन्त्यम्, जामित्रदोषः अपि नैव चिन्त्यः ॥ १०० ॥

भाषार्थः—मुनियोंने * गोधूलि समयको प्रत्येक कार्यमें प्रशस्त कहा है इसलिये इस गोधूलि कालमें नक्षत्र, तिथि करण, लग्न, वार, नवांश, मुहूर्त्त, योग, अष्टमशुद्धि और जामित्र दोष इत्यादि किसी भी विषय का विचार नहीं करना चाहिये ॥ १०० ॥

वि०—इस श्लोकमें पाठक लोग गोधूलिकी भरपूर प्रशंसा देखकर ऐसा न समझें कि जब कभी गोधूलि समयमें विवाह कराना चाहिये । इसका भावार्थ यह है कि जब लग्नकी सङ्कीर्णता

---

* साधारणतः सूर्यबिम्बका आधा अस्त होनेसे पहले और पीछे आधी-आधी घड़ी मिलकर एक घड़ी गोधूलि समय है ।

हो (अर्थात् लग्नशुद्धि ठीक नहीं मिलती हो) तो गोधूलि लग्नमें विवाह करना चाहिये। नक्षत्र वारादिका विचार (अर्थात् विहित तिथि-वार-नक्षत्रका ग्रहण) तो अवश्य ही करना चाहिये ॥ १०० ॥

समय भेदसे गोधूलि काल—

पिण्डीभूते दिनकृति हेमन्तर्तौ स्यादर्धास्ते तपसमये गोधूलिः।
सम्पूर्णास्ते जलधरमालाकाले त्रेधा योज्या सकलशुभे कार्यादौ ॥

अन्वयः—हेमन्तर्तौ दिनकृति पिण्डीभूते सति, तपसमये अर्धास्ते सति, जलधरमालाकाले सम्पूर्णास्ते सति 'घटीप्रमाणा' गोधूलिः स्यात्। इयं त्रेधा गोधूलिः सकलशुभे कार्यादौ योज्या ॥ १०१ ॥

भाषार्थः—हेमन्त ऋतु-(मार्ग-पूस-माघ-फाल्गुन) में सूर्यके पिण्डाकार (गोलाकार सुखदृश्य) होने पर, तपकाल-(चैत-वैशाख-ज्येष्ठ-आषाढ़) में सूर्यका आधा बिम्ब अस्त होने पर और वर्षाकाल-(श्रावण-आद्र-आश्विन-कात्तिक) में सूर्यके सम्पूर्ण अस्त हो जाने पर १ घड़ी गोधूलि काल जानना चाहिये। यह तीनों प्रकारकी गोधूलि प्रत्येक शुभ कार्यमें अति प्रशस्त है ॥१०१॥

गोधूलि कालमें भी आवश्यक वर्जनीय—

अस्तं याते गुरुदिवसे सौरे सार्के
लग्नान्मृत्यौ रिपुभवने लग्ने चेन्दौ।
कन्यानाशस्तनुमदमृत्युस्थे भौमे
वोढुर्लाभे धनसहजे चन्द्रे सौख्यम् ॥ १०२ ॥

अन्वयः—गुरुदिवसे अस्तं याते, सौरे सार्के गोधूलिः 'शुभा' भवति। तथा, लग्नात् मृत्यौ रिपुभवने लग्ने च इन्दौ सति कन्यानाशः स्यात्। एवं 'लग्नात्' तनुमदमृत्युस्थे भौमे सति वोढुः (वरस्य) नाशः स्यात्। किन्तु लाभे धनसहजे च चन्द्रे सति सौख्यं स्यात् ॥ १०२ ॥

भाषार्थः—बृहस्पतिवारमें सूर्यके अस्त होने पर और शनिवारमें सूर्यके रहने पर ही गोधूलि शुभ होती है। गोधूलि समयमें भी यदि चन्द्रमा लग्नमें, लग्नसे ८ वें, या ६ ठे स्थानमें हो तो विवाह होने पर कन्याका मरण हो। एवं यदि मङ्गल लग्नमें या लग्नसे ७ वें, या ८ वें स्थानमें हो तो वरका मरण हो। परन्तु गोधूलिमें भी यदि चन्द्रमा ११ वें २ रे या ३ रे स्थानमें हो तो वर-वधूको सौख्यकर होता है ॥ १०२ ॥

वि०—यद्यपि सूर्यास्तकाल ही सामान्यतः गोधूलि कही गई है। परन्तु गुरुवारके दिन सूर्यास्तकाल अन्तिम अर्धयाम होनेके कारण निन्दित है; इसलिये गुरुवारमें सूर्यास्तके बाद गोधूलि शुभ होती है और शनिवारमें सूर्यास्दके बाद प्रथम कुलिक मुहूर्त होनेके कारण सूर्य-डूबनेके पहले ही गोधूलिकाल शुभ है ॥ १०२ ॥

मेषादि १२ राशियोंमें सूर्य की गति—

मेषादिगेऽर्केऽष्टशरा नगाक्षाः सप्तेषवः सप्तशरा गजाक्षाः ।
गोक्षाः खतर्काः कुरसाः कुतर्काः कङ्गानि षष्टिर्नवपञ्च भुक्तिः १०३

अन्वयः—अर्के मेषादिगे 'क्रमेण' अष्टशराः, नगाक्षाः, सप्तेषवः, सप्तशराः, गजाक्षाः, गोक्षाः, खतर्काः, कुरसाः, कुतर्काः, कङ्गानि, षष्टिः, नवपञ्च 'इयं' भुक्तिः (स्पष्टगतिकला) भवति ॥ १०३ ॥

भाषार्थः—मेष राशिमें सूर्यकी स्पष्टा गति ५८ कला, वृष राशिमें ५७, मिथुनमें ५७′, कर्कमें ५७′, सिंहमें ५८′, कन्यामें′, ५९′, तुलामें ६०′, वृश्चिकमें ६१′, धनुमें ६१′, मकरमें ६१′, कुम्भमें ६०′ और मीनमें ५९′, कला होती है॥

उपपत्तिः—

सूर्यकी दैनिक मध्यमा गति ५९′।८″ है। परन्तु स्पष्टा गति प्रतिदिन भिन्न २ होती है। यहां आचार्यने प्रति दिन स्पष्टा गतिको विलक्षण होनेपर भी स्वल्पान्तरसे १ मासमें एक तरहकी गति लिखो है। प्रत्येक राशिमें सिद्धान्त गणितके द्वारा सूर्यका गतिफल लाकर उस गतिफलको मध्यमा गतिमें यथा योग्य (धन या ऋण) संस्कार करके उस राशिकी स्पष्टा गति बनाई है। यह स्पष्टा गति कला-विकला युक्त होती है परन्तु आचार्यने लाघवके लिये विकला को छोड़ कर केवल कला ही लिखी है। प्रतीतिके लिये गतिका साधन देखें।

जब सूर्य मेषमें प्रवेश करता है उस समय उसका राश्यादिमान=०।०°।०′।०″। होता है। सूर्यका मन्दोच्च ७८° = २।१८°।०′।०″ है। मन्दोच्चमें सूर्यके घटानेसे उसका मन्दकेन्द्र २।१८°। ०′।०′ हुआ। यह तीन राशिसे कम होनेकेकारण इतना ही भुज हुआ। इस भुजको ३ राशिमें घटानेसे ०।१२°।०′।०″ कोटि हुई। लघुज्याकी रीतिसे इसकी दूनी ०।२४° कोटिज्या हुई। उसके बाद "तत्कोटिजीवा कृतबाणभक्ता रवेः" इस गतिफलके आनयनसे गतिफल = $\frac{२४}{५४}$ = ०′।२७″। हुआ यहां सूर्यका मन्दकेन्द्र २।१८°।०।० मकरादि ६ राशिके भीतर होनेसे यह ०′। २७″ गतिफल ऋण हुआ, इसलिये इसे मध्यमा गतिमें घटानेसे सूर्यकी स्पष्टा गति (५९′। ८″—०′।२७″) = ५८′।४१″ हुई। परन्तु आचार्यने विकलाको छोड़कर ५८′ गति लिखी और सम्पूर्ण मेषराशिमें सूर्यकी स्पष्टा गति ५८′ यही मानी। इसी तरह वृषादि राशिमें भी समझिये ॥ १०३ ॥

इष्टकालमें सूर्यका स्पष्टीकरण—

संक्रान्तियातघस्राद्यैर्गतिर्निघ्नी खषड्—६० हृता ।
लब्धेनांशादिना योज्यं यातर्क्षं स्पष्टभास्करः ॥ १०४ ॥

अन्वयः—'सूर्यस्याभीष्टराशिसम्बन्धिनी' गतिः सङ्क्रान्तियातघस्राद्यैः निघ्नी खषड् हृता लब्धेन अंशादिना यातर्क्षं योज्यं तदा 'तावान्' स्पष्टभास्करः स्यात् १०४

भाषार्थः—इष्ट राशि सम्बन्धी सूर्यकी गतिको इष्ट राशिके सङ्क्रान्तिकालसे वर्तमान इष्टकाल तक जो दिनादि चालन हो उससे गुणकर ६० से भाग देने पर जो अंशादि लब्धि मिले उसे बीती हुई राशि सङ्ख्यामें जोड़नेसे राश्यादि स्पष्ट सूर्य हो जाता है ॥ १०४ ॥

उदाहरण—

जैसे ज्येष्ठ शुक्ल प्रतिपदा शुक्रके दिन १०।२० दण्डादि कालमें मिथुनकी सङ्क्रान्ति हुई और ज्येष्ठ शुक्ल पञ्चमी मङ्गलके दिन १५।३० इष्टकालमें सूर्यका स्पष्टीकरण करना है तो यहां सङ्क्रान्तिकालसे पञ्चमी मङ्गलके इष्ट कालतक गत वारादि ४।५।१० को मिथुन राशिवाली सूर्यकी गति ५७ से गुणाकर २३२।५४।३० में ६० से भाग देने पर लब्ध ३°।५२′।५४″।३०‴ अंशादिको गत २ राशिमें जोड़नेसे स्पष्ट सूर्य २।३°।५२′।५४″ हुआ ॥ १०४ ॥

उपपत्तिः—

एक दिनकी सूर्यकी गति जानकर अनुपातसे सङ्क्रान्तिकाल और इष्टकालके दिनादि अन्तरमें सूर्यकी गति आनकर कलादिको ६० से भाग देकर अंशादि बनाकर गत राशिमें जोड़ने से राश्यादि सूर्य होंगे ही । इसलिये यदि एक दिनमें सूर्यकी गति कला तो इष्ट दिनादिमें क्या = ग. क. × इ. दि. = इष्टदिनादिसम्बन्धी सूर्यकी गतिकला । पुनः ६० कलामें १ अंश तो इष्टगतिकलामें क्या = $\frac{\text{ग. क.} \times \text{इ. दि}}{६०}$ = इ. अंशादि । ऐसा उपपन्न हुआ ॥

परन्तु यहां गतिके स्थूल होनेके कारण यह प्रकार स्थूल है । केवल तात्कालिक स्थूल व्यवहारके लिये आचार्यने इस प्रकारको बताया है ॥ १०४ ॥

लग्नमें अभीष्ट नवांशका आनयन—

तनोरिष्टांशकात् पूर्वं नवांशा दशसंगुणाः ।
रामाप्ताः लब्धमंशाद्यं तनोर्वर्गादिसाधने ॥ १०५ ॥

अन्वयः—तनोः (लग्नस्य) इष्टांशकात् (अभीष्टनवांशात्) पूर्वं नवांशाः 'यावन्मिताः' ते, दशसङ्गुणाः रामाप्ताः (त्रिभक्ताः) लब्धं वर्गादिसाधने तनोः अंशाद्यं 'स्यात्' ॥ १०५ ॥

भाषार्थः—लग्नके अपेक्षित नवांशसे पहले जितने नवांश बीते हों उन्हें १०

से गुण कर ३ से भाग देनेपर लग्नके षड्वर्ग साधनके लिये भुक्त अंशादि होंगे ॥ १०५ ॥

उदाहरण—

जैसे विवाहके लिये मिथुन लग्नमें विशुद्ध मीनका नवांश देखना है कि कब होगा ?, तो मिथुनमें तुला आदि नवांशके क्रमसे अपेक्षित मीनसे पूर्व कुम्भका नवांश ५ वां हुआ; इसलिये ५ को १० से गुणाकर ३ से भाग देनेपर १६°।४०′ हुआ। अतः मिथुन लग्नमें १६।४०′ अंशादि बीतने पर मीनका नवांश आरम्भ होगा। ऐसे ही सर्वत्र समझें ॥ १०५ ॥

उपपत्तिः—

एक राशिमें ३० अंश और ९ नवांश होते हैं। इसलिये यहां किसी भी लग्नमें इष्ट नवांश जाननेके लिये यह अनुपात किया जाता है कि नव नवांशोंमें ३० अंश तो इष्ट नवांशमें क्या ? तो लब्धि इष्ट नवांश सम्बन्धि लग्नके अंश होते हैं $=\frac{३० \times नवांश}{९} = \frac{१० \times नवांश}{३}$ ।∴ उपपन्न हुआ ॥ १०५ ॥

लग्न और सूर्यको जानकर इष्टकालका ज्ञान—

अर्काल्लग्नात्सायनाद्भोग्यभुक्तैर्भागैर्निघ्नात्स्वोदयात्खाग्निभक्तात् ।

भोग्यं भुक्तं चान्तरालोदयाढ्यं षष्ट्या भक्तं स्वेष्टनाड्यो भवेयुः१०६

अन्वयः—सायनात् अर्कात् सायनात् लग्नाच्च, भोग्य-भुक्तैः भागैः निघ्नात् स्वोदयात् खाग्निभक्तात् 'फलं क्रमेण' अर्कस्य भोग्यं लग्नस्य भुक्तं 'स्यात्'। 'तत्' तयोः अन्तरालोदयाढ्यं षष्ट्या भक्तं 'तदा' स्वेष्टनाड्यः भवेयुः ॥ १०६ ॥

भाषार्थः—सायन (अयनांश जोड़े हुए) सूर्यके भोग्यांश और सायन लग्नके भुक्तांशोंको अलग २ अपने २ उदयमान (पलात्मक) से गुणकर उनमें ३० से भाग देनेपर अलग २ सूर्यके भोग्य और लग्नके भुक्त पल होंगे। दोनोंके योगमें सूर्य और लग्नके मध्यवाली राशियोंके उदयपलोंको जोड़कर योगफलमें ६० से भाग देनेपर सूर्योदयकालसे वर्तमान कालतक इष्ट घटी होती है ॥ १०६ ॥

उदाहरण—यहाँ यह विचारना है कि पूर्व श्लोकसे मिथुन लग्नमें मीनका नवांश कब प्रारम्भ होगा। उसके लिये लग्न राश्यादि २।१६°।४०′।१०″ और स्पष्ट सूर्य राश्यादि १०।६°। ३३′।३४″ इन दोनोंमें अयनांश २१°।२२′।२३″ जोड़नेसे सायन लग्न ३।८°।२′।२३″ और सायन सूर्य १०।२७।५५।५७ हुए। सायन लग्नके भुक्तांश ८°।२′।२३″ को कर्कके उदय ३४२ से गुणकर उसमें ३० का भाग देनेसे लग्नके भुक्तपल ९२।३५ हुए और सायन सूर्यके भोग्यांश (३०° = २७°।५५′।५७′) = २°।४।३″ को कुम्भके उदय २५६ से गुणकर उसमें

३० का भाग देनेसे सूर्यके भोग्य पल १७।२६ हुए। इन दोनोंके योग (९१।३५+१७।२६)= १०९।१ में सायन सूर्य और लग्नके मध्यवर्ती मीन, मेष, वृष और मिथुनके उदयमान (२२१+२२१+२५३+३०४) को जोड़कर ११०८ पलमें साठका भाग देनेसे दण्डादि इष्ट काल १८।२८ हुआ। अर्थात् सूर्योदयसे १८।२८ दण्डादि पर मिथुन लग्नमें मीनका नवांश लगेगा ॥ १०६ ॥

उपपत्तिः—

सूर्य और लग्नके बीच राशिचक्रमें (क्रान्तिवृत्तमें) सूर्यके भोग्यांश लग्नके भुक्तांश और सूर्य-लग्नके मध्यवर्ती राशि इन तीन खण्डोंका योग रहता है। इन्हीं तीनों खण्डोंके पल अहोरात्रवृत्तमें सूर्यसे उदय क्षितिज पर्यन्त इष्ट काल कहलाते हैं। इसलिये यदि लग्न और सूर्यका ज्ञान हो तो सायन सूर्यके भोग्यपल और सायन लग्नके भुक्त पलोंके योगमें दोनोंके मध्यवर्ती राशियोंके जोड़ने पर सूर्योदयसे इष्टकालका ज्ञान होगा। क्योंकि उदयके समय सूर्यके समान ही लग्न (अर्थात् सूर्य ही लग्न) होता है। इसलिये सायन सूर्यके भोग्यांशके पल बनानेके लिये यह अनुपात किया जाता है कि यदि ३० अंशोंमें सूर्यस्थित राशिके उदयपल आते हैं तो सूर्यके भोग्य अंशोंमें क्या ? = $\frac{\text{रा. उ} \times \text{सू. भो. अं.}}{३०}$ = सूर्यके भोग्यपल। एवं ३० अंशोंमें लग्नराशिके उदयपल पाते हैं तो लग्नके भुक्त अंशोंमें क्या ?

$= \frac{\text{रा. उ.} \times \text{ल. भु. अं}}{३०}$ = लग्नके भुक्तपल।

इष्टकालके पलोंके जानने पर पलोंको ६० से भाग देनेसे दण्डादि इष्टकाल होता है। इसलिये उपपन्न हुआ ॥ १०६ ॥

लग्न और इष्टकालमें विशेष—

चेल्लग्नाऽर्कौ सायनावेकराशौ तद्विश्लेषघ्नोदयः खाग्निभक्तः।
स्वेष्टः कालो लग्नमूनं यदाऽर्काद्रात्रेः शेषोऽर्कात्सषड्भान्निशायाम् ॥

अन्वयः—चेत् सायनौ लग्नार्कौ एकराशौ 'भवेतां तदा' तद्विश्लेषघ्नोदयः खाग्निभक्तः स्वेष्टः कालः स्यात्।

यदा लग्नं अर्कात् ऊनं 'तदा' रात्रेः शेषः 'कालः स्यात्'। तथा, निशायां (सूर्यास्तानन्तरमिष्टकाले) सषड्भात् अर्कात् 'लग्नं साध्यम्' ॥ १०७ ॥

भावार्थः—यदि सायन लग्न और सायन सूर्य दोनों एक ही राशिमें हों तो वहाँ लग्नमें सूर्यको घटा कर शेष अंशादिको उस राशिके उदय मानसे गुणकर उसमें ३० से भाग देनेसे लब्धि सूर्योदयसे इष्ट काल होता है।

एक राशिमें भी यदि सायन सूर्यसे सायन लग्न कम हो तो उक्त रीतिसे जो इष्टकाल होगा वह रातका शेषकाल (अर्थात् सूर्योदयसे पहलेका) होगा। यदि

रातमें लग्न साधन करना हो (अर्थात् सूर्यास्तके बादका इष्टकाल हो) तो सूर्यमें ६ राशि जोड़कर रातके इष्टकालसे पूर्वोक्त रीतिसे साधन करे ॥ १०७ ॥

उदाहरण—कल्पना किया कि सायन सूर्य १।२३।५३।१५ और सायन लग्न १।२८। ३७।५० है। इन दोनोंकेअन्तर ४°।४४′।३५″को वृषके उदय २५३ से गुणाकर १२००।०।३५ में ३० से भाग देनेसे पलात्मक इष्टकाल ४० हुआ। इसमें ६० का भाग देने पर दण्डादि इष्टकाल ०।४० हुआ।

सूर्यसे लग्नके कम होनेपर उदाहरण—

सायन सूर्य १।२४।४९।७ सायन लग्न १।१७।४७।११ यहाँ एक ही राशिमें सूर्यसे लग्न कम है, इसलिये दोनोंके अन्तर ७°।१′।५६″ को वृषके उदय २५३ से गुणाकर ३० से भाग देने पर दण्डात्मक इष्टकाल १ मिला। परन्तु यह रात्रिशेषका इष्टकाल है, इसलिये इसे साठ दण्डमें घटानेसे सूर्योदयसे वास्तव काल ५९ दण्ड हुआ।

एवं यदि सायन सूर्य १।२४।४९।७ दिनमान ३३।१० और इष्टकाल ५९ दण्ड हो तो, यहाँ इष्टकालमें दिनमानको घटाकर शेष २५।५० इष्टकाल माने और सायन सूर्यमें ६ राशि जोड़कर ७।२४।४९।७ सायन सूर्य माने तब पूर्वोक्त विधिसे लग्न ०।२९।३७।११ होता ॥१०७॥

उपपत्तिः—सूर्य और लग्नके मध्यवर्त्ती राश्यादि अवयव सम्बन्धि पलोंको इष्टकाल कहते हैं। यदि सूर्य और लग्न एक ही राशिमें हों तो सूर्य और लग्नके अन्तरांश सम्बन्धी पल ही इष्टकाल होगा। उन पलोंको जाननेके लिये यह अनुपात होता है कि यदि ३० अंशोंमें उस राशिके उदय पल मिलते हैं तो सूर्य-लग्नान्तरांशमें क्या ? = $\frac{\text{रा. उ.} \times \text{अं. अं.}}{30}$ = इष्टकाल होता है। परन्तु यदि सूर्यसे लग्न कम होता है तो वहाँ लग्नसे सूर्य आगे अर्थात् उदय क्षितिजसे नीचे ही रहता है। क्योंकि लग्न उदय क्षितिजमें लगा रहता है। इसलिये ऐसी अवस्थामें आया हुआ काल रातका शेषकाल होता है।

रातके इष्टकालसे लग्नसाधनमें इष्टकाल बड़ा होनेके कारण गौरव होता है, इसलिये लाघवताके वास्ते सूर्यास्तके बादका काल (रात्रिगतेष्टकाल) इष्टकाल और सूर्यमें ६ राशि जोड़ने पर सूर्य मानकर दिनगतेष्टकालकी भाँति लग्न ठीक ही सिद्ध होता है। क्योंकि सूर्यास्तके बाद (रातमें) सूर्य अस्त क्षितिजके नीचे जितनी दूर पर रहता है उसमें ६ राशि जोड़ने पर उदय क्षितिजके ऊपर ठीक उतनी ही दूर पर हो जाता है। इसलिये उपपन्न हुआ ॥ १०७ ॥

पूर्वमें कहे गये विवाहमें वर्जनीय दोषोंका विवरण—

उत्पातान्सह पातदग्धतिथिभिर्दुष्टांश्च योगांस्तथा
चन्द्रेज्योशनसामथास्तमयनं तिथ्याः क्षयद्धी तथा ।
गण्डान्तं च सविष्टिसंक्रमदिनं तन्वंशपास्तं तथा

तन्वंशेशविधूनथाष्टरिपुगान् पापस्य वर्गांस्तथा ॥१०८॥
सेन्दुक्रूरखगोदयांशमुदयास्ताशुद्धिचण्डायुधान्
खार्जूरं दशयोगयोगसहितं जामित्रलत्ताव्यधम् ।
बाणोपग्रहपापकर्तरि तथा तिथ्यृक्षवारोत्थितं
दुष्टं योगमथार्धयामकुलिकाद्यान्वारदोषानपि ॥१०९॥
क्रूराक्रान्तविमुक्तभं ग्रहणभं यत्क्रूरगन्तव्यभं
त्रेधोत्पातहतं च केतुहतभं सन्ध्योदितं भं तथा ।
तद्वच्च ग्रहभिन्नयुद्धगतभं सर्वानिमान्सन्त्यजे-
दुद्वाहे शुभकर्मसु ग्रहकृतान् लग्नस्य दोषानपि ॥११०॥

अन्वयः—पातदग्धतिथिभिः सह उत्पातान् तथा दुष्टान् योगांश्च, अथ चन्द्रेज्योशनसां अस्तमयनम्, तिथ्याः क्षयर्द्धी, तथा, गण्डान्तम्, सविष्टिसङ्क्रमदिनं, तथा तन्वंशपास्तं, अथ अष्टरिपुगान् तन्वंशेशविधून् तथा पापस्य वर्गान् सेन्दुक्रूरखगोदयांशम्, उदयास्ताशुद्धिचण्डायुधान् , दशयोगयोगसहितं खार्जूरम्, जामित्रलत्ताव्यधम्, बाणोपग्रहपापकर्तरि, तथा तिथ्यृक्षवारोत्थितं दुष्टं योगम्, अथ अर्धयामकुलिकाद्यान् वारदोषान् अपि, क्रूराक्रान्तविमुक्तभम्, ग्रहणभम्, क्रूरगन्तव्यभं यत्, त्रेधोत्पातहतं 'भं' केतुहतभम्, तथा सन्ध्योदितं भम् च (पुनः) ग्रहभिन्नयुद्धगतभम्, तथा ग्रहकृतान् लग्नस्य दोषान् अपि इमान् सर्वान् उद्वाहे (विवाहे) 'तथा सर्वेषु' शुभकर्मसु सन्त्यजेत् ॥ १०८–११० ॥

भाषार्थः—उत्पात (दिव्य-भौम-आन्तरिक्ष अनिष्ट दर्शन) महापात क्रान्तिसाम्य (६१ वें श्लोकमें) दग्धतिथियाँ (६६ वें श्लोक), व्यतीपात आदि दुष्टयोग, चन्द्रमा गुरु और शुक्रका अस्त, तिथिक्षय और तिथिकी वृद्धि गण्डान्त (४३ वें श्लोक) भद्रा (शुभाशुभ प्र० ४३ वाँ श्लोक) सङ्क्रान्ति का दिन, लग्नेश और नवांशेशोंका अस्त, लग्नसे ६ ठे और ८ वें स्थानोंमें लग्नेश, नवांशेश और चन्द्रमाका दोष, पापग्रहोंका षड्वर्ग, चन्द्रमा और पापग्रहोंसे युक्त लग्न तथा नवांश, उदय और अस्त शुद्धि (श्लोक ७६ वाँ) चण्डायुधदोष (श्लोक ६० वाँ) खार्जूर दोष (श्लोक ६२ वाँ) दशयोग (श्लोक ७०–७१) जामित्रदोष (श्लोक ७६ वाँ) लत्ता दोष (श्लोक ५९ वाँ) वेध (पञ्चशलाका, श्लोक ५६ वाँ) बाण दोष (श्लोक ७२–७४) उपग्रह

(श्लोक ६३) पापकर्तरी (श्लोक ४४) तिथि-नक्षत्र-वारोंसे उत्पन्न दुष्टयोग, अर्धयाम (श्लोक ६४) कुलिक (श्लोक ६५) आदि वार दोष, पापग्रहसे युक्त और मुक्त नक्षत्र, ग्रहणवाला नक्षत्र, पापग्रह जिस पर जाने वाला हो वह नक्षत्र, जिस नक्षत्रमें दिव्य भौम या आन्तरिक्ष कोई उत्पात हुआ हो वह, जिसमें केतुका उदय हुआ हो वह नक्षत्र, जो नक्षत्र सूर्यास्तकालमें उदयक्षितिजमें उदित हो जिस नक्षत्रको ग्रहसे वेध हुआ हो और जिस पर ग्रहोंका युद्ध हुआ हो वह नक्षत्र और ग्रहकृत लग्नके दोष ये सब विवाह तथा प्रत्येक शुभ कार्योंमें त्यागे जाते हैं ॥ १०८-११० ॥

वि०—प्रायः ऐसा कम देखा जाता है जो कोई दिन प्रत्येक दोषोंसे रहित हो, कोई न कोई दोष और गुण सर्वत्र रहा ही करता है। ऐसी स्थितिमें विद्वान्‌को चाहिये कि दोषोंका परिहार देखकर और शुभाशुभ प्रकरणके ४२ वें श्लोककी शरण पकड़कर आवश्यक कार्य करें ॥ १०८-११० ॥

इति विवाहप्रकरणम् ॥ ६ ॥

अथ वधूप्रवेशप्रकरणम् ॥ ७ ॥

विवाह होनेके बाद स्त्री पतिकी अर्धाङ्गिनी होनेके कारण पतिके घरको अधिकारिणी होती हैं; इसलिये वह पिताके घरसे पतिके घर जाती है। विवाहानन्तर स्त्रीके प्रथम २ पतिके घरमें प्रवेश करनेको 'वधूप्रवेश' कहते हैं। इस प्रकरणमें वधूप्रवेशका मुहूर्त कहा जायेगा इसलिये इस प्रकरणका नाम 'वधूप्रवेश प्रकरण' रखा गया।

वधूप्रवेशका समय—

समाद्रिपञ्चाङ्कदिने विवाहाद्वधूप्रवेशोऽष्टिदिनान्तराले।
शुभः परस्ताद्विषमाब्दमासदिनेऽक्षवर्षात्परतो यथेष्टम् ॥ १ ॥

अन्वयः—विवाहात् अष्टिदिनान्तराले (षोड़शदिनाभ्यन्तरे) समाद्रिपञ्चाङ्कदिने वधूप्रवेशः शुभः स्यात्। परस्तात् (षोड़शदिनानन्तरम्) विषमाब्दमासदिने 'वधूप्रवेशः शुभः स्यात्'। अथ, अक्षवर्षात् परतः (पञ्चवर्षानन्तरम्) यथेष्टं (यस्मिन् कस्मिन् शुभदिने) वधूप्रवेशं कुर्यात् ॥ १ ॥

भाषार्थः—विवाहके दिनसे १६ दिनके भीतर सम (२।४।६।८।१०।१२ १४।१६) दिनोंमें और विषममें ५, ७, ९ वें दिनोंमें वधूप्रवेश शुभ होता है*। यदि १६ दिनके भीतर नहीं हो सके तो उसके बाद प्रथम मासके विषम (१७।१९।२१।२३।२५।२७।२९ वें) दिनोंमें, एक मासके बाद विषम (३।५।७।

*जो वधूप्रवेश विवाहसे १६ दिनके भीतर हो वह प्रत्येक विवाहमासोंमें होता है; परन्तु १६ दिनके भीतर भी चैत्र पौष मलमास हरिशयनको बचाना चाहिये (आगे स्पष्ट होगा)।

९।११ वें) मासोंमें और एक वर्षके बाद विषम (३।५) वर्षोंमें वधूप्रवेश शुभ होता है। परन्तु ५ वें वर्ष के बाद वर्ष मासका विचार नहीं होता, अर्थात् ५ वें वर्षके बाद जब कभी शुभ मुहूर्त देखकर वधूप्रवेश कराना चाहिये ॥ १ ॥

वधूप्रवेशमें शुभतिथि-नक्षत्र—

ध्रुवक्षिप्रमृदुश्रोत्रवसुमूलमघानिले ।
वधूप्रवेशः सन्नेष्टो रिक्तारार्के बुधे परैः ॥ २ ॥

अन्वयः—ध्रुव-क्षिप्र-मृदु-श्रोत्र-वसु-मूल-मघानिले 'नक्षत्रे' वधूप्रवेशः सन् स्यात्। रिक्तारार्के 'वधूप्रवेशः' इष्टः न स्यात्। परैः (अन्यैः आचार्यैः) बुधे 'अपि वधूप्रवेशः न इष्टः कथितः' ॥ २ ॥

भाषार्थः—ध्रुव-क्षिप्र-मृदुसंज्ञक नक्षत्र, श्रवणा, धनिष्ठ, मूल, मघा और स्वाती इन नक्षत्रोंमें रिक्ता (४।९।१४) तिथि और मङ्गल-रविवारको छोड़कर अन्य तिथिवारोंमें वधूप्रवेश शुभ होता है। किसी आचार्यके मतसे बुधवारको भी वधूप्रवेशमें त्याज्य कहा गया है ॥ २ ॥

विवाहके बाद स्त्रीके पतिगृहस्थितिमें विशेषता—

ज्येष्ठे पतिज्येष्ठमथाधिके पतिं हन्त्यादिमे भर्तृगृहे वधूः शुचौ ।
श्वश्रूं सहस्ये श्वशुरं क्षये तनुं तातं मधौ तातगृहे विवाहतः ॥३॥

अन्वयः—विवाहतः आदिमे (प्रथमे) ज्येष्ठे (ज्येष्ठमासे) भर्तृगृहे 'स्थिता' वधूः पतिज्येष्ठं हन्ति। अथ, आदिमे अधिके (मलमासे) पतिं, तथा 'आदिमे' शुचौ (आषाढे) श्वश्रूम्, सहस्ये (पौषे) श्वशुरं, क्षये (क्षयमासे) तनुं (स्वशरीरम्) हन्ति। तथा आदिमे मधौ तातगृहे 'स्थिता वधूः' तातं हन्ति ॥३॥

भाषार्थः—विवाहके बाद प्रथम ज्येष्ठ मासमें स्त्री यदि पतिके घरमें रहे तो पतिके ज्येष्ठ भाई (भसुर) को नाश करती है। यदि प्रथम अधिमास (मलमास) में पतिके घरमें रहे तो पतिको, प्रथम आषाढमें रहे तो सासको, पौषमें रहे तो श्वशुरको और प्रथम क्षय मासमें पतिके घरमें रहे तो अपनेको नाश करती है। एवं विवाहके बाद प्रथम चैत्रमें स्त्री यदि पिताके घरमें रह जाय तो पिताको मारती है।

तात्पर्य यह कि जिस २ मासका फल अशुभ कहा गया है उस मासमें वधूप्रवेशके बाद प्रथम वर्षमें स्त्रीको वहाँ नहीं रहना चाहिये और पिताकी शुभकामनासे वि ्बाद प्रथम चैत्रके भीतर ही स्त्रीको वधूप्रवेश कराकर पति

के घर भेज देना चाहिये । सारांश यह निकला कि जिस स्त्रीका पिता जीवित हो वह विवाहके बाद पहले चैत्रमें पिताके घरमें नहीं रहे और भँसूर, पति, सास, श्वशुर और अपने जीवनके लिये वधूप्रवेश होने पर (विवाहसे) प्रथम ज्येष्ठ, मलमास, आपाढ़, पौष और क्षयमासमें पतिके घरमें न रहे ॥ ३ ॥

इति वधूप्रवेशप्रकरणम् ॥ ७ ॥

अथ द्विरागमनप्रकरणम् ॥ ८ ॥

इस प्रकरणकी टीका लिखनेके पहले पाठकोंको यह लिखकर समझा देना उचित समझ कर कि "द्विरागमन किसे कहते हैं और वधूप्रवेश तथा द्विरागमनमें क्या अन्तर है ?" लिखता हूँ ।

आजकल मुहूर्त्तचिन्तामणिका यह द्विरागमन प्रकरण प्रायः सभीको भ्रममें डाल देता है । क्योंकि इसमें शुक्रशुद्धिकी झगड़ा उठ पड़ती है । स्वयं ग्रन्थकर्त्ता शुभाशुभ प्रकरणके ४६–४७ वें श्लोकोंमें शुक्रास्तादि कालमें वधूप्रवेश त्याज्य कहे हैं । परन्तु—

"स्वभवनपुरप्रवेशे देशानां विभ्रमे तथोद्वाहे ।
नूतनवध्वागमने प्रतिशुक्रविचारणा नास्ति ॥
निस्ययाने गृहे जीर्णे प्राशने परिधानके ।
वधूप्रवेशे माङ्गल्ये न मौढ्यं गुरुशुक्रयोः ॥

इस लल्ल और माण्डव्यके वचनसे वधूप्रवेशमें गुरुशुक्रके अस्तादिका विचार आवश्यक नहीं है ।

एवं ग्रन्थकर्त्ता इस प्रकरणके दूसरे श्लोकमें कहेंगे कि 'नवोढ़ा चेद् वन्ध्या भवति' । अर्थात् नवीन व्याही स्त्री यदि सम्मुख और दक्षिण शुक्रके रहने पर जाय तो बांझ हो । आगे ३ रे श्लोकमें फिर उसका परिहार कहे हैं कि "नववधूप्रवेशने प्रति भार्गवो भवति दोषकृन्नहि" अर्थात् नयी व्याही स्त्रीके पतिगृह जानेमें सम्मुख शुक्रका दोष नहीं लगता । वाह रे विधि और निषेध ! इसी कारण लोगोंको आज भ्रममें पड़ना पड़ता है ।

वस्तुतः वधूप्रवेश और द्विरागमन दो चीज नहीं है और न मुहूर्त्तचिन्तामणिमें दो प्रकरण ही पूर्वमें रहे होंगे । क्योंकि यात्रा प्रकरणके ४० वें (उदेति यस्यां दिशि यत्र याति…इत्यादि) श्लोककी पीयूषधारा टीकामें "ननु वधूप्रवेशप्रकरणे 'दैत्येज्यो ह्यभिमुख-दक्षिणे न शस्तः' इति पद्येन शुक्रसांमुख्यदोषोऽभिहितः' ऐसा लिखा है । अर्थात् जिस श्लोक को आज द्विरागमन प्रकरणका कहते हैं वह श्लोक टीकाकारके मतसे वधूप्रवेश प्रकरणका ही है । उनके समयमें दो प्रकरण नहीं थे । परन्तु इधरके लोग इस प्रकरणके १ श्लोकमें 'द्विरागमं लघुध्रुवे…' ऐसा वाक्य देखकर इस प्रकरणको अलग कर दिये हैं और टीकाकारके नाम पर ही श्लोककी पूर्वटीका लिखकर जोड़ दिये हैं ।

अब यहाँ यह प्रश्न उठेगा कि 'द्विरागमन' किसे कहते हैं, जिसे ग्रन्थकर्त्ताने 'द्विरागमं लघुध्रुवे…' पद्यमें कहा है ? इसका उत्तर यह है कि विवाहके बाद जो वधूप्रवेश (स्त्रीका पति

घरमें प्रवेश करना) कहा गया है उस वधूप्रवेशके तीन भेद होते हैं। १—नूतन वधूप्रवेश। २—सामान्य वधूप्रवेश। ३—विलम्बित वधूप्रवेश।

१—नूतन वधूप्रवेश वह है जो विवाहसे १६ वें दिनके भीतर होता है। उसमें केवल श्लोके पतिगृहमें प्रवेशका मुहूर्त देखना चाहिये और प्रथम श्लोकके अनुसार विवाहसे २।४।५।६।७।८।९।१०।१२।१४।१६ वाँ दिन होना चाहिये। इसमें मास-पक्ष और शुक्रका विचार नहीं होता।*

२—सोलहवें दिनके बाद एक वर्षके भीतर 'सामान्य वधूप्रवेश' होता है। यह विषम (१-३-५-७-९-११) मासमें मार्ग-फाल्गुन-वैशाख मासोंमें होता है और इसमें सम-विषम दिनों का विचार तथा शुक्रका विचार नहीं होता। जो उपर्युक्त लल्लमतसे सिद्ध है।

३—एक वर्षके बाद पाँचवें वर्ष तक 'विलम्बित वधूप्रवेश' कहते हैं। जो तीसरे और पाँचवें वर्षोंमें किया जाता है। इसमें विषम-सम मासका विचार नहीं होता। इसमें मार्ग वैशाख और फाल्गुन मास प्रशस्त है और इसमें शुक्रका विचार किया जाता है। इसीको आचार्यने द्विरागमन कहा है। इस विलम्बित वधूप्रवेश (द्विरागमन) में पिताके घरसे पतिके गृह जानेकी यात्रा देखी जाती है। जैसा ग्रन्थकारने इस प्रकरणके प्रथम श्लोकमें कहा है। पतिके गृहमें प्रवेश करनेका मुहूर्त वधूप्रवेश प्रकरणके दूसरे श्लोकके अनुसार देखना चाहिये।

उपर्युक्त लेखसे यह सिद्ध हुआ कि एक वर्षके बाद जो वधूप्रवेश होता है वही 'द्विरागमन' है और इसी में शुक्र शुद्धि (वाम-पृष्ठरूप) देखनी चाहिये। एक वर्षके भीतर शुक्र शुद्धि नहीं देखी जाती। जैसा आचार्य स्वयं कहेंगे कि 'नववधूप्रवेशने प्रतिभार्गवो भवति दोषकृन्नहि'।

विलम्बित वधूप्रवेशको जो मैंने द्विरागमन कहा उसकी पुष्टि प्रकृतग्रन्थसे २८ वर्ष पूर्वके† ग्रन्थ मुहूर्तमार्तण्डमें ग्रन्थकर्त्ता 'नारायण' ने अपने ग्रन्थकी अपनी टीकामें स्पष्ट लिखा है कि—"षोडशदिनमध्ये समदिनेषु वधूप्रवेशः कर्त्तव्यः। षोडशदिनातिक्रमे मासपर्यन्तं विषमदिने कार्यः। प्रथममासातिक्रमे वर्षपर्यन्तं विषमे मासि कर्त्तव्यः। तदा विषमदिननियमो नास्ति। एवं प्रथमे वर्षेऽतिक्रान्ते पञ्चमवर्षपर्यन्तं विषमे वर्षे कर्त्तव्यः। तदा विषममासनियमो नास्ति। अथ विलम्बितो वधूप्रवेशः कस्मिन् मासपक्षे कर्तव्य इत्याह—वैफामार्गसिते। वै वैशाखः फा फाल्गुनः मार्गो मार्गशीर्ष एषां सितः शुक्लपक्षः तस्मिन्"। इस टीकासे स्पष्ट झलकता है कि उस पुराने आचार्यके मतमें भी द्विरागमन विलम्बित वधूप्रवेश ही है। इसीलिये उन्होंने दोनों प्रकरणोंको अलग नहीं लिखा।

---

* चैत्रे पौषे हरिस्वप्ने गुरोरस्ते मलिम्लुचे।
नवोढागमनं नैव कृते पञ्चत्वमाप्नुयात्॥ इति व्यासः।

इस वचनसे १६ दिनके भीतर भी यदि चैत्र, पौष, हरिशयन या मलमास पड़ जाय तो वधू प्रवेश नहीं करना चाहिये।

† मुहुर्तचिन्तामणिकी रचना शाके १५२२ में और मुहुर्तमार्तण्डकी रचना शाके १४९४ में हुई है।

दूसरा व्यापक प्रमाण जिसे सभी जानते हैं, यह है—

विवाहे गुरुशुद्धिः स्यात् शुक्रशुद्धिर्द्विरागमे ।
त्रिगमे राहुशुद्धिश्च चन्द्रशुद्धिश्चतुर्गमे ॥

इस श्लोकमें कहीं २ 'प्रथमे गुरुशुद्धिः' ऐसा भी पाठ उपलब्ध है। यहाँ प्रत्येक स्थानमें गम (यात्रा) शब्दका प्रयोग किया गया है। इसलिये प्रथम यात्रा लोगोंके मनमें प्रायः सन्देह उत्पन्न करती है। परन्तु पाठकों को खूब ध्यान देना चाहिये कि स्त्रीकी प्रथम यात्रा पिताके कुलसे पतिके कुलमें प्रवेशको कहते हैं। वह तब होती है जब कन्याका पिता उसे उसके भविष्य पतिको सङ्कल्प करके देता है। अर्थात् विवाह। उसमें गुरुशुद्धि ही देखी जाती है। शुक्रशुद्धिका विचार विलम्बित वधूप्रवेशमें करना चाहिये।

कुछ लोग वधूप्रवेशके बाद लौटकर पिताके घरमें आई हुई स्त्रीके पुनः पतिगृह जानेको द्विरागमन कहते हैं और उसमें शुक्र शुद्धि विचारते हैं, परन्तु ऐसा उचित नहीं है। ऐसी स्थितिको त्रिगम (दोङ्गा या ब्यङ्ग यात्रा) कहते हैं। उसमें शुक्रका विचार नहीं बल्कि राहुका विचार करना चाहिये।

तीसरा प्रमाण ग्रन्थकर्ताके वाक्यसे लीजिये। यदि द्विरागमन ग्रन्थकारके मतसे वधूप्रवेश के बादकी यात्रा होती तो दूसरे और तीसरे श्लोकोंमें नवोढ़ा और नववधू पदका प्रयोग करके उसकी टीका 'नूतन-परिणीता कन्या' क्यों करते। इससे यह सिद्ध होता है कि द्विरागमन विलम्बित वधूप्रवेशका नाम है, वधूप्रवेशके बादकी यात्राका नहीं। विवाह ही स्त्रियोंकी प्रथम यात्रा और पतिगृह जानेको द्वितीय यात्रा कहते हैं, इसलिये विवाहके बाद पतिगृह जानेको ही द्विरागमन कहना चाहिये। परन्तु उसमें यात्रा नहीं देखी जाती प्रवेशका मुहूर्त ही देखा जाता है। विलम्बितमें यात्रा देखी जाती है, इतना ही अन्तर होता है।

द्विरागमनका मुहूर्त्त—

चरेदथौजहायने घटालिमेषगे रवौ
रवीज्यशुद्धियोगतः शुभग्रहस्य वासरे ।
नृयुग्मीनकन्यकातुलावृषे विलग्नके
द्विरागमं लघुध्रुवे चरेऽस्रपे मृदूडुनि ॥ १ ॥

अन्वयः—अथ (प्रथमवर्षानन्तरम्) ओजहायने (विषमवर्षे) रवौ घटालिमेषगे, रवीज्यशुद्धियोगतः, शुभग्रहस्य वासरे, नृयुग्मीनकन्यकातुलावृषे विलग्नके, लघुध्रुवे चरे अस्रपे मृदूडुनि द्विरागमं चरेत् ॥ १ ॥

भाषार्थः—विवाहसे एक वर्षके बाद विषम (३।५) वर्षोंमें सूर्य कुम्भ, वृश्चिक और मेष राशिमें हों अर्थात् सौर-फाल्गुन अग्रहण और वैशाख मासोंमें, कन्याके लिये सूर्य और बृहस्पतिकी शुद्धि रहने पर शुभ ग्रहोंके (चं. बु. बृ. शु.)

३० का भाग देनेसे सूर्यके भोग्य पल १७।२६ हुए। इन दोनोंके योग (९१।३५+१७।२६)= १०९।१ में सायन सूर्य और लग्नके मध्यवर्ती मीन, मेष, वृष और मिथुनके उदयमान (२२१+२२१+२५३+३०४) को जोड़कर ११०८ पलमें साठका भाग देनेसे दण्डादि इष्ट काल १८।२८ हुआ। अर्थात् सूर्योदयसे १८।२८ दण्डादि पर मिथुन लग्नमें मीनका नवांश लगेगा ॥ १०६ ॥

उपपत्तिः—

सूर्य और लग्नके बीच राशिचक्रमें (क्रान्तिवृत्तमें) सूर्यके भोग्यांश लग्नके भुक्तांश और सूर्य-लग्नके मध्यवर्ती राशि इन तीन खण्डोंका योग रहता है। इन्हीं तीनों खण्डोंके पल अहोरात्रवृत्तमें सूर्यसे उदय क्षितिज पर्यन्त इष्ट काल कहलाते हैं। इसलिये यदि लग्न और सूर्यका ज्ञान हो तो सायन सूर्यके भोग्यपल और सायन लग्नके भुक्त पलोंके योगमें दोनोंके मध्यवर्ती राशिपलोंके जोड़ने पर सूर्योदयसे इष्टकालका ज्ञान होगा। क्योंकि उदयके समय सूर्यके समान ही लग्न (अर्थात् सूर्य ही लग्न) होता है। इसलिये सायन सूर्यके भोग्यांशके पल बनानेके लिये यह अनुपात किया जाता है कि यदि ३० अंशोंमें सूर्यनिष्ठ राशिके उदयपल आते हैं तो सूर्यके भोग्य अंशोंमें क्या ? $= \frac{\text{रा. उ} \times \text{सू. भो. अं.}}{३०}$ = सूर्यके भोग्यपल। एवं ३० अंशोंमें लग्नराशिके उदयपल पाते हैं तो लग्नके भुक्त अंशोंमें क्या ? $= \frac{\text{रा. उ.} \times \text{ल. भु. अं}}{३०}$ = लग्नके भुक्तपल।

इष्टकालके पलोंके जानने पर पलोंको ६० से भाग देनेसे दण्डादि इष्टकाल होता है। इसलिये उपपन्न हुआ ॥ १०६ ॥

लग्न और इष्टकालमें विशेष—

चेल्लग्नाऽर्कौ सायनावेकराशौ तद्विश्लेषघ्नोदयः खाग्निभक्तः।
स्वेष्टः कालो लग्नमूनं यदाऽर्काद्रात्रेः शेषोऽर्कात्सषड्भान्निशायाम् ॥

अन्वयः—चेत् सायनौ लग्नार्कौ एकराशौ 'भवेतां तदा' तद्विश्लेषघ्नोदयः खाग्निभक्तः स्वेष्टः कालः स्यात्।

यदा लग्नं अर्कात् ऊनं 'तदा' रात्रेः शेषः 'कालः स्यात्'। तथा, निशायां (सूर्यास्तानन्तरमिष्टकाले) सषड्भात् अर्कात् 'लग्नं साध्यम्' ॥ १०७ ॥

भावार्थः—यदि सायन लग्न और सायन सूर्य दोनों एक ही राशिमें हों तो वहाँ लग्नमें सूर्यको घटा कर शेष अंशादिको उस राशिके उदय मानसे गुणकर उसमें ३० से भाग देनेसे लब्धि सूर्योदयसे इष्ट काल होता है।

एक राशिमें भी यदि सायन सूर्यसे सायन लग्न कम हो तो उक्त रीतिसे जो इष्टकाल होगा वह रातका शेषकाल (अर्थात् सूर्योदयसे पहलेका) होगा। यदि

रातमें लग्न साधन करना हो (अर्थात् सूर्यास्तके बादका इष्टकाल हो) तो सूर्यमें ६ राशि जोड़कर रातके इष्टकालसे पूर्वोक्त रीतिसे साधन करे ॥ १०७ ॥

उदाहरण—कल्पना किया कि सायन सूर्य १।२३।५३।१५ और सायन लग्न १।२८।३७।५० है। इन दोनोंके अन्तर ४°।४४'।३५" को वृषके उदय २५३ से गुणाकर १२००।०।३५ में ३० से भाग देनेसे पलात्मक इष्टकाल ४० हुआ। इसमें ६० का भाग देने पर दण्डादि इष्टकाल ०।४० हुआ।

सूर्यसे लग्नके कम होनेपर उदाहरण—

सायन सूर्य १।२४।४९।७ सायन लग्न १।१७।४७।११ यहाँ एक ही राशिमें सूर्यसे लग्न कम है, इसलिये दोनोंके अन्तर ७°।१'।५६" को वृषके उदय २५३ से गुणाकर ३० से भाग देने पर दण्डात्मक इष्टकाल १ मिला। परन्तु यह रात्रिशेषका इष्टकाल है, इसलिये इसे साठ दण्डमें घटानेसे सूर्योदयसे वास्तव काल ५९ दण्ड हुआ।

एवं यदि सायन सूर्य १।२४।४९।७ दिनमान ३३।१० और इष्टकाल ५९ दण्ड हो तो, यहाँ इष्टकालमें दिनमानको घटाकर शेष २५।५० इष्टकाल माने और सायन सूर्यमें ६ राशि जोड़कर ७।२४।४९।७ सायन सूर्य माने तब पूर्वोक्त विधिसे लग्न ०।२९।३७।११ होता ॥१०७॥

उपपत्तिः—सूर्य और लग्नके मध्यवर्ती राश्यादि अवयव सम्बन्धि पलोंको इष्टकाल कहते हैं। यदि सूर्य और लग्न एक ही राशिमें हों तो सूर्य और लग्नके अन्तरांश सम्बन्धी पल ही इष्टकाल होगा। उन पलोंको जाननेके लिये यह अनुपात होता है कि यदि ३० अंशोंमें ३। राशिके उदय पल मिलते हैं तो सूर्य-लग्नान्तरांशमें क्या ? = $\frac{\text{रा. उ.} \times \text{अं. अं.}}{३०}$ = इष्टकाल होता है। परन्तु यदि सूर्यसे लग्न कम होता है तो वहाँ लग्नसे सूर्य आगे अर्थात् उदय क्षितिजसे नीचे ही रहता है। क्योंकि लग्न उदय क्षितिजमें लगा रहता है। इसलिये ऐसी अवस्थामें आया हुआ काल रातका शेषकाल होता है।

रातके इष्टकालसे लग्नसाधनमें इष्टकाल बड़ा होनेके कारण गौरव होता है, इसलिये लाघवताके वास्ते सूर्यास्तके बादका काल (रात्रिगतेष्टकाल) इष्टकाल और सूर्यमें ६ राशि जोड़ने पर सूर्य मानकर दिनगतेष्टकालकी भांति लग्न ठीक ही सिद्ध होता है। क्योंकि सूर्यास्तके बाद (रातमें) सूर्य अस्त क्षितिजके नीचे जितनी दूर पर रहता है उसमें ६ राशि जोड़ने पर उदय क्षितिजके ऊपर ठीक उतनी ही दूर पर हो जाता है। इसलिये उपपन्न हुआ ॥ १०७ ॥

पूर्वमें कहे गये विवाहमें वर्जनीय दोषोंका विवरण—

उत्पातान्सह पातदग्धतिथिभिर्दुष्टांश्च योगांस्तथा
चन्द्रेज्योशनसामथास्तमयनं तिथ्याः क्षयर्द्धी तथा ।
गण्डान्तं च सविष्टिसंक्रमदिनं तन्वंशपास्तं त्र्यशः

तन्वंशेशविधूनथाष्टरिपुगान् पापस्य वर्गास्तथा ॥१०८॥
सेन्दुक्रूरखगोदयांशमुदयास्ताशुद्धिचण्डायुधान्
खार्जूरं दशयोगयोगसहितं जामित्रलत्ताव्यधम् ।
वाणोपग्रहपापकर्तरि तथा तिथ्यृक्षवारोत्थितं
दुष्टं योगमथार्धयामकुलिकाद्यान्वारदोषानपि ॥१०९॥
क्रूराक्रान्तविमुक्तभं ग्रहणभं यत्क्रूरगन्तव्यभं
त्रेधोत्पातहतं च केतुहतभं सन्ध्योदितं भं तथा ।
तद्वच्च ग्रहभिन्नयुद्धगतभं सर्वानिमान्सन्त्यजे-
दुद्वाहे शुभकर्मसु ग्रहकृतान् लग्नस्य दोषानपि ॥११०॥

अन्वयः—पातदग्धतिथिभिः सह उत्पातान् तथा दुष्टान् योगांश्च, अथ चन्द्रेज्यो-शनसां अस्तमयनम्, तिथ्याः क्षयर्द्धी, तथा, गण्डान्तम्, सविष्टिसङ्क्रमदिनं, तथा तन्वंशपास्तं, अथ अष्टरिपुगान् तन्वंशेशविधून् तथा पापस्य वर्गान् सेन्दुक्रूरखगो दयांशम्, उदयास्ताशुद्धिचण्डायुधान् , दशयोगयोगसहितं खार्जूरम्, जामित्रलत्ता-व्यधम्, बाणोपग्रहपापकर्तरि, तथा तिथ्यृक्षवारोत्थितं दुष्टं योगम्, अथ अर्धयाम-कुलिकाद्यान् वारदोषान् अपि, क्रूराक्रान्तविमुक्तभम्, ग्रहणभम्, क्रूरगन्तव्यभं यत्, त्रेधोत्पातहतं 'भं' केतुहतभम्, तथा सन्ध्योदितं भम् च (पुनः) ग्रहभिन्नयुद्धगतभम्, तथा ग्रहकृतान् लग्नस्य दोषान् अपि इमान् सर्वान् उद्वाहे (विवाहे) 'तथा सर्वेषु' शुभकर्मसु सन्त्यजेत् ॥ १०८–११० ॥

भाषार्थः—उत्पात (दिव्य-भौम-आन्तरिक्ष अनिष्ट दर्शन) महापात क्रान्तिसाम्य (६१ वें श्लोकमें) दग्धतिथियाँ (६६ वें श्लोक), व्यतीपात आदि दुष्टयोग, चन्द्रमा गुरु और शुक्रका अस्त, तिथिक्षय और तिथिकी वृद्धि गण्डान्त (४३ वें श्लोक) भद्रा (शुभाशुभ प्र० ४३ वाँ श्लोक) सङ्क्रान्ति का दिन, लग्नेश और नवांशेशोंका अस्त, लग्नसे ६ ठे और ८ वें स्थानोंमें लग्नेश, नवांशेश और चन्द्रमाका दोष, पापग्रहोंका षड्वर्ग, चन्द्रमा और पाप-ग्रहोंसे युक्त लग्न तथा नवांश, उदय और अस्त शुद्धि (श्लोक ७६ वाँ) चण्डायुधदोष (श्लोक ६० वाँ) खार्जूर दोष (श्लोक ६२ वाँ) दशयोग (श्लोक ७०–७१) जामित्रदोष (श्लोक ७६ वाँ) लत्ता दोष (श्लोक ५९ वाँ) वेध (पञ्चशलाका, श्लोक ५६ वाँ) बाण दोष (श्लोक ७२–७४) उपग्रह

(श्लोक ६३) पापकर्तरी (श्लोक ४४) तिथि-नक्षत्र-वारोंसे उत्पन्न दुष्टयोग, अर्धयाम (श्लोक ६४) कुलिक (श्लोक ६५) आदि वार दोष, पापग्रहसे युक्त और मुक्त नक्षत्र, ग्रहणवाला नक्षत्र, पापग्रह जिस पर जाने वाला हो वह नक्षत्र, जिस नक्षत्रमें दिव्य भौम या आन्तरिक्ष कोई उत्पात हुआ हो वह, जिसमें केतुका उदय हुआ हो वह नक्षत्र, जो नक्षत्र सूर्यास्तकालमें उदयक्षितिजमें उदित हो जिस नक्षत्रको ग्रहसे वेध हुआ हो और जिस पर ग्रहोंका युद्ध हुआ हो वह नक्षत्र और ग्रहकृत लग्नके दोष ये सब विवाह तथा प्रत्येक शुभ कार्योंमें त्यागे जाते हैं ॥ १०८-११० ॥

वि०—प्रायः ऐसा कम देखा जाता है जो कोई दिन प्रत्येक दोषोंसे रहित हो, कोई न कोई दोष और गुण सर्वत्र रहा ही करता है। ऐसी स्थितिमें विद्वान्को चाहिये कि दोषोंका परिहार देखकर और शुभाशुभ प्रकरणके ४२ वें श्लोककी शरण पकड़कर आवश्यक कार्य करें ॥ १०८-११० ॥

इति विवाहप्रकरणम् ॥ ६ ॥

अथ वधूप्रवेशप्रकरणम् ॥ ७ ॥

विवाह होनेके बाद स्त्री पतिकी अर्धाङ्गिनी होनेके कारण पतिके घरकी अधिकारिणी होती हैं; इसलिये वह पिताके घरसे पतिके घर जाती है। विवाहानन्तर स्त्रीके प्रथम २ पतिके घरमें प्रवेश करनेको 'वधूप्रवेश' कहते हैं। इस प्रकरणमें वधूप्रवेशका मुहूर्त कहा जायेगा इसलिये इस प्रकरणका नाम 'वधूप्रवेश प्रकरण' रखा गया।

वधूप्रवेशका समय—

समाद्रिपञ्चाङ्कदिने विवाहाद्वधूप्रवेशोऽष्टिदिनान्तराले ।
शुभः परस्ताद्विषमाब्दमासदिनेऽक्षवर्षात्परतो यथेष्टम् ॥ १ ॥

अन्वयः—विवाहात् अष्टिदिनान्तराले (षोडशदिनाभ्यन्तरे) समाद्रिपञ्चाङ्कदिने वधूप्रवेशः शुभः स्यात् । परस्तात् (षोडशदिनानन्तरम्) विषमाब्दमासदिने 'वधूप्रवेशः शुभः स्यात्' । अथ, अक्षवर्षात् परतः (पञ्चवर्षानन्तरम्) यथेष्टं (यस्मिन् कस्मिन् शुभदिने) वधूप्रवेशं कुर्यात् ॥ १ ॥

भाषार्थः—विवाहके दिनसे १६ दिनके भीतर सम (२।४।६।८।१०।१२ १४।१६) दिनोंमें और विषममें ५, ७, ९ वें दिनोंमें वधूप्रवेश शुभ होता है*। यदि १६ दिनके भीतर नहीं हो सके तो उसके बाद प्रथम मासके विषम (१७।१९।२१।२३।२५।२७।२९ वें) दिनोंमें, एक मासके बाद विषम (३।५।७।

---

*जो वधूप्रवेश विवाहसे १६ दिनके भीतर हो वह प्रत्येक विवाहमासोंमें होता है; परन्तु १६ दिनके भीतर भी चैत्र पौष मलमास हरिशयनको बराना चाहिये (आगे स्पष्ट होगा) ।

९।११ वें) मासोंमें और एक वर्षके बाद विषम (३।५) वर्षोंमें वधूप्रवेश शुभ होता है। परन्तु ५ वें वर्ष के बाद वर्ष मासका विचार नहीं होता, अर्थात् ५ वें वर्षके बाद जब कभी शुभ मुहूर्त देखकर वधूप्रवेश कराना चाहिये ॥ १ ॥

वधूप्रवेशमें शुभतिथि-नक्षत्र—

ध्रुवक्षिप्रमृदुश्रोत्रवसुमूलमघानिले ।
वधूप्रवेशः सन्नेष्टो रिक्तारार्के बुधे परैः ॥ २ ॥

अन्वयः—ध्रुव-क्षिप्र-मृदु-श्रोत्र-वसु-मूल-मघानिले 'नक्षत्रे' वधूप्रवेशः सन् स्यात्। रिक्तारार्के 'वधूप्रवेशः' इष्टः न स्यात्। परैः (अन्यैः आचार्यैः) बुधे 'अपि वधूप्रवेशः न इष्टः कथितः' ॥ २ ॥

भाषार्थः—ध्रुव-क्षिप्र-मृदुसंज्ञक नक्षत्र, श्रवणा, धनिष्ठ, मूल, मघा और स्वाती इन नक्षत्रोंमें रिक्ता (४।९।१४) तिथि और मङ्गल-रविवारको छोड़कर अन्य तिथिवारोंमें वधूप्रवेश शुभ होता है। किसी आचार्यके मतसे बुधवारको भी वधूप्रवेशमें त्याज्य कहा गया है ॥ २ ॥

विवाहके बाद स्त्रीके पतिगृहस्थितिमें विशेषता—

ज्येष्ठे पतिज्येष्ठमथाधिके पतिं हन्त्यादिमे भर्तृगृहे वधूः शुचौ ।
श्वश्रूं सहस्ये श्वशुरं क्षये तनुं तातं मधौ तातगृहे विवाहतः ॥३॥

अन्वयः—विवाहतः आदिमे (प्रथमे) ज्येष्ठे (ज्येष्ठमासे) भर्तृगृहे 'स्थिता' वधूः पतिज्येष्ठं हन्ति। अथ, आदिमे अधिके (मलमासे) पतिं, तथा 'आदिमे' शुचौ (आषाढे) श्वश्रूम्, सहस्ये (पौषे) श्वशुरं, क्षये (क्षयमासे) तनुं (स्वशरीरम्) हन्ति। तथा आदिमे मधौ तातगृहे 'स्थिता वधूः' तातं हन्ति ॥३॥

भाषार्थः—विवाहके बाद प्रथम ज्येष्ठ मासमें स्त्री यदि पतिके घरमें रहे तो पतिके ज्येष्ठ भाई (भसुर) को नाश करती है। यदि प्रथम अधिमास (मलमास) में पतिके घरमें रहे तो पतिको, प्रथम आषाढमें रहे तो सासको, पौषमें रहे तो श्वशुरको और प्रथम क्षय मासमें पतिके घरमें रहे तो अपनेको नाश करती है। एवं विवाहके बाद प्रथम चैत्रमें स्त्री यदि पिताके घरमें रह जाय तो पिताको मारती है।

तात्पर्य यह कि जिस २ मासका फल अशुभ कहा गया है उस मासमें वधूप्रवेशके बाद प्रथम वर्षमें स्त्रीको वहाँ नहीं रहना चाहिये और पिताकी शुभकामनासे वि बाद प्रथम चैत्रके भीतर ही स्त्रीको वधूप्रवेश कराकर पति

के घर भेज देना चाहिये । सारांश यह निकला कि जिस स्त्रीका पिता जीवित हो वह विवाहके बाद पहले चैत्रमें पिताके घरमें नहीं रहे और ससुर, पति, सास, श्वशुर और अपने जीवनके लिये वधूप्रवेश होने पर (विवाहसे) प्रथम ज्येष्ठ, मलमास, आषाढ़, पौष और क्षयमासमें पतिके घरमें न रहे ॥ ३ ॥

इति वधूप्रवेशप्रकरणम् ॥ ७ ॥

अथ द्विरागमनप्रकरणम् ॥ ८ ॥

इस प्रकरणकी टीका लिखनेके पहले पाठकोंको यह लिखकर समझा देना उचित समझ कर कि "द्विरागमन किसे कहते हैं और वधूप्रवेश तथा द्विरागमनमें क्या अन्तर है ?" लिखता हूँ ।

आजकल मुहूर्त्तचिन्तामणिका यह द्विरागमन प्रकरण प्रायः सभीको भ्रममें डाल देता है । क्योंकि इसमें शुक्रशुद्धिकी झगड़ा उठ पड़ती है । स्वयं ग्रन्थकर्त्ता शुभाशुभ प्रकरणके ४६-४७ वें श्लोकोंमें शुक्रास्तादि कालमें वधूप्रवेश त्याज्य कहे हैं । परन्तु—

"स्वभवनपुरप्रवेशे देशानां विभ्रमे तथोद्वाहे ।
नूतनवध्वागमने प्रतिशुक्रविचारणा नास्ति ॥
निरयाने गृहे जीर्णे प्राशने परिधानके ।
वधूप्रवेशे माङ्गल्ये न मौढ्यं गुरुशुक्रयोः ॥

इस लल्ल और माण्डव्यके वचनसे वधूप्रवेशमें गुरुशुक्रके अस्तादिका विचार आवश्यक नहीं है ।

एवं ग्रन्थकर्त्ता इस प्रकरणके दूसरे श्लोकमें कहेंगे कि 'नवोढ़ा चेद् वन्ध्या भवति' । अर्थात् नवीन व्याही स्त्री यदि सम्मुख और दक्षिण शुक्रके रहने पर जाय तो बांझ हो । आगे ३ रे श्लोकमें फिर उसका परिहार कहे हैं कि "नववधूप्रवेशने प्रति भार्गवो भवति दोषकृन्नहि" अर्थात् नयी व्याही स्त्रीके पतिगृह जानेमें सम्मुख शुक्रका दोष नहीं लगता । वाह रे विधि और निषेध ! इसी कारण लोगोंको आज भ्रममें पड़ना पड़ता है ।

वस्तुतः वधूप्रवेश और द्विरागमन दो चीज नहीं है और न मुहूर्तचिन्तामणिमें दो प्रकरण ही पूर्वमें रहे होंगे । क्योंकि यात्रा प्रकरणके ४० वें (उदेति यस्यां दिशि यत्र याति···इत्यादि) श्लोककी पीयूषधारा टीकामें "ननु वधूप्रवेशप्रकरणे 'दैत्येज्यो ह्यभिमुख-दक्षिणे न शस्तः' इति पद्येन शुक्रसांमुख्यदोषोऽभिहितः' ऐसा लिखा है । अर्थात् जिस श्लोक को आज द्विरागमन प्रकरणका कहते हैं वह श्लोक टीकाकारके मतसे वधूप्रवेश प्रकरणका ही है । उनके समयमें दो प्रकरण नहीं थे । परन्तु इधरके लोग इस प्रकरणके १ श्लोकमें 'द्विरागमं लघुध्रुवे···' ऐसा वाक्य देखकर इस प्रकरणको अलग कर दिये हैं और टीकाकारके नाम पर ही श्लोककी पूर्वटीका लिखकर जोड़ दिये हैं ।

अब यहाँ यह प्रश्न उठेगा कि 'द्विरागमन' किसे कहते हैं, जिसे ग्रन्थकर्त्ताने 'द्विरागमं लघुध्रुवे···' पद्यमें कहा है ? इसका उत्तर यह है कि विवाहके बाद जो वधूप्रवेश (स्त्रीका पति

घरमें प्रवेश करना) कहा गया है उस वधूप्रवेशके तीन भेद होते हैं । १—नूतन वधूप्रवेश । २—सामान्य वधूप्रवेश । ३—विलम्बित वधूप्रवेश ।

१—नूतन वधूप्रवेश वह है जो विवाहसे १६ वें दिनके भीतर होता है । उसमें केवल स्त्रीके पतिगृहमें प्रवेशका मुहूर्त देखना चाहिये और प्रथम श्लोकके अनुसार विवाहसे २।४।५।६।७।८।९।१०।१२।१४।१६ वाँ दिन होना चाहिये । इसमें मास-पक्ष और शुक्रका विचार नहीं होता ।*

२—सोलहवें दिनके बाद एक वर्षके भीतर 'सामान्य वधूप्रवेश' होता है । यह विषम (१-३-५-७-९-११) मासमें मार्ग-फाल्गुन-वैशाख मासोंमें होता है और इसमें सम-विषम दिनों का विचार तथा शुक्रका विचार नहीं होता । जो उपर्युक्त लल्लमतसे सिद्ध है ।

३—एक वर्षके बाद पाँचवें वर्ष तक 'विलम्बित वधूप्रवेश' कहते हैं । जो तीसरे और पाँचवें वर्षोंमें किया जाता है । इसमें विषम-सम मासका विचार नहीं होता । इसमें मार्ग वैशाख और फाल्गुन मास प्रशस्त है और इसमें शुक्रका विचार किया जाता है । इसीको आचार्यने द्विरागमन कहा है । इस विलम्बित वधूप्रवेश (द्विरागमन) में पिताके घरसे पतिके गृह जानेकी यात्रा देखी जाती है । जैसा ग्रन्थकारने इस प्रकरणके प्रथम श्लोकमें कहा है । पतिके गृहमें प्रवेश करनेका मुहूर्त वधूप्रवेश प्रकरणके दूसरे श्लोकके अनुसार देखना चाहिये ।

उपर्युक्त लेखसे यह सिद्ध हुआ कि एक वर्षके बाद जो वधूप्रवेश होता है वही 'द्विरागमन' है और इसी में शुक्र शुद्धि (वाम-पृष्ठरूप) देखनी चाहिये । एक वर्षके भीतर शुक्र शुद्धि नहीं देखी जाती । जैसा आचार्य स्वयं कहेंगे कि 'नववधूप्रवेशने प्रतिभार्गवो भवति दोषकृन्नहि' ।

विलम्बित वधूप्रवेशको जो मैंने द्विरागमन कहा उसकी पुष्टि प्रकृतग्रन्थसे २८ वर्ष पूर्वके+ ग्रन्थ मुहूर्तमार्तण्डमें ग्रन्थकर्त्ता 'नारायण' ने अपने ग्रन्थकी अपनी टीकामें स्पष्ट लिखा है कि—"षोडशदिनमध्ये समदिनेषु वधूप्रवेशः कर्त्तव्यः । षोडशदिनातिक्रमे मासपर्यन्तं विषमदिने कार्यः । प्रथममासातिक्रमे वर्षपर्यन्तं विषमे मासि कर्त्तव्यः । तदा विषमदिननियमो नास्ति । एवं प्रथमे वर्षेऽतिक्रान्ते पञ्चमवर्षपर्यन्तं विषमे वर्षे कर्त्तव्यः । तदा विषममासनियमो नास्ति । अथ विलम्बितो वधूप्रवेशः कस्मिन् मासपक्षे कर्तव्य इत्याह—वैफामार्गसिते । वै वैशाखः फा फाल्गुनः मार्गो मार्गशीर्ष एषां सितः शुक्लपक्षः तस्मिन्" । इस टीकासे स्पष्ट झलकता है कि उस पुराने आचार्यके मतमें भी द्विरागमन विलम्बित वधूप्रवेश ही है । इसीलिये उन्होंने दोनों प्रकरणोंको अलग नहीं लिखा ।

---

* चैत्रे पौषे हरिस्वप्ने गुरोरस्ते मलिम्लुचे ।
नवोढागमनं नैव कृते पञ्चत्वमाप्नुयात् ॥ इति व्यासः ।

इस वचनसे १६ दिनके भीतर भी यदि चैत्र, पौष, हरिशयन या मलमास पड़ जाय तो वधू प्रवेश नहीं करना चाहिये ।

+ मुहुर्तचिन्तामणिकी रचना शाके १५२२ में और मुहुर्तमार्तण्डकी रचना शाके १४९४ में हुई है ।

दूसरा व्यापक प्रमाण जिसे सभी जानते हैं, यह है—

विवाहे गुरुशुद्धिः स्यात् शुक्रशुद्धिर्द्विरागमे ।
त्रिगमे राहुशुद्धिश्च चन्द्रशुद्धिश्चतुर्गमे ॥

इस श्लोकमें कहीं २ 'प्रथमे गुरुशुद्धिः' ऐसा भी पाठ उपलब्ध है। यहाँ प्रत्येक स्थानमें गम (यात्रा) शब्दका प्रयोग किया गया है। इसलिये प्रथम यात्रा लोगोंके मनमें प्रायः सन्देह उत्पन्न करती है। परन्तु पाठकों को खूब ध्यान देना चाहिये कि स्त्रीकी प्रथम यात्रा पिताके कुलसे पतिके कुलमें प्रवेशको कहते हैं। वह तब होती है जब कन्याका पिता उसे उसके भविष्य पतिको सङ्कल्प करके देता है। अर्थात् विवाह। उसमें गुरुशुद्धि ही देखी जाती है। शुक्रशुद्धिका विचार विलम्बित वधूप्रवेशमें करना चाहिये।

कुछ लोग वधूप्रवेशके बाद लौटकर पिताके घरमें आई हुई स्त्रीके पुनः पतिगृह जानेको द्विरागमन कहते हैं और उसमें शुक्र शुद्धि विचारते हैं, परन्तु ऐसा उचित नहीं है। ऐसी स्थितिको त्रिगम (दोङ्गा या व्यङ्ग यात्रा) कहते हैं। उसमें शुक्रका विचार नहीं बल्कि राहुका विचार करना चाहिये।

तीसरा प्रमाण ग्रन्थकर्ताके वाक्यसे लीजिये। यदि द्विरागमन ग्रन्थकारके मतसे वधूप्रवेशके बादकी यात्रा होती तो दूसरे और तीसरे श्लोकोंमें नवोढ़ा और नववधू पदका प्रयोग करके उसकी टीका 'नूतन-परिणीता कन्या' क्यों करते। इससे यह सिद्ध होता है कि द्विरागमन विलम्बित वधूप्रवेशका नाम है, वधूप्रवेशके बादकी यात्राका नहीं। विवाह ही स्त्रियोंकी प्रथम यात्रा और पतिगृह जानेको द्वितीय यात्रा कहते हैं, इसलिये विवाहके बाद पतिगृह जानेको ही द्विरागमन कहना चाहिये। परन्तु उसमें यात्रा नहीं देखी जाती प्रवेशका मुहूर्त ही देखा जाता है। विलम्बितमें यात्रा देखी जाती है, इतना ही अन्तर होता है।

द्विरागमनका मुहूर्त्त—

चरेदथौजहायने घटालिमेषगे रवौ
रवीज्यशुद्धियोगतः शुभग्रहस्य वासरे ।
नृयुग्ममीनकन्यकातुलावृषे विलग्नके
द्विरागमं लघुध्रुवे चरेऽस्रपे मृदूडुनि ॥ १ ॥

अन्वयः—अथ (प्रथमवर्षानन्तरम्) ओजहायने (विषमवर्षे) रवौ घटालिमेषगे, रवीज्यशुद्धियोगतः, शुभग्रहस्य वासरे, नृयुग्ममीनकन्यकातुलावृषे विलग्नके, लघुध्रुवे चरे अस्रपे मृदूडुनि द्विरागमं चरेत् ॥ १ ॥

भाषार्थः—विवाहसे एक वर्षके बाद विषम (३।५) वर्षोंमें सूर्य कुम्भ, वृश्चिक और मेष राशिमें हों अर्थात् सौर-फाल्गुन अग्रहण और वैशाख मासोंमें, कन्याके लिये सूर्य और बृहस्पतिकी शुद्धि रहने पर शुभ ग्रहोंके (चं. बु. बृ. शु.)

दिनमें, मिथुन, मीन, कन्या, तुला और वृष लग्नमें, लघुसंज्ञक, ध्रुवसंज्ञक, चरसंज्ञक, मूल और मृदुसंज्ञक नक्षत्रोंमें द्विरागमन (विलम्ब वधूप्रवेशके लिये पिताके घरसे यात्रा) कराना चाहिये ॥ १ ॥

वि०—इस विलम्ब वधूप्रवेशमें भी स्त्रीके पतिके गृहमें प्रवेशका नक्षत्रादि वधूप्रवेश प्रकरणके दूसरे श्लोकके अनुसार ही होंगे, परन्तु पिताके घरसे यात्राका विचार इस श्लोकके अनुसार करना चाहिये ॥ १ ॥

द्विरागमनमें शुक्रका विचार और फल—

दैत्येज्यो ह्यभिमुखदक्षिणे यदि स्याद्-
गच्छेयुर्न हि शिशुगर्भिणीनवोढाः ।
बालश्चेद्व्रजति विपद्यते नवोढा
चेद्वन्ध्या भवति च गर्भिणी त्वगर्भा ॥ २ ॥

अन्वयः—दैत्येज्यः (शुक्रः) यदि हि अभिमुखदक्षिणे स्यात् 'तदा' शिशु गर्भिणी नवोढाः हि (निश्चयेन) न गच्छेयुः । यतः, चेत् बालः व्रजति तदा विपद्यते । नवोढा चेत् व्रजति तदा वन्ध्या भवति । च (तथा) गर्भिणी तु अगर्भा भवति॥२॥

भाषार्थः—शुक्र यदि सम्मुख और दाहिने हों तो बालकवाली, नवविवाहिता और गर्भवाली स्त्री नहीं जायें । क्योंकि शुक्रके सम्मुख और दाहिने रहने पर यदि बालक जाय तो मर जाता है । नवोढा बाँझ होती है और गर्भिणीका गर्भ नष्ट हो जाता है । तात्पर्य यह है कि शुक्रके सम्मुख और दाहिने रहनेपर किसी भी स्त्रीका द्विरागमन नहीं करना चाहिये ॥ २ ॥

वि०—शुक्र जब सूर्यसे आगे (अधिक) रहता है तो सायंकाल पश्चिममें उदित रहता है । उस समय पश्चिमकी यात्रामें शुक्र सम्मुख और दक्षिणकी यात्रामें दाहिना पड़ता है; अतः पश्चिम-दक्षिणको छोड़ कर पूर्व-उत्तरकी यात्रा होती है ।

जब शुक्र सूर्यसे पीछे (कम) रहता है तो प्रातःकाल पूरबमें उदित रहता है । उस समय पूर्वकी यात्रामें सम्मुख और उत्तरमें दाहिना पड़ता है, अतः पूर्व-उत्तरको छोड़कर पश्चिम-दक्षिणकी यात्रा होती है ।

नव प्रसूता और गर्भवती स्त्रीके लिये किसी भी यात्रामें इस शुक्रका विचार करना चाहिये और नववधूके लिये केवल द्विरागमनमें ॥ २ ॥

सम्मुख शुक्रका परिहार—

नगरप्रवेशविषयाद्युपद्रवे करपीडने विबुधतीर्थयात्रयोः ।
नृपपीडने नववधूप्रवेशने प्रतिभार्गवो भवति दोषकृन्न हि ॥ ३ ॥

अन्वयः—नगरप्रवेशविषयाद्युपद्रवे, करपीडने, विबुधतीर्थयात्रयोः, नृपपीड़ने, नववधूप्रवेशने प्रतिभार्गवः (सम्मुखशुक्रः) हि (निश्चयेन) दोषकृत् न भवति ॥३॥

भाषार्थः—नगरके प्रवेशमें, किसी विषय (बिमारी या उत्पात) आदिके उपद्रवमें, विवाहमें, देवताका दर्शन और तीर्थकी यात्रामें, राजासे पीड़ित होकर जानेमें और नवीन वधूप्रवेशमें सम्मुख भी शुक्र दोषकारक नहीं होता है। अर्थात् उक्त अवस्थाओंमें शुक्रका विचार नहीं करना चाहिये ॥ ३ ॥

वि०—इस श्लोकके नववधूप्रवेशने, इस वाक्यके अनुसार ही एक वर्षके भीतर वधू-प्रवेशमें शुक्रशुद्धि नहीं देखी जाती है ॥ ३ ॥

सम्मुख शुक्रका विशिष्ट अपवाद—

पित्र्ये गृहे चेत्कुचपुष्पसम्भवः स्त्रीणां न दोषः प्रतिशुक्रसम्भवः।
भृग्वङ्गिरोवत्सवसिष्ठकश्यपात्रीणां भरद्वाजमुनेः कुले तथा ॥ ४ ॥

अन्वयः—पित्र्ये, गृहे 'एव' चेत् स्त्रीणां कुचपुष्पसम्भवः 'स्यात् तदा' प्रतिशुक्रसम्भवः दोषः न 'भवेत्'। तथा, भृग्वङ्गिरोवत्सवसिष्ठकश्यपात्रीणां कुले, भरद्वाजमुनेः कुले 'च' 'प्रतिशुक्रसम्भवः दोषः न भवेत्' ॥ ४ ॥

भाषार्थः—यदि पिताके घरमें ही स्त्रियोंके कुच (स्तन) और रजोदर्शन हो गये हों तो उनके द्विरागमनमें सम्मुख शुक्रका दोष नहीं लगता। एवं भृगु, अङ्गिरा, वत्स, वसिष्ठ, कश्यप, अत्रि और भरद्वाज मुनिके वंशमें (इनके गोत्रमें) भी सम्मुख शुक्रका दोष नहीं लगता ॥ ४ ॥

वि०—जातक ग्रन्थोंमें शुक्र शुक्र (कन्दर्प) का अधिष्ठाता कहा गया है। शुक्र जब सामने या दाहिने पड़ता है तो वह उस स्त्रीको शुक्रसे व्यथित करता है इसलिये बालावस्थामें उससे बचानेके लिये सम्मुख शुक्रका त्याग कहा गया है। जब स्त्री स्वयं कुच-पुष्पवती हो जाती है तब तो उसमें शुक्रका साम्राज्य आपसे आप हो जाता है, इसलिये उस अवस्थामें उसे शुक्रग्रहसे शुक्रविकारकी शङ्का नहीं रह जाती। अतएव आचार्यने कुचपुष्पवती स्त्रीके द्विरागमनमें सम्मुख शुक्रका दोष नहीं बताया।

आजकल जहां तक देखा जाता है कि जब कन्यायें स्तन-पुष्पवती हो जाती हैं तभी उनका विवाह होता है। ऐसी स्थितिमें उनके द्विरागमनमें आचार्यके आदेशानुसार शुक्रकी शुद्धि देखनेकी आवश्यकता ही नहीं है। परन्तु लोकव्यवहार और शास्त्रमर्यादाकी आंशिक रक्षाके *लिये प्रौढ़ा (युवती) स्त्रीके द्विरागमनमें भी शुक्रका विचार करते हैं। जो व्यर्थ सा है।

सम्मुख शुक्रका परिहार शुक्रान्धके नामसे यात्रा प्रकरणके २९वें श्लोकमें कहा जायगा। प्रसङ्ग वश प्राचीन वचन यहां भी लिखाता हूँ।

---

*पूर्णरक्षा तो तब होती कि शास्त्रमर्यादानुसार ११ वें वर्षके पूर्व ही कन्यायें व्याही जातीं।

रेवत्यादिमृगान्तेषु यावत् तिष्ठति चन्द्रमाः ।
तावच्छुक्रो भवेदन्धः सम्मुखस्थो न दोषकृत ॥

अर्थात् रेवतीसे मृगशिरा तक ६ नक्षत्रोंमें चन्द्रमाके रहने पर शुक्र अन्धा होता है, वह सम्मुख रहनेपर भी दोषकर नहीं होता ।

नोटः—यद्यपि आजकल बहुतोंका ऐसा मत है कि विवाहसे एक वर्षके भीतर वधूप्रवेश होनेमें किसी भी लग्न या शुद्धि आदिकी आवश्यकता नहीं पड़ती । केवल तिथि-नक्षत्र-दिन शुद्धि ही देखी जाती है । जैसे कहा भी है ।

अस्तं याते किल सुरगुरौ भार्गवे वा कृशे वा
चैत्रे पौषे तपसि च भृगौ दक्षिणे सम्मुखे वा ।
सिंहस्थे वा सुरपतिगुरौ निद्रया युक्तविष्णौ
गच्छेत् कन्या स्वपतिसहिता वर्षमेकं हि यावत् ॥

एक वर्षके बाद गुरु-शुक्रोदय-शुद्धि सब देखनी चाहिए । तथापि १ वर्षके भीतर भी पौष, चैत्र, मलमास और हरिशयन को बराना ही चाहिए क्योंकि श्रीव्यासजीका वचन है—

चैत्रे पौषे हरिस्वप्ने गुरोरस्ते मलिम्लुचे ।
नवोढागमनं नैव कृते पञ्चत्वमाप्नुयात् ॥ इति ॥ ५ ॥

इति द्विरागमनप्रकरणम् ॥ ८ ॥

अथाग्न्याधानप्रकरणम् ॥ ९ ॥

इस प्रकरणमें अग्न्याधानका मुहूर्त बताया जायगा, इसलिए इसका नाम अग्न्याधान प्रकरण रखा गया । पहले यह बतला देना उचित है कि अग्न्याधान किसे कहते हैं । 'अग्निः धीयते श्रौतेन स्मार्तेन वा कर्मविशेषेणेत्यग्न्याधानम्' इस व्युत्पत्तिके अनुसार वैदिक या स्मार्त कर्मोंके द्वारा जो अग्निकी अर्चा (ज्योतिष्टोम आदि) की जाती है वही अग्न्याधान, अग्निहोत्र आदि नामसे प्रसिद्ध है । वह अग्न्याधान यज्ञका मुख रूप होनेके कारण सपत्नीक (*) पुरुषोंके द्वारा किया जाता है इस लिये विवाहके बाद गृहस्थोंको उसका अवसर प्राप्त होता है । लिखा भी है—

'अग्न्याधानं दारकाले विधेयं कैश्चित् प्रोक्तं तच्च दायाद्यकाले' । अर्थात् विवाहके समयमें ही अग्न्याधान करना चाहिये । किसीके मतसे दाय (आश्रम पृथक् करनेके) कालमें करना चाहिये । इसलिये जब विवाह या दायविभाग कालमें अग्निहोत्र करना हो तो वहां मुहूर्त देखने की आवश्यकता नहीं होती, परन्तु जब विवाहादि कालमें अग्न्याधान नहीं कर सका हो तो उसके लिये अग्निहोत्रमें मुहूर्त देखना आवश्यक होता है, इसलिये इस प्रकरणमें उसका विचार किया जायेगा ।

---

*-बिना स्त्रीका पुरुष यज्ञका अधिकारी नहीं होता ।

अग्न्याधानका मुहूर्त—

स्यादग्निहोत्रविधिरुत्तरगे दिनेशे
मिश्रध्रुवान्त्यशशिशक्रसुरेज्यधिष्ण्ये ।
रिक्तासु नो शशिकुजेज्यभृगौ न नीचे
नास्तं गते न विजिते न च शत्रुगेहे ॥ १ ॥

अन्वयः—दिनेशे उत्तरगे 'सति' मिश्रध्रुवान्त्यशशिशक्रसुरेज्यधिष्ण्ये अग्निहोत्रविधिः 'शुभः' स्यात्। रिक्तासु न, शशिकुजेज्यभृगौ न नीचे अस्तंगते च न, विजिते न, च (पुनः) शत्रुगेहे 'गते' अग्निहोत्रविधिः शुभः न स्यात् ॥ १ ॥

भाषार्थः—सूर्यके उत्तरायणमें रहने पर मिश्र-ध्रुव संज्ञक, रेवती, मृगशिरा, ज्येष्ठा और पुष्य-इन नक्षत्रोंमें अग्निहोत्र शुभ होता है। रिक्ता तिथिमें, चन्द्रमा-मङ्गल-गुरु-शुक्र ये नीच राशिमें हों, अस्त हों, युद्धमें हारे हों और अपने-अपने शत्रुके गृहमें हों तो अग्निहोत्र शुभ नहीं होता। अर्थात् उत्तरायणमें भी जब चन्द्रमा-मङ्गल-गुरु-शुक्र ये बली हों और ४।९।१४ के अतिरिक्त तिथि हो तथा मिश्रादि नक्षत्र हों तभी अग्निहोत्र करना चाहिये ॥ १ ॥

अग्निहोत्रमें लग्नशुद्धि—

नो कर्कनक्रझषकुम्भनवांशलग्ने
नोऽब्जे तनौ रविशशीज्यकुजे त्रिकोणे ।
केन्द्रर्क्षषट्त्रिभवगे च परैस्त्रिलाभ-
षट्खस्थितैर्निधनशुद्धियुते विलग्ने ॥ २ ॥

अन्वयः—कर्कनक्रझषकुम्भनवांशलग्ने 'अग्निहोत्रविधिः शुभः' नो। अब्जे तनौ सति नो। अथ, रवि शशीज्यकुजे त्रिकोणे केन्द्रर्क्षषट्त्रिभवगे च सति, परैः त्रिलाभषट्खस्थितैः विलग्ने निधनशुद्धियुते 'सति' अग्निहोत्रविधिः शुभः स्यात् ॥ २ ॥

भाषार्थः—कर्क-मकर-मीन-कुम्भ-इन राशियोंके नवांश और लग्न तथा लग्नमें चन्द्रमा अग्निहोत्रमें शुभ नहीं होते।

सूर्य-चन्द्रमा-गुरु-मङ्गल-ये लग्न से ९।५।१।४।७।१०।६।३।११। इन स्थानोंमें हों और अन्य ग्रह (बु.शु.श.रा.कै) ३।६।११।१० में हों तथा लग्नसे ८ वां*स्थान

* यजमानकी जन्मराशिसे ८ वीं राशि भी अग्निहोत्रका लग्न नहीं हो।

शुद्ध (खाली) हो तो अग्निहोत्र शुभ होता है ॥ २ ॥

निश्चित यज्ञकर्तृयोग—

चापे जीवे तनुस्थे वा मेषे भौमेऽम्बरे द्युने ।
षट्त्र्यायेऽब्जे रवौ वा स्याज्जाताग्निर्यजति ध्रुवम् ॥ ३ ॥

अन्वयः—जीवे चापे तनुस्थे, वा भौमे मेषे तनुस्थे, वा अम्बरे-द्युने, वा अब्जे षट्त्र्याये, वा रवौ षट्त्र्याये 'सति' जाताग्निः स्यात् तथा ध्रुवं यजति ॥ ३ ॥

भाषार्थः—बृहस्पति धनुलग्नमें हो, वा मङ्गल मेष लग्नमें या लग्नसे १० वें या ७ वें स्थानमें हो, वा चन्द्रमा लग्नसे ६,३,११ वें स्थानोंमें हों, वा सूर्य लग्नसे ६,३,११ में हो तो इन १० योगों में यजमान सदा यज्ञ करने वाला होता है और निश्चय यज्ञ करता है ॥ ३ ॥

वि०—जिसके आधान लग्नमें ऐसा योग पड़ा हो वह पुरुष सदा यज्ञ करने वाला होता है। अग्निहोत्र कालमें भी यह योग शुभ होता है ॥ ३ ॥

इति अग्निहोत्रप्रकरणम् ॥ ९ ॥

अथ राजाभिषेकप्रकरणम् ॥ १० ॥

इस प्रकरणमें राजाओंके अभिषेक (राजतिलक) का मुहूर्त कहा जायगा इस लिए इस प्रकरणका नाम राजाभिषेक प्रकरण रखा गया है।

राजाभिषेकका समय—

राजाभिषेकः शुभ उत्तरायणे गुर्विन्दुशुक्रैरुदितैर्बलान्वितैः ।
भौमार्कलग्नेशदशेशजन्मपैर्नो चैत्ररिक्तारनिशामलिम्लुचे ॥ १ ॥

अन्वयः—उत्तरायणे, गुर्विन्दुशुक्रैः उदितैः, भौमार्कलग्नेशदशेशजन्मपैः बलान्वितैः राजाभिषेकः शुभः स्यात्। किन्तु, चैत्ररिक्तारनिशामलिम्लुचे राजाभिषेकः नो शुभः स्यात् ॥ १ ॥

भाषार्थः—उत्तरायणमें (मकर-कुम्भ-मेष-वृष-मिथुनमें सूर्यके रहने पर) बृहस्पति, चन्द्रमा और शुक्र उदित हों, मङ्गल, सूर्य, जन्म लग्नेश, वर्तमानकालिक दशाका स्वामी* और जन्मराशीश ये ग्रह बली हों तो राजाभिषेक शुभ होता है। परन्तु चैत्रमास, रिक्ता तिथि, मङ्गलवार, रातका समय और मलमास ये राजाभिषेकमें निषिद्ध हैं ॥ १ ॥

---

* कुण्डलीमें जिस ग्रहकी दशा बीतती हो ।

वि०—राजाभिषेकका यह समय सर्वथा अनुकूल समयके लिये हैं, किन्तु जहां पूर्व राजाका मरण हो गया हो और आगे शत्रुओंमें विवादकी शङ्का हो ऐसी स्थितिमें समयकी पूर्णशुद्धि देखनेकी आवश्यकता नहीं होती। जैसा कि दैवज्ञमनोहरमें लिखा गया है—

"मृते राज्ञि न कालस्य नियमोऽत्र विधीयते।
नृपाभिषेकः कर्तव्यो दैवज्ञेन पुरोधसा" इति ॥ १ ॥

राजाभिषेकमें नक्षत्र और लग्नशुद्धि—

शाक्रश्रवः क्षिप्रमृदुध्रुवोडुभिः शीर्षोदये वोपचये शुभे तनौ।
पापैस्त्रिषष्ठायगतैः शुभग्रहैः केन्द्रत्रिकोणायधनत्रिसंस्थितैः ॥२॥

अन्वयः—शाक्रश्रवःक्षिप्रमृदुध्रुवोडुभिः, शीर्षोदये वा 'जन्मलग्नाज्जन्मराशेर्वा' उपचये शुभे तनौ, पापैः त्रिषष्ठायगतैः, शुभग्रहैः केन्द्रत्रिकोणायधनत्रिसंस्थितैः 'राजाभिषेकः शुभः स्यात्' ॥ २ ॥

भाषार्थः—ज्येष्ठा, श्रवण, क्षिप्रसंज्ञक, मृदुसंज्ञक और ध्रुवसंज्ञक नक्षत्रोंमें शीर्षोदय (मिथुन, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, कुम्भ) राशिके लग्नमें अथवा राजाके जन्मलग्न या जन्मराशिसे ३।६।१०।११ संख्यक शुभ लग्नमें जब कि पापग्रह ३।६।११ स्थानोंमें और शुभग्रह १।४।७।१०।५।९।११।२।३ स्थानोंमें हों तो राजाभिषेक शुभ होता है ॥ २ ॥

राजाभिषेकमें पापग्रहोंका स्थानफल और परिहार—

पापैस्तनौ रुङ्निधने मृतिः सुते पुत्रार्तिरर्थव्ययगैर्दरिद्रता।
स्यात्खेऽलसो भ्रष्टपदो द्युनाम्बुगैः सर्वं शुभं केन्द्रगतैः शुभग्रहैः॥३॥

अन्वयः—पापैः तनौ स्थितैः 'राज्ञः' रुक् स्यात्। निधने मृतिः स्यात्। सुते पुत्रार्तिः स्यात्। अर्थव्ययगैः 'पापैः' दरिद्रता स्यात्। खे अलसः स्यात्। द्युनाम्बुगैः 'पापैः, राजा' भ्रष्टपदः स्यात्। किन्तु, शुभग्रहैः केन्द्रगतैः सर्वं शुभं स्यात् ॥ ३ ॥

भाषार्थः—यदि पापग्रह लग्नमें हों तो अभिषेक होने पर राजाको रोग होवे। ८ वें पापग्रह हो तो मरण होवे। ५ वें पापग्रह हो तो राजाको पुत्रका कष्ट होवे। २ रे और १२ वें पापग्रह हों तो दरिद्रता (गरीबी) होवे। १० वें पापग्रह हों तो वह राजा आलसी हो। ७ वें और ४ थे पापग्रह हों तो राजा भ्रष्टपद (अधिकार हीन) होवे। परन्तु यदि शुभग्रह सब केन्द्र—(१।४।७।१०) में हों तो सर्वथा शुभ ही होता है। अर्थात् शुभग्रहोंके केन्द्रमें रहने पर पापग्रह कृत कोई दोष नहीं लगता ॥ ३ ॥

राजाभिषेकमें स्थिर सम्पत्तिका योग—

गुरुर्लग्नकोणे कुजोऽरौ सितः खे
स राजा सदा मोदते राजलक्ष्म्या।
तृतीयायगौ सौरिसूर्यौ खबन्ध्वो-
र्गुरुश्चेद्धरित्री स्थिरा स्यान्नृपस्य ॥ ४ ॥

अन्वयः—'यस्य राज्ञः अभिषेकसमये' गुरुः लग्नकोणे, कुजः अरौ, सितः खे 'स्थितो भवेत्' स राजा राजलक्ष्म्या सदा मोदते। सौरिसूर्यौ तृतीयायगौ गुरुः चेत् खबन्ध्वोः 'स्थितः स्यात्, तदा नृपस्य धरित्री स्थिरा स्यात् ॥ ४ ॥

भाषार्थः—जिस राजाका अभिषेकके समयमें बृहस्पति लग्न या कोण (५।९) में हो, मङ्गल ६ ठें और शुक्र १० वें हों वह राजा सर्वदा राज्यलक्ष्मीसे युक्त होकर प्रसन्न रहता है। एवं यदि शनि ३ रे सूर्य ११ वें और बृहस्पति १० वें या ४ थे स्थानमें हों तो उस राजाकी पृथ्वी सदा स्थिर रहती है। अर्थात् उसका राज्य अचल रहता है ॥ ४ ॥

इति राजाभिषेकप्रकरणम् ॥ १० ॥

अथ यात्राप्रकरणम् ॥ ११ ॥

इस प्रकरणमें यात्राका विशद विचार किया जायगा, इसलिये इस प्रकरणका 'यात्रा प्रकरण' ऐसा नाम रखा गया है। पहले यह बतला देना आवश्यक है कि 'यात्रा' किसे कहते हैं और उसके कितने भेद हैं। किसी भी कार्यकी सिद्धिके उद्देश्यसे एक स्थानसे दूसरे स्थान जानेको 'यात्रा' कहते हैं। वह यात्रा दो प्रकारकी होती हैं। एक सामान्य यात्रा। दूसरी युद्धयात्रा। सामान्य यात्रा वह है जो व्यवहारिक कार्य-(द्रव्योपार्जन, नौकरी, तीर्थ-दर्शन कुटुम्ब सम्मेलन आदि) के लिये होती है, उसमें केवल तिथि वारनक्षत्रोंकी शुद्धि देखी जाती है। युद्ध यात्रा किसी दूसरे राज्यको जीतनेकी कामनासे होती है, उसमें समय शुद्धि और विशिष्ट २ राजयोग देखनेकी आवश्यकता पड़ती है। जिसके लिये वराहमिहिर आदि आचार्योंके बनाये योगयात्रा आदि युद्धयात्रिक ग्रन्थ हैं। इस प्रकरणमें भी आचार्यने द्विविध यात्रामें उपयुक्त विषयोंका भरपूर सङ्कलन किया है, जो आगे चलकर पाठकोंको दिखलाया जायगा।

यात्राका मुहूर्त बतलानेकी रीति—

यात्रायां प्रविदितजन्मनां नृपाणां दातव्यं दिवसमबुद्धजन्मनां च।
प्रश्नाद्यैरुदयनिमित्तमूलभूतैर्विज्ञाते ह्यशुभशुभे बुधः प्रदद्यात् ॥१॥

अन्वयः—प्रविदितजन्मनां (ज्ञातजन्मसमयानाम्) नृपाणां यात्रायां दिवसं

दातव्यम् । अबुद्धजन्मनां (अविदितजन्मसमयानाम्) च 'नृपाणां यात्रायां प्रश्नाद्यैः उदय-निमित्तमूलभूतैः अशुभशुभे विज्ञाते 'सति' हि बुधः दिवसं प्रदद्यात् ॥ १ ॥

भाषार्थः—जिन राजाओंका जन्म समय ज्ञात हो उनके लिये यात्रामें मुहूर्त बताना चाहिये । जिनका जन्म समय ज्ञात नहीं हो उनके लिये प्रश्न-कालिक लग्न और शकुनादिसे शुभाशुभ लक्षण जानकर यात्रामें मुहूर्त बताना चाहिये ॥ १ ॥

वि०—प्रत्येक मनुष्यके शुभाशुभ फल जन्मकालिक ग्रहोंके आधारपर विचारे जाते हैं, परन्तु जिनकी जन्मकालिक ग्रहस्थिति नहीं मालूम हो (कुण्डली नहीं हो) उनका विचार तात्कालिक प्रश्नलग्नके आधार पर आचार्योंने किया है; इसलिये यात्रामें भी जन्मकालीन या प्रश्नकालिक ग्रहोंसे विचार करना चाहिये ।

मन्तव्यः—इस प्रकरणमें प्रायः अधिक स्थानोंमें 'राजा' शब्दका प्रयोग किया गया है । पाठकोंको 'राजा' उपलक्षण समझना चाहिये । योग यात्रा (युद्ध आदिके लिये विशिष्ट यात्रा) राजा ही किया करते हैं इसलिये 'राजा' शब्दका प्रयोग किया गया है, परन्तु विचार सर्व-साधारणके लिये करना चाहिये ॥ १ ॥

यात्रा सम्बन्धी प्रश्नका फल—

जननराशितनू यदि लग्नगे तदधिपौ यदि वा तत एव वा ।
त्रिरिपुखायगृहं यदि वोदयो विजय एव भवेद्वसुधापतेः ॥ २ ॥

अन्वयः—'प्रश्नकाले' यदि जननराशि-तनू लग्नगे 'स्याताम्' यदि वा तदधिपौ जन्मराशिजन्मलग्नाधीशौ, 'लग्नगौ स्याताम्' वा ततः (जन्मराशिजन्मलग्नाभ्याम्) एव त्रिरिपुखायगृहं यदि वा उदयः (प्रश्नलग्नं) भवेत् 'तदा' यात्रायां वसुधापतेः विजयः भवेत् एव ॥ २ ॥

भाषार्थः—प्रश्नकालमें यदि जन्मराशि या जन्म लग्नकी राशि लग्नमें हो, अथवा जन्मराशीश और जन्मलग्नेश लग्नमें हों, अथवा जन्मराशि या जन्मलग्नसे ३।६।१०।११ इन स्थानोंमें से कोई एक राशि प्रश्नका लग्न हो तो प्रश्न करनेवाले राजाकी यात्रामें विजय होती ही है ॥ २ ॥

वि०—जन्मराशि और जन्मलग्नके भेदसे इस श्लोकसे ६ योग होते हैं ॥ २ ॥

प्रश्नका दूसरा फल—

रिपुजन्मलग्नभमथाधिपौ तयोस्तत एव वोपचयसद्म चेद्भवेत् ।
हिबुके द्युनेऽथ शुभवर्गकस्तनौ यदि मस्तकोदयगृहं तदा जयः ॥३॥

अन्वयः—रिपुजन्मलग्नभं, अथवा तयोः अधिपौ वा ततः एव उपचयसद्म 'प्रश्न-

काले' चेत् हिबुके द्युने भवेत्, अथ तनौ शुभवर्गकः, वा यदि लग्ने मस्तकोदयगृहं 'तदा' 'वसुधापतेः' जयः 'स्यात्' ॥ ३ ॥

भाषार्थः—'जिसके ऊपर चढ़ाई करनी हो, उस' शत्रुका जन्मलग्न या जन्मराशि, अथवा जन्मलग्नेश-जन्मराशीश, अथवा जन्मलग्न या जन्मराशिसे उपचय (३।६।१०।११) राशि यदि प्रश्नलग्नसे ४ थे या ७ वें स्थानमें पड़े तो प्रश्नकर्त्ताकी यात्रामें जय होती है। एवं यदि प्रश्नलग्नमें शुभग्रहका वर्ग पड़े वा शीर्षोदय राशिका लग्न हो तो भी यात्रामें जय होती है ॥ ३ ॥

प्रश्नका तीसरा फल—

यदि पृच्छितनौ वसुधा रुचिरा शुभवस्तु यदि श्रुतिदर्शनगम् ।
यदि पृच्छति चादरतश्च शुभग्रहदृष्टयुतं चरलग्नमपि ॥ ४ ॥

अन्वयः—यदि पृच्छितनौ (प्रश्नकालीनलग्ने) वसुधा रुचिरा 'स्यात्', यदि वा शुभवस्तु श्रुतिदर्शनगं 'स्यात', यदि च आदरतः पृच्छति, अथवा चरलग्नं अपि शुभग्रहदृष्टयुतं 'स्यात्' तदा वसुधापतेः, जयः स्यात् ॥ ४ ॥

भाषार्थः—यात्राका मुहूर्त पूछनेके समयमें वहाँकी पृथ्वी (भूमि) खूब सुन्दरी (परिष्कृता और सजी धजी) हो, या शुभ वस्तु (माङ्गलिक चीजें) सुनने या देखनेमें आवें, या प्रश्नकर्ता खूब आदर से (प्रेमपूर्वक) पूछे तो यात्रामें विजय होती है। अथवा प्रश्नकालमें चरराशि (१।४।७।१०) का लग्न भी हो लेकिन उस पर शुभग्रहकी दृष्टि या योग हो तो विजय होती है ॥ ४ ॥

वि०—प्रश्नकालमें मेष, कर्क, तुला, मकर (चर) राशिका लग्न शुभ नहीं होता, लेकिन यदि उसमें शुभग्रहकी दृष्टि या स्थिति हो तो उस दोषका परिहार होता है ॥ ४ ॥

प्रश्नका चौथा फल-(यात्राभङ्गयोग)—

विधुकुजयुतलग्ने सौरिदृष्टेऽथ चन्द्रे
मृतिभमदनसंस्थे लग्नगे भास्करेऽपि ।
हिबुकनिधनहोराद्यूनगे चापि पापे
सपदि भवति भङ्गः प्रश्नकर्तुस्तदानीम् ॥ ५ ॥

अन्वयः—'प्रश्नकाले' विधुकुजयुतलग्ने सौरिदृष्टे 'सति', अथ'वा' चन्द्रे मृतिभमदनसंस्थे, भास्करे लग्नगे, अपि वा भास्करे मृतिभमदनसंस्थे चन्द्रे लग्नगे 'सति', अपि च (अथवा) पापे हिबुकनिधनहोराद्यूनगे 'सति' तदानीं प्रश्नकर्तुः 'यात्रायाः' सपदि भङ्गः भवति ॥ ५ ॥

भाषार्थः—प्रश्नके समय लग्नमें चन्द्रमा और मङ्गलका योग हो और उस पर शनिकी दृष्टि हो, अथवा चन्द्रमा लग्नसे ७।८ में और सूर्य लग्नमें हो, अथवा सूर्य ही ७।८ में और चन्द्रमा लग्नमें हो, अथवा कोई पापग्रह लग्नसे ४।८।१।७ वें स्थानमें हो तो प्रश्नकर्ताकी यात्राका शीघ्र ही भङ्ग हो जाता है। अर्थात् ऐसे योगमें पूछने वालेकी यात्रामें पराजय या नाश होता है ॥ ५ ॥

प्रश्नके आधार पर यात्रा करनेवालेकी यात्रा-दिशाका विचार—

त्रिकोणे कुजात्सौरिशुक्रज्ञजीवा
यदैकोऽपि वा नो गमोऽर्काच्छशी वा ।
बलीयांस्तु मध्ये तयोर्यो ग्रहः स्यात्
स्वकीयां दिशं प्रत्युताऽसौ नयेच्च ॥ ६ ॥

अन्वयः—'प्रश्नकाले' सौरिशुक्रज्ञजीवाः 'सर्वे' वा एकः अपि यदा कुजात् त्रिकोणे 'स्थितः स्यात्', वा अर्कात् शशी त्रिकोणे 'स्यात् तदा प्रश्नकर्तुः' गमः नो 'भवेत्'। प्रत्युत तयोः मध्ये तु यः ग्रहः बलीयान् स्यात् असौ ग्रहः स्वकीयां दिशं च नयेत् ॥ ६ ॥

भाषार्थः—प्रश्नके समय शनि-शुक्र-बुध-बृहस्पति ये चारों या कोई एक भी यदि मङ्गलसे त्रिकोण (५।९) में हो अथवा चन्द्रमा सूर्यसे त्रिकोणमें हो तो प्रश्नकर्ताकी अभीष्ट दिशाकी यात्रा नहीं होती, बल्कि उन दोनोंमें (मङ्गल और बुधादिमें अथवा सूर्य और चन्द्रमामें) जो अधिक बली हो वह ग्रह उसे अपनी दिशामें * ले जाता है ॥ ६ ॥

उदाहरण—जैसे किसीके पूर्व दिशाकी यात्राके प्रश्नकालमें मङ्गलसे बृहस्पति ५ वें है और मङ्गल और बृहस्पतिमें अधिक बली बृहस्पति है तो यहाँ यह कहना चाहिये कि वह यात्री पूर्व दिशामें नहीं जा सकेगा बल्कि बृहस्पति उसे अपनी दिशा (ईशान) में ले जायगा। ऐसे ही सर्वत्र समझना चाहिये ॥ ६ ॥

यात्रा दिशाका दूसरा-योग—

प्रश्ने गम्यदिगीशात्खेटः पञ्चमगो यः ।
बोभूयाद्बलयुक्तः स्वामाशां नयतेऽसौ ॥ ७ ॥

अन्वयः—प्रश्ने गम्यदिगीशात् पञ्चमगः यः खेटः बलयुक्तः बोभूयात् असौ 'ग्रहः तं' स्वां आशां नयते ॥ ७ ॥

---

* ग्रहोंकी दिशायें आगे ४९ वें श्लोकमें कही जायेंगी।

भाषार्थः—प्रश्नके समयमें गन्तव्य दिशाके स्वामी से ५ वें स्थानमें जो ग्रह बली होता है वह उसे अपनी दिशामें ले जाता है ॥ ७ ॥

उदाहरण—जैसे—किसीने पूर्वको यात्रा पूछी है तो यहाँ पूर्व दिशाके स्वामी सूर्यसे ५ वें स्थानमें मङ्गल यदि मेष राशिमें हो तो वह स्वगृहीका होनेके कारण बली होगा और वह मङ्गल उस यात्रीको अपनी दिशा-(दक्षिण) में ले जायेगा ॥ ७ ॥

इस प्रकरणके प्रथम श्लोकके उत्तरार्धके अनुसार उपर्युक्त ६ श्लोकोंसे प्रश्नकालिक शुभाशुभ विचार किये गये हैं । विद्वान्को चाहिये कि वे यात्राके प्रश्नकर्ताको इसी प्रकार प्रश्नकालिक विचार करके मुहूर्त बतावें ।

यात्रामें समय (सौरमास) का फल—

धनुर्मेषसिंहेषु यात्रा प्रशस्ता शनिज्ञोशनोराशिगे चैव मध्या ।
रवौ कर्कमीनालिसंस्थेऽतिदीर्घा, जनुःपञ्चसप्तत्रितारास्च नेष्टाः ॥८॥

अन्वयः—धनुर्मेषसिंहेषु 'स्थिते' रवौ यात्रा प्रशस्ता 'भवति । शनिज्ञोशनोराशिगे 'रवौ' च यात्रा मध्या एव । कर्कमीनालिसंस्थे 'रवौ' यात्रा अतिदीर्घा 'भवति' तथा च जनुः पञ्चसप्तत्रिताराः 'यात्रायां' इष्टाः न भवन्ति ॥ ८ ॥

भाषार्थः—धनु, मेष और सिंह राशिमें सूर्यके रहनेपर यात्रा प्रशस्त (अभीष्ट फलको देनेवाली) कही गई है । शनि, बुध और शुक्रकी राशिमें (अर्थात् मकर, कुम्भ, मिथुन, कन्या, वृष और तुलामें) सूर्यके रहनेपर यात्रा मध्यफला (साधारण) होती है । कर्क, मीन, वृश्चिक राशिमें सूर्यके रहनेपर यात्रा अतिदीर्घा (बहुत देरमें होनेवाली और निष्फला) होती है ।

यात्राके समयमें यात्रीकी १।५।७।३ तारायें शुभ नहीं होती । अतः यात्रामें १।५।७।३ ताराओंको त्यागना चाहिये ॥ ८ ॥

वि०—धनुका सूर्य पूस मासमें, मेषका वैशाखमें, सिंहका भाद्रमें होता है अतः पूस वैशाख और भाद्र मासमें यात्रा उत्तम होती है । मकरका माघमें, कुम्भका फाल्गुनमें, मिथुनका आषाढ़में, कन्याका आश्विनमें, वृषका ज्येष्ठमें और तुलका कार्तिकमें होता है । अतः ज्येष्ठ आषाढ़, आश्विन, कार्त्तिक, माघ और फाल्गुन मासमें यात्रा मध्यम होती है । एवं कर्कका सूर्य श्रावणमें, मीनका चैत्रमें, वृश्चिकका अग्रहणमें होता है । अतः श्रावण, अग्रहण और चैत्रमासमें यात्रा दीर्घयात्रा होती है ।

परन्तु, पाठकोंको इतना ध्यान रखना चाहिये कि यह यात्राका समय विशिष्ट यात्रा (युद्ध यात्रा) के लिये है, सामान्य यात्राके लिये नहीं । युद्ध यात्रामें उक्त श्लोकके अनुसार अनुकूल समयका विचार करना चाहिये । सामान्य यात्रामें दैनिक सूर्यके भ्रमणका विचार करके सूर्यकी पृष्ठदिशामें यात्रा करनी चाहिये। अर्थात् जब सूर्य लग्नमें हो तो पश्चिम दिशामें, द्वितीय तृतीयमें

हो तो नैर्ऋत्यमें, चतुर्थमें हो तो दक्षिणमें, ५।६ में हो तो आग्नेयमें, ७ वें हो तो पूर्वमें, ८।९ वें में हो तो ईशानमें, १० वें हो तो उत्तर और ११।१२ में हो तो वायव्य दिशामें जाना चाहिये। जैसे श्री देवल आचार्यने कहा है—

"लग्नस्थे वरुणाशां हिबुकस्थे दक्षिणां रवौ यायात्।
सप्तमगे पूर्वाशां मेपूरणसंस्थिते सौम्याम" इति ॥

विशिष्ट यात्रामें भी इस सूर्यपृष्ठदिशाका विचार अवश्य कर लेना चाहिये।

ताराका विचार गोचर प्रकरणके ११ वें श्लोकसे कीजिये ॥ ८ ॥

यात्रामें तिथि-नक्षत्रकी शुद्धि—

न षष्ठी न च द्वादशी नाऽष्टमी नो सिताद्या तिथिः पूर्णिमाऽमा न रिक्ता।
हयादित्यमैत्रेन्दुजीवान्त्यहस्तश्रवोवासवैरेव यात्रा प्रशस्ता ॥ ९ ॥

अन्वयः—'यात्रायां'-षष्ठी न, द्वादशी च न, अष्टमी न, सिताद्या तिथिः नो, पूर्णिमा-अमा-रिक्ता च न शुभा भवति। अथ, हयादित्यमैत्रेन्दुजीवान्त्यहस्तश्रवोवासवैः 'नक्षत्रैः' यात्रा प्रशस्ता एव 'भवति' ॥ ९ ॥

भाषार्थः—षष्ठी, द्वादशी, अष्टमी, शुक्ल पक्षकी पड़िवा, पूर्णिमा, अमावस और रिक्ता (४।९।१४) ये तिथियाँ यात्रामें शुभ नहीं हैं। अर्थात् इन तिथियोंमें यात्रा नहीं करनी चाहिये। अश्विनी, पुनर्वसु, अनुराधा, मृगशिरा, पुष्य, रेवती हस्त, श्रवण और धनिष्ठा इन ९ नक्षत्रोंमें यात्रा प्रशस्त (अत्युत्तम) होती है ॥ ९ ॥

वि०—'नो सिताद्या तिथिः' इस वाक्यसे कृष्णपक्षकी पड़िवा तिथि अशुभ नहीं है। एवं जो तिथियाँ अशुभ कही गई हैं वे केवल तिथि दोषसे यात्रामें अशुभ हैं परन्तु वे ही यदि शुभाशुभ प्रकरणके ४ थे श्लोकके अनुसार वारयोगसे सिद्धा तिथि हो तो यात्रामें शुभ ही होती है। जैसे श्रीवसिष्ठजीने कहा है—

'शुक्र-ज्ञ-कुज-मन्देज्या वारा नन्दादिषु क्रमात्।
सिद्धा तिथिः सिद्धिदा स्यात् सर्वकार्येषु सर्वदा' ॥

नक्षत्र भी यहाँ ९ प्रशस्त कहे गये हैं। उनमें भी मृत्यु यमघण्ट आदि दुष्ट योगसे दूषितोंको त्यागना चाहिये। तिथियाँ भी दग्ध विषादि दुष्ट होने पर त्यागनी चाहिये।

श्री वसिष्ठजीके मतसे—रेवती, अश्विनी, पुनर्वसु, हस्त पुष्य अनुराधा, श्रवण, मृगशिरा और धनिष्ठा ये ९ नक्षत्र शुभ हैं। ३ उत्तरा, शतभिषा, मूल, ज्येष्ठा, ३ पूर्वा और रोहिणी ये १० नक्षत्र मध्यम, कृत्तिका, स्वाती, आर्द्रा, विशाखा, चित्रा, आश्लेषा, मघा और भरणी ये ८ नक्षत्र अशुभ हैं।

श्री वसिष्ठजीका वचन—

पौष्णद्वयादित्यकरेज्यमित्रविष्णिवन्दुवस्वाह्वयभानि यानि ।
श्रेष्ठानि यात्रासु नवैव तानि मुक्त्वा त्रिपञ्चादिमसप्तभानि ॥
तिस्रोत्तरावारुणनैर्ऋतेन्द्रपूर्वात्रयं ब्राह्मभयुग् दशैव ।
मध्यानि, नेष्टान्यनिलानिलेशद्विदैवचित्राहिमघान्तकानि ॥ इति ॥

इस श्लोकमें तिथि और नक्षत्र ही बताये गये लेकिन वार नहीं कहे गये । इसका समाधान यह समझना चाहिये कि जिस दिशामें जिस दिन वारशूल कहा जायगा उसे छोड़कर अन्य सभी वारोंमें यात्रा हो सकती है । वारशूल आगे १० वें श्लोकमें देखें ॥ ९ ॥

यात्रामें वारशूल और नक्षत्रशूलका विचार—

न पूर्वदिशि शक्रभे न विधुसौरिवारे तथा
न चाजपदभे गुरौ यमदिशीनदैत्येज्ययोः ।
न पाशिदिशि धातृभे कुजबुधेऽर्यमर्क्षे तथा
न सौम्यककुभि व्रजेत्स्वजयजीविवितार्थी बुधः ॥१०॥

अन्वयः—स्वजयजीवितार्थी बुधः शक्रभे (ज्येष्ठानक्षत्रे, पूर्वदिशि न व्रजेत् । तथा विधुसौरिवारे पूर्वदिशि न व्रजेत् । च (तथा) अजपदभे (पूर्वभाद्रनक्षत्रे) गुरौ 'वारे' यमदिशि न व्रजेत् । इन-दैत्येज्ययोः 'वारयोः' धातृभे च पाशिदिशि (पश्चिमदिशि) न व्रजेत् । एवं कुजबुधे 'वारे' तथा अर्यमर्क्षे (उत्तरफाल्गुनीनक्षत्रे) सौम्य ककुभि (उत्तरदिशि) न व्रजेत् ॥ १० ॥

भाषार्थः—अपनी जय और जीवन चाहनेवाला ज्येष्ठा नक्षत्र और सोम-शनिवारमें पूर्वदिशाको न जाय । एवं पूर्वभाद्र नक्षत्र और बृहस्पतिवारमें दक्षिण दिशाको न जाय । रवि और शुक्रवारमें तथा रोहिणी नक्षत्रमें पश्चिम दिशामें न जाय । एवं उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र और मङ्गल-बुधवारमें उत्तर दिशामें नहीं जाय ॥ १० ॥

वि—इस श्लोकका तात्पर्य यह है कि पूर्वमें ज्येष्ठा, दक्षिणमें पूर्वभाद्र, पश्चिममें रोहिणी और उत्तरमें उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र-शूल होता है । एवं पूर्वमें सोमशनि, दक्षिणमें बृहस्पति, पश्चिममें रवि-शुक्र और उत्तरमें मङ्गल-बुध वारशूल होता है । दिशा शूलवाले वार और नक्षत्रोंमें उस दिशामें जाननेवालेका धनक्षय पराजय और मरणकी सम्भावना रहती है अतः उसका त्याग करना चाहिये इसमें श्री वसिष्ठजीका वचन—

शूलसंज्ञानि धिष्ण्यानि शूलसंज्ञाश्च वासराः ।
यायिनां मृत्युदाः शीघ्रमथवा चार्थहानिदाः ॥

वारशूलके सम्बन्धमें श्री नारदजीका वचन—

न मन्देन्दुदिने प्राचीं, न व्रजेद् दक्षिणां गुरौ ।
सितार्कयोर्न प्रतीचीं, नोदीचीं ज्ञारयोरपि ॥

नक्षत्र शूलके सम्बन्धमें श्री वसिष्ठजीका वचन—

पुरुहूतदिशं पुरन्दरर्क्षे नेयाद्याम्यदिशं स्वजाङ्घ्रिधिष्ण्ये ।
जलनाथदिशं पितामहर्क्षे शूलाख्यान्यथ सौम्यमर्यमर्क्षे ॥

मूल श्लोकमें केवल पूर्व आदि चारों दिशाओंके शूल बताये गये हैं परन्तु आग्नेय आदि कोणोंके नहीं । उसके लिये—

तोयेश–वह्नि–धनदा–न्तक–राक्षसानां
यातोऽथवाऽनिल–शतक्रतुशङ्कराणाम् ।
दिग्भागमुष्णकिरणादिदिनेषु देवैः
संरक्षितोऽपि निधनं न चिरादुपैति ॥
सूर्ये शुक्रे कुजे[1] राहौ मन्दे चन्द्रे बुधे गुरौ ।
अग्रतः शोभना यात्रा पृष्ठतो मरणं ध्रुवम् ॥

इस राजमार्तण्डके वचनकी शरण लेनी पड़ती है । अर्थात् रविवारको पश्चिममें, सोमवारको आग्नेयमें मङ्गलको उत्तरमें, बुधको दक्षिणमें, बृहस्पतिको नैर्ऋत्यमें, शुक्रको वायव्यमें, शनिको पूर्वमें और राहु (बुध या शनि) को ईशानमें वारशूल कहा गया है । परन्तु यह राजमार्तण्डका वचन आर्षवत् मान्य नहीं है । अतः पाठकोंको ग्रन्थकर्ताके आगेवाले ३७ वें श्लोक का आदेश ही मान्य होगा । अर्थात् प्रधान दिशाका शूल ही उस कोणका शूल और दिशाकी यात्रा ही उस कोणकी यात्रा मानी जायगी ।

आजकलके लोगोमें ऐसा व्यवहार चल पड़ा है कि वे राजमार्तण्डकी तरह बालबोधिनीकी—

पूर्वाद्याः शनि–चन्द्र–गीष्पति–बुधा–दित्येषु शुक्रे कुजे
नो गम्याः क्रमशस्तथा परिहरेत्प्राचीं च मूलेन्द्रयोः ।
याम्यां च श्रवणादिषट्सु विधिभे पुष्ये प्रतीचीं त्यजेद्
सौम्यां चोत्तरफल्गुनीष्वपि तथा हस्ते न यायाद् बुधः ॥

इस अनार्ष उक्तिको मानने लगे हैं । प्राचीनार्ष वचनोंसे इसकी पुष्टि नहीं है; तथापि व्यवहारमें प्रचलित हो जानेके कारण लोगोंको मानना पड़ता है । इसलिये मैं भी तदनुसार वार नक्षत्र शूलका चक्र लिखता हूँ ।

---

१. राहुका वार बुध और शनि है ।

वार-नक्षत्र-शूलबोधक चक्र—

ईशान		पूर्व		अग्नि
	बुध	शनि, चं० ज्येष्ठा, मूल	सोम	
उत्तर	उत्तराफा० हस्त बु० मं०	दिक्शूल	बृहस्पति श्रवणादि ५ नं० अश्विनी	दक्षिण
	शुक्र	रोहिणी, पुष्य शु० रवि	बुध	
वायुः		पश्चिम		निर्ऋति

अब यहाँ सन्देहकी बात यह रह गई कि पूर्व (९ वें) श्लोकमें यात्राके जो प्रशस्त ९ नक्षत्र बताये गये हैं उनसे ये शूलवाले नक्षत्र तो भिन्न हैं। अर्थात् ये जब यात्रिक नक्षत्र हैं ही नहीं तो इन्हें नक्षत्र शूल कहनेसे क्या लाभ ?। अस्तु। इसका समाधान यह है कि आगे चलकर ५७ वें श्लोकमें आचार्य यह कहेंगे कि राजाओंकी यात्रा विशिष्ट योगसे, ब्राह्मणोंकी यात्रा नक्षत्रगुणसे, चोरोंकी यात्रा शकुनसे और सामान्य मनुष्योंकी यात्रा केवल मुहूर्तसे ही सिद्ध हो जाती है। ऐसी अवस्थामें हो सकता है कि लग्नशुद्धि आदि देखकर लोग यात्रा कर सकते हैं। परन्तु लग्नशुद्धि मुहूर्तशुद्धि रहने पर भी यदि नक्षत्र शूल पड़ जाय तो शुभाशुभ प्रकरणके ५६ वें श्लोक (दिक्शूलादि चिन्त्यं क्षणेषु) के अनुसार उसे त्यागना ही चाहिये। इसलिये यहां अयात्रिक रहने पर भी नक्षत्रशूल कहना उचित था। इसी तरह नक्षत्रप्रकरणके ४८ वें श्लोकके अनुसार धनिष्ठादि ५ नक्षत्रोंको दक्षिणदिशाकी यात्रामें त्याज्य होने पर भी पूर्वाभाद्रको दक्षिणमें शूल बताया गया है कि नक्षत्र शुद्धिके अभावमें लग्नशुद्धि आदि रहने पर भी उसमें दक्षिणकी यात्रा नहीं ही करनी चाहिये।

वारशूल दोषका परिहार—

सूर्यवारे घृतं प्राश्य सोमवारे पयस्तथा।

गुडमङ्गारके वारे बुधवारे तिलानपि ॥
गुरुवारे दधि प्राश्य शुक्रवारे यवानपि।
माषान् भुक्त्वा शनेर्वारे गच्छञ्छूले न दोषभाक् ॥
ताम्बूलं चन्दनं मृच्च पुष्पं दधि घृतं तिलाः।
वारशूलहराण्यर्काद् दानाद् धारणतोऽदनात् ॥ स्पष्टार्थं ॥ १० ॥

यात्रामें नक्षत्रवश कालशूल—

पूर्वाह्णे ध्रुवमिश्रभैर्न नृपतेर्यात्रा न मध्याह्नके
तीक्ष्णाख्यैरपराह्णके न लघुभैर्नो पूर्वरात्रे तथा।
मित्राख्यैर्न च मध्यरात्रिसमये चोग्रैस्तथा नो चरै-
रात्र्यन्ते, हरिहस्तपुष्यशशिभिः स्यात्सर्वकाले शुभा ॥११॥

अन्वयः—ध्रुवमिश्रभैः पूर्वाह्णे नृपतेः यात्रा न स्यात्। तीक्ष्णाख्यैः मध्याह्नके यात्रा न। लघुभैः अपराह्णके यात्रा न। मित्राख्यैः पूर्वरात्रे तथा यात्रा न। उग्रैश्च मध्यरात्रिसमये यात्रा न। तथा चरैःरात्र्यन्ते यात्रा शुभा न 'स्यात्'। अथ' हरिहस्तपुष्यशशिभिः 'नक्षत्रैः नृपतेः सर्वकाले यात्रा शुभा स्यात् ॥ ११ ॥

भाषार्थः—ध्रुव और मिश्रसंज्ञक नक्षत्रोंमें पूर्वाह्ण (दिनके पहले त्रिभाग) में, तीक्ष्ण संज्ञक नक्षत्रोंमें मध्याह्न (दिनके दूसरे त्रिभाग) में, लघु[1] नक्षत्रोंमें अपराह्णमें, मित्र[2] नक्षत्रोंमें रातके प्रथम त्रिभागमें, उग्रनक्षत्रोंमें मध्यरात्रिमें और चर[3] संज्ञक नक्षत्रोंमें रातके तीसरे त्रिभागमें राजाकी यात्रा शुभ नहीं होती। अर्थात् उन नक्षत्रोंके लिये उक्त काल 'काल-शूल' होता है इसलिये उसमें यात्रा नहीं करनी चाहिये।

श्रवण, हस्त, पुष्य और मृगशिरा इन ४ नक्षत्रोंमें सर्वदा यात्रा शुभ होती है। अर्थात् ये ६० दण्ड शुभ ही होते है ॥ ११ ॥

वि०—यहाँ श्र० ह० पु० मृ० ये ४ नक्षत्र सार्वकालिक शुभ कहे गये हैं इसलिये पूर्व कहे गये चरनक्षत्रोंमें श्रवणको छोड़कर, लघुनक्षत्रोंमें हस्त और पुष्यको छोड़कर एवं मित्रनक्षत्रोंमें मृगशिराको छोड़कर गिनना चाहिये।

यहाँ भी अयात्रिक ध्रुवादि नक्षत्रोंका कालशूल कहनेमें कालदोषके त्यागका ही कारण समझना चाहिये। जैसा कि १० वें श्लोकके विशेषमें लिखा गया है ॥ ११ ॥

अशुभ नक्षत्रोंकी त्याज्य घटियां—

---

१. हस्त और पुष्यको छोड़ कर। २. मृगशिराको छोड़ कर।
३. श्रवणको छोड़ कर।

पूर्वाग्निपित्र्यान्तकतारकाणां भूपप्रकृत्युग्रतुरङ्गमाः स्युः ।
स्वातीविशाखेन्द्रभुजङ्गमानां नाड्यो निषिद्धा मनुसम्मिताश्च ॥१२॥

अन्वयः—पूर्वाग्निपित्रान्तकतारकाणां 'क्रमेण' भूपप्रकृत्युग्रतुरङ्गमाः नाड्यः, 'तथा' स्वातीविशाखेन्द्रभुजङ्गमानां मनुसम्मिताश्च नाड्यः निषिद्धाः स्युः, 'तदितराः शुभाः स्युरिति' ॥ १२ ॥

भाषार्थः—तीनों पूर्वाकी प्रथम १६ घटियाँ, कृत्तिकाकी २१ घटियाँ, मघा की ११ और भरणीकी ७ घटियाँ तथा स्वाती, विशाखा, ज्येष्ठा और आश्लेषा इन ४ नक्षत्रोंकी आदिकी १४ घटियाँ यात्रामें निषिद्ध हैं। इनके बादकी घटियाँ शुभ होती हैं।

वि०—इस श्लोकका तात्पर्य यह है कि ये नक्षत्र यात्रामें प्रशस्त नहीं हैं लेकिन यदि अत्यावश्यक यात्रा हो तो इन दुष्ट नक्षत्रोंकी कही गई दुष्ट घटियाँ विताकर उसके बाद यथा सम्भव लग्न शुद्ध आदि देखकर यात्रा करनी चाहिये। ऐसा श्रीभरद्वाजजीने कहा है—

निषिद्धेष्वपि ऋक्षेषु त्यक्त्वा दुष्टघटीः क्रमात् ।
तदन्या घटिका ग्राह्या अवश्यगमने सति ॥ इति ॥ १२ ॥

मतान्तरसे क्रूर नक्षत्रोंकी त्याज्य घटियां—

पूर्वार्धमाग्नेयमघानिलानां त्यजेद्धि चित्राहियमोत्तरार्धम् ।
नृपः समस्तां गमने जयार्थी स्वातीं मघां चोशनसो मतेन ॥१३॥

अन्वयः—जयार्थी नृपः गमने आग्नेयमघानिलानां पूर्वार्धं हि (निश्चयेन) त्यजेत् । तथा चित्राहियमोत्तरार्धं त्यजेत्, समस्तां स्वातीं मघां च उशनसः मतेन त्यजेत् ॥ १३ ॥

भाषार्थः—युद्धमें जय चाहने वाला राजा (राजा उपलक्षण है बल्कि सभी) यात्रामें कृतिका, मघा और स्वातीका पूर्वार्ध (भभोगका पहला आधा) तथा चित्रा आश्लेषा और भरणीका उत्तरार्ध (भभोगका दूसरा आधा) त्याग करे। शुक्राचार्यके मतसे स्वाती और मघाको एक दम सम्पूर्ण त्याग करे। अर्थात् स्वाती और मघाके ६० दण्ड अशुभ ही होते हैं ॥ १३ ॥

नक्षत्रोंकी जीव, मृत, कर्तरी और ग्रस्त संज्ञायें—

तमोभुक्तताराः स्मृता विश्वसङ्ख्याः शुभो जीवपक्षो[1] मृतश्चापि भोग्याः ।

---

१. "शुभो जीवपक्षः स्मृतो विश्वसंख्यास्तमोभुक्ततारा मृतश्चापि भोग्याः" इति पाठः साधुः । संशोधकः ।

तदाक्रान्तभं कर्तरीसंज्ञमुक्तं ततोऽक्षेन्दुसङ्ख्यं भवेद्ग्रस्तनाम ॥१४॥

अन्वयः—विश्वसङ्ख्याः तमोभुक्तताराः जीवपक्षः स्मृतः। असौ शुभः भवति। भोग्याः अपि (विश्वसङ्ख्याः) मृतः (मृतपक्षः उक्तः) 'असौ न शुभः'। तदाक्रान्तभं कर्तरीसंज्ञं उक्तम्। तथा, ततः (राहोः) अक्षेन्दुसङ्ख्यं ग्रस्तनाम भवेत् ॥ १४ ॥

भाषार्थः—राहुसे भोगे हुए १३ नक्षत्र जीवपक्ष कहलाते हैं और वे शुभ हैं। राहुसे भोग्य (भोगने योग्य) १३ नक्षत्र मृतपक्ष कहलाते हैं वे अशुभ हैं। राहु जिस नक्षत्र पर वर्तमान हो वह कर्तरी संज्ञक होता है। और राहुसे १५ वां नक्षत्र ग्रस्त कहलाता है ॥ १४ ॥

वि०—क्योंकि राहुकी उलटी गति है इसलिये राहु जिस नक्षत्र पर हो उससे आगेके नक्षत्र भुक्त और पीछेवाले नक्षत्र भोग्य कहे जायेंगे। जैसे यदि राहु स्वातीमें हो तो विशाखा अनुराधा'''इत्यादि भुक्त होंगे और चित्रा-हस्त-उत्तराफल्गुनी आदि पीछे वाले भोग्य होंगे। इस हिसाबसे स्वातीसे १३ भुक्त रेवती तक जीवपक्ष और भरणी पर्यन्त स्वातीसे पीछे १३ भोग्य नक्षत्र मृतपक्ष होंगे। स्वाती कर्तरी और स्वातीसे १५ वाँ अश्विनी नक्षत्र ग्रस्त कहा जायेगा ॥ १४ ॥

जीवपक्ष आदि नक्षत्रोंके फल—

मार्तण्डे मृतपक्षगे हिमकरश्चेज्जीवपक्षे शुभा
यात्रा स्याद्विपरीतगे क्षयकरी द्वौ जीवपक्षे शुभा।
ग्रस्तर्क्षं मृतपक्षतः शुभकरं ग्रस्तात्तथा कर्तरी
यायीन्दुः स्थितिमान् रविर्जयकरौ तौ द्वौ तयोर्जीवगौ ॥१५॥

अन्वयः—मार्तण्डे मृतपक्षगे चेत् हिमकरः जीवपक्षे 'भवेत्' तदा यात्रा शुभा 'स्यात्'। विपरीतगे क्षयकरी स्यात्। यदि द्वौ (सूर्यचन्द्रौ) जीवपक्षे 'भवेतां तदा' यात्रा शुभा स्यात्। मृतपक्षः ग्रस्तर्क्षं शुभकरं 'भवति'। तथा ग्रस्तात् कर्तरी शुभकरी 'भवति'। अथ, इन्दुः यायी, रविः स्थितिमान् भवति। तौ द्वौ यदि जीवगौ 'भवेतां तदा' तयोः (यायिस्थायिनो) समरे जयकरौ भवतः ॥ १५ ॥

भाषार्थः—यदि सूर्य मृतपक्षमें और चन्द्रमा जीवपक्षमें हों तो यात्रा शुभ होती है। यदि ये दोनों विपरीत (अर्थात् सूर्य जीवमें और चन्द्रमा मृतपक्षमें) हों तो यात्रा नाश करनेवाली होती है। यदि सूर्य और चन्द्रमा दोनों ही जीव पक्षमें हों तो यात्रा शुभ होती है। यदि दोनों मृत पक्षमें हों तो यात्रा एकदम अशुभ होती है। मृतपक्षकी अपेक्षा ग्रस्त नक्षत्र शुभ और ग्रस्त की अपेक्षा कतरी संज्ञक नक्षत्र शुभ होता है।

चन्द्रमा यायी (चढ़ाई करने वाला, मुद्दई) ग्रह और सूर्य स्थायी (मुद्दालह) ग्रह हैं। यदि ये दोनों जीवपक्षमें होवें तो दोनों (मुद्दई-मुद्दालह) की सन्धि हो जाती है। एवं सूर्य जीवपक्षमें, चन्द्रमा मृत पक्ष में हों तो चढ़ाई करने वालेकी पराजय और स्थायीकी जय होवे, तथा सूर्य मृत पक्षमें, चन्द्रमा जीवपक्ष में हों तो यायीकी जय, स्थायीकी पराजय होवे। इसी तरह सूर्य अस्तमें और चन्द्रमा मृतपक्षमें हों तो स्थायीकी कुछ जय, यदि उलटा हो तो यायीकी कुछ जय हो। यदि दोनों अस्तमें हों तो सन्धि हो। इसी तरह दोनोंके अस्त और कर्तरीमें रहने पर भी समझना चाहिये ॥ १५ ॥

अकुल, कुल और कुलाकुल संज्ञक नक्षत्र—

स्वात्यन्तकाहिवसुपौष्णकरानुराधा-
दित्यध्रुवाणि विषमास्तिथयोऽकुलाः स्युः ।
सूर्येन्दुमन्दगुरवश्च कुलाकुला ज्ञो
मूलाम्बुपेशविधिभं दशषड्द्वितिथ्यः ॥ १६ ॥
पूर्वाश्वीज्यमघेन्दुकर्णदहनद्वीशेन्द्रचित्रास्तथा ।
शुक्रारौ कुलसंज्ञकाश्च तिथयोऽर्काष्टेन्द्रवेदैर्मिताः ।
यायी स्यादकुले जयी च समरे स्थायी च तद्वत्कुले
सन्धिः स्यादुभयोः कुलाकुलगणे भूमीशयोर्युध्यतोः ॥१७॥

अन्वयः—स्वात्यन्तकाहिवसुपौष्णकरानुराधा-दित्यध्रुवाणि 'नक्षत्राणि' विषमाः तिथयः सूर्येन्दुमन्दगुरवश्च वारा, अकुलाः स्युः ।

ज्ञः (बुधवारः) मूलाम्बुपेशविधिभं, दशषड्द्वितिथ्यः, कुलाकुलाः स्युः ।

तथा पूर्वाश्वीज्यमघेन्दुकर्णदहनद्वीशेन्द्रचित्राः 'नक्षत्राणि' शुक्रारौ वारौ, अर्काष्टेन्द्रवेदैः मिताः तिथयश्च कुलसंज्ञकाः स्युः ।

अकुले समरे प्रारम्भे सति यायी जयी स्यात् । कुले स्थायी च (समरे) तद्वत् (जयी) स्यात् । अथ, कुलाकुलगणे युध्यतोः उभयोः भूमीशयोः सन्धिः स्यात् ॥ १६–१७ ॥

भाषार्थः—स्वाती, भरणी, आश्लेषा, धनिष्ठा, रेवती, हस्त, अनुराधा पुनर्वसु और ध्रुवसंज्ञक ये १२ नक्षत्र, विषम तिथियां (१।३।५।७।९।११।१३।१५) और रवि, सोम, शनि, गुरुवार-ये अकुल संज्ञक हैं ।

बुधवार; मूल, शतभिषा, आर्द्रा और अभिजित् ये ४ नक्षत्र और ६।१०।१२ तिथियां-कुलाकुल संज्ञक हैं।

तीनों पूर्वा, अश्विनी, पुष्य, मघा, मृगशिरा, श्रवण, कृत्तिका, विशाखा, ज्येष्ठा और चित्रा ये १२ नक्षत्र; शुक्र और मङ्गलवार; तथा १२।८।१४।४ तिथियां-ये कुल संज्ञक हैं।

अकुलसंज्ञक तिथिवारनक्षत्रोंमें यदि समर (युद्धारम्भ) हो तो यायी (मुद्दई) की विजय होती है। कुल संज्ञक तिथिवार नक्षत्रोंमें समर होने पर स्थायी (मुद्दालह) की विजय होती है और कुलाकुल तिथि-वार-नक्षत्रोंमें समर होनेपर लड़नेवाले दोनोंकी सन्धि (सुलह) हो जाती है॥ १६-१७॥

वि०—यहां तिथि-वार-नक्षत्र तीनोंकी ही अकुलादि संज्ञायें कही गई है। यदि तिथि-वार नक्षत्र तीनोंका योग हो तो प्रबल योग होता है और उसका फल भी उसी भांति प्रबल कहना चाहिये। अन्यथा एक एक तिथि नक्षत्र या वारसे भी अकुलादि संज्ञा विचार कर तारतम्यसे फल कहना चाहिये।

सुगमता से जाननेकेलिये चक्र—

संज्ञायें	नक्षत्र	तिथियां	वार	फल
अकुल	स्वा.भ.श्ले.ध.रे.ह.अनु. पुन.२उ.रो.१२	१।३।५।७।९ ।११।१३।१५	र.च.बृ.श.	यायीकी जय
कुलाकुल	मू. श. आ. अभि.	१०।६।२	बुध	सन्धि दोनोंकी
कुल	३ पू अश्वि. पुष्य, म.मृ. श्र.कृ.वि.ज्ये.चि.	१२।८।१४।४	शु. मं.	स्थायीकी जय

यात्रामें पथिराहु चक्र—

स्युर्धर्मे दस्रपुष्योरगवसुजलपद्वीशमैत्राण्यर्थे
याम्याजाङ्घ्रीन्द्रकर्णादितिपितृपवनोडून्यथो भानि कामे।
वह्न्यार्द्राबुध्न्यचित्रानिर्ऋतिविधिभगाख्यानि मोक्षेऽथ रोहि-
ण्याप्येन्द्वन्त्यर्क्षविश्वार्यमभदिनकरर्क्षाणि पथ्यादिराहौ ॥१८॥

अन्वयः—पथ्यादिराहौ = पथिराहुचक्रे दस्रपुष्योरगवसुजलमद्वीशमैत्राणि 'नक्षत्राणि' धर्मे स्युः। अथ, याम्याजाङ्घ्रीन्द्रकर्णादितिपितृपवनोडूनि अर्थे स्युः। अथ, वह्न्यार्द्राबुध्न्यचित्रानिर्ऋतिविधिभगाख्यानि भानि कामे स्युः। अथ, रोहिण्याप्येन्द्वन्त्यर्क्षविश्वार्यमभदिनकरर्क्षाणि मोक्षे स्युः॥ १८॥

भाषार्थः—'पथिराहु' नामक चक्रमें अश्विनी, पुष्य, आश्लेषा, धनिष्ठा, शतभिषा, विशाखा, अनुराधा थे ७ नक्षत्र धर्म मार्गमें होते हैं।

भरणी, पूर्वभाद्र, ज्येष्ठा, श्रवण, पुनर्वसु, मघा, स्वाती ये ७ नक्षत्र अर्थ मार्गमें होते हैं।

कृतिका, आर्द्रा, उत्तरभाद्र, चित्रा, मूल, अभिजित, पूर्वफल्गुनी, ये ७ नक्षत्र काममार्गमें होते हैं।

रोहिणी, पूर्वाषाढ़, मृगशिरा, रेवती, उत्तराषाढ़, उत्तरफल्गुनी, हस्त ये ७ नक्षत्र मोक्ष मार्गमें होते हैं ॥ १८ ॥

वि॰—इस चक्रका उद्धार इस तरह है कि अभिजित सहित अश्विनी आदि २८ नक्षत्रों को ४ लाइनमें अनुलोम विलोम रीतिसे लिखकर प्रत्येक लाइनमें ७ नक्षत्रके हिसावसे धर्म, अर्थ, काम, मोक्षमें गिन लीजिये ॥ १८ ॥

नोटः—नीचेका कोष्ठ देखनेसे स्पष्ट समझमें आयेगा।

पथिराहुचक्र—

धर्म	अ.	पुष्य	श्ले.	वि.	अनु.	ध.	श.
अर्थ	भ.	पुन	म	स्वा.	ज्ये.	श्र.	पू. भा.
काम	कृ.	आ.	पू. फ.	चि.	मू.	अभि.	उ. भा.
मोक्ष	रो.	मृ	उ.फ.	ह.	पू.षा.	उषा.	रे.

पथिराहु चक्रका फल—

धर्मगे भास्करे वित्तमोक्षे शशी वित्तगे धर्ममोक्षस्थितः शस्यते ।
कामगे धर्ममोक्षार्थगः शोभनो मोक्षगे केवलं धर्मगः प्रोच्यते ॥१९॥

अन्वयः—भास्करे धर्मगे 'सति' वित्तमोक्षे 'स्थितः' शशी शस्यते। भास्करे वित्तगे 'सति' धर्ममोक्षस्थितः शशी, तथा कामगे भास्करे धर्ममोक्षार्थगः शशी शोभनः भवति। एवं, मोक्षगे भास्करे केवलं धर्मगः शशी शोभनः प्रोच्यते ॥ १९ ॥

भाषार्थः—यदि सूर्य धर्म नक्षत्रमें और चन्द्रमा अर्थ या मोक्षमें हो, अथवा सूर्य अर्थमें हो और चन्द्रमा धर्म, या मोक्षमें हो, अथवा सूर्य काममें हो और चन्द्रमा धर्म, या मोक्ष, या अर्थमें हो अथवा सूर्य मोक्षमें और चन्द्रमा केवल धर्म में हो तो शुभ होता है। इससे विपरीत रहने पर अशुभ होता है ॥ १९ ॥

वि०—मूल श्लोकमें चन्द्र और सूर्यके एक मार्गमें रहनेका फल नहीं बताया गया है जिसका फल यों हैं—यदि सूर्य और चन्द्रमा दोनों धर्ममार्गमें रहें तो यायी-स्थायीका युद्ध बराबर हो, किन्तु यायी कुछ जयी हो। यदि दोनों अर्थमें हों तो यायीकी हार हो। यदि दोनों काममें हों तो दोनों को कष्ट देते हैं। यदि दोनों मोक्षमार्गमें हों तो कठिन विघ्न देते हैं। जैसा कि राजविजयमें लिखा है—

धर्ममार्गगते सूर्ये चन्द्रे तत्रैव संस्थिते।
समं युद्धं भवेत्तत्र किञ्चिद्यायी जयी भवेत् ॥
अर्थस्थौ चन्द्रसूर्यौ च यायिनां भङ्गदायकौ।
चन्द्रार्कौ कामगौ यत्र रिपुयोगाद्दुःखदौ ॥
चन्द्रार्कौ मोक्षमार्गस्थौ घोरविघ्नप्रदायकौ ॥ इति ॥ १९ ॥

मास भेदसे तिथियोंके फल—

पौषे पक्षत्यादिका द्वादशैवं तिथ्यो माघादौ द्वितीयादिकास्ताः ।
कामात्तिस्रः स्युस्तृतीयादिवच्च याने प्राच्यादौ फलं तत्र वक्ष्ये ॥२०॥
सौख्यं क्लेशो भीतिरर्थागमश्च शून्यं नैः स्वं निःस्वता मिश्रता च ।
द्रव्यक्लेशौ दुःखमिष्टाप्तिरर्थो लाभः सौख्यं मङ्गलं वित्तलाभः ।२१।
लाभो द्रव्याप्तिर्धनं सौख्यमुक्तं भीतिर्लाभो मृत्युरर्थागमश्च ।
लाभः कष्टद्रव्यलाभौ सुखं च कष्टं सौख्यं क्लेशलाभौ सुखं च २२
सौख्यं लाभः कार्यसिद्धिश्च कष्टं क्लेशः कष्टात्सिद्धिरर्थो धनं च ।
मृत्युर्लाभो द्रव्यलाभश्च शून्यं शून्यं सौख्यं मृत्युरत्यन्तकष्टम् ।२३।

अन्वयः—पौषे 'मासे' पक्षत्यादिकाः (प्रतिपदादयः) द्वादश तिथ्यः, एवं माघादौ 'मासे' द्वितीयादिकाः ताः (द्वादश तिथ्यः) च पुनः, कामात् (त्रयोदशीतः) तिस्रः तिथ्यः तृतीयादिवत् स्युः । तत्र प्राच्यादौ याने फलं वक्ष्ये ॥ २० ॥

'पौषादिमासकप्रतिपदादिद्वादशतिथिषु प्राच्यादौ याने क्रमेण' सौख्यं, क्लेशः, भीतिः, अर्थागमश्च भवति। द्वितीयादिद्वादशतिथिषु प्राच्यादौ याने क्रमेण शून्यं, नैः स्वं, निःस्वता, मिश्रता च भवति 'तृतीयादिद्वादशतिथिषु क्रमेण' द्रव्यक्लेशः, दुःखम्, इष्टाप्तिः अर्थः भवति। 'चतुर्थ्यादिद्वादशतिथिषु क्रमेण प्राच्यादौ याने लाभः, सौख्यं, मङ्गलं, वित्तलाभः भवति। एवं सर्वत्र ज्ञेयम्। यथा—लाभः, द्रव्याप्तिः, धनं सौख्यमुक्तम्। भीतिः, लाभः, मृत्युः, अर्थागमश्च भवति। लाभः, कष्ट-द्रव्यलाभौ, सुखं च भवति। कष्टं, सौख्यं, क्लेशलाभौ सुखं च भवति। सौख्यं, लाभः, कार्यसिद्धिः, कष्टं च भवति। क्लेशः, कष्टात् सिद्धिः, अर्थः, धनं च भवति। मृत्युः, लाभः, द्रव्य-

लाभः शून्यं च भवति । तथा-शून्यं, सौख्यं, मृत्युः, अत्यन्तकष्टं च भवति ॥२१-२३॥

भाषार्थः—पूस मासमें पड़िवा आदि १२ तिथियां और माघ आदि मासोंमें द्वितीया आदि (द्वादशी पर्यन्त) १२ तिथियां लिखनी चाहिये । द्वादशीके बाद त्रयोदशी आदि ३ तिथियोंको तृतीया आदि ३ तिथियोंसे पूर्ण करे । उसके बाद प्रत्येक मासकी अपनी २ प्रथमादि तिथियोंमें पूर्वादि ४ दिशाओंकी यात्रामें फल कहें । जो क्रमसे चारों दिशाओंमें यों हैं-सौख्य, क्लेश, भय, धनलाभ । शून्य, निःस्वता (दरिद्रती) निःस्वता मिश्रता । इन-अर्थोंको नीचेके कोष्ठमें देखकर साफ २ समझ लें ॥ २०-२३ ॥

पौषादि मासोंमें तिथि भेदसे पूर्वादि दिशाका यात्राफल जाननेका स्पष्ट चक्र-

पू.	मा.	फा.	चै.	वै.	ज्ये	आ	श्रा.	भा.	आ	का.	अ.	पूर्व	दक्षिण	पश्चिम	उत्तर
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	सौख्य.	क्लेश	भीति	अर्थाग
२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	शून्य	निस्व.	निस्व.	मिश्रता
३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	द्रव्य क्ले	दुःख	इष्टाप्ति	अर्थ
४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	लाभ	सौख्य	मङ्गल	धनला.
५	६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	लाभ	द्रव्यला	धन	सौख्य
६	७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	भय	लाभ	मृत्यु	धनाग.
७	८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	लाभ	कष्ट	द्रव्यला	सुख
८	९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	कष्ट	सौख्य	क्ले. ला.	सुख
९	१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	सौख्य	लाभ	कार्यसि	कष्ट
१०	११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	क्लेश	कष्टसि	अर्थला	धन.
११	१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	मृत्यु	लाभ	द्रव्यला	शून्य
१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	शून्य.	सौख्य	मृत्यु	कष्टम्

वि०—ऊपरके कोष्ठसे पाठकोंको यह समझना चाहिये कि पूसकी पड़िवामें जो फल है, वही माघकी द्वितीया, फाल्गुनकी तीज, चैतकी चौथ (एवं आगे) में भी होता है। जिसमें पूर्व दिशामें सौख्य, दक्षिण जानेमें क्लेश, पश्चिम जानेमें भय और उत्तर जानेमें अर्थागम होता है। इसी भाँति पौषादि मासकी द्वितीयादि १२ तिथियोंकी पूर्व आदिकी यात्रामें शून्य, निःस्वता और मिश्रता समझनी चाहिये, जो चक्रमें स्पष्ट लिखा है।

महीने १२ ही हैं, इसलिये १२ शी पर्यन्त तिथियाँ लिखी जाती और त्रयोदशीके स्थानमें ३, चतुर्दशीमें ४ और १५ में ५ लिखी जाती है ॥ २०-२३ ॥

यात्रामें सर्वाङ्क ज्ञान—

तिथ्यृक्षवारयुतिरद्रिगजाग्नितष्टा
स्थानत्रयेऽत्र वियति प्रथमेऽतिदुःखी ।
मध्ये धनक्षतिरथो चरमे मृतिः स्यात्
स्थानत्रयेऽङ्कयुजि सौख्यजयौ निरुक्तौ ॥ २४ ॥

अन्वयः—तिथ्यृक्षवारयुतिः स्थानत्रये स्थाप्या, 'सा क्रमेण' अद्रिगजाग्नितष्टा 'कार्या'। अत्र प्रथमे स्थाने वियति (शून्ये) 'सति, यात्री' अतिदुःखी 'भवति'। मध्ये वियति सति, यातुः धनक्षतिः स्यात्। अथो चरमे वियति सति यातुः मृतिः स्यात्। अथ स्थानत्रये अङ्कयुजि सौख्यजयौ निरुक्तौ ॥ २४ ॥

भाषार्थः—यात्राके दिन जो तिथि-वार-नक्षत्र हों उनकी सङ्ख्याके योगको तीन स्थानोंमें रखकर क्रमसे ७, ८, ३ से भाग देना चाहिये। भाग देने पर यदि पहले स्थानमें शेष शून्य हो तो यात्रामें यात्री बहुत दुःख पावे। दूसरे स्थानमें शून्य शेष हो तो यात्रीके धनकी क्षति हो और तीसरे स्थानमें शून्य शेष बचे तो यात्रीकी मृत्यु हो। यदि भाग देने पर तीनों स्थानोंमें अङ्क शेष बचे तो यात्रामें यात्रीको सुख और जय होती है ॥ २४ ॥

उदाहरण—

जैसे श्रावण शुक्ला ५ रविवार हस्त नक्षत्रमें सर्वाङ्की देखनी है। यहाँ तिथि=५। वार = १। नक्षत्र = १३। तीनोंका योग = १९। इसमें ७ से भाग देनेपर प्रथम शेष = ५ हुआ। ८ से भाग देनेपर दूसरा शेष = ३ और ३ से भाग देने पर तीसरा शेष = १ हुआ। यहाँ तीनों स्थानोंमें अङ्क होनेके कारण यात्रामें यात्रीको सुख और जय कहनी चाहिये। इसी तरह सर्वत्र विचारना चाहिये ॥ २४ ॥

वि०—यहाँ तीनों स्थानोंमें शून्यका फल नहीं कहा गया है, उसका कारण यह है कि तीनों स्थानोंमें शून्य होना असम्भव है। दूसरी बात यह है कि किसी भी स्थानमें शून्य

शेषका फल अशुभ ही होता है, तो तीनों स्थानोंमें कदाचित् शेष शून्य हो तो सुतरां अशुभ फल होगा ॥ २४ ॥

महाडल और भ्रमदोष—

रवेर्भतोऽब्जभोन्मितिर्नगावशेषिता द्व्यगा ।
महाडलो न शस्यते त्रिषण्मिता भ्रमो भवेत् ॥ २५ ॥

अन्वयः—रवेः भतः अब्जभोन्मितिः 'या सा' नगावशेषिता 'सति यदि' द्व्यगा (द्वि-सप्तमिता) स्यात् तदा महाडलः स्यात्। असौ न शस्यते। यदि त्रिषण्मिता स्यात् तदा भ्रमः भवेत्। सोऽपि न शस्यते इति शेषः ॥ २५ ॥

भाषार्थः—सूर्यके नक्षत्रसे चन्द्रमाके नक्षत्र तक जो सङ्ख्या हो उसमें ७ से भाग देने पर यदि २ और ७ शेष हो तो महाड़ल दोष होता है। वह शुभ नहीं है। यदि ३ और ६ शेष बचे तो भ्रम दोष होता है, वह भी शुभ नहीं होता।

तात्पर्य यह है कि उक्त विचारसे यह महाड़ल और भ्रम दोष पड़े तो उसमें यात्रा नहीं करनी चाहिये ॥ २५ ॥

हिंवर योग—

शशाङ्कभं सूर्यभतोऽत्र गण्यं पक्षादितिथ्या दिनवासरेण ।
युतं नवाप्तं नगशेषकं चेत्स्याद्धिंवरं तद्गमनेऽतिशस्तम् ॥ २६ ॥

अन्वयः—सूर्यभतः शशाङ्कभं गण्यम्, तच्च पक्षादितिथ्या दिनवासरेण युतं, नवाप्तं, चेत् नगशेषकं भवेत् तदा हिंवरं स्यात्। तत् हिंवरं गमने अतिशस्तं भवति ॥ २६ ॥

भाषार्थः—सूर्यके नक्षत्रसे चन्द्र नक्षत्र तक गिनकर उसमें उस (शुक्ल या कृष्ण) पक्षकी पड़िवासे वर्तमान तिथिकी सङ्ख्या और रविसे वर्तमान दिनकी सङ्ख्याको जोड़कर ९ से भाग देवे। भाग देने पर यदि ७ शेष बचे तो **हिंवर** योग होता है। वह **हिंवर** योग यात्रामें बहुत प्रशस्त है ॥ २६ ॥

वि०—यहाँ प्रसङ्गवश ग्रन्थसे विशेष घवाड़, टेलक और गौरव योगोंका उल्लेख किया जाता है।

घवाड़ योग—

सूर्यभाद् गणयेच्चान्द्रं त्रिगुणं तिथिसंयुतम्।
सप्तभिस्तु हरेद्भागं त्रिशेषं स्याद्घवाड़कम् ॥

सूर्यर्क्षसे चन्द्रर्क्षसङ्ख्याको तीनसे गुणकर उसमें तिथिसङ्ख्या जोड़कर ७ से भाग देनेपर

३ शेष हो तो घबाड़ योग होता है। घबाड़ योग हिंवरसे भी उत्तम है। उसे सर्वकार्यमें विचारना चाहिये।

टेलक योग—

सूर्यभाद्गणयेच्चान्द्रं तिथिवारं च मिश्रितम् ।
सप्तभिस्तु हरेद्भागं पञ्चशेषं तु टेलकम् ॥

सूर्यर्क्षसे चन्द्रर्क्ष सङ्ख्यामें तिथि और वारको मिलाकर ७ से भाग देने पर ५ शेष हो तो टेलक योग होता है। इस टेलक योगको चोरोमें विचारना चाहिये। चोरोंके लिये टेलक शुभ है।

गौरव योग—

सूर्यभाद्गणयेच्चान्द्रं तिथिवारं च मिश्रितम् ।
अर्कसङ्ख्यैर्हरेद्भागं नवशेषं तु गौरवम् ॥

सूर्यर्क्षसे चन्द्रर्क्ष सङ्ख्यामें तिथि-वारको जोड़कर १२ से भाग देनेसे ९ शेष हो तो गौरव योग होता है। जो प्रवेशमें विचारना चाहिये। गौरव योगमें प्रवेश शुभ है।

जैसे इन तीनों योगोंके लिये लिखा है—

प्रवेशे गौरवं दद्यात् निर्गमे हिंवरं तथा ।
तस्करे टेलकं दद्याद् घबाड़ं सर्वकर्मसु ॥ इति ॥ २६ ॥

घातचन्द्र दोष—

भूपञ्चाङ्कद्वयङ्गदिग्वह्निसप्तवेदाष्टेशार्काश्च घाताख्यचन्द्रः ।
मेषादीनां राजसेवाविवादे वर्ज्यो युद्धाद्ये च नान्यत्र वर्ज्यः ॥२७॥

अन्वयः—मेषादीनां द्वादशराशीनां 'क्रमात्' भूपञ्चाङ्कद्वयङ्गदिग्वह्निसप्तवेदाष्टेशार्काश्च घाताख्यचन्द्रः स्यात्। स घातचन्द्रः, राजसेवाविवादे युद्धाद्ये च वर्ज्यः। अन्यत्र न वर्ज्यः ॥ २७ ॥

भाषार्थः—मेष राशिवालेका पहला, वृषका पाँचवाँ (कन्यास्थ), मिथुनका ९ वाँ, कर्कका २ रा, सिंहका ६ ठा, कन्याका १० वाँ, तुलाका ३ रा, वृश्चिकका ७ वाँ, धनुका ४ था, मकरका ८ वाँ, कुम्भका ११ वाँ और मीन राशिवालेका १२ वाँ चन्द्रमा घातचन्द्र कहलाता है। यह घातचन्द्र राजाकी सेवा, विवाद (झगड़ा, शास्त्रार्थ आदि) और युद्धमें वर्जित है, अन्यत्र शुभ कार्य आदि में नहीं ॥

घातचन्द्रमें नक्षत्रोंके त्याज्य चरण—

आग्नेयत्वाष्ट्रजलपपित्र्यवासवरौद्रभे ।
मूलब्राह्मजपादर्क्षे पित्र्यमूलाजभे क्रमात् ॥ २८ ॥

रूपद्व्यग्न्यग्निभूरामद्व्यब्ध्यग्न्यब्धियुगाग्नयः ।
घातचन्द्रे धिष्ण्यपादा मेषाद्वर्ज्या मनीषिभिः ॥ २९ ॥

अन्वयः—घातचन्द्रे मेषात् क्रमात् आग्नेयत्वाष्ट्रजलपपित्र्यवासवरौद्रभे मूलब्राह्माजपादर्क्षे पित्र्यमूलाजभे क्रमशः रूपद्व्यग्न्यग्निभूरामद्व्यब्ध्यग्न्यब्धि युगाग्नयः धिष्ण्यपादाः मनीषिभिः वर्ज्याः ॥ २८–२९ ॥

भाषार्थः—मेष राशिवालेके लिये कृत्तिकाका प्रथम पाद, वृषके लिये चित्राका २ रा पाद, मिथुनके लिये शतभिषाका ३ रा, कर्कके लिये मघाका ३ रा, सिंहके लिये धनिष्ठाका १ म, कन्याके लिये आर्द्राका ३ रा, तुलाके लिये मूलका २ रा, वृश्चिकके लिये रोहिणीका ४ था, धनुके लिये पूर्वभाद्रका ३ रा, मकरके लिये मघाका ४ था, कुम्भके लिये मूलका ४ था और मीनके लिये पूर्वाभाद्रका ३ रा, पाद त्यागना चाहिये ऐसा मुनियोंने कहा है ॥ २८–२९ ॥

घात तिथियाँ—

गोस्त्रीझषे घाततिथिस्तु पूर्णा भद्रा नृयुक्कर्कटकेऽथ नन्दा ।
कौर्प्याजयोर्नक्रघटे च रिक्ता जया धनुःकुम्भहरौ न शस्ताः ॥३०॥

अन्वयः—गोस्त्रीझषे तु पूर्णा घाततिथिः स्यात् । नृयुक्कर्कटके भद्रा घाततिथिः स्यात् । अथ कौर्प्याजयोः नन्दा, नक्रघटे च रिक्ता, तथा धनुःकुम्भहरौ जया घाततिथिः स्यात्, ताः शस्ताः न भवन्ति ॥ ३० ॥

भाषार्थः—वृष-कन्या-मीन राशिवालोंके लिये पूर्णा (५।१०।१५), मिथुन-कर्क-राशिके लिगे भद्रा (२।७।१२), वृश्चिक-मेषके लिये नन्दा (१।६।११), मकर-तुलाके लिये रिक्ता (४।९।१४) और धनु-कुम्भ सिंह राशिके लिये जया (३।८।१३) तिथि घाततिथि होती है । ये घाततिथियाँ शुभ नहीं हैं । अतएव अपनी २ घात तिथिमें यात्रा करना शुभ नहीं है ॥ ३० ॥

घात वार—

नक्रे भौमो गोहरिस्त्रीषु मन्दश्चन्द्रो द्वन्द्वेऽर्कोऽजभे ज्ञश्च कर्के ।
शुक्रः कोदण्डालिमीनेषु कुम्भे जूके जीवो घातवारा न शस्ताः ॥

अन्वयः—नक्रे भौमः, गोहरिस्त्रीषु मन्दः, द्वन्द्वे चन्द्रः, अजभे अर्कः, कर्के ज्ञः, कोदण्डालिमीनेषु शुक्रः, कुम्भे जूके च जीवः एते घातवाराः स्युः । 'ते च यात्रायां' शस्ताः न स्युः ॥ ३१ ॥

भाषार्थः—मकरके लिये मङ्गल, वृष-सिंह-कन्याके लिये शनि, मिथुनके

लिये सोम, मेषके, लिये रवि, कर्कके लिये बुध, धनु-वृश्चिक-मीनके लिये शुक्र और कुम्भ-तुलाके लिये बृहस्पति वार घातक है । ये घातवार यात्रामें शुभ नहीं होते । अर्थात् अपने अपने घातवारमें यात्रा नहीं करनी चाहिये ॥ ३१ ॥

घात नक्षत्र—

मघाकरस्वातिमैत्रमूलश्रुत्यम्बुपान्त्यभम् ।
याम्यब्राह्मेशसार्पञ्च मेषादेर्घातभं न मत ॥ ३२ ॥

अन्वयः—मेषादेः 'क्रमात्' मघाकरस्वातिमैत्रमूलश्रुत्यम्बुपान्त्यभं याम्यब्राह्मेशसार्पञ्च घातभं भवति, तत् मत न 'भवति' ॥ ३२ ॥

भाषार्थः—मेषका मघा, वृषका हस्त, मिथुनका स्वाती, कर्कका अनुराधा, सिंहका मूल, कन्याका श्रवणा, तुलाका शतभिषा, वृश्चिकका रेवती, धनुका भरणी, मकरका रोहिणी, कुम्भका आर्द्रा और मीन राशिका आश्लेषा नक्षत्र घातक है । ये घात नक्षत्र यात्रामें शुभ नहीं होते ॥ ३२ ॥

घात लग्न—

भूमिद्व्यब्ध्यद्रिदिक्सूर्याङ्गाष्टाङ्केशाग्निसायकाः ।
मेषादिघातलग्नानि यात्रायां वर्जयेत्सुधीः ॥ ३३ ॥

अन्वयः—भूमिद्व्यब्ध्यद्रिदिक्सूर्याङ्गाष्टाङ्केशाग्निसायकाः 'क्रमात्' मेषादिघातलग्नानि भवन्ति । तानि सुधीः यात्रायां वर्जयेत् ॥ ३३ ॥

भाषार्थः—मेष राशिवालोंके लिये १ (अर्थात् मेष लग्न), वृषके लिये २ (मिथुन लग्न), मिथुनके लिये ४ (कन्या लग्न), कर्कके लिये ७ (मकर) सिंहके लिये १० (मेष) कन्याके लिये १२ (सिंह), तुलाके लिये ६ (मीन), वृश्चिकके लिये ८ (मिथुन), धनुके लिये ९ (सिंह), मकरके लिये ११ (वृश्चिक), कुम्भके लिये ३ (मेष) और मीनके लिये ५ (कर्क) लग्न घातक हैं । इन घातलग्नोंको पण्डित यात्रामें त्याग करे ॥ ३३ ॥

नोट :—२५ वें श्लोकसे ३३ वें श्लोक तक जो महाङ्ल, भ्रम दोष; हिंवर योग और घातचन्द्रादि दोष कहे गये हैं उन्हें पीयूषधाराकारने 'एतन्निर्मूलम्' कहा है । ये दोष और योग सब अनार्ष (ऋषिसम्मत नहीं) हैं और ये दाक्षिणात्यमें विचारे जाते हैं । परन्तु ग्रन्थमें व्यवहृत हो जाने के कारण विद्वानोंको चाहिये कि यथावकाश विचार करें ॥ ३३ ॥

यहाँ सुगमतासे जाननेके लिये सर्वघात चक्र दिया जाता है ।

सर्वघात चक्र—

जन्म राशि	मे.	वृ.	मि.	क.	सिं	कं.	तु.	वृ.	ध.	म.	कु.	मी.
घात चन्द्र	मे.	कं.	कुं.	सि.	म.	मि.	ध.	वृष	मी.	सिं.	ध.	कुं.
त्याज्य न.पाद	कृ.	चि२	श ३	म ३	ध.१	आ३	मू	रो४	पू.३	म.४	मु.४	पू.२
घाततिथि	नंदा	पूर्णा	भद्रा	भद्रा	जया	पूर्णा	रि०	नंदा	जया	रि०	जया	पूर्णा
घात वार	र.	श.	चं.	बु.	श.	श.	बृ.	शु.	शु.	मं.	बृ.	शु.
घात नक्षत्र	म.	ह.	स्वा	अनु	मू	श्र.	श.	रे.	भ.	रो.	आ.	श्ले.
घात लग्न	मे.	मि.	कं.	म.	मे.	सि.	मी.	मि.	सिं.	वृ.	मेष	कर्क
घात मास	का	मार्ग	पौ.	माघ	फा	चै.	वै.	ज्ये	आ.	श्रा.	भा.	आ.

योगिनी विचार—

नवभूम्यः शिववह्नयोऽक्षविश्वेऽर्ककृताः शक्ररसास्तुरङ्गतिथ्यः ।
द्विदिशोऽमावसवश्च पूर्वतः स्युस्तिथयः सम्मुखवामगा न शस्ताः ॥

अन्वयः—नवभूम्यः, शिववह्नयः, अक्षविश्वे, अर्ककृताः, शक्ररसाः, तुरङ्गतिथ्यः, द्विदिशः, अमावसवः, 'इमाः योगिनीनिवासे' पूर्वतः तिथयः स्युः । ताः सम्मुखवामगाः शस्ताः न स्युः ॥ ३४ ॥

भाषार्थः—योगिनि ९।१ तिथियोंमें पूर्वदिशामें, ११।३ तिथियोंमें अग्नि-कोणमें, ५।१३ तिथिको दक्षिणमें, १२।४ तिथियोंमें नैऋत्य कोणमें, १४।६ में पश्चिममें, ७।१५ में वायुकोणमें, २।१० में उत्तरमें और ३०।८ तिथियोंमें ईशान कोणमें रहती है। यह योगिनी यात्रामें सामने और बांये शुभ नहीं होती। अर्थात् पड़िवा और नवमीको जब योगिनी पूर्वमें रहेगी तो पूर्व जाने वालेको सामने और दक्षिण जानेवालेको बांये पड़ेगी, अतः १।९ तिथियोंमें पूर्व और दक्षिणकी यात्रा नहीं होगी। ऐसे ही सर्वत्र विचारिये। दाहिनी और पीठ दिशा की योगिनी शुभ होती है ॥ ३४ ॥

काल और पाश दोष—

कौबेरीतो वैपरीत्येन कालो वारेऽर्काद्ये सम्मुखे तस्य पाशः।
रात्रावेतौ वैपरीत्येन गण्यौ यात्रायुद्धे सम्मुखे वर्जनीयौ ॥३५॥

अन्वयः—अर्काद्ये वारे कौबेरीतः (उत्तरदिशामारभ्य) वैपरीत्येन कालः 'स्यात्' तस्य सम्मुखे पाशः 'स्यात्'। अथ, रात्रौ एतौ कालपाशौ वैपरीत्येन गण्यौ, तथा तौ यात्रायुद्धे सम्मुखे वर्जनीयौ ॥ ३५ ॥

भाषार्थः—रवि आदि वारोंमें उत्तर दिशासे उलटे क्रमसे काल होता है। अर्थात् रविवारको उत्तरमें, सोमको वायव्यमें, मङ्गलको पश्चिममें, बुधको नैर्ऋत्यमें, गुरुवारको दक्षिणमें, शुक्रवारको आग्नेयमें और शनिवारको पूर्वमें काल होता है। कालके सम्मुख पाश होता है। अर्थात् रविवारको दक्षिणमें, सोमवारको आग्न्येय में, इसी तरह आगे भी समझिये। यह कालपाशकी स्थिति दिनकी है। रातमें ये काल और पाश उलटे होते हैं। जहाँ दिनमें काल, वहाँ रातमें पाश और पाशके स्थानमें काल होता है। इस विषयको नीचेके कोष्ठसे साफ समझिये। यात्रा और युद्धमें इन काल-पाशोंको सम्मुख नहीं होना चाहिये ॥ ३५ ॥

काल-पाश ज्ञापक कोष्ठ—

दिन में	रवि	सोम	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	रात में
काल	उ.	वा.	प.	नै.	द.	अ.	पू.	पाश
पाश	द.	अ.	पू.	ई.	उ.	वा.	प.	काल

परिघ दण्ड—

भानि स्थाप्यान्यब्धिदिक्षु सप्तसप्तानलर्क्षतः।
वायव्याग्नेयदिक्संस्थं पारिघं नैव लङ्घयेत् ॥ ३६ ॥

अन्वयः—अनलर्क्षतः सप्त सप्त भानि 'पूर्वादिषु' अब्धदिक्षु स्थाप्यानि। तत्र वायव्याग्नेयदिक्संस्थं पारिघं 'दण्डं' नैव लङ्घयेत् ॥ ३६ ॥

भाषार्थः—कृत्तिका आदि सात-सात नक्षत्रोंको पूर्व आदि चारों दिशाओंमें स्थापन करे। उसमें अग्निकोणसे वायव्य कोण तक लगी हुई रेखा परिघ दण्ड कहलाती है। उसका लङ्घन नहीं करना चाहिये। अर्थात् परिघ दण्डसे बँटे हुए

नक्षत्रोंमें जिस दिशाके जो नक्षत्र हैं उसमें उसके विरुद्ध भागमें यात्रा नहीं करे। जैसे पूर्व और उत्तरवाले नक्षत्रोंमें पश्चिम दक्षिण और पश्चिम-दक्षिणवाले नक्षत्रोंमें पूर्व उत्तर दिशाकी यात्रा नहीं करे ॥ ३६ ॥

स्पष्टार्थ चक्र देखिये—

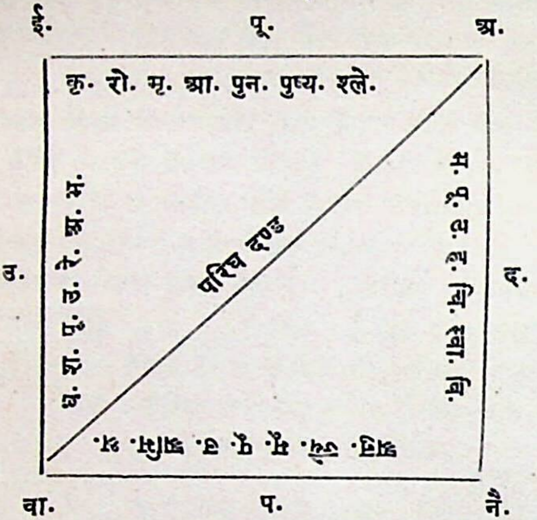

इस चक्रको देखकर पाठकोंको यह समझना चाहिये कि केवल परिघ दण्डका लङ्घन ही यात्रामें निषेध है। बल्कि, पूर्वके नक्षत्रोंमें उत्तरकी, उत्तरके नक्षत्रोंमें पूर्वकी यात्रा, एवं दक्षिणके नक्षत्रोंमें पश्चिमकी और पश्चिमके नक्षत्रोंमें दक्षिणकी यात्रा की जाती है; जो प्रशस्त कहलाती है। अपनी-अपनी दिशाके नक्षत्रोंमें स्वदिशामें यात्रा अतिप्रशस्त होती है।

प्रत्येक दिशाके जो सात-सात नक्षत्र कहे गये हैं उन्हें दिग्द्वारि नक्षत्र समझिये। अपने-अपने दिग्द्वारि नक्षत्रोंमें ही गृहप्रवेशादि भी प्रशस्त कहे जायेंगे।

नोट :—प्रथम प्रकरणके ५६ वें श्लोकमें इसी परिघ दण्डका लङ्घन निषिद्ध कहा गया है ॥ ३६ ॥

परिघ दण्डका परिहार—

अग्नेर्दिशं नृप इयात्पुरुहूतदिग्भै-
रेवं प्रदक्षिणगता विदिशोऽथ कृत्ये।

आवश्यकेऽपि परिघं प्रविलङ्घ्य गच्छे-
च्छूलं विहाय यदि दिक्तनुशुद्धिरस्ति ॥ ३७ ॥

अन्वयः—नृपः पुरुहूतदिग्भैः अग्नेर्दिशं इयात् (गच्छेत्) एवं प्रदक्षिणतः विदिशः इयात् । अथ आवश्यके कृत्ये शूलं विहाय यदि दिक्तनुशुद्धिः अस्ति तदा परिघं अपि प्रविलङ्घ्य गच्छेत् ॥ ३७ ॥

भाषार्थः—पूर्व दिशाके नक्षत्रोंमें राजा अग्निकोणमें जाय । इसी तरह प्रत्येक कोणोंकी यात्रा प्रधान दिशाके नक्षत्रोंमें करे । जैसे दक्षिणके नक्षत्रोंमें नैऋत्य कोणमें, पश्चिमके नक्षत्रोंमें वायव्य कोणमें और उत्तरके नक्षत्रोंमें ईशान कोणमें जाय । आवश्यक कार्यमें (यदि दिग्द्वारि नक्षत्रोंका अलाभ हो तो) दिशाशूल वाले वार नक्षत्रोंको छोड़कर और दिशाकी लग्नशुद्धि देखकर परिघ दण्डको भी लाँघ कर यात्रा करे ॥ ३७ ॥

वि०—प्रधान दिशाकी यात्रा ही उसके कोणकी भी यात्रा और दिशाके शूल आदि ही कोणके भी शूल आदि होते हैं । पूर्व श्लोकमें परिघ दण्डका लङ्घन यात्रामें निषेध कहा गया है, परन्तु किसी बड़े आवश्यक कार्यमें उसका भी लङ्घन किया जाता है । परन्तु उसमें भी दिक्शूल शुद्धि और दिग्लग्न शुद्धि आवश्यक होती है ।

मेष आदि १२ राशियाँ प्रदक्षिण क्रमसे तीन आवृत्ति करके पूर्व आदि चारों दिशाओंकी राशियाँ होतीं हैं । यों मेष–सिंह–धनु पूर्वके । वृष–कन्या–मकर दक्षिणके । मिथुन–तुला–कुम्भ पश्चिमके और कर्क–वृश्चिक–मीन उत्तरके लग्न होते हैं । इनकी शुद्धि तब होती है जब कि इन पर किसी विघ्नकर ग्रहोंकी दृष्टि या योग नहीं हो और शुभ फल देनेवाले ग्रहोंकी सहायता (दृष्टि, योग या उनके वर्ग) हो ॥ ३७ ॥

पूर्व ३७ वें श्लोकमें आवश्यक कार्यमें परिघ दण्डके लङ्घनका परिहार बताया गया है; लेकिन आगेके श्लोकमें अनावश्यकमें भी परिघका परिहार होगा, जो सर्व दिग्द्वारिके नामसे कहे जायेंगे । अर्थात् कुछ नक्षत्र ऐसे हैं जो चारों दिशाओंके लिये शुभ माने जाते हैं ।

सर्वदिग्गमन नक्षत्र और वक्री ग्रहका केन्द्रमें अशुभत्व—

मैत्रार्कपुष्याश्विनभैर्निरुक्ता यात्रा शुभा सर्वदिशासु तज्ज्ञैः ।
वक्री ग्रहः केन्द्रगतोऽस्य वर्गो लग्ने दिनं चास्य गमे निषिद्धम् ॥३८॥

अन्वयः—मैत्रार्कपुष्याश्विनभैः तज्ज्ञैः (पण्डितैः) सर्वदिशासु यात्रा शुभा निरुक्ता । वक्री ग्रहः केन्द्रगतः 'यात्रायां निषिद्धः' लग्न अस्य (वक्रिणो ग्रहस्य) वर्गः निषिद्धः । तथा च अस्य दिनं गमे निषिद्धम् ॥ ३८ ॥

भाषार्थः—अनुराधा, हस्त, पुष्य और अश्विनी इन चार नक्षत्रोंमें पण्डितोंने

चारों दिशाओंकी यात्रा शुभ कही है। अर्थात् इन ४ नक्षत्रोंमें परिघ लङ्घनका दोष नहीं लगता, क्योंकि ये सर्व दिग्द्वारि नक्षत्र हैं।

यदि वक्री ग्रह केन्द्रमें पडे, या लग्नमें वक्री ग्रहका वर्ग पडे तो ऐसे लग्नमें यात्रा निषिद्ध है और वक्री ग्रहका दिन भी यात्रामें निषिद्ध है ॥ ३४ ॥

वि०—यहाँ मेरे प्रिय पाठकोंको सम्भव है कि यह सन्देह होगा कि शूल विचारके समय १० वें श्लोकके विशेष लेखमें पुष्यको पश्चिममें, अश्विनीको दक्षिणमें और हस्तको उत्तरमें नक्षत्र शूल कहा गया है और यहाँ ये नक्षत्र सर्वद्वारि कहे जाते हैं। परन्तु पाठकोंको समझना चाहिये कि वहाँ जो राजमार्तण्ड और बालबोधिनीके मतसे इन्हें शूल कहा गया है इसमें कोई मुनिवचन प्रमाण नहीं है। इसलिये वह शूल शूल नहीं, बल्कि ग्रन्थकारोक्त शूल ही शूल है और अनुराधा हस्त पुष्य अश्विनी ये ४ नक्षत्र सर्वसम्मतसे सर्वद्वारि हैं।

इतना ही नहीं, बल्कि गुरु-वराह आदि आचार्योंके मतसे पुष्य, अश्विनी, हस्त, अनुराधा; रेवती, श्रवण, मृगशिरा धनिष्ठा ये ८ नक्षत्र सर्वदिग्द्वारि हैं। जैसे—

पुष्याश्विहस्तमैत्राणि पौष्णवैष्णवसौम्यभम्।
वासवं सर्वदिक्चवासु यात्रायां शोभनानि हि ॥ इति गुरुः।

जिनमें रेवती-श्रवण-मृगशिरा-धनिष्ठामें आवश्यकमें सर्वदिग्द्वारिता मानी जाती है लेकिन पु. ह. अ. अनु० को नित्य ही। एवं सर्वद्वारि नक्षत्र सर्वकालिक भी हैं, उनमें कालकी अपेक्षा नहीं रहती ॥ ३८ ॥

यात्रामें अयनशुद्धि—

सौम्यायने सूर्य-विधू तदोत्तरां प्राचीं व्रजेत्तौ यदि दक्षिणायने।
प्रत्यग्यमाशां च तयोर्दिवानिशं भिन्नायनत्वेऽथ वधोऽन्यथा भवेत् ॥

अन्वयः—सूर्य-विधू यदि सौम्यायने 'भवेतां' तदा उत्तरां प्राचीं व्रजेत्। तौ यदि, दक्षिणायने 'भवेतां' तदा प्रत्यग्यमाशां व्रजेत्। अथ तयोः भिन्नायनत्वे दिवानिशं व्रजेत्। अन्यथा गमने वधः भवेत ॥ ३९ ॥

भाषार्थः—सूर्य और चन्द्रमा दोनों यदि उत्तरायणमें हों तो उत्तर या पूर्व दिशा की यात्रा करे। दोनों यदि दक्षिणायनमें हों तो पश्चिम या दक्षिणकी यात्रा करे। अगर दोनों भिन्न-भिन्न अयनमें हों तो सूर्यके अयनकी दिशाकी यात्रा दिनमें और चन्द्रमाके अयनकी दिशाकी यात्रा रातमें करे। यहाँ इतनी विशेषता है कि उत्तरायणमें उत्तर और पूर्व, दक्षिणायनमें दक्षिण और पश्चिममें यथासम्भव सूर्य चन्द्रके अयनवश यात्रा करे। अन्यथा (अर्थात् सूर्यके अयनकी दिशामें रातमें और चन्द्रमाके अयनकी दिशामें दिनमें यात्रा करनेपर) यात्रीका वध होता है ॥ ३९ ॥

यात्रामें त्रिविध सम्मुख शुक्रका दोष—

उदेति यस्यां दिशि यत्र याति गोलभ्रमाद्वाऽथ ककुब्भसङ्घे ।
त्रिधोच्यते सम्मुख एव शुक्रो यत्रोदितस्तां तु दिशं न यायात् ॥

अन्वयः—शुक्रः यस्यां दिशि उदेति, गोलभ्रमाद् यत्र याति, अथवा ककुब्भसङ्घे यत्र दिशि तिष्ठति इति त्रिधा सम्मुखः एव उच्यते । शुक्रः यत्रोदितः 'दृश्यते' तां दिशं तु न यायात् (न गच्छेत्) ॥ ४० ॥

भाषार्थः—शुक्र जिस दिशामें उदित हो (अपने कालांश वश सूर्यसे आगे पश्चिममें, या सूर्यसे पीछे पूर्वमें), अथवा गोलके भ्रमणवश उत्तर या दक्षिण जिस दिशामें हो (मेषादि ६ राशिमें उत्तरमें और तुलादि ६ राशिमें दक्षिणमें होता हैं । एवं जहाँ हो), अथवा कृतिका आदि सात-सात नक्षत्र जो दिग्द्वारि बताये गये हैं तदनुसार अपने नक्षत्रवश जिस दिशामें पडे, इस प्रकार तीन तरहका सम्मुख शुक्र होता है । परन्तु इसमें शुक्र जिस दिशामें उदित देखा जाय उसी दिशामें यात्रा नहीं करनी चाहिये । अन्यत्र भी जहाँ तक सम्भव हो बराना चाहिये ॥ ४० ॥

वि०—अपने कालांशवश सूर्यसे आगे या पीछे जो शुक्रका उदय होता है वह पूर्व और पश्चिममें ही । मुख्य यही है भी । गोलभ्रमण वश शुक्र उत्तर और दक्षिण होता है और नक्षत्र वश पूर्वादि चारों दिशाओंमें होता है । परन्तु ये दोनों गौण हैं । अगर हो सके तो उन्हें भी बरा सकते हैं, परन्तु जहाँ उदित हो उस दिशाकी यात्रा नहीं ही करें ।

यदि अत्यावश्यकमें यात्रा करनी ही हो तो सम्मुख शुक्र जनित दोषकी शान्ति करके यात्रा करे । शान्तिका प्रकार पीयूषधारा टीकामें लिखा है । ग्रन्थ बढ़नेके भयसे यहाँ नहीं लिखा जाता ।

यदि शान्ति नहीं कर सकें तो उजला घोड़ा, उजला छाता, सोना, मोती, ब्राह्मणको दान देना चाहिये जिससे सम्मुख शुक्र जनित दोषका परिहार हो ॥ ४० ॥

शुक्रका वक्र आदि दोष और उसका अपवाद—

वक्रास्तनीचोपगते भृगोः सुते राजा व्रजन् याति वशं हि विद्विषाम् ।
बुधोऽनुकूलो यदि तत्र सञ्चलन् रिपूञ्जयेन्नैव जयः प्रतीन्दुजे ॥४१॥

अन्वयः—भृगोः सुते (शुक्रे) वक्रास्तनीचोपगते 'सति' राजा व्रजन् हि (निश्चयेन) विद्विषां वशं याति । यदि तत्र बुधः अनुकूलः (पृष्ठदिग्गतः) 'भवेत् तदा' सञ्चलन् राजा रिपून् जयेत् । किन्तु, प्रतीन्दुजे (सम्मुखबुधे) जयः नैव भवेत् ॥४१॥

भाषार्थः—यदि शुक्र वक्र अस्त और अपनी नीच राशि (कन्या) में हो

तो उस समय यात्रा करनेवाला राजा युद्धमें अपने शत्रुके वशमें पड़ जाता है यदि वहाँ (शुक्रके अस्त वक्र या नीचमें रहने पर) बुध अनुकूल (यात्रीके पीछे दिशामें) हो तो यात्रा करनेपर शत्रुओंको जीते। अर्थात् वहाँ शुक्रका दोष मिट जाता है। परन्तु बुध यदि यात्रीके सामने (संमुख) पड़े तो, जीत नहीं होती, बल्कि हार होती है।

इससे यह सारांश निकला कि बुध भी सम्मुख शुभ नहीं होता। इसी भाँति सम्मुख मङ्गल भी यात्रामें निषेध कहा गया है। जैसे श्री वसिष्ठजी कहते हैं—

प्रतिशुक्रं प्रतिबुधं प्रतिभौमं गतो नृपः।
बलेन शक्रतुल्योऽपि हतसैन्यो निवर्त्तते ॥ ४१ ॥

सम्मुख शुक्रका अपवाद और शुक्रास्तमें विशेष—

यावच्चन्द्रः पूषभात्कृत्तिकाद्ये पादे शुक्रोऽन्धो न दुष्टोऽग्रदक्षे।
मध्येमार्गं मार्गवास्तेऽपि राजा तावत्तिष्ठेत्सम्मुखत्वेऽपि तस्य ॥४२॥

अन्वयः—पूषभात् कृत्तिकाऽऽद्ये पादे यावत् चन्द्रः तिष्ठति तावत् शुक्रः अन्धः भवति। असौ अग्रदक्षे दुष्टः न भवति। अथ, मध्येमार्गं भार्गवास्ते अपि, तस्य सम्मुखत्वे अपि राजा तावत् तिष्ठेत्, 'यावत् पुनः शुक्रोदयः भवेदिति' शेषः ॥ ४२ ॥

भाषार्थः—चन्द्रमा जब तक रेवतीसे लेकर कृत्तिकाके प्रथम पाद तक रहता है तब तक शुक्र अन्धा होता है। इसमें सम्मुख और दाहिने शुक्रका दोष नहीं लगता। यदि शुद्ध समयमें यात्रा करनेपर भी बीच रास्तेमें शुक्रास्त हो जाय अथवा शुक्र सम्मुख हो जाय तो उस राजाको तब तक वहाँ मध्य मार्गमें ठहरना चाहिये, जबतक फिर शुक्रोदय न हो और शुक्रोदय होकर शुक्र पीछे या बाम न पड़ जाय ॥ ४२ ॥

वि०—राजाओंकी युद्ध यात्रामें शुक्रका सम्मुख और दाहिना तथा अस्त होना परम अशुभ है। यह केवल प्रस्थान कालिक ही विचार नहीं प्रत्युत यात्राकी सफलता प्राप्ति तकके लिये (सम्पूर्ण यात्रामें) है। इसलिये रास्तेके मध्यमें भी शुक्रके अस्त या सम्मुख हो जाने पर पुनः उसके अनुकूल होने के काल तक वहाँ रुकना आवश्यक होता है।

शुक्रान्धके विषयमें ऐसा भी वचन उपलब्ध है कि 'रेवतीसे लेकर मृगशिराके अन्त तक जब तक चन्द्रमा रहे तब तक शुक्रान्धका समय रहता है। आवश्यकतामें इस शुक्रान्तमें द्विरागमन भी प्रचलित है। प्राचीन वचन—

रेवत्यादिमृगान्तेषु यावत्तिष्ठति चन्द्रमाः।
तावच्छुक्रो भवेदन्धः सम्मुखस्थो न दोषकृत् ॥ ४२ ॥

यात्रामें त्याज्य लग्न—

कुम्भकुम्भांशकौ त्याज्यौ सर्वथा यत्नतो बुधैः ।
तत्र प्रयातुर्नृपतेरर्थनाशः पदे पदे ॥ ४३ ॥

अन्वयः—बुधैः यात्रायां कुम्भ-कुम्भांशकौ सर्वथा यत्नतः त्याज्यौ । यतः, तत्र (कुम्भकुम्भांशके) प्रयातुः नृपते पदे पदे अर्थनाशः स्यात ॥ ४३ ॥

भाषार्थः—यात्रामें कुम्भ लग्न और किसी भी लग्नमें कुम्भका नवांश पाण्डतोंको यत्न पूर्वक सदा त्यागने चाहिये । क्योंकि उस (कुम्भ और कुम्भनवांश) में यात्रा करने वाले राजाका पद पदमें धनका नाश होता है ॥ ४३ ॥

वि०—इस श्लोकमें 'सर्वथा' इस शब्दसे वह ध्वनि निकलती है कि कुम्भलग्न दिग्द्वार लग्न (पश्चिमके लिये) होने पर भी त्याज्य ही है । क्योंकि आगे ४७ वें श्लोकमें कहा जायगा कि द्वारलग्नमें यात्रा अत्युत्तम होती है । परन्तु वहां भी कुम्भको छोड़ना ही चाहिये ॥ ४३ ॥

अशुभ और शुभ लग्न—

अथ मीनलग्न उत वा तदंशके चलितस्य वक्रमिह वर्त्म जायते ।
जनिलग्नजन्मभपती शुभग्रहौ भवतस्तदा तदुदये शुभो गमः ॥

अन्वयः—अथ मीनलग्ने, उत वा तदंशके (मीननवांशके) चलितस्य जनस्य वर्त्म इह वक्रं जायते । जनिलग्न जन्मभपती यदि शुभग्रहौ भवतः तदा तदुदये गमः शुभः भवति ॥ ४४ ॥

भाषार्थः—मीन लग्नमें और किसी भी लग्नमें मीनके नवांशमें, यात्रा करने वालेका रास्ता वक्र (टेढ़ा) हो जाता है अर्थात् वह सीधे रास्तेसे न जाकर इधर उधर भटकता हुआ जाता है । एवं यदि जन्मलग्नपति और जन्मराशीश ये दोनों शुभ ग्रह हों तो उनके लग्नमें रहनेपर तथा उनके लग्नमें (जन्मलग्न और जन्मराशि यदि यात्रा लग्नमें पड़े तो) भी यात्रा शुभ होती है ॥ ४४ ॥

वि०—यदि जन्मलग्नेश राशीश दोनों पापग्रह हों और वे यात्रा लग्नमें हों तो यात्रा शुभ नहीं होती, यह 'शुभग्रहौ' इस शब्दका तात्पर्य है ॥ ४४ ॥

दूसरा अशुभ लग्न—

जन्मराशितनुतोऽष्टमेऽथवा स्वारिभाच्च रिपुभे तनुस्थिते ।
लग्नगास्तदधिपा यदाऽथवा स्युर्गतं हि नृपतेर्मृतिप्रदम् ॥ ४५ ॥

अन्वयः—जन्मराशितनुतः अष्टमे राशौ, अथवा स्वारिभात् रिपुभे च तनुस्थिते, अथवा तदधिपा यदा लग्नगाः स्युः तदा नृपतेः गतं (गमनम्) हि (निश्चयेन) मृतिप्रदं भवेत् ॥ ४५ ॥

भाषार्थः—जन्मकी राशि या जन्मलग्नसे ८ वीं राशि, अथवा अपने शत्रुकी जन्मराशिसे ६ ठीं राशि यदि यात्राका लग्न हो, अथवा उन राशियोंके स्वामी यदि यात्राके लग्नमें हों तो ऐसे समयकी यात्रा उस यात्री राजाकी मृत्यु करती है।

वि०—श्री वसिष्ठजीके मतसे जन्मराशि या जन्मलग्नसे १२ वीं राशिवाला लग्न भी यात्रामें अशुभ है।

स्वाष्टलग्ने लग्नगते राशौ वा लग्नगे सति।
यातुर्भङ्गो भवेत्तत्र द्वादशे वाऽथ लग्नगे॥ इति॥ ४५॥

यात्रामें शुभलग्न और नौकायात्रा—

लग्ने चन्द्रे वाऽपि वर्गोत्तमस्थे यात्रा प्रोक्ता वाञ्छितार्थैकदात्री।
अम्भोराशौ वा तदंशे प्रशस्तं नौकायानं सर्वसिद्धिप्रदायि॥४६॥

अन्वयः—'यात्राकाले' लग्ने अपि वा चन्द्रे वर्गोत्तमस्थे सति यात्रा वाञ्छितार्थैकदात्री प्रोक्ता। वा अम्भोराशौ वा तदंशे गतवति लग्ने सति नौकायानं प्रशस्तं सर्वसिद्धिप्रदायि च स्यात्॥ ४६॥

भाषार्थः—यात्राके समयमें लग्न अथवा चन्द्रमा अपने वर्गोत्तम नवांशमें रहे तो यात्रा अभीष्ट फलको देनेवाली होती है। यदि लग्न जलचर (कर्क-मकर-कुम्भ-मीन) राशिमें हो, अथवा लग्न का नवांश जलचर राशिका हो तो नौकाकी (नावके द्वारा नदी आदि रास्तेसे) यात्रा शुभ और सर्व सिद्धिको देनेवाली होती है॥ ४६॥

वि०—किसी भी राशिका अपना नवांश वर्गोत्तम कहलाता है। यहां जो लग्नके अपने वर्गोत्तममें रहनेपर यात्रा शुभ कही गई है उसमें ४३ वें श्लोकके अनुसार कुम्भांशको छोड़कर ही समझना चाहिये। क्योंकि कुम्भ और उसका नवांश घोर निन्दित है॥ ४६॥

यात्रामें दिग्द्वार लग्न की प्रशस्तता—

द्विग्द्वारभे लग्नगते प्रशस्ता यात्राऽर्थदात्री जयकारिणी च।
हानिं विनाशं रिपुतो भयं च कुर्यात्तथा दिक्प्रतिलोमलग्ने॥४७॥

अन्वयः—द्विग्द्वारभे लग्नगते 'सति' यात्रा अर्थदात्री जयकारिणी च भवति। तथा दिक्प्रतिलोमलग्ने 'सति' यात्रा, हानिं, विनाशं, रिपुतः भयं च कुर्यात्॥ ४७॥

भाषार्थः—दिग्द्वार राशिवाले लग्नमें यात्रा अर्थ और जय देनेवाली होती है। परन्तु दिशाके विपरीत लग्नमें यात्रा हानि, विनाश और शत्रुसे भय देती है। जैसे पूर्वकी यात्रा पश्चिम दिशाके लग्नमें करे तो उसे अशुभ फल हो॥ ४७॥

नोटः—दिग्द्वार लग्न पहले ३७ वें श्लोकके विशेष लेखमें देखिये॥ ४७॥

दूसरा शुभलग्न—

राशिः स्वजन्मसमये शुभसंयुतो यो
यः स्वारिभान्निधनगोऽपि च वेशिसञ्ज्ञः ।
लग्नोपगः स गमने जयदोऽथ भूप-
योगैर्गमो विजयदो मुनिभिः प्रदिष्टः ॥ ४८ ॥

अन्वयः—स्वजन्मसमये शुभसंयुतः या राशिः, स्वारिभात् निधनगः यः राशिः, अपि च वेशिसञ्ज्ञः यः राशिः स यदि 'यात्राकाले' लग्नोपगः 'स्यात् तदा' गमने जयदः 'भवति'। अथ, भूपयोगैः (जातकोक्तराजयोगैः) गमः मुनिभिः विजयदः प्रदिष्टः ॥ ४८ ॥

भाषार्थः—अपने जन्मके समय जो राशि शुभग्रहसे युत हो, अथवा शत्रुकी राशि या जन्मलग्नसे ८ वीं राशि, अथवा अपनी जन्म कुण्डलीमें जो राशि वेशिसंज्ञक (सूर्यसे दूसरी राशि) हो—इन तीनोंमें कोई एक यदि यात्राके लग्नमें पड़े तो यात्रा विजय देनेवाली होती है। एवं राजयोगों (जातक ग्रन्थोक्त राजयोगों) में यात्रा मुनियोंने विजयदात्री कही है। तात्पर्य यह है कि जिस समयकी ग्रहस्थितिसे राजयोग सूचित होवे ऐसे लग्नमें यात्रा अवश्य जयकारिणी होती है ॥ ४८ ॥

नोटः—राजयोगके लक्षण जातक ग्रन्थोंसे समझिये ॥ ४८ ॥

दिशाके स्वामी ग्रह—

सूर्यः सितो भूमिसुतोऽथ राहुः शनिः शशी ज्ञश्च बृहस्पतिश्च ।
प्राच्यादितो दिक्षु विदिक्षु चापि दिशामधीशाः क्रमतः प्रदिष्टाः ॥४९॥

अन्वयः—सूर्यः, सितः, भूमिसुतः, अथ राहुः, शनिः, शशी, ज्ञः, बृहस्पतिश्च 'इमे ग्रहाः' दिक्षु विदिक्षु चापि, क्रमतः प्राच्यादितः दिशां अधीशाः प्रदिष्टाः ॥ ४९ ॥

भाषार्थः—पूर्वके सूर्य, अग्निकोणके शुक्र, दक्षिणके मङ्गल, नैर्ऋत्यके राहु, पश्चिमके शनि, वायुकोणके चन्द्रमा, उत्तरके बुध और ईशानके बृहस्पति दिक्पति कहलाते हैं ॥ ४९ ॥

दिशाके स्वामीका प्रयोजन—

केन्द्रे दिगधीशे गच्छेदवनीशः ।
लालाटिनि तस्मिन्नेयादरिसेनाम् ॥ ५० ॥

अन्वयः—दिगधीशे केन्द्रे 'गते सति' अवनीशः (राजा) गच्छेत् । तस्मिन् (दिगधीशे) लालाटिनि 'सति' अरिसेनां 'प्रति' न इयात् (न गच्छेत्) ॥ ५० ॥

भाषार्थः—दिशाके स्वामी ग्रह यदि यात्राकालमें केन्द्रमें (लग्नसे १।४।७।१० में) हो तो राजाको युद्धके लिये यात्रा करनी चाहिये । परन्तु वह दिक्पति ग्रह यदि लालाटी योगमें पड़ा हो तो वह राजा ऐसे समयमें शत्रुकी सेनापर चढ़ाई नहीं करे ॥ ५० ॥

नोटः—लालाटी योग आगेके ५१ वें श्लोकमें देखिये ॥ ५० ॥

लालाटिक योग—

प्राच्यादौ तरणिस्तनौ भृगुसुतो लाभव्यये भूसुतः
कर्मस्थोऽथ तमो नवाष्टमगृहे सौरिस्तथा सप्तमे ।
चन्द्रः शत्रुगृहात्मजेऽपि च बुधः पातालगो गीष्पति-
वित्तभ्रातृगृहे विलग्नसदनाल्लालाटिकाः कीर्तिताः ॥ ५१ ॥

अन्वयः—विलग्नसदनात् तनौ तरणिः (लग्ने सूर्यः), लाभव्यये भृगुसुतः, कर्मस्थः भूसुतः, अथ नवाष्टमगृहे तमः, तथा सप्तमे सौरिः, शत्रुगृहात्मजे चन्द्रः, अपि च पातालगः बुधः, वित्तभ्रातृगृहे गीष्पतिः 'इमे ग्रहाः' प्राच्यादौ क्रमेण लालाटिकाः कीर्तिताः ॥ ५१ ॥

भाषार्थः—लग्नमें सूर्य हो तो पूर्वमें लालाटीयोग होता है । एवं लग्नसे—११, १२ वें शुक्र हो तो अग्निकोणमें, १० वें मङ्गल हो तो दक्षिणमें; ९, ८ वें राहु हो तो नैर्ऋत्यमें; ७ वें शनि हो तो पश्चिममें; ६, ५ वें चन्द्रमा हो तो वायव्यमें; ४ थे बुध हो तो उत्तरमें और २, ३ रे गुरु हो तो ईशान कोणमें लालाटिक योग होता है ॥ ५१ ॥

वि०—दिक्पतिसे ही लालाटिक योग बनता है । जो ग्रह जिस दिशाका स्वामी है वह यदि तात्कालिक लग्नसे भी उसी दिशामें पड़े तो वह लालाटिक योग होता है ।

इससे पूर्व श्लोकमें दिगीशके केन्द्रमें होने पर यात्रा कही गई है और वह दिगीश यदि लालाटिकमें पड़े तो यात्रा नहीं होनी चाहिये ऐसा कहा गया है । इससे यह सिद्ध हुआ कि कोई भी दिगीश अपनी दिशावाले केन्द्रको छोड़कर अन्य ३ केन्द्रोंमें हो तो यात्रा करे । जैसे सूर्य प्रथमकेन्द्र (लग्न) में हो तो पूर्वकी यात्रा नहीं करे और अन्य केन्द्रों (४।७।१०) में हो तो पूर्वकी यात्रा करे । एवं मङ्गल यदि लग्नसे १० वें स्थानमें हो तो दक्षिणकी यात्रा नहीं करे और अन्य केन्द्रों (१।४।७) में हो तो दक्षिणकी यात्रा करे । एवं सर्वत्र विचारिये ॥ ५१ ॥

लालाटिकयोगाः

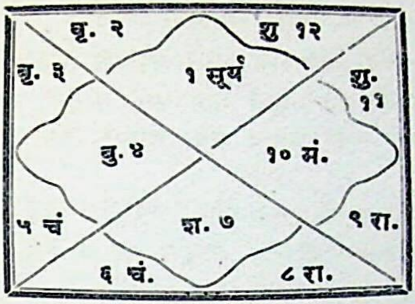

पर्युषित यात्राके योग—

मृगे गत्वा शिवे स्थित्वाऽदितौ गच्छञ्जयेद्रिपून् ।
मैत्रे प्रस्थाय शाक्रे हि स्थित्वा मूले व्रजंस्तथा ॥ ५२ ॥

अन्वयः—मृगे गत्वा (यात्रां कृत्वा) शिवे स्थित्वा, अदितौ गच्छन् रिपून् जयेत्। एवं, मैत्रे प्रस्थाय, शाक्रे स्थित्वा, मूले व्रजन् हि (निश्चयेन) तथा स्यात् (रिपून् जयेदित्यर्थः) ॥ ५२ ॥

भाषार्थः—मृगशिरा नक्षत्रमें अपने घरसे अभीष्ट दिशामें प्रस्थान करके आर्द्रा नक्षत्रमें वहां ठहर कर पुनर्वसुमें वहांसे चले तो शत्रुओंको जीते। एवं अनुराधामें प्रस्थान करके ज्येष्ठामें वहां ठहर कर यदि मूलमें फिर चले तो भी शत्रुओंको जीते ॥ ५२ ॥

योगान्तर—

प्रस्थाय हस्तेऽनिलतक्षधिष्ण्ये स्थित्वा जयार्थी प्रवसेद् द्विदैवे ।
वस्वन्त्यपुष्ये निजसीम्नि चैकरात्रोषितः क्ष्मां लभतेऽवनीशः ॥५३॥

अन्वयः—जयार्थी अवनीशः हस्ते प्रस्थाय, अनिलतक्षधिष्ण्ये स्थित्वा द्विदैवे प्रवसेत्। एवं, वस्वन्त्यपुष्ये 'नक्षत्रे' निजसीम्नि (स्वग्रामाभ्यन्तर एव) एकरात्रोषितश्च क्ष्मां लभते ॥ ५३ ॥

भाषार्थः—युद्धमें अपनी जय चाहनेवाला राजा हस्तमें प्रस्थान करके चित्रा और स्वाती नक्षत्रोंमें ठहर कर विशाखामें चले तो शुभ है। एवं धनिष्ठा, रेवती और पुष्य इनमें किसीमें यात्रा करके केवल एक रात अपने ग्रामकी सीमामें ठहर कर चले तो वह राजा युद्धमें पृथ्वीको लाभ करता है ॥ ५३ ॥

यात्रामें समयका बल—

उषःकालो विना पूर्वां गोधूलिः पश्चिमां विना ।
विनोत्तरां निशीथः सन् याने याम्यां विनाऽभिजित् ॥५४॥

अन्वयः—याने (यात्रायां) पूर्वां विना उषः कालः, पश्चिमां विना गोधूलिः, उत्तरां विना निशीथः सन् स्यात्। तथा याम्यां विना अभिजित् मुहूर्तः सन् स्यात् ॥ ५४ ॥

भाषार्थः—पूर्व दिशाको छोड़ और सब दिशाओंकी यात्रा उषः कालमें शुभ होती है। पश्चिमको छोड़कर गोधूलि कालमें सब दिशाकी यात्रा शुभ होती है। उत्तरको छोड़कर निशीथ (आधीरात) में और दक्षिणको छोड़कर अभिजित् मुहूर्त (दिनार्धकाल) में सब दिशाओंकी यात्रा शुभ होती है।

तात्पर्य यह है कि उषःकालमें पूर्वकी, गोधूलिमें पश्चिमकी, आधीरातमें उत्तर की और मध्याह्नमें दक्षिणकी यात्रा नहीं करनी चाहिये ॥ ५४ ॥

नोटः—उषःकाल सूर्योदयके आसन्न (रात्रिशेष) कालको कहते हैं। गोधूलिका विवरण विवाह प्रकरणके १०१ श्लोकमें किया गया है। निशीथ आधी रातको और अभिजित् दिनार्ध को कहते हैं ॥ ५४ ॥

लग्न आदि १२ भावोंकी संज्ञा—

लग्नाद्भावाः क्रमाद्देह-१ कोश-२ धानुष्क-३ वाहनम् ४ ।
मन्त्रो५ऽरि६मार्ग७आयुश्च८हृद्-९व्यापारा-१०गम-११व्ययाः१२।

अन्वयः—देह-कोश-धानुष्क-वाहनं, मन्त्रः, अरिः, मार्गः, आयुः, च (पुनः) हृद् व्यापारागमव्ययाः, इमे क्रमात् लग्नात् 'द्वादश' भावाः 'भवन्ति' ॥ ५५ ॥

भाषार्थः—लग्न आदि बारह भावोंकी क्रमसे १ देह, २ कोश, ३ धानुष्क, ४ वाहन, ५ मन्त्र, ६ अरि, ७ मार्ग, ८ आयु, ९ हृदय, १० व्यापार, ११ आगम और १२ व्यय ये संज्ञायें हैं ॥ ५५ ॥

ग्रहस्थितिवश लग्नसे शुभाशुभ फल—

केन्द्रे कोणे सौम्यखेटाः शुभाः स्युर्याने पापास्त्र्यायषट्खेषु चन्द्रः ।
नेष्टो लग्नान्त्यारिरन्ध्रे शनिःखेऽस्ते शुक्रो लग्नेट् नगान्त्यारिरन्ध्रे ॥

अन्वयः—याने (यात्रायां) 'लग्नात्' केन्द्रे कोणे सौम्यखेटाः, त्र्यायषट्खेषु पापाः शुभाः स्युः। अथ, लग्नान्त्यारिरन्ध्रे चन्द्रः, खे शनिः, अस्ते शुक्रः, नगान्त्यारिरन्ध्रे लग्नेट् इष्टः न 'भवति' ॥ ५६ ॥

भाषार्थः—यात्रामें लग्नसे केन्द्र और कोण (१।४।५।७।९।१०) में शुभग्रह और ३।११।६।१० स्थानोंमें पाप ग्रह शुभ होते हैं । चन्द्रमा लग्नसे १।१२।६।८ स्थानोंमें, शनि १० वें, शुक्र ७ वें और लग्नका स्वामी ७।१२।६।८ वें स्थानोंमें शुभ नहीं होते । विद्वानोंको चाहिये कि वे इस तरहकी ग्रहस्थिति बराकर यात्राका मुहूर्त विचारे ॥ ५६ ॥

मनुष्योंकी श्रेणीके अनुसार योगादिका बल—

योगात्सिद्धिर्धरणिपतीनामृक्षगुणैरपि भूदेवानाम् ।
चौराणां शुभशकुनैरुक्ता भवति मुहूर्तादपि मनुजानाम् ॥ ५७ ॥

अन्वयः—धरणिपतीनां 'यात्रायां' योगात् (राजयोगवशात्) सिद्धिः भवति । भूदेवानां ऋक्षगुणैः, चौराणां शुभशकुनैः सिद्धिः उक्ता । मनुजानां मुहूर्तात् अपि सिद्धिः भवति ॥ ५७ ॥

भाषार्थः—राजाओं (क्षत्रियों) की यात्रामें योग (वक्ष्यमाण योगयात्रा लग्नवश) से सिद्धि होती है । ब्राह्मणोंको यात्रामें नक्षत्रोंके गुणसे, चोरोंके लिये वक्ष्यमाण शुभ शकुनोंसे और सामान्य मनुष्योंके लिये मुहूर्तसे भी सिद्धि कही गई है ॥ ५७ ॥

वि०—वस्तुतः इस श्लोकका तात्पर्य यह है कि पूर्वमें कहे गये सामान्य और विशिष्ट दोनों ही यात्राओंमें इससे पूर्व जो जो विचार किये गये हैं, हो सकता है कि आवश्यकतामें शीघ्र ही बिलकुल विशुद्ध यात्राका मुहूर्त नहीं उपलब्ध हो । ऐसे समयमें जाति श्रेणीके अनुसार क्षत्रियोंको केवल लग्नवश ग्रहयोग, ब्राह्मणोंको नक्षत्रगुण, चोरोंको यात्राकालिक शुभ शकुन (जो आगे कहे जायेंगे) और अन्य साधारण मनुष्योंको शुभ मुहूर्त ही देखकर यात्रा करनी चाहिये । अर्थात् ऐसे समयमें पूर्ण पञ्चाङ्ग शुद्धिकी आवश्यकता नहीं होती । ऐसा ही श्रीनारदजीने भी कहा है—

फलसिद्धिर्योगबलाद्राज्ञो विप्रस्य धिष्ण्यतः ।
मुहूर्तशक्तितोऽन्येषां शकुनैस्तस्करस्य च ॥

विशिष्ट (समरविजयकी यात्रामें भी शीघ्र ही आवश्यकता पड़ने पर मुनियोंने योगयात्रा (ग्रहयोगवश शुभ यात्रा) ही कही है । अर्थात् वहाँ भी पञ्चाङ्गादि-शुद्धि न देखकर योगयात्रा ही देखनी चाहिये । यों श्रीवराहमिहिरने कहा है—

न तिथिर्न च नक्षत्रं न ग्रहो नैन्दवं बलम् ।
योगमेव प्रशंसन्ति वशिष्ठात्रिपराशराः ॥ इति ॥ ५७ ॥

इसके आगे आचार्य योगयात्रा के अनेक योग कहें हैं जो यहांसे ७६ वें श्लोक तक लिखे गये हैं ।

लग्न से विजय योग—(१)

सहजे रविर्दशमभे शशी तथा शनि-मङ्गलौ रिपुगृहे सितः सुते ।
हिबुके बुधो गुरुरपीह लग्नगः स जयत्यरीन्प्रचलितोऽचिरान्नृपः ॥

अन्वयः—रविः 'लग्नात्' सहजे, शशी दशमभे, तथा शनि-मङ्गलौ रिपुगृहे, सितः सुते, बुधः हिबुके, इह गुरुः अपि लग्नगः स्यात् तदा 'अस्मिन् योगे' यः नृपः प्रचलितः सः अचिरात् (शीघ्रमेव) अरीन् जयति ॥ ५८ ॥

भाषार्थः—लग्नसे ३ रे सूर्य, १० वें चन्द्रमा, ६ ठे शनि और मङ्गल, ५ वें शुक्र, ४ थे बुध और गुरु लग्नमें हो, ऐसे योगमें जो राजा युद्धके लिये यात्रा करता है वह शीघ्र ही शत्रुओंको जीतता है। स्पष्टताके लिये चक्र देखिये ॥ ५८ ॥

विजययोग—

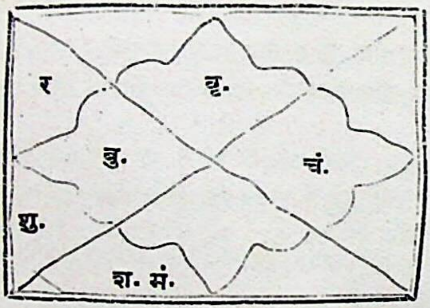

नोटः—इस योगमें ६ठे (शत्रु स्थान) में शनि-मङ्गलका योग शत्रुनाशक, लग्नमें गुरु दोनों त्रिकोणका द्रष्टा होनेसे और चन्द्रमा राज्य-स्थानमें होनेसे राज्यदायक है। सूर्य तीसरे पराक्रमवर्धक और बुध सुख-मित्रोदयकारक तथा ५ वें शुक्र सुमन्त्रदायक है ॥ ५८ ॥

विजय योग—(२)

भ्रातरि सौरिर्भूमिसुतो वैरिणि लग्ने देवगुरुः ।
आयगतेऽर्के शत्रुजयश्चेदनुकूलो दैत्यगुरुः ॥ ५९ ॥

अन्वयः—सौरिः भ्रातरि, भूमिसुतः वैरिणि, देवगुरुः लग्ने, अर्के आयगते, तथा दैत्यगुरुः अनुकूलः 'यदि स्यात् तदा' शत्रुजयः 'भवेत्' ॥ ५९ ॥

भाषार्थः—शनि लग्नसे २ रे हो, मङ्गल ६ ठे हो, लग्नमें गुरु हो, सूर्य ११ वें हो और यदि शुक्र अनुकूल (पृष्ठ या वामवर्ती) हो तो यात्री राजाकी युद्धमें जीत होती है ॥ ५९ ॥

विजय योग—(३)

तनौ जीव इन्दुर्मृतौ वैरिगोऽर्कः ।
प्रयातो महीन्द्रो जयत्येव शत्रून् ॥ ६० ॥

अन्वयः—जीवः तनौ, इन्दुः मृतौ, अर्कः वैरिगः स्यात् तदा प्रयातः महीन्द्रः शत्रून् जयति एव ॥ ६० ॥

भाषार्थः—यदि बृहस्पति लग्नमें हो, चन्द्रमा ८ वें और सूर्य ६ ठे स्थान में हो तो यात्रा करनेवाला राजा शत्रुओंको जीतता है ॥ ६० ॥

विजय योग—(४)

लग्नगतः स्याद् देवपुरोधाः ।
लाभधनस्थैः शेषनभोगैः ॥ ६१ ॥

अन्वयः—देवपुरोधाः (गुरुः) लग्नगतः स्यात्, शेषनभोगैः (इतरग्रहैः) लाभ-धनस्थैः 'अपि प्रयातः महीन्द्रः शत्रून् जयति' ॥ ६१ ॥

भाषार्थः—यदि बृहस्पति लग्नमें हो और शेषग्रह २ रे और ११ वें हों तो यात्रा करने पर शत्रुओंको जीतता है ॥ ६१ ॥

विजय योग—(५)

द्यूने चन्द्रे समुदयगेऽर्के जीवे शुक्रे विदि धनसंस्थे ।
ईदृग्योगे चलति नरेशो जेता शत्रून् गरुड इवाहीन् ॥

अन्वयः—चन्द्रे द्यूने, अर्के समुदयगे (लग्नगते) जीवे शुक्रे विदि च धन-संस्थे सति ईदृग्योगे यः नरेशः चलति सः अहीन् प्रति गरुडः इव शत्रून् प्रति जेता 'भवति' ॥ ६२ ॥

भाषार्थः—लग्नसे ७ वें में चन्द्रमा, लग्नमें सूर्य और गुरु, शुक्र, बुध ये तीनों २ रे स्थानमें हों, ऐसे योगमें जो राजा यात्रा करता है वह जिस तरह सर्पोंको गरुड़ जीतता है वैसे ही शत्रुओंको जीतता है ॥ ६२ ॥

विजय योग—(६)

वित्तगतः शशिपुत्रो भ्रातरि वासरनाथः ।
लग्नगते भृगुपुत्रे स्युः शलभा इव सर्वे ॥ ६३ ॥

अन्वयः—शशिपुत्रः वित्तगतः, वासरनाथः भ्रातरि 'स्थितः' तथा, भृगुपुत्रे लग्न-गते 'सति' सर्वे 'शत्रवः' शलभाः इव स्युः ॥ ६३ ॥

भाषार्थः—बुध २ रे स्थानमें, सूर्य ३ रे और शुक्र लग्नमें हों तो यात्रा करने पर उसके सभी शत्रु पतङ्गकी तरह नष्ट हो जाते हैं। अर्थात् उक्त योगमें यात्रा करने वाले राजाके प्रताप रूपी अनलकी शिखामें सभी शत्रु पतङ्गकी तरह भस्म होजाते हैं। उस यात्री राजाकी विजय होती है ॥ ६३ ॥

विजय योग—(७)

उदये रविर्यदि सौरिररिगः शशी दशमेऽपि ।
वसुधापतिर्यदि याति रिपुवाहिनी वशमेति ॥ ६४ ॥

अन्वयः—यदि रविः उदये, सौरिः अरिगः, अपि (तथा) शशी दशमे 'भवेत्तदा' वसुधापतिः यदि याति तदा रिपुवाहिनी, तस्य' वशं एति ॥ ६४ ॥

भाषार्थः—यदि सूर्य लग्नमें, शनि ६ ठे और चन्द्रमा १० वें स्थानमें हों तो यदि राजा यात्रा करे तो शत्रुकी सेना उसके वशमें हो जाती है ॥ ६४ ॥

विजय योग—(८-९)

तनौ शनिकुजौ रविर्दशमभे बुधो भृगुसुतोऽपि लाभदशमे ।
त्रिलाभरिपुभेषु भूसुतशनी गुरुज्ञभृगुजास्तथा बलयुताः ॥६५॥

अन्वयः—शनिकुजौ तनौ, रविः दशमभे, बुधः अपि वा भृगुसुतः लाभ-दशमे 'भवेत् तदा, विजयः स्यात्'। अथ, भू सुत-शनी त्रिलाभरिपुभेषु भवेतां तथा गुरु-ज्ञ-भृगुजाः 'यदि कुत्रापि' बलयुताः भवेयुः तदा 'विजयः' स्यात् ॥ ६५ ॥

भाषार्थः—शनि, मङ्गल लग्नमें हों, सूर्य १० वें और बुध या शुक्र यदि ११ वें या १० वें हों तो विजय होवे। अथवा, मङ्गल-शनि ३।११।६ इनमें किसी दो स्थानोंमें हों और किसी भी स्थानमें गुरु-बुध-शुक्र बली हो तो यात्रा करनेवाले राजाकी जय होती है ॥ ६५ ॥

विजय योग—(१०)

समुदयगे विबुधगुरौ मदनगते हिमकिरणे ।
हिबुकगतौ बुधभृगुजौ सहजगताः खलखचराः ॥ ६६ ॥

अन्वयः—विबुधगुरौ समुदयगे, हिमकिरणे मदनगते, बुध-भृगुजौ हिबुकगतौ, तथा खलखचराः यदि सहजगताः स्युः तदा जयः स्यात् ॥ ६६ ॥

भाषार्थः—यदि बृहस्पति लग्नमें, चन्द्रमा ७ वें, बुध और शुक्र ४ थे, और पाप ग्रह ३ रे हों तो यात्रा करनेपर यात्री राजाकी विजय होती है ॥ ६६ ॥

विजय योग—(११)

त्रिदशगुरुस्तनुगो मदने हिमकिरणो रविरायगतः ।
सितशशिजावपि कर्मगतौ रविसुतभूमिसुतौ सहजे ॥६७॥

अन्वयः—त्रिदशगुरुः तनुगः, हिमकिरणः मदने, रविः आयगतः, सित-शशिजौ अपि कर्मगतौ, रविसुत–भूमिसुतौ सहजे स्यातां 'तदा एवंविधे योगे राज्ञः विजयः एव भवेत्' ॥ ६७ ॥

भाषार्थः—बृहस्पति लग्नमें, चन्द्रमा ७ वें, सूर्य ११ वें, शुक्र-बुध १० वें और शनि-मङ्गल ३रे हों तो ऐसे योगमें चलनेवाले राजाकी विजय होती है ॥

विजय योग—(१२)

देवगुरौ वा शशिनि तनुस्थे वासरनाथे रिपुभवनस्थे ।
पञ्चमगेहे हिमकरपुत्रः कर्मणि सौरिः सुहृदि सितश्च ॥ ६८ ॥

अन्वयः—देवगुरौ वा शशिनि तनुस्थे, वासरनाथे रिपुभवनस्थे 'सति' हिमकरपुत्रः (बुधः) पञ्चमगेहे, सौरिः (शनिः) कर्मणि, सितश्च सुहृदि भवेत् तदा राज्ञः रिपु-वाहिनी वशं एति ॥ ६८ ॥

भाषार्थः—बृहस्पति अथवा चन्द्रमा लग्नमें, सूर्य ६ ठे, बुध ५ वें, शनि १० वें और शुक्र ४थे हों तो चलनेवाले राजाकी विजय होती है ॥ ६८ ॥

विजय योग—(१३)

हिमकिरणसुतो बली चेत्तनौ त्रिदशपतिगुरुर्हि केन्द्रस्थितः ।
व्ययगृहसहजारिधर्मस्थितो यदि च भवति निर्बलश्चन्द्रमाः ॥६९॥

अन्वयः—चेत् बली हिमकिरणसुतः तनौ, त्रिदशपतिगुरुः हि केन्द्रस्थितः तथा यदि निर्बलः चन्द्रमाः व्ययगृहसहजारिधर्मस्थितः भवति तदा अपि राज्ञः विजयः स्यात् ॥ ६९ ॥

भाषार्थः—यदि बुध बली होकर लग्नमें हो, बृहस्पति केन्द्रमें हो और चन्द्रमा निर्बल होकर १२।३।६।९। स्थानोंमें हो तो भी चलने वाले राजाकी विजय होती है ॥ ६९ ॥

विजय योग—(१४)

अशुभखगैरनवाष्टमदस्थैर्हिबुकसहोदरलाभगृहस्थैः ।
कविरिह केन्द्रगगीष्पतिदृष्टो वसुचयलाभकरः खलु योगः ॥७०॥

अन्वयः—अशुभखगैः अनन्त्याष्टमदस्थैः, इह हिबुकसहोदरलाभगृहस्थः कविः केन्द्रगगीष्पतिदृष्टः 'यदि भवेत् तदा अयं' खलु (निश्चयेन) वसुचयलाभकरः योगः 'भवति' ॥

भाषार्थः—यदि पाप ग्रह सब १२।८।७ इनको छोड़ कर अन्य स्थानोंमें हों और शुक्र ४।३।११ में होकर केन्द्रस्थित गुरुसे देखा जाता हो तो यह योग धनके समूहको देनेवाला होता है। अर्थात् ऐसे योगमें चलनेवाला बहुत धन प्राप्त करता है ॥ ७० ॥

विजय योग—(१५)

रिपुलग्नकर्महिबुके शशिजे परिवीक्षिते शुभनभोगमनैः ।
व्ययलग्नमन्मथगृहेषु जयः परिवर्जितेष्वशुभनामधरैः ॥ ७१ ॥

अन्वयः—शशिजे रिपुलग्नकर्महिबुके शुभनभोगमनैः परिवीक्षिते, व्ययलग्नमन्मथगृहेषु अशुभनामधरैः (पापग्रहैः) परिवर्जितेषु 'चलितस्य' राज्ञः 'जयः स्यात्' ॥७१॥

भाषार्थः—बुध-लग्न, छठे, दशवें या चौथे स्थानमें हो और शुभग्रहोंसे दृष्ट हो तथा पाप ग्रह १२।१।७ इनमें नहीं हों तो चलनेवाले राजाकी जय होती है ॥ ७१ ॥

राज्यप्राप्तिके योग—(१६-१७)

लग्ने यदि जीवः पापा यदि लाभे कर्मण्यपि वा चेद्राज्याधिगमः स्यात् ।
द्यूने बुध-शुक्रौ चन्द्रो हिबुके वा तद्वत्फलमुक्तं सर्वैर्मुनिवर्यैः ॥७२॥

अन्वयः—यदि जीवः (गुरुः) लग्ने, पापाः यदि लाभे अपिवा कर्मणि भवेयुः चेत् तदा 'चलितस्य राज्ञः' राज्याधिगमः (राज्यलाभः) स्यात् । अथवा, बुध-शुक्रौ द्यूने भवेतां तथा चन्द्रः हिबुके भवेत् तदा सर्वैः मुनिवर्यैः तद्वत् फलं (राज्याधिगमः स्यादिति) उक्तम् ॥ ७२ ॥

यदि बृहस्पति लग्नमें और पापग्रह ११ वें, अथवा १० वें हों तो चलने वाले राजाको राज्यकी प्राप्ति हो । अथवा बुध और शुक्र ७ वें हों और चन्द्रमा ४ थे हो तो भी राज्य मिले, ऐसा सभी मुनियोंने कहा है ॥ ७२ ॥

विजयके ३ योग—(१८-१९-२०)

रिपुतनुनिधने शुक्रजीवेन्दवो ह्यथ बुध-भृगुजौ तुर्यगेहस्थितौ ।
मदनभवनगश्चन्द्रमा वाऽम्बुगःशशिसुतभृगुजान्तर्गतश्चन्द्रमाः ॥७३॥

अन्वयः—शुक्रजीवेन्दवः 'क्रमेण' रिपुतनुनिधने 'स्थिताः स्युः तदा' हि (निश्चयेन) 'जयः स्यात्'। अथ, बुध-भृगुजौ तुर्यगेहस्थितौ 'स्यातां' चन्द्रमा

'भवेत् तदा जयः स्यात्' । वा, चन्द्रमाः अम्बुगः शशिसुत-भृगुजान्तर्गतः 'स्यात् तदा अपि जयः स्यात्' ॥ ७३ ॥

भाषार्थः—यदि शुक्र ६ ठे, गुरु लग्नमें और चन्द्रमा ८ वें हों तो जय हो अथवा बुध, शुक्र ४थे हों और चन्द्रमा ७ वें हो तो भी जय हो। वा, चन्द्रमा, बुध और शुक्रके मध्यमें होकर ४ थे हो तो भी जय हो ॥ ७३ ॥

वि०—तीसरे योगमें चन्द्रमाको बुध और शुक्रके बीचमें ४ थे भावमें कहा गया है। वहां तीसरे शुक्र ४ थे चन्द्रमा और ५ वें बुध समझना चाहिये। अथवा एक राशिमें भी कुछ अंशों करके चन्द्रमासे आगे पीछे बुध-शुक्रको समझिये ॥ ७३ ॥

विजयके २ योग—(२१-२२)

सितजीवभौमबुधभानुतनूजास्तनुमन्मथारिहिबुकत्रिगृहे चेत् ।
क्रमतोऽरिसोदरखशात्रवहोराहिबुकायगैर्गुरुदिनेऽखिलखेटैः ॥७४॥

अन्वयः—चेत् सित—जीव-भौम-बुध-भानुतनूजाः 'क्रमेण' तनु-मन्मथा-रि-हिबुक-त्रिगृहे 'भवेयुः तदा राज्ञः जयः स्यात्। अथवा' गुरुदिने अखिलखेटैः (सूर्यादिभिः सप्तग्रहैः) क्रमतः अरि-सोदर—ख-शात्रव-होरा-हिबुका-यगैः 'राज्ञः जयः स्यात्' ॥ ७४ ॥

भाषार्थः—यदि शुक्र लग्नमें, गुरु ७ वें, मङ्गल ६ठें, बुध ४ थे और शनि ३ रे हों तो राजाकी जय होवे। अथवा बृहस्पति वारमें यदि सूर्य ६ ठे, चन्द्रमा ३ रे, मङ्गल १० वें, बुध ६ ठे, गुरु लग्नमें, शुक्र ४ थे और शनि ११ वें हों तो भी यात्रा करने वाले राजाकी जय होवे ॥ ७४ ॥

२१. योग ।

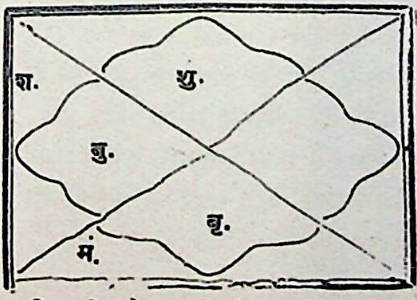

२२. योग ।

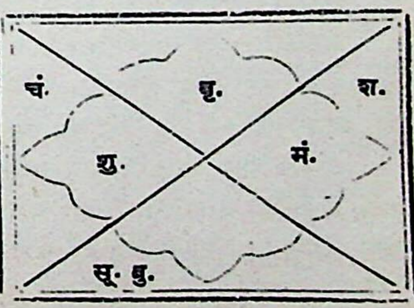

विजयके और भी २ योग—(२३-२४)

सहजे कुजो निधनगश्च भार्गवो मदने बुधो रविररौ तनौ गुरुः ।

लगेगा। लग्नादि ठीक नहीं रहने पर कभी भी मन नहीं मानता। इससे मनकी शुद्धिसे ही समयको शुद्ध समझना चाहिये ॥ ७८ ॥

यात्रामें निषिद्ध समय—

व्रतबन्धन-देवताप्रतिष्ठा-करपीडोत्सव-सूतकासमाप्तौ ।
न कदापि चलेदकालविद्युद्घनवर्षातुहिनेऽपि सप्तरात्रम् ॥ ७९ ॥

अन्वयः—व्रतबन्धनदेवताप्रतिष्ठाकरपीडोत्सव-सूतकासमाप्तौ कदापि न चलेत्। अथ, अकालविद्युद्घनवर्षातुहिने अपि सप्तरात्रं 'यावत् न चलेत्' ॥ ७९ ॥

भाषार्थः—उपनयन, देवताकी प्रतिष्ठा, विवाह, उत्सव (होलिका आदि) और सूतक (मरणाशौच, जननाशौच दोनों) की असमाप्तिमें कभी भी यात्रा नहीं करनी चाहिये। शास्त्रमें जिस कार्यकी जितने दिनमें पूर्ति कही गई है उसके भीतर यात्रा-निषेध है। एवं अकालमें (असमयमें) विजली चमके, मेघ वरसे और पाला पडे तो भी ७ दिन तक यात्रा नहीं करे ॥ ७९ ॥

वि०—वर्षाऋतुसे भिन्न ऋतुमें विजली और वर्षा अकाल-सम्बन्धी कहलाती है। एवं हेमन्त और शिशिरके अतिरिक्तकी पाला अकालकी कहलाती है और यह उत्पात समझा जाता है। उसमें प्रारम्भसे ७ दिन वराने चाहिये ॥ ७९ ॥

एक दिनके गमन-प्रवेशमें दिक्-शूलादिका परिहार—

महीपतेरेकदिने पुरात् पुरे यदा भवेतां गमनप्रवेशकौ ।
भवारशूलप्रतिशुक्रयोगिनीर्विचारयेन्नैव कदापि पण्डितः ॥८०॥

अन्वयः—यदा एकदिने एव पुरात् पुरे महीपतेः गमन–प्रवेशकौ भवेतां 'तदा' पण्डितः भवारशूलप्रतिशुक्रयोगिनीः कदापि नैव विचारयेत् ॥ ८०

भाषार्थः—यदि एक ही दिनमें राजाका एक ग्रामसे यात्रा होकर दूसरे ग्राम में प्रवेश भी हो जाय तो ऐसी स्थितिमें नक्षत्रशूल, वारशूल, सम्मुख शुक्र और योगिनी इत्यादिका विचार पण्डितको नहीं करना चाहिये। तात्पर्य यह है कि—जहाँ एक दिनमें ही एक ग्रामसे चलकर दूसरे ग्राममें पहुंचना है वहां दिक्-शूल आदि किसी बातका विचार नहीं करना चाहिये। जहां दिनान्तरमें गमन-प्रवेश हों वहां सब कुछ विचारने चाहिये ॥ ८० ॥

एक दिनके गमन-प्रवेशमें विशेष—

यद्येकस्मिन् दिवसे महीपतेर्निर्गमप्रवेशौ स्तः ।
तर्हि विचार्यः सुधिया प्रवेशकालो न यात्रिकस्तत्र ॥ ८१ ॥

अन्वयः—यदि एकस्मिन् एव दिवसे महीपतेः 'पुरात् पुरे' निर्गम-प्रवेशौ स्तः तर्हि सुधिया प्रवेशकालः विचार्यः; तत्र यात्रिकः कालः न 'विचार्यः' ॥ ८१ ॥

भाषार्थः—एक ही दिनमें यदि राजाकी यात्रा और प्रवेश दोनों होते हों वहां पण्डितको प्रवेशकालका ही विचार करना चाहिये, यात्राकालका नहीं ॥८१॥

नोट—प्रवेशका विचार गृहप्रवेश प्रकरणमें देखिये ॥ ८१ ॥

यात्रामें त्रिनवमी-दोष—

प्रवेशान्निर्गमं तस्मात्प्रवेशं नवमे तिथौ ।
नक्षत्रे च तथा वारे नैव कुर्यात्कदाचन ॥ ८२ ॥

अन्वयः—प्रवेशात् नवमे तिथौ, 'नवमे' नक्षत्रे, तथा 'नवमे' वारे निर्गमं, तस्मात् 'निर्गमात्' नवमे तिथौ, नक्षत्रे, तथा च वारे, प्रवेशं च कदाचन नैव कुर्यात् ॥ ८२ ॥

भाषार्थः—प्रवेश करनेके नववीं तिथि, नववें नक्षत्र और नववें वारमें निर्गम (यात्रा) नहीं करे और यात्राके बाद उससे ९ वीं तिथि, ९ वे नक्षत्र और ९ वें दिनमें प्रवेश भी कदापि नहीं करे ॥ ८२ ॥

वि०—यह त्रिनवमी दोष है । १ प्रयाण नवमी । २ प्रवेश नवमी । ३ तिथि नवमी । गृहप्रवेशसे ९ वीं तिथिमें यात्रा 'प्रयाण-नवमी' कहलाती है, सो निषिद्ध है । यात्रासे ९ वीं तिथिमें गृहप्रवेशको 'प्रवेश-नवमी' कहते हैं, यह भी निषिद्ध है और नवमी तिथि तो प्रसिद्ध ही है । ये तीनों (त्रिनवमी) यात्रामें शुभ नहीं होती ॥ ८२ ॥

नोट—नवमी तिथि, नववां नक्षत्र और नववां वार ही दुष्ट हैं, उससे आगे और पीछेके तिथि-वार-नक्षत्र दुष्ट नहीं होते ॥ ८२ ॥

यात्रामें पूर्व-कर्तव्यता—

अग्निं हुत्वा देवतां पूजयित्वा नत्वा विप्रानर्चयित्वा दिगीशम् ।
दत्त्वा दानं ब्राह्मणेभ्यो दिगीशं ध्यात्वा चित्ते भूमिपालोऽधिगच्छेत् ॥

अन्वयः—'पूर्वं' अग्निं हुत्वा, देवतां पूजयित्वा, विप्रान् नत्वा, दिगीशं अर्चयित्वा, ब्राह्मणेभ्यो दानं दत्वा, चित्ते दिगीशं ध्यात्वा 'तदनन्तरं' भूमिपालः 'गन्तव्यदिशम्' अधिगच्छेत् ॥ ८३ ॥

भाषार्थः—पहले अग्निमें हवन और देवताकी पूजा करके ब्राह्मणोंको प्रणाम करे, दिशाके स्वामीकी पूजा करे और ब्राह्मणोंको दान देकर मनमें दिशा के स्वामी का ध्यान करके राजा गन्तव्य दिशाकी यात्रा करे ॥ ८३ ॥

यात्रामें नक्षत्र-जनित दोषकी शान्तिके लिये दोहद—

कुल्माषांस्तिलतण्डुलानपि तथा माषांश्च गव्यं दधि
त्वाज्यं दुग्धमथैणमांसमपरं तस्यैव रक्तं तथा।
तद्वत्पायसमेव चाषपललं मार्गं च शाशं तथा
षाष्टिक्यं च प्रियंग्वपूपमथवा चित्राण्डजान् सत्फलम् ॥८४॥
कौर्मं सारिकगोधिकं च पललं शाल्यं हविष्यं हया-
द्वृक्षे स्यात्कृसरान्नमुद्गमपि वा पिष्टं यवानां तथा।
मत्स्यान्नं खलु चित्रितान्नमथवा दध्यन्नमेवं क्रमा-
द्भक्ष्याभक्ष्यमिदं विचार्य मतिमान् भक्षेत्तथाऽऽलोकयेत् ॥८५॥

अन्वयः—हयादृचे क्रमात् कुल्माषान्, तिलतण्डुलान् तथा माषान्, च, गव्यं दधि, आज्यं, दुग्धं, अथ एणमांसं अपरं तस्यैव रक्तं, तथा तद्वत् पायसं, चाषपललं मार्गं (मृगमांसं) तथा शाशं (शशकमांसं) षाष्टिक्यं च, प्रियङ्गु-अपूपं अथवा चित्राण्डजान्, सत्फलम्, कौर्मं (कूर्ममांसं) सारिकगोधिकं 'मांसं' शाल्यं च पललं, हविष्यं, कृसरान्नमुद्गम्, अपि वा यवानां पिष्टं, तथा मत्स्यान्नं, खलु चित्रितान्नं, अथवा दध्यन्नं स्यात् एवं इदं 'जातिकुलदेशानुसारं' भक्ष्याभक्ष्यं विचार्य 'यात्राकाले' मतिमान् भक्षेत् तथा आलोकयेत् ॥ ८४–८५ ॥

भाषार्थः—अश्विनी नक्षत्रमें कुल्माष (चावल मिले उर्द), भरणीमें तिल-चावल, कृत्तिकामें उर्द, रोहिणीमें गौका दही, मृ० में गौका घी, आर्द्रामें गौका दूध, पुन० में हरिणका मांस, पुष्यमें हरिणका रक्त, श्ले० में पायस (खीर), मघामें चाष (पपीहा) का मांस, पू० फ० में मृगका मांस, उ० फ० में खरहेका मांस, हस्तमें साठीका चावल, चित्रामें कङ्गुनी, स्वातीमें पूआ, वि० में अनेक वर्णका पक्षी, अनु० में सुन्दर फल, ज्येष्ठामें कछुएका मांस, मूलमें सारिका पक्षीका मांस, पू० षा० में गोहका मांस, उ० षा० में साहीका मांस, अभिजित्में हविष्यान्न (मूंग आदि), श्रवणमें खिचरी, ध० में मूङ्ग, श० में यवका पिसान, पू० भा० में मछली-भात, उ० भा० में खिचरी और रेवतीमें दही भात—इन वस्तुओंको जाति और देशके अनुसार भक्ष्याभक्ष्य विचार कर जहां जिसके लिये जो भक्ष्य हो उस वस्तुको खाये और जो अभक्ष्य हो उस वस्तुको केवल देखना चाहिये ॥ ८४–८५ ॥

वि०—वस्तुतः यात्रामें जो नक्षत्र निन्दित हो उनका ही दोहद कहना चाहिये था, परन्तु यहां अश्विन्यादि प्रत्येक नक्षत्रोंके दोहद कहे गये हैं, कि हो सकता है कि यात्रामें प्रशस्त नक्षत्र भी किसी २ के लिये यदि अशुभ-सूचक हो तो यात्री इस श्लोकके अनुसार उसकी शान्ति करके यात्रा करे ॥ ८४-८५ ॥

दिशाका दोहद—

आज्यं तिलोदनं मत्स्यं पयश्चापि यथाक्रमम् ।
भक्षयेद्दोहदं दिश्यमाशां पूर्वादिकां व्रजेत् ॥ ८६ ॥

अन्वयः—आज्यं, तिलौदनं, मत्स्यं अपि च पयः इति यथाक्रमं दिश्यं (दिक्सम्बन्धिनम्) दोहदं भक्षयेत्, ततः पूर्वादिकां (अभीष्टां) आशां व्रजेत् ॥ ८६ ॥

भाषार्थः—पूर्वकी यात्रामें घृत, दक्षिणमें तिल-चावल, पश्चिममें मत्स्य और उत्तरमें दूध खाकर यात्रा करे ॥ ८६ ॥

वि०—भक्ष्याभक्ष्यका विचार इसमें भी करके भक्षण, या दर्शन करे । जहां जब दिशाशूलकी (सम्मुख शुक्र-बुध-मङ्गलकी) सम्भावना हो तभी यह दोहद विचारना चाहिये अन्यथा नहीं ॥ ८६ ॥

वार-दोहद—

रसालां पायसं काञ्जीं शृतं दुग्धं तथा दधि ।
पयोऽशृतं तिलान्नं च भक्षयेद्वारदोहदम् ॥ ८७ ॥

अन्वयः—रसालां, पायसं, काञ्जीं, शृतं दुग्धं, तथा दधि, अशृतं पयः, तिलान्नं च 'यथाक्रमं' वारदोहदं भक्षयेत ॥ ८७ ॥

भाषार्थः—रविवारमें रसाला (दही, शक्कर, मिर्च, इलायची मिलकर बनती है, जिसे 'श्रीखण्ड' कहते हैं), सोमवारमें पायस (खीर), मङ्गलवारमें-काञ्जी (लपसी), बुधवारमें गर्म दूध, गुरुवारमें दही, शुक्रवारमें कच्चा दूध और शनिवारमें तिल मिला हुआ भात खाकर यात्रा करनी चाहिये । यह वार-दोहद वारशूलमें विचारना चाहिये ॥ ८७ ॥

तिथि-दोहद—

पक्षादितोऽर्कदलतण्डुलवारिसर्पिः
श्राणा हविष्यमपि हेमजलं त्वपूपम् ।
भुक्त्वा व्रजेद्रुचकमम्बु च धेनुमूत्रं
यावान्नपायसगुडानसृगन्नमुद्गान् ॥ ८८ ॥

अन्वयः—पक्षादितः (प्रतिपत्तिथितः) 'यथाक्रमं' अर्कदल-तण्डुल वारि-सर्पिः, आणा, हविष्यं, अपि हेमजलं, तु 'पुनः' अपूपं, रुचकं, अम्बु च, धेनुमूत्रं, यावान्न-पायस-गुडान्, असृगन्नमुद्गान् भुक्त्वा व्रजेत् ॥ ८८ ॥

भाषार्थः—प्रतिपदामें अर्क (आक, मदार) का पत्ता, द्वितीयामें चावल का धोवन, तृतीयामें घृत, चौथमें इमली, पञ्चमीमें मूंग, षष्ठीमें सोनाका पानी (धोवन), सप्तमीमें पूआ, अष्टमीमें रुचक (विजौरा), नवमीमें शुद्ध जल, दशमीमें गोमूत्र, ११ में यवका चावल, १२ में खीर, १३ में गुड़, १४ में रुधिर और १५ में मूंगमिला भात खाकर जाना चाहिये।

तिथिके योगिनी तथा मास-दग्धादि दोषसे दुष्ट रहनेपर इस तिथि-दोहदका व्यवहार करे ॥ ८८ ॥

यात्रा-कालका कर्त्तव्य—

उद्धृत्य प्रथमत एव दक्षिणांघ्रिं द्वात्रिंशत्पदमधिगत्य दिश्ययानम् ।
आरोहेत्तिलघृतहेमताम्रपात्रं दत्त्वाऽऽदौ गणकवराय च प्रगच्छेत् ८९

अन्वयः—प्रथमतः दक्षिणाङ्घ्रिं एव उद्धृत्य, तथा द्वात्रिंशत्पदं अधिगत्य दिश्य यानं आरोहेत्। 'तदनन्तरं' आदौ गणकवराय तिलघृतहेमताम्रपात्रं दत्त्वा प्रगच्छेत् ८९

भाषार्थः—यात्राके समय पहले दाहिना पैर उठाकर ३२ पद चलकर जिस दिशामें जाना हो उस दिशाकी सवारी (जो आगे श्लोकमें कही जायगी) पर चढ़े और उसके बाद पहले ज्योतिषी को तिल, घी, सोना और ताम्रपात्र दान देकर अभीष्ट दिशाको जाय ॥ ८९ ॥

प्रत्येक दिशामें जाने के लिये वाहन—

प्राच्यां गच्छेद्गजेनैव दक्षिणस्यां रथेन हि ।
दिशि प्रतीच्यामश्वेन तथोदीच्यां नरैर्नृपः ॥ ९० ॥

अन्वयः—नृपः प्राच्यां दिशि गजेन एव, दक्षिणस्यां हि रथेन, प्रतीच्यां दि[शि] अश्वेन, तथा उदीच्यां दिशि नरैः गच्छेत् ॥ ९० ॥

भाषार्थः—राजा पूर्वदिशामें हाथी पर चढ़कर, दक्षिणमें रथ (घोड़ा-गा[ड़ी] वगैरह) पर, पश्चिम दिशामें घोड़ेपर चढ़कर और उत्तरमें नरवाहन (अथ[वा] पालकी वारदरी आदि) पर चढ़कर यात्रा करे ॥ ९० ॥

यात्रामें निर्गम-स्थान—

देवगृहाद्वा गुरुसदनाद्वा स्वगृहान्मुख्यकलत्रगृहाद्वा ।

प्राश्य हविष्यं विप्रानुमतः पश्यन् शृण्वन्मङ्गलमेयात् ॥ ९१ ॥

अन्वयः—देवगृहात्, वा गुरुसदनात्, वा स्वगृहात्, वा मुख्यकलत्रगृहात्, पूर्वं हविष्यं प्राश्य, ततः विप्रानुमतः मङ्गलं 'वस्तु वाक्यं वा' पश्यन् वा शृण्वन् एयात् (गच्छेत्) ॥ ९१ ॥

भाषार्थः—देवालयसे, अथवा गुरुके घरसे, वा अपने (शयन करनेके) घरसे अथवा (अधिक स्त्री होने पर) मुख्य (प्रधान) स्त्रीके घरसे पहले हविष्य (याज्ञिक शुद्ध) अन्नादि खाकर ब्राह्मणोंकी आज्ञासे मङ्गल वस्तुओंको देखता और मङ्गलमय वाक्योंको सुनता हुआ यात्रा करे ॥ ९१ ॥

विशेष—यात्राके शुभ मुहूर्त्तका निर्णय होनेपर भी यदि किसी कार्यवश जानेमें विलम्ब हो तो निर्णीत शुभ समयके अनुकूल यात्राके लिये किसी वस्तुका प्रस्थान कर दिया जाता है, उसमें वर्णक्रमके अनुसार प्रस्थानकी वस्तुएं और स्वयं प्रस्थानमें प्रस्थानके प्रमाण आदि बातें लिखी जायेंगी।

वर्णक्रमसे प्रस्थानकी वस्तुएँ—

कार्याद्यैरिह गमनस्य चेद्विलम्बो भूदेवादिभिरुपवीतमायुधं च ।
क्षौद्रं चामलफलमाशु चालनीयं सर्वेषां भवति यदेव हृत्प्रियं वा ॥

अन्वयः—यदि चेत् कार्याद्यैः गमनस्य विलम्बः भवेत् तदा इह अस्मिन् 'यात्रावसरे' भूदेवादिभिः उपवीतं आयुधं च क्षौद्रम्, आमलफलं च आशु चालनीयम्। वा सर्वेषां एव वर्णानां यदेव हृत्प्रियं भवति तदेव चालनीयम् ॥ ९२ ॥

भाषार्थः—यदि किसी आवश्यक कार्यवश यात्रा करनेमें विलम्ब हो तो उस निर्णीत यात्राके समयमें ही ब्राह्मणको यज्ञोपवीत, क्षत्रियको शस्त्र, वैश्यको शहद और शूद्रको आँवला फल शीघ्र प्रस्थानमें चला देना चाहिये। अथवा सबके लिये साधारण नियम यही है कि जिसकी जो वस्तु अत्यन्त प्रिय हो वही प्रस्थानमें रखे ॥ ९२ ॥

प्राचीन आचार्योंके मतसे स्वयं प्रस्थान करनेमें प्रस्थानका स्थान प्रमाण—

गेहाद्गेहान्तरमपि गमस्तर्हि यात्रेति गर्गः
सीम्नः सीमान्तरमपि भृगुर्बाणविक्षेपमात्रम् ।
प्रस्थानं स्यादिति कथयतेऽथो भरद्वाज एवं
यात्रा कार्या बहिरिह पुरात्स्याद्वसिष्ठो ब्रवीति ॥ ९३ ॥

अन्वयः—यदि गेहात् गेहान्तरं अपि गमः स्यात् तर्हि यात्रा 'भवति' इति गर्गः ब्रवीति । भृगुः सीम्नः सीमान्तरं अपि 'यात्रा स्यात्' इति ब्रवीति । अथ भरद्वाजः बाणविक्षेपमात्रं प्रस्थानं स्यादिति कथयते । एवं इह पुरात् बहिः यात्रा कार्या स्यात्, इति वसिष्ठः ब्रवीति ॥ ९३ ॥

भाषार्थः—गर्ग मुनि एकसे दूसरे घरमें चले जानेको यात्रा मानते हैं। भृगु मुनि अपनी सीमासे दूसरे ग्रामकी सीमामें चले जानेको यात्रा कहते हैं। भरद्वाज मुनिके मतसे अपने हाथोंसे चलाया हुआ बाण जहाँ तक जाय वहाँ तक प्रस्थानका प्रमाण है। एवं वसिष्ठजीके मतसे गाँवसे बाहर चले जाने पर यात्रा होती है ॥ ९३ ॥

प्रस्थानमें प्रमाणान्तर—

प्रस्थानमत्र धनुषां हि शतानि पञ्च
केचिच्छतद्वयमुशन्ति दशैव चान्ये ।
सम्प्रस्थितो य इह मन्दिरतः प्रयातो
गन्तव्यदिक्षु तदपि प्रयतेन कार्यम् ॥ ९४ ॥

अन्वयः—अत्र केचित् हि धनुषां पञ्च शतानि प्रस्थानम् उशन्ति । केचित् धनुषां दश एव प्रस्थानम् उशन्ति । इह यः सम्प्रस्थितः स मन्दिरतः गन्तव्यदिक्षु 'यथा' प्रयातः भवेत्, तदपि प्रयतेन कार्यम् ॥ ९४ ॥

भाषार्थः—कोई आचार्य ५०० धनुष[1] (२००० हाथ) की दूरीपर प्रस्थान करनेको कहते हैं। कोई २०० धनुष (८०० हाथ) पर और कोई अपने घरसे १० ही धनुष (४० हाथ) पर प्रस्थान कहते हैं। परन्तु, प्रस्थान करनेवाला जिस दिशामें जाना चाहता हो अपने घरसे उसी दिशामें प्रस्थान करनेका प्रयत्न करे। अर्थात् गन्तव्य दिशामें ही प्रस्थान करना चाहिये ॥ ९४ ॥

वि०—गन्तव्य दिशामें प्रस्थान करनेका महत्व—राजमार्तण्डमें-'गन्तव्यदेशाभिमुखे प्रदेशे प्रस्थानमाहुः शुभदं नराणाम्' इति ।

यात्रीको स्वयं प्रस्थान करनेमें विशेष फल कहा गया है अतः जहाँ तक बन सके प्रस्थानमें किसी वस्तुको न रखकर स्वयं प्रस्थित हो जाना चाहिये। राजमार्तण्डमें लिखा है—

स्वशरीरेण यः कश्चिन् निर्गच्छेच्छ्रद्धयान्वितः ।
तस्य यात्राफलं सर्वं पूर्णं भवति निश्चितम् ॥

---

१. एक धनुषका प्रमाण ४ हाथ होता है।

प्रस्थान करनेके बाद यदि दूसरे तीसरे दिन कोई तिथि वार नक्षत्र सम्बन्धी दोष पड़ते हों तो ऐसे दुष्ट समयमें वहाँ से आगे नहीं बढ़े। बल्कि शुद्ध समयमें ही जाय। जैसे–

जन्मर्क्षे चाष्टमे चन्द्रे वारे भौमे शनैश्चरे।
प्रस्थितेऽपि न गन्तव्य यदि स्याद् गर्हितं दिनम् ॥

अगर स्वयं प्रस्थान करनेमें असमर्थ (कार्यवश) हो तो अपनी प्रिय वस्तुको ही पूर्वोक्त प्रस्थानमें रखनी चाहिये ॥ ९४ ॥

प्रस्थानमें ठहरने का प्रमाण और उसमें विशेष—

प्रस्थाने भूमिपालो दशदिवसमभिव्याप्य नैकत्र तिष्ठेत्,
सामन्तः सप्तरात्रं, तदितरमनुजः पञ्चरात्रं तथैव।
ऊर्ध्वं गच्छेच्छुभाहेऽप्यथ गमनदिनात्सप्तरात्राणि पूर्वं
चाशक्तौ तद्दिनेऽसौ रिपुविजयमना मैथुनं नैव कुर्यात् ॥९५॥

अन्वयः—भूमिपालः (स्वतन्त्रो राजा) प्रस्थाने दश दिवसम् अभिव्याप्य एकत्र न तिष्ठेत्। सामन्तः (माण्डलिकः राजा) सप्तरात्रं, तदितरमनुजः पञ्चरात्रं तथैव एकत्र न तिष्ठेत्। अतः ऊर्ध्वं शुभाहे गच्छेत्। अथ रिपुविजयमनाः असौ राजा गमनदिनात् सप्तरात्राणि पूर्वम्, अशक्तौ च तद्दिने (केवलं गमनदिने) मैथुनं (स्त्रीसम्भोगम्) नैव कुर्यात् ॥ ९५ ॥

भाषार्थः—जो राजा स्वतन्त्र हो वह प्रस्थानमें १० दिन एक जगह नहीं ठहरे। सामन्त (माण्डलिक, छोटा) राजा ७ दिन एक जगह नहीं रुके और साधारण जन एक स्थानमें ५ रात्रि न ठहरे; अर्थात् इससे पहले ही वहांसे यात्रा कर दे। यदि किसी कारण वश प्रस्थानमें कहे हुए दिनोंसे अधिक दिन लग जायें तो वहांसे अपने घर लौटकर फिर शुभ मुहूर्तमें यात्रा करे। अपने शत्रुको जीतनेकी इच्छा करनेवाला राजा यात्राके दिनसे ७ रात्रि पहले हीसे स्त्रीसे सम्भोग नहीं करे। यदि अधिक कामुकतावश ७ रात्रि स्त्रीसम्भोग किये विना नहीं रह सके तो उस दिन (यात्रा दिन) मैथुन अवश्य नहीं करे ॥ ९५ ॥

वि०—साधारण मनुष्योंके लिये प्रस्थान ५ रात और राजामहाराजाओंके लिये ७ और १० रात तक कहा गया है। उसके बाद यदि यात्रा नहीं कर सके तो फिर अपने घर लौट कर यात्रा करनी चाहिये।

यात्रासे ७ रात पूर्व मैथुन निषेध कहा गया है। परन्तु वह केवल (व्यर्थ) मैथुन के लिये। जो मैथुन सन्तानोत्पत्तिके लिये होता है वह सात रातके मध्यमें भी दुष्ट नहीं है! तात्पर्य यह है कि यदि यात्राके पूर्व सात रातके भीतर यदि यात्री की स्त्री ऋतुमती हो जाय

तो उसे मैथुन करना ही चाहिये। अन्यथा उसे भ्रूणहत्याका दोष लगता है। क्योंकि मनुने-

ऋतुस्नातां तु यो भार्यां सन्निधौ नोपगच्छति।
घोरायां भ्रूणहत्यायां युज्यते नात्र संशयः॥ ऐसा कहा है।

इस लिये श्री च्यवन मुनिने कहा है—

आत्ययिककार्यपाते पुष्पस्नातासमागमं कृत्वा।
मुदितो गच्छँल्लभते मनोरथानचिरकालेन॥

अन्यथा व्यर्थ मैथुन कमसे कम यात्राकी पूर्व रातमें भी अवश्य वराना चाहिये। ऐसा लल्लाचार्यने भी कहा है—

कृत्वा तु मैथुनं रात्रौ प्रभाते योऽधिगच्छति।
नासौ फलमवाप्नोति कृच्छ्रेण च निवर्तते॥ इति॥ ९५॥

यात्रामें त्याज्य वस्तु—

दुग्धं त्याज्यं पूर्वमेव त्रिरात्रं क्षौरं त्याज्यं पञ्चरात्रं च पूर्वम्।
क्षौद्रं तैलं वासरेऽस्मिन्वमिश्च त्याज्यं यत्नाद्भूमिपालेन नूनम्॥९६॥

अन्वयः—यात्रादिनात् पूर्वम् एव त्रिरात्रं दुग्धं त्याज्यं, पूर्वं पञ्चरात्रं क्षौरं त्याज्यं तथा अस्मिन् वासरे (यात्राया दिने) क्षौद्रं, तैलं वमिश्च एतत्सर्वं भूमिपालेन यत्नात् नूनं त्याज्यम्॥ ९६॥

भाषार्थः—यात्राके निश्चित दिनसे पहले तीन रात्रि दूध नहीं खाना चाहिये। पाँच रात्रि पहले क्षौर (शिरका बाल और दाढ़ी वगैरह बनवाना) त्याज्य है। यात्राके दिन मधु नहीं खाना चाहिये, तेल नहीं लगाना चाहिये और वमन (शरीर शोधनके लिये दवा से कै) नहीं करना चाहिये॥ ९६॥

यात्रामें त्याज्य वस्तुके बलात्कार सेवनका दुष्परिणाम—

भुक्त्वा गच्छति यदि चेत्तैलगुडक्षारपक्वमांसानि।
विनिवर्तते स रुग्णः स्त्रीद्विजमवमान्य गच्छतो मरणम्॥९७॥

अन्वयः—यदि चेत् तैलगुडक्षारपक्वमांसानि भुक्त्वा गच्छति तदा स रुग्णः विनिवर्तते। तथा स्त्रीद्विजम् अवमान्य गच्छतः जनस्य मरणं भवति॥ ९७॥

भाषार्थः—यदि यात्राके दिनमें तेल, गुड़, क्षार (लवण) और पकाया हुआ मांस खाकर यात्रा करे तो वह रोगी होकर लौटता है और स्त्री तथा ब्राह्मणका अपमान (अनादर) करके जानेवालेकी मृत्यु होती है॥ ९७॥

वि०! यात्राके समय यात्रीको आहार और व्यवहार आदि हर तरहसे विशुद्ध बनाकर यात्रा करनी चाहिये। ऐसी अवस्थामें किसी भी तामसी वस्तुका व्यवहार उसके लिये अशुभ-

कर होता है। तेल गुड़ क्षार लवण और मांस ये सब तामसी आहार हैं, इसलिये यात्राके दिन तेलकी बनी वस्तुएँ, गुड़के पके पक्वान्न खीर आदि, क्षार लवण मिली वस्तुएं और पकाये हुए मांस ये सब त्याज्य हैं। अर्थात् उस दिन शुद्ध सात्विक निरामिष भोजन करना चाहिये। यात्रा समयमें सबसे मङ्गल बचन सुनना चाहिये। यदि उस समय किसीका अपमान किया जाय तो वह दुर्वाक्यका ही प्रयोग करेगा। इसलिये अपमान किसी का नहीं करना चाहिये। विशेषकर स्त्रियों[1] और ब्राह्मणोंका अपमान अधिक हानिकर होता है। एवं श्री गर्ग मुनिने कहा है—

यस्तु सम्प्रस्थितो यात्रां भार्यां नैवाभिनन्दति।
भार्या वा नाभिनन्देत न स प्रतिनिवर्तते॥
परकीयां स्वकीयां वा स्त्रियं पुरुषमेव वा।
ताडयित्वा तु यो मोहात् तदन्तं तस्य जीवितम्॥
यात्रायां प्रस्थितो यश्च ब्राह्मणानवमानयेत्।
नासौ प्रतिनिवर्तेत तदन्तं तस्य जीवितम्॥ इति॥ ९७॥

पूर्वमें (७९ वें श्लोकमें) अकालवृष्टिमें यात्रा निषेध की गई है इसलिये यहाँ अकालवृष्टिका विवरण और उसके दोषकी शान्ति, २ श्लोकोंमें कही जायेगी।

अकालवृष्टि दोष—

यदि मास्सु चतुर्षु पौषमासादिषु वृष्टिर्हि भवेदकालवृष्टिः।
पशुमर्त्यपदाङ्किता न यावद्वसुधा स्यान्न हि तावदत्र दोषः ॥९८॥

अन्वयः—यदि पौषमासादिषु चतुर्षु मास्सु वृष्टिः भवेत् तदा असौ हि अकालवृष्टिः ज्ञेयाः। अत्र (अकालवृष्टौ) यावत् वसुधा पशुमर्त्यपदाङ्किता न स्यात् तावत् दोषः न हि भवेत्॥ ९८॥

भाषार्थः—यदि पूस आदि चार महीनों (पूस, माघ, फाल्गुन, चैत्र) में वर्षा हो तो वह अकाल वृष्टि कहलाती है। उस अकाल वृष्टिमें भी जब तक पृथ्वी पशुओं और मनुष्योंके पैरसे चिह्नित नहीं हो तब तक दोष नहीं लगता। अर्थात् जब वर्षासे पृथ्वीपर कींचर कर्दम हो जाय तभी अकालवृष्टिका दोष लगता है॥ ९८॥

अकालवृष्टिके दोषका प्रमाण और शान्ति—

अल्पायां वृष्टौ दोषोऽल्पो भूयस्यां दोषो भूयान्

---

१. पुराणोंमें स्त्री प्रकृति और ब्राह्मण ईश्वरीतनु माना गया है (श्री देवी भागवत) इसलिये इनकी अवहेलना नहीं करनी चाहिये।

जीमूतानां निर्घोषे वृष्टौ वा जातायां भूपः ।
सूर्येन्द्वोर्बिम्बे सौवर्णे कृत्वा विप्रेभ्यो दद्याद्
दुःशाकुन्ये साज्यं स्वर्णं दत्वा गच्छेत्स्वेच्छाभिः ॥ ९९ ॥

अन्वयः—अल्पायां वृष्टौ अल्पः दोषः, भूयस्यां वृष्टौ भूयान् दोषः 'ज्ञातव्यः'। अथ जीमूतानां (मेघानां) निर्घोषे, वा वृष्टौ जातायां भूपः सूर्येन्द्वोः सौवर्णे बिम्बे कृत्वा विप्रेभ्यः दद्यात्। तथा दुःशाकुन्ये साज्यं स्वर्णं 'विप्रेभ्यः' दत्वा 'ततः' स्वेच्छाभिः गच्छेत् ॥ ९९ ॥

भाषार्थः—थोड़ी वर्षा होने पर थोड़ा दोष और अधिक वर्षामें अधिक दोष जानना चाहिये अकाल समयमें मेघोंके गरजने और वर्षा होनेपर उसके दोष की शान्तिके लिये सूर्य और चन्द्रमाके बिम्ब सोनेका बनाकर ब्राह्मणको दान देवे। यदि यात्राके समय अशुभ शकुन हो तो घीके साथ सोना दान करके अपनी इच्छासे जहाँ चाहे वहाँ जाय ॥ ९९ ॥

वि०—७९ वें श्लोकमें कहा गया है कि अकालवृष्टि में ७ रात्रि तक यात्रा नहीं करनी चाहिये। उससे इस वचनको विशेष समझना चाहिये। अर्थात् थोड़ी वर्षामें थोड़ा और अधिक वर्षामें अधिक दोष होता है। सात रातके लिये आवश्यक नहीं बल्कि अकालवृष्टि होनेपर यात्रा नहीं करनी चाहिये। यदि आवश्यक हो तो शान्ति करके यात्रा करे ॥ ९९ ॥

नोट—अपशकुनोंका विवरण आगे १०२-१०३ श्लोकोंमें देखिये ॥ ९९ ॥

यात्रामें शुभशकुन—

विप्राश्वेभफलान्नदुग्धदधिगोसिद्धार्थपद्माम्बरं
वेश्यावाद्यमयूरचाषनकुला बद्धैकपश्वामिषम् ।
सद्वाक्यं कुसुमेक्षुपूर्णकलशच्छत्राणि मृत्कन्यका
रत्नोष्णीषसितोक्षमद्यससुतस्त्रीदीप्तवैश्वानराः ॥ १०० ॥

आदर्शाञ्जनधौतवस्त्ररजका मीनाज्यसिंहासनं
शावं रोदनवर्जितं ध्वजमधुच्छागास्त्रगोरोचनम् ।
भारद्वाजनृयानवेदनिनदा माङ्गल्यगीताङ्कुशा
दृष्टाः सत्फलदाः प्रयाणसमये रिक्तो घटः स्वानुगः ॥१०१॥

अन्वयः—प्रयाणसमये—'विप्राश्वेभफलान्नदुग्धदधिगोसिद्धार्थपद्माम्बरं वेश्या-

वाद्यमयूरचाषनकुलाः, बद्धैकपश्वामिषम्, सद्वाक्यम्, कुसुमेक्षुपूर्णकलशच्छत्राणि, मृत्कन्यकाः, रत्नोष्णीषसितोक्ष मद्यससुतस्त्रीदीप्तवैश्वानराः, आदर्शाञ्जनधौतवस्त्ररजकाः, मीनाज्यसिंहासनम्, रोदनवर्जितं शावम्, ध्वजमधुच्छागास्त्रगोरोचनम्, भारद्वाजनृयानवेदनिनदाः, माङ्गल्यगीताङ्कुशाः, 'एते' दृष्टाः सन्तः सत्फलदाः भवन्ति । तथा स्वानुगः रिक्तः घटः सत्फलदः स्यात् ॥ १००-१०१ ॥

भाषार्थः—यात्राके समय-ब्राह्मण, घोड़ा, हाथी, फल, अन्न, दूध, दही, गौ, सरसों, कमल, स्वच्छ, वस्त्र, वेश्या, बाजा, मयूर, पपीहा, नेवला, बँधा हुआ एक पशु, मांस, शुभ वचन, फूल, ईख, भरा हुआ कलश, छत्र, भिंगी मिट्टी, कुमारी कन्या, रत्न, पगरी, उजला बैल, मदिरा, गोदमें पुत्र लिये स्त्री, धधकती हुई आग, ऐनक, कज्जल-सुर्मा; धुले हुये वस्त्रोंके साथ धोबी,[1] मछली, घृत, सिंहासन, रोदनसे रहित मुर्दा,[2] पताका, मधु, बकरा, अस्त्र, गोरोचन, भारद्वाज पक्षी, (खञ्जन) पालकी, वेदकी ध्वनि, मङ्गलकार्य, गीतका गान और अङ्कुश ये सब वस्तुएँ यदि आगे दीख पड़े तो यात्रामें शुभ फल देते हैं और यदि खाली घड़ा पीछेकी ओर जाता हो तो वह भी शुभ होता है ॥ १००-१०१ ॥

यात्रामें अशुभ शकुन—

वन्ध्या चर्म तुषास्थि सर्पलवणाङ्गारेन्धनक्लीबविट्-
तैलोन्मत्तवसौषधारिजटिलप्रव्राट्तृणव्याधिताः ।
नग्नाभ्यक्तविमुक्तकेशपतिता व्यङ्गक्षुधार्ता असृक्
स्त्रीपुष्पं सरठः स्वगेहदहनं मार्जारयुद्धं क्षुतम् ॥ १०२ ॥
काषायी गुडतक्रपङ्कविधवाकुब्जाः कुटुम्बे कलि-
र्वस्त्रादेः स्खलनं लुलायसमरं कृष्णानि धान्यानि च ।
कार्पासं वमनं च गर्दभरवो दक्षेऽतिरुट् गर्भिणी
मुण्डार्द्राम्बरदुर्वचोऽन्धबधिरोदक्यो न दृष्टाः शुभाः ॥१०३॥

अन्वयः—वन्ध्या स्त्री, चर्म, तुषास्थि, सर्पलवणाङ्गारेन्धनक्लीबविट्तैलोन्मत्तवसौषधारिजटिलप्रव्राट्तृणव्याधिताः, नग्नाभ्यक्तविमुक्तकेशपतिताः, व्यङ्गक्षुधार्ताः,

---

१. मैले कपड़ेके साथ धोबी अशुभ होता है ।

२. मुर्देके साथ जाने वाले यदि रोते हों तो अशुभ होता है ।

असृक् स्त्रीपुष्पम्, सरठः, स्वगेहदहनम्, मार्जारयुद्धम्, क्षुतम्, काषायी, गुड़तक्रपङ्कविधवाकुब्जाः, कुटुम्बे कलिः, वस्त्रादेः स्खलनम्, लुलायसमरम्, कृष्णानि धान्यानि च, कार्पासम्, वमनम्, दक्षे गर्दभरवः, अतिरुट्, गर्भिणी, मुण्डार्द्राम्बरदुर्वचोऽन्धवधिरोदक्याः 'प्रयाणसमये' दृष्टाः शुभा न भवन्ति ॥ १०२-१०३ ॥

भावार्थः—बाँझ स्त्री, चमड़ा, भूसा, हड्डी, साँप, लवण, बुती आग (कोयला) इन्धन (जलावन) नपुंसक (हिजरा) विष्ठा, तेल, मतवाला, चर्बी, औषधि, शत्रु, जटावाला, संन्यासी, घास, रोगी, नङ्गा मनुष्य, उबटन लगाये मनुष्य, खुले केशवाले मनुष्य, पतित (जातिसे बहिष्कृत) अङ्गहीन, भूखसे पीड़ित, रुधिर, स्त्रीका ऋतु, गिरगिट, अपने घरका जलना, बिलावका युद्ध, छींक, गेरुआ वस्त्रवाला, गुड़, माठा, कीचड़, विधवा स्त्री, कुबड़ा मनुष्य, परिवारमें झगड़ा, शरीरके ऊपरसे वस्त्रोंका गिरना, भैंसेकी लड़ाई, काले धान्य, कपास (रूई), वमन (उल्टी) दाहिनी[1] ओर गधेका शब्द, अधिक क्रोधी, गर्भिणी स्त्री; बालकटाया हुआ मनुष्य, भींगा वस्त्र, दुर्वाक्य (गाली या शाप) अन्धा, बहिरा और रजस्वला स्त्री ये यात्राके समय आगे दीखें तो अशुभ हैं ॥१०२-१०३॥

और भी शुभ शकुनका परिचय—

गोधाजाहकसूकराहिशशकानां कीर्तनं शोभनं
नो शब्दो न विलोकनं च कपिऋक्षाणामतो व्यत्ययः ।
नद्युत्तारभयप्रवेशसमरे नष्टार्थसंवीक्षणे
व्यत्यस्ताः शकुना नृपेक्षणविधौ यात्रोदिताः शोभनाः ॥१०४॥

अन्वयः—'प्रयाणसमये' गोधाजाहकसूकराहिशशकानां कीर्तनं (नामोच्चारणं) शोभनं स्यात्। परञ्च, एषां शब्दः नः शुभः, विलोकनं (दर्शनं) च न शुभम् । तथा कपिऋक्षाणाम् अतः व्यत्ययः (विपरीतः) स्यात्। नद्युत्तारभयप्रवेशसमरे नष्टार्थसंवीक्षणे च व्यत्यस्ताः शकुनाः ज्ञेयाः। नृपेक्षणविधौ तु यात्रोदिताः शकुनाः शोभनाः ज्ञेयाः ॥ १०४ ॥

भावार्थः—यात्राके समय गोह, जाहक (जो किसीको देखते ही सिकुर जाता है) सूकर, साँप और खरहा इनका कीर्तन (स्मरण या नामका उच्चारण) शुभ है। परन्तु इनका बोलना और दर्शन होना अशुभ है। बन्दरों और भालुओंका उलटा, अर्थात् बन्दर-भालुका देखना और बोलना ही शुभ है,

---

१. बाँये भागमें गधेका शब्द शुभ होता है।

नामोच्चारण अशुभ है। नदीके पार उतरने, भयसे भागने, गृहप्रवेश और लड़ाई में तथा खोई हुई वस्तुके खोजने जानेमें विपरीत शकुन अच्छे होते हैं। अर्थात् इन कार्यों में अशुभ (१०२-१०३ श्लोकोक्त) शकुन ही अच्छे होते हैं। परन्तु राजाओंके दर्शनार्थ यात्रामें कहे हुए शुभ शकुन ही शुभ समझने चाहिये ॥१०४॥

वामभागमें शुभ शकुन—

वामाङ्गे कोकिला पल्ली पोतकी सूकरी रला ।
पिङ्गला छुच्छुका श्रेष्ठाः शिवाः पुरुषसंज्ञिताः ॥ १०५ ॥

अन्वयः—'प्रयाणे' कोकिला, पल्ली, पोतकी, सूकरी, रला, पिङ्गला, छुच्छुका, शिवाः, पुरुषसंज्ञिताः 'पक्षिणः' वामाङ्गे श्रेष्ठाः भवन्ति ॥ १०५ ॥

भाषार्थः—यात्रामें कोयल, छिपकिली, कबूतरी, सूकरी, रला, पिङ्गला (भैरवी) छुछुन्दरी, शिवा (शृगाली) और पुरुषवाचक (खञ्जन, तित्तिर, हंस इत्यादि) पक्षियाँ वाम भागमें दीखने पर शुभ हैं ॥ १०५ ॥

दाहिने भागमें शुभ शकुन—

छिक्करः पिक्को भासः श्रीकण्ठो वानरो रुरुः ।
स्त्रीसंज्ञकाः काकऋक्षश्वानः स्युर्दक्षिणाः शुभाः ॥ १०६ ॥

अन्वयः—छिक्करः, पिक्कः, भासः, श्रीकण्ठः, वानरः, रुरुः, स्त्रीसंज्ञकाः 'पक्षिणः' तथा काक-ऋक्ष-श्वानः प्रयाणे दक्षिणाः शुभा भवन्ति ॥ १०६ ॥

भाषार्थः—छिक्कर मृग, पिक्क पक्षी, भास पक्षी, श्रीकण्ठ पक्षी, बन्दर, रुरु मृग, स्त्रीवाचक पक्षियाँ, काक, भालू और कुत्ता ये यात्रीके दक्षिण भागमें शुभ होते हैं ॥ १०६ ॥

दक्षिण भागमें और भी शुभ शकुन—

प्रदक्षिणगताः श्रेष्ठा यात्रायां मृगपक्षिणः ।
ओजा मृगा व्रजन्तोऽतिधन्या वामे खरस्वनः ॥ १०७ ॥

अन्वयः—यात्रायां मृगपक्षिणः प्रदक्षिणगताः श्रेष्ठाः भवन्ति, चेत् ओजाः (विषमसङ्ख्यकाः) मृगाः व्रजन्तो दृष्टाः स्युः तदा अतिधन्याः स्युः । तथा वामे खरस्वनः शुभः स्यात् ॥ १०७ ॥

भाषार्थः—यात्रामें मृग और पक्षियाँ यदि प्रदक्षिण (बांयेसे दक्षिण भागमें) जाते दृष्ट हों तो शुभ हैं। उनमें भी यदि मृग विषम (३।५।७।९ इत्यादि) हों

तो अत्यन्त शुभ होते हैं। बांये भागमें गधेका शब्द शुभ होता है ॥ १०७ ॥

अपशकुनमें कर्तव्य—

आद्येऽपशकुने स्थित्वा प्राणानेकादश व्रजेत् ।
द्वितीये षोडश प्राणांस्तृतीये न क्वचिद्व्रजेत् ॥ १०८ ॥

अन्वयः—आद्ये (प्रथमे) अपशकुने एकादश प्राणान् स्थित्वा व्रजेत्। द्वितीये अपशकुने षोडश प्राणान् स्थित्वा व्रजेत्। परन्तु, तृतीये अपशकुने 'जाते सति' क्वचित् (कदापि) न व्रजेत् ॥ १०८ ॥

भाषार्थः—यात्रामें यदि पहली बार अप शकुन (दुष्ट वस्तुओंका दर्शन श्रवण) हो तो ११ श्वास[1] तक ठहर कर यात्रा करे। यदि द्वितीय बार भी फिर अपशकुन हो तो १६ श्वास पर्यन्त ठहर कर जाय। परन्तु यदि तीसरी बार भी अपशकुन हो तो वह यात्री कदापि नहीं जाय ॥ १०८ ॥

वि०—किसी भी कार्य में शुभ शकुन उस कार्यकी सिद्धिकी सूचना और अपशकुन उसकी निष्फलता तथा उसमें विपत्तिकी चेतावनी देता है। जहाँ बार २ अपशकुन दीख पड़े उसमें यह समझकर कि इसमें कोई अनिष्ट परिणाम होनहार है, कभी नहीं जाय ॥ १०८ ॥

यात्रासे लौटने पर अपने गृहमें प्रवेशका मुहूर्त—

यात्रानिवृत्तौ शुभदं प्रवेशनं मृदु-ध्रुवैः क्षिप्र-चरैः पुनर्गमः ।
द्वीशेऽनले दारुणभे तथोग्रभे स्त्रीगेहपुत्रात्मविनाशनं क्रमात् ॥१०९॥

अन्वयः—यात्रानिवृत्तौ मृदु-ध्रुवैः नक्षत्रैः प्रवेशनं शुभदं भवति। क्षिप्रचरैः यदि प्रवेशः स्यात् तदा पुनः राज्ञः गमः भवेत। अथ, द्वीशे, अनले, दारुणभे, तथा उग्रे नक्षत्रे प्रवेशे कृते सति' क्रमात् स्त्री-गेह-पुत्रा-त्म-विनाशनं स्यात् ॥ १०९ ॥

भाषार्थः—यात्रासे लौटने पर मृदु और ध्रुवसंज्ञक नक्षत्रोंमें अपने घरमें प्रवेश करना शुभ होता है। यदि क्षिप्र और चर नक्षत्रोंमें प्रवेश करे तो उसे फिर भी यात्रा करनी पड़ती है। विशाखामें प्रवेश करने पर स्त्रीका नाश, कृत्तिकामें गृहका नाश, दारुण नक्षत्रोंमें पुत्र नाश और उग्र नक्षत्रोंमें अपना नाश होता है ॥ १०९ ॥

वि०—प्राचीन आचार्योंने ४ प्रकारके प्रवेश कहे हैं। जो १ नव वधूप्रवेश, २ सुपूर्व-प्रवेश, ३ अपूर्वप्रवेश और ४ द्वन्द्वाभय प्रवेश इस ४ नामसे प्रसिद्ध हैं। जिनमें १ वधूप्रवेश वधूप्रवेश प्रकरणमें कहा जा चुका है। २ सुपूर्वप्रवेश वह है जो यात्रासे लौटकर अपने घरमें

---

१. आजकल अङ्ग्रेजी मानसे १ श्वास=४ सेकेण्ड होते हैं।

प्रवेश किया जाता है । उसीका मुहूर्त इस श्लोकमें कहा गया है । ३ अपूर्व प्रवेश नूतनगृह बनाकर उसमें प्रवेश करने को कहते हैं, जो गृहप्रवेश प्रकरणमें कहा जायगा । ४ द्वन्द्वाभय प्रवेश वह है जो कभी अग्नि भयसे या किसी दूसरे ही प्रकोपके कारण एक घरको छोड़कर दूसरे घरमें प्रवेश किया जाता है । नववधू प्रवेशको अन्वर्थक और व्यापक होनेसे उसे छोड़ शेष ३ ही प्रवेश श्रीवशिष्ठने कहे हैं—

अपूर्वसंज्ञः प्रथमः प्रवेशो यात्रावसाने च सुपूर्वसंज्ञः ।
द्वन्द्वाभयस्त्वग्निभयाद्विजातस्त्वेवं प्रवेशस्त्रिविधः प्रदिष्टः ॥ इति ॥१०९॥

यात्रामें पूर्वोक्त दोषोंका विवरण—

अयनर्क्षमासतिथिकालवासरोद्भवशूलसम्मुखसितज्ञदिक्पाः ।
गुरुवक्रतादिपरिघाख्यदण्डकस्त्र्यृतुजाद्यशौचमपि चोत्सवादिकम् ॥
मृतपक्षरिक्तरवितर्कसंख्यकास्तिथयश्च सौरिरविभौमवासराः ।
अपि वामपृष्ठगविधुस्तथाडलोवसुपञ्चकाभिजिदथापि दक्षिणे १११

लग्ने जन्मर्क्षतन्वोर्मृतिगृहमहितर्क्षाच्च षष्ठं तदीशा
वा लग्ने कुम्भमीनर्क्षनवलवतनू चापि पृष्ठोदयं च ।
पृष्ठाशासंस्थमृक्षं दशमशनिरथो सप्तमे चापि काव्यः
केन्द्रे वक्राश्च वक्रिग्रहदिवसविवाहोक्तदोषाश्च नेष्टाः ॥११२॥

अन्वयः—अयनर्क्षमासतिथिकालवासरोद्भवशूलसम्मुखसितज्ञदिक्पाः, भृगुवक्रतादिपरिघाख्यदण्डकः, स्त्र्यृतुजाद्यशौचम् अपि च, उत्सवादिकं यात्रायां त्यजेत् ॥

अथ मृतपक्षरिक्तरवितर्कसंख्यकाः तिथयः, सौरिरविभौमवासराः, वामपृष्ठगविधुः तथा आडलः 'एते' यात्रायां त्याज्याः, अथ दक्षिणे वसुपञ्चकाभिजित् अपि त्याज्यः ॥

अथ जन्मर्क्षतन्वोः मृतिगृहं, अहितर्क्षात् (शत्रुराशेः) षष्ठं च लग्ने, वा तदीशाः लग्ने त्याज्याः । तथा लग्ने कुम्भमीनर्क्षनवलवतनू पृष्ठोदयं च, पृष्ठाशासंस्थं ऋक्ष, दशमशनिः, सप्तमे काव्यः, केन्द्रे वक्राः ग्रहाः, तथा वक्रिग्रहदिवसविवाहोक्तदोषाश्च यात्रायां इष्टाः न स्युः ॥ ११२ ॥

भाषार्थः—अयन दोष (३९ वें श्लोक में) नक्षत्र-वारशूल (१० वें श्लो०) मास (८ वें श्लो०) काल (११ वें श्लो०) सम्मुख शुक्र बुध और दिगीश, (४० और ५० श्लो०) शुक्रके वक्रादि दोष (४१ वाँ श्लो०) परिघदण्ड (३६ श्लो०) स्त्रीकी ऋतु, जन्म और मरणका अशौच, उत्सव = व्रतबन्धनादि (७९ श्लो०) मृतपक्ष (१४ श्लो०) रिक्ता, १२।६ तिथियाँ, शनि–रवि–मङ्गलवार, वाम और

पृष्ठ चन्द्र और महाड़ल दोष (२५ श्लो०) ये यात्रामें त्याज्य हैं।

दक्षिणकी यात्रामें धनिष्ठा आदि ५ नक्षत्र और अभिजित् मुहूर्त त्याज्य हैं ॥

अपने जन्मलग्न और जन्मराशिसे ८ वीं राशि और शत्रुकी राशिसे ६ ठी राशि और उनके पति लग्नमें त्याज्य हैं। लग्नमें कुम्भ-मीन राशिके लग्न और नवांश और पृष्ठोदय राशि त्याज्य हैं। पृष्ठ दिशाकी राशि लग्नमें त्याज्य है। लग्नसे १० वें शनि, ७ वें शुक्र, केन्द्रमें वक्री ग्रह (३८ श्लो०) वक्री ग्रहके दिन और विवाहमें जो दोष कहे गये हैं वे भी सर्वथा त्याज्य हैं ॥ ११२ ॥

वि०—वस्तुतः इस प्रकरणमें जितने दोष कहे गये हैं उनका ठीक २ विचार किया जाय तो प्रायः कई वर्षोंमें भी यात्राका विशुद्ध समय दुर्लभ ही होगा। इसलिये जहाँ तक हो सके शुद्ध नक्षत्र लग्न और चन्द्रमा देखकर दिक्शूल आदि प्रसिद्ध दोषोंको बराकर यात्राका मुहूर्त बताना चाहिये।

शुद्ध यात्राका सूक्ष्म विचार वराहमिहिराचार्यकी 'योगयात्रा' में भली भाँति किया गया है। तदनुसार इस ग्रन्थके आचार्यने भी इस यात्रा प्रकरणमें प्रायः प्रत्येक विषयोंको स्पष्ट किया है। उसमें पाठकोंको यथावसर अपने निर्वाहके अनुकूल विषयोंका विचार अवश्य करना चाहिये ॥ ११०-११२ ॥

इति यात्राप्रकरणम् ॥ ११ ॥

अथ वास्तुप्रकरणम् ॥ १२ ॥

जहाँ मनुष्योंका वास हो ऐसे गृह, मठ, मन्दिरादिके प्रारम्भिक कर्मको वास्तु कहते हैं। इस प्रकरणमें गृहसम्बन्धी सारी बातें कही जायेंगी इसलिये इसका नाम 'वास्तुप्रकरण' रखा गया है।

ग्राममें बसनेके शुभाशुभ फलका विचार—

यद्भं द्व्यङ्कसुतेशदिङ्मितमसौ ग्रामः शुभो नामभात्
स्वं वर्गं द्विगुणं विधाय परवर्गाढ्यं गजैः शेषितम्।
काकिण्यस्त्वनयोश्च तद्विवरतो यस्याधिकाः सोऽर्थ-
दोऽथ द्वारं द्विजवैश्यशूद्रनृपराशीनां हितं पूर्वतः ॥ १ ॥

अन्वयः—'वासकर्तुः' नामभात् यद्भं (यस्य ग्रामस्य राशिः) द्व्यङ्कसुतेशदिङ्मितं स्यात् असौ ग्रामः तस्य शुभः स्यात्। अथ स्वं वर्गं द्विगुणं विधाय तं परवर्गाढ्यं च 'कृत्वा' गजैः (अष्टभिः) शेषितं कुर्यात्। 'शेषमिताः' अनयोः (नाम-ग्रामतोः) काकिण्यः स्युः। तद्विवरतः (तयोरन्तरात्) यस्य 'काकिण्यः' अधिकाः भवेयुः सः अर्थदः। राशीनां द्वारं हितं भवति ॥ १ ॥

भाषार्थः—बसनेकी इच्छा करनेवाले पुरुषके पुकारकी नामराशिसे जिस ग्रामकी राशि २।९।५।११।१० वीं हो वह ग्राम उस पुरुषके लिये शुभ होता है।

दूसरा विचार यह है कि पुरुषके अपने नामके वर्गको द्विगुण करके उसमें ग्रामका वर्ग जोड़कर ८ से भाग देने से पुरुषकी काकिणी होती है और ग्रामके वर्गको द्विगुण करके उसमें पुरुषका वर्ग जोड़कर ८ से भाग देनेसे ग्रामकी काकिणी होती है। उन दोनों काकिणियोंके अन्तर करनेपर जिसकी काकिणी अधिक (धनावशेष) हो वह अर्थद (धनी) होता है। तात्पर्य यह है कि ग्रामकी काकिणीसे पुरुषकी काकिणी अधिक होना शुभ है।

अब राशिके अनुसार गृहका विचार कहते हैं। विप्रवर्ण राशिवालोंको पूर्वमें, वैश्यवर्ण राशिवालोंको दक्षिणमें, शूद्रवर्णराशिवालोंको पश्चिममें और क्षत्रिय-वर्णकी राशिवालोंको उत्तरमें गृहका द्वार करना चाहिये ॥ १ ॥

यहाँ उदाहरणसे स्पष्ट किया जाता है—

कमलापतिको परमानन्दपुरमें बसनेका विचार करना है। कमलापति मिथुन राशि और परमानन्दपुरकी राशि कन्या है। पुरुषकी राशि (मिथुन) से ग्रामकी राशि (कन्या) चौथी होनेके कारण उनके लिये वह ग्राम शुभ नहीं हुआ।

काकिणी विचार देखिये—

कमलापतिका वर्ग मार्जार, उसकी सङ्ख्या २ है और परमानन्दपुरका वर्ग मूषकः, उसकी सङ्ख्या ६ है। मूल श्लोकके अनुसार पुरुषके वर्ग २ को दूना किया तो ४ हुआ। उसमें ग्रामका वर्ग ६ जोड़कर १० में आठ का भाग देनेसे शेष २ पुरुषकी काकिणी हुई। एवं ग्रामके वर्ग ६ को दूनाकर १२ उसमें पुरुष-वर्ग २ जोड़कर १४ में ८ का भाग देनेसे शेष ६ ग्रामकी काकिणी हुई। यहाँ पुरुषकी काकिणीसे ग्रामकी काकिणी अधिक है, अतः ग्राम ही धनी होगा, पुरुष ऋणी बनेगा। इसलिये उसे उस ग्राममें बसना ठीक नहीं है। इसी भाँति हर एक स्थितिमें विचारना चाहिये ॥ १ ॥

विशेष—काकिणीके विचारमें 'यस्याधिकाः सोऽर्थदः' इस वाक्यके अर्थमें मतान्तर भी पाया जाता है। बहुत से टीकाकार इसका अर्थ 'जिसकी काकिणी अधिक हो वह ऋणी होता है' ऐसा लिये हैं *तदनुसार ग्रामकी काकिणी ही अधिक होनी चाहिये। इसकी पुष्टिमें—

---

* स्वयं ग्रन्थकर्त्ता भी अपनी टीकामें ऐसा ही लिखे हैं परन्तु वह युक्ति सिद्ध और मुनि-मतानुकूल नहीं है।

स्ववर्गं द्विगुणं कृत्वा परवर्गेण योजयेत् ।
अष्टभिस्तु हरेद् भागं योऽधिकः स ऋणी भवेत् ॥

इस वचनको प्रमाण मानते हैं ।

परन्तु आर्ष (श्रीकश्यप-वसिष्ठ-नारदजीके) मतसे यह दूसरा अर्थ सहयोग नहीं रखता । क्योंकि उनका मत है कि पहले ग्रामके वर्गाङ्कको लिखकर उसके बांये पुरुषके वर्गाङ्कको लिखकर जो अङ्क बने उसमें ८ का भाग देनेसे शेष उस पुरुषका धन होगा और उन्हीं दोनों वर्गाङ्कोंको उलटा लिखकर उसमें ८ से भाग देनेपर शेष उस पुरुषका ऋण होगा । इस तरह जहाँ धनकी सङ्ख्या अधिक हो वही उस पुरुषके लिये उत्तम होता है । श्रीकश्यप-वसिष्ठ-नारदका वचन—

साध्यवर्गं पुरःस्थाप्य पृष्ठतः साधकं न्यसेत् ।
विभजेदष्टभिः शेषं साधकस्य धनं स्मृतम् ॥
व्यत्ययेनागतं शेषं साधकस्य ऋणं स्मृतम् ।
धनाधिकं स्वल्पमृणं सर्वसम्पत्प्रदं स्मृतम् ॥

इसके अनुसार भी 'यस्याधिकाः सोऽर्थदः' इस वाक्यका अर्थ यही सिद्ध होता है कि 'जिसकी काकिणी अधिक है वह धन प्रदाता (धनी) होता है अर्थात् ग्रामसे पुरुषकी काकिणी अधिक होनी चाहिये ।

प्राचीन मुनिवचनसे भी वही सिद्धान्त निकलता है जैसा पूर्व अर्थसे । जैसे—कमलापति और परमानन्दपुरकी काकिणी विचारनेमें साध्य (ग्रामका) वर्ग ६ के बांयें भागमें साधक (पुरुष) का वर्ग २ के रखनेसे २६ सङ्ख्या हुई । इसमें ८ का भाग देनेसे शेष २ उस पुरुषका धन हुआ । एवं उन्हीं वर्गोंको उलटा रखनेसे ६२ सङ्ख्या हुई । इसमें ८ का भाग देनेपर शेष ६ उस पुरुषका ऋण हुआ । यहाँ धन (२) से ऋण (६) अधिक होनेके कारण उस पुरुषके लिये वह ग्राम शुभ नहीं हुआ । ऐसा ही पूर्व प्रकारसे भी सिद्ध हो चुका है इसलिये मेरा ही अर्थ मुनिवचनोंके अनुकूल है । पाठक लोग इसको भली भाँति विचारकर इसके अर्थान्तरकी उपेक्षा करें ।

गृहविचार पुकारनामकी राशिसे ही करना चाहिये, जन्मराशिसे नहीं । नाम राशिकी प्रधानताके विषय जाननेका प्राचीन वचन—

काकिण्यां वर्गशुद्धौ च वादे द्यूते स्वरोदये ।
मन्त्रे पुनर्भूवरणे नामराशेः प्रधानता ॥

नाम और ग्रामके वर्गका ज्ञान नाम तथा ग्रामके प्रथम अक्षरसे विवाह प्रकरणके ३७ वें श्लोकसे करना चाहिये । सुविधाके लिये वर्गोंके जाननेका कोष्ठ नीचे देखिये ॥ १ ॥

वर्गज्ञानकोष्ठक–

वर्गोंकी सङ्ख्यायें–	१	२	३	४	५	६	७	८
वर्गोंके नाम–	अवर्ग	कवर्ग	चवर्ग	टवर्ग	तवर्ग	पवर्ग	यवर्ग	शवर्ग
वर्गोंके अधिप–	गरुड़	मार्जार	सिंह	श्वान	सर्प	मूषक	मृग	मेष
वर्गोंके वैरी–	सर्प	मूषक	मृग	मेष	गरुड़	मार्जार	सिंह	श्वान
वर्गोंकी दिशायें–	पूर्व	आग्नेय	दक्षिण	नैऋति	पश्चिम	वायव्य	उत्तर	ईशान

उपपत्तिः—

साध्यवर्गं पुरःस्थाप्य साधकं पृष्ठतो न्यसेत् ।
अष्टभिस्तु हरेद्भागं साधकस्य धनं स्मृतम् ॥

इस आर्षवचनसे पुरुषका धन बनानेमें यह देखा जाता है कि दश गुणित पुरुषके वर्गमें ग्रामका वर्ग जोड़कर ८ से भाग दिया गया है। इसलिये पुरुष की काकिणी—

$\frac{१० \times पु\text{-}व + ग्रा\text{-}व}{८}$ । यहाँ लब्धिका प्रयोजन नहीं होनेके कारण भाज्य प्रथम खण्डमें १० के स्थानमें २ रखा जाता है। तब पुरुषकी काकिणी $\frac{२ \times पु\text{-}व + ग्रा\text{-}व}{८}$ । इसी तरह ग्रामकी काकिणी (पुरुषका ऋण) = $\frac{१० \times ग्रा\text{-}व + पु\text{-}व}{८}$ । यहाँ भी १० के स्थानमें २ रखा तो= $\frac{२ \times ग्रा\text{-}व + पु\text{-}व}{८}$ । इसलिये काकिणी साधन उपपन्न हुआ।

यहाँ काकिणी धनका पर्याय समझिये। जिसके पास धन रहता है वही धनी और सुखी होता है। इसलिये अधिक काकिणीवाला धनी समझना चाहिये और अमुक ग्राममें अमुक व्यक्तिका कैसा धन या ऋण होगा इसीलिये इसका विचार समझना चाहिये। अतः ग्रामकी काकिणीसे पुरुषकी काकिणी अधिक उचित है ॥ १ ॥

पुरुषकी राशिवश ग्रामके निषिद्ध स्थान—

गोसिंहनक्रमिथुनं निवसेन्न मध्ये
ग्रामस्य पूर्वककुभोऽलिझषाङ्गनाश्च ।
कर्को धनुस्तुलभमेषघटाश्च तद्वद्-

वर्गाः स्वपञ्चमपरा बलिनः स्युरैन्द्र्याः ॥ २ ॥

अन्वयः—गोसिंहनक्रमिथुनं ग्रामस्य मध्ये न निवसेत्। तथा च अलिझषाङ्गनाः कर्कः धनुस्तुलभमेषघटाः 'राशयः' पूर्वककुभः क्रमात् न निवसेयुः'। तद्वत् स्वपञ्चमपराः अष्टौ वर्गाः (विवाहप्रकरणोक्ताः) ऐन्द्र्याः (पूर्वतः क्रमात्) बलिनः स्युः ॥२॥

भाषार्थः—वृष, सिंह, मकर और मिथुन राशिवाला मनुष्य ग्रामके मध्य भागमें वास नहीं करें। एवं वृश्चिक राशि ग्रामके पूर्वमें, मीन राशि अग्निकोणमें, कन्या राशि दक्षिणमें, कर्क राशि नैऋतिमें, धनु राशि पश्चिममें, तुला राशि वायव्य कोणमें, मेष राशि उत्तरमें और कुम्भ राशि ईशान कोणमें वास नहीं करें। इसी तरह अवर्ग पूर्वमें, कवर्ग अग्निकोणमें, चवर्ग दक्षिणमें, टवर्ग नैऋतिमें, तवर्ग पश्चिममें, पवर्ग वाक्यमें, यवर्ग उत्तरमें और शवर्ग ईशान दिशामें बली होते हैं और इन वर्गोंके अपनेसे ५ वें सबके शत्रु होते हैं।

तात्पर्य यह है कि कोई भी मनुष्य अपने वर्गसे ५ वें वर्गवाले ग्राममें वास नहीं करे और शुभ ग्राममें भी अपने शत्रुवर्गकी दिशामें वास तथा गृहद्वार नहीं करे। वर्गोंका विशेष विवरण पहले श्लोकके कोष्ठक देखनेसे स्पष्ट हो जायगा ॥२॥

इस तरह अभीष्ट ग्राममें बसनेवाले का शुभाशुभ विचारकरके गृह निर्माणकी उपयोगितायें विचारनी चाहिये। उसमें—

वास्तुभूमिके दैर्घ्य और विस्तारका विचार—

एकोनितेष्टर्क्षहता द्वितिथ्यो रूपोनितेष्टायहतेन्दुनागैः।
युक्ता घनैश्चापि युता विभक्ता भूपाश्विभिः शेषमितो हि पिण्डः ॥३॥
स्वेष्टायनक्षत्रभवोऽथ दैर्घ्यहृत्स्याद्विस्तृतिर्विस्तृतिहृच्च दीर्घता।
आया ध्वजो धूमहरिश्वगोखरेभध्वाङ्क्षकाः पिण्ड इहाष्टशेषिते ॥४॥

अन्वयः—द्वितिथ्यः एकोनितेष्टर्क्षहताः, रूपोनितेष्टायहतेन्दुनागैः युताः, घनैः अपि युताः, भूपाश्विभिः विभक्ताः तदा शेषमितः हि स्वेष्टायनक्षत्रभवः 'वास्तुभूमेः' पिण्डः (क्षेत्रफलम्) स्यात्। अथ स पिण्डः दैर्घ्यहृत् फलं विस्तृतिः स्यात्, विस्तृतिहृत् तदा फलं दीर्घता स्यात्। तथा च इह पिण्डे अष्टशेषिते क्रमात् ध्वजः, धूम-हरि-श्व-गो-खरेभ-ध्वाङ्क्षका 'एते, अष्टौ' आयाः स्युः ॥ ३-४ ॥

भाषार्थः—वास करनेवाले पुरुषको विवाह प्रकरणोक्त रीतिसे जिस नक्षत्रके साथ गणना अच्छी बनती हो उस नक्षत्रको गृह निर्माणमें इष्टर्क्ष कल्पना करे उस इष्टर्क्षकी सङ्ख्यामें १ घटाकर शेषसे १५२ को गुणा करे और इष्ट आयकी सङ्-

ख्यामें १ घटाकर शेषसे ८१ को गुणाकर गुणनफलको पूर्वके फलमें जोड़े फिर उसमें १७ जोड़कर २१६ से भाग दे। भाग देनेमें जो शेष हो वही इष्ट आय और इष्ट नक्षत्रसे उपलब्ध उस वास्तु भूमिका पिण्ड (क्षेत्र फल) होता है। उस पिण्डको अभीष्ट लम्बाईसे भाग देनेपर चौड़ाई और चौड़ाईसे भाग देनेपर लम्बाई होती है। तथा उस पिण्डमें ८ से भाग देनेपर एक आदि शेषमें क्रमसे १ ध्वज, २ धूम, ३ सिंह, ४ श्वान, ५ वृष, ६ खर ७ गज और ८ ध्वाङ्क्ष ये आय होते हैं ॥ ३-४ ॥

उदाहरण—

कमलापति (मृगशिरा नक्षत्र) का आर्द्रा नक्षत्रके साथ विवाहकी गणनाके अनुसार ३४ गुण मिलते हैं इसलिये इष्ट नक्षत्र आर्द्रा ६ और इष्ट विषम आय सिंह ३ कल्पना करके पिण्ड बनाते हैं।

इष्टर्क्ष ६ में १ घटानेसे ५ बचा इससे १५२ को गुणा किया तो ७६० हुआ। इष्ट आय ३ में एक घटाकर शेष २ से ८१ को गुणाकर १६२ को ७६० में जोड़ दिया तो ९२२ हुआ, फिर इसमें १७ जोड़नेसे ९३९ हुआ; इसमें २१६ से भाग देनेपर शेष ७५ यही इष्ट नक्षत्र और इष्ट आयसे उत्पन्न वास्तुभूमिका पिण्ड (क्षेत्रफल) हुआ। इसी तरह दूसरे इष्टर्क्ष और इष्ट आयोंसे अनेक प्रकार के पिण्ड बनेंगे। अब इस पिण्ड ७५ में यदि दैर्घ्य १० रखना चाहे तो १० से भाग देनेपर विस्तार ७½ होगा। अथवा यदि दैर्घ्य १५ रखें तो ७५ में १५ से भाग देनेपर विस्तार ५ होगा। यों हीं विस्तारकी कल्पना करके उससे भाग देकर दैर्घ्य निकलता है।

यदि उक्त रीतिसे आये हुए पिण्डमें कर्त्ताके अभीष्ट गृहकी सिद्धि नहीं हो अर्थात् वह उससे बड़ा घर बनाना चाहता हो तो लब्ध पिण्डमें एक आदि गुणित २१६ को जोड़कर पिण्ड बनावे। जैसे उक्त उदाहरणमें ७५ पिण्डमें २१६ जोड़नेसे २९१, अथवा ४३२ जोड़नेसे ५०७, या ६४८ जोड़नेसे ७२३ इत्यादि पिण्ड बनेंगे। इन पिण्डोंपरसे कल्पित दैर्घ्य और विस्तार भी बनाने चाहिये ॥ ३-४ ॥

विशेषः—यद्यपि 'राशिकूटादिकं सर्वं दम्पत्योरिव चिन्तयेत्, इस श्रीवसिष्ठजीके वचनमें कर्त्ताके नाम नक्षत्रको जिस २ नक्षत्रसे विवाहकी तरह गणना ठीक बैठती हो वे ही नक्षत्र गृह पिण्ड बनानेमें इष्टर्क्ष हो सकते हैं, तथापि ज्योतिषसागरके—

"आर्द्रादितिगुरुश्चैव सार्पश्चैव पिता भगम् ।
शतभं पूर्वयुग्मे च नवेष्टगृहतारकाः" ॥

इस वचनसे आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वाफल्गुनी, शतभिषा, पूर्वभाद्र और उत्तरभाद्र ये ९ नक्षत्र गृहपिण्ड बनानेमें शुभ होते हैं। अर्थात् कर्ताके नक्षत्रके साथ इन ९ नक्षत्रोंमें किसीसे गणना बैठती हो तो उत्तम है। अन्यथा जिस किसीसे बैठे वही इष्टर्क्ष माने। इसी तरह इष्ट आयमें भी विषम (१, ३, ५, ७) आयकी ही कल्पना करनी चाहिये। क्योंकि सम आयके फल अच्छे नहीं हैं। इसमें श्रीगर्गमुनिका वचन—

१ कीर्तिः, २ शोको, ३ जयो, ४ वैरं, ५ धनं, ६ निर्धनता, ७ सुखम् ।

८ रोगश्चेति, गृहारम्भे ध्वजादीनां फलं क्रमात् ॥ स्पष्टार्थः ॥ ३-४ ॥

उपपत्तिः—वसनेवालेकी वास्तुभूमि कितने प्रमाणकी होनी चाहिये इसके वास्ते पिण्डका साधन किया जाता है । भूमिके क्षेत्रफलको पिण्ड कहते हैं । वह क्षेत्रफल (पिण्ड) भूमिके दैर्घ्य और विस्तारका गुणनफलके समान होता है । अब यहाँ यह विचार कर कि इस पुरुषके लिये कौन सा पिण्ड अनुकूल होगा, इसकेलिये उस पुरुषके नामसे जिस नक्षत्रकी गणना ठीक मिलती है, उस नक्षत्र और इष्ट आयके आधारपर पिण्ड बनाते हैं । परन्तु यहाँ आय, नक्षत्र और पिण्ड इन तीनोंका अन्योन्याश्रय सम्बन्ध देखकर विना किसी एककी कल्पना किये साधन कठिन हो जाता है, इसलिये पहले पिण्डका प्रमाण (बीजगणितकी रीतिसे) कल्पना किया पिण्ड–पि० । उसके बाद—

"अष्टाहते क्षेत्रफले विभक्ते भसङ्ख्यया (२७) शेषमवेहि धिष्ण्यम्" ।

श्रीपतिके इस वचनसे पिण्डके ८ से गुणने और २७ से भाग देनेपर शेष नक्षत्रका मान होता है (अर्थात् १ पिण्डमें ८ नक्षत्र होते हैं तो इष्ट पिण्डमें क्या ? इस अनुपातसे लब्ध नक्षत्रोंमें २७ से भाग देकर इष्ट नक्षत्र आता है) ।

$\therefore \frac{\text{पि} \times ८}{२७}$ । यहाँ लब्धिका मान = ल । और शेष इष्ट नक्षत्र=न ।

$\because$ ह $\times$ ल + शे = भाज्य ।

$\therefore$ २७ $\times$ ल + न = पि $\times$ ८ । तथा—

$$\text{पि} = \frac{२७ \times \text{ल} + \text{न}}{८} \text{ ।} \cdots\cdots\cdots (१)$$

एवं पिण्डमें ८ से भाग देनेपर शेष तुल्य आय होते हैं । इसलिये पिण्डमें ८ से भाग देनेपर लब्धि = लं, और शेष इष्ट आय = आ ।

यहाँ भी $\because$ ह $\times$ ल + शे = भाज्य ।

$$\text{पि} = ८\ \text{ल}' + \text{आ} \text{ ।} \cdots\cdots\cdots (२)$$

अब पिण्डके दो मान आ गये । इसलिये १, २ इन दोनोंके समीकरण करनेसे—

$$\frac{२७\text{ल} + \text{न}}{८} = \text{ल}' + \text{आ} \text{ ।}$$

समच्छेद और छेदगम करनेसे—

२७ ल + न = ६४ ल' + ८ आ । समशोधन करनेसे—

२७ ल = ६४ ल' + ८ आ − न ।

$$\therefore \text{ल} = \frac{६४\text{ल}' + ८\text{आ} - \text{न}}{२७} \text{ ।}$$

अब यहाँ 'अन्त्योन्मितौ कुट्टविधेर्गुणाप्ती' के अनुसार कुट्टककी रीतिसे लब्धि ल का मान और गुण ल' का मान होगा । उसके लिये ६४ल' = भाज्य, ८ आ−न = क्षेप, और २७ = हर समझे जायेंगे । अर्थात् कुट्टककेलिये न्यास—

$$\frac{६४\text{ल} + ८\text{आ} - \text{न}}{२७} \text{ ।}$$

यहाँ पहले कुट्टककी—

'क्षेपं विशुद्धिं परिकल्प्य रूपं पृथक्तयोर्ये गुणकारलब्धी ।
अभीप्सितक्षेपविशुद्धिनिघ्न्यौ स्वहारतष्टे भवतस्तयोस्ते' ॥

इस रीतिसे १ धनक्षेपमें लब्धि १९ गुण ८ और १ ऋणक्षेपमें लब्धि ४५ गुण १९ आये। इन १९।८ लब्धिगुणोंको इष्ट (८ आ) क्षेपसे गुणाकर और अपने ६४,२७ तक्षणोंसे शुद्ध करने पर क्षेपके प्रथमखण्ड सम्बन्धी लब्धिगुण २४ आ, १० आ हुए। तथा ऋण क्षेप वाले लब्धि गुणों ४५, १९ को '—न' से गुणकर अपने २ तक्षणोंसे शुद्ध करने पर दूसरे खण्ड सम्बन्धी लब्धि—गुण ४५ न, १९ न हुए। अतः वास्तव लब्धि = २४ आ + ४५ न और गुणक = १० आ + १९ न हुए।

∵ लब्धि भाजकका और गुणक भाज्यका मान होता है।
∴ ल = २४ आ + ४५ न। }
ल' = १० आ + १९ न। } इन दोनोंसे (१, २) मानोंमें
उत्थापन देनेसे 'पि' का मान = ८१ आ + १५२ न।

इसका स्वरूपान्तर—
= ८१ आ − ८१ + ८१ + १५२ न − १५२ + १५२
= ८१ आ − ८१ + १५२ न − १५२ + २३३
= ८१ (आ − २) + १५२ (न − १) + २३३।

यहाँ तीसरी खण्ड २७ नक्षत्रसम्बन्धी (२७×८=२१६) पिण्डसे अधिक होनेके कारण उसे २१६ से शुद्ध करने पर पिं=८१ (आ − १) + १५२ (न − १) + १७। यह यदि परमाधिक पिण्डसे अधिक हो तो उसमें परमपिण्ड (२१६) से भाग देनेपर इष्ट आय और इष्ट नक्षत्र सम्बन्धी पिण्ड होगा।

∵ पि = दै × वि।
∴ पि ÷ दै = वि। वा, पिं ÷ वि = दैर्घ्य। उपपन्न हुआ ॥ ३=४ ॥

आयके अनुसार गृहद्वार विचार—

ध्वजादिकाः, सर्वदिशि ध्वजे मुखं कार्यं हरौ पूर्वयमोत्तरे तथा।
प्राच्यां वृषे प्राग्यमयोर्गजेऽथवा पश्चादुदक्पूर्वयमे द्विजादितः ॥५॥

अन्वयः—'ध्वजादिकाः अष्टौ आयाः स्युरिति पूर्वेणान्वयः'। अथ ध्वजे आये 'सति, गृहे' सर्वदिशि मुखं कार्यम्। हरौ 'आये' पूर्वयमोत्तरे, तथा वृषे प्राच्याम्, गजे प्राग्यमयोः मुखं कार्यम्। अथवा द्विजादितः (वर्णानां क्रमात्) पश्चादुदक्पूर्वयमे द्वारं 'शुभ भवति' ॥ ५ ॥

भाषार्थः—'चौथे श्लोकको रीतिसे आय साधन करनेपर' यदि ध्वज आय आवे तो गृहमें सब दिशाओंके द्वार बनाने चाहिये। सिंह आयमें पूर्व, दक्षिण और उत्तर दिशाओंके द्वार बनावे। वृष आय आने पर पूर्वका द्वार तथा गज आय हो तो पूर्व और दक्षिण का द्वार बनावे। अथवा ब्राह्मणको पश्चिमका, क्षत्रियको उत्तरका, वैश्यको पूर्वका और शूद्रको दक्षिण दिशामें द्वार बनाना चाहिये ॥५॥

गृहारम्भमें त्याज्य विषय—

गृहेशतत्स्त्रीसुतवित्तनाशोऽर्केन्द्वीज्यशुक्रे विबलेऽस्तनीचे ।
कर्तुः स्थितिर्नो विधुवास्तुनोर्भे पुरःस्थिते पृष्ठगते खनिः स्यात् ॥६॥

अन्वयः—अर्केन्द्वीज्यशुक्रे विबले अस्तनीचे च 'सति क्रमात्' गृहेश-तत्स्त्री-सुत-वित्तनाशः स्यात्। अथ, विधु-वास्तुनोः भे पुरः स्थिते 'सति' कर्तुः स्थितिः नो, तथा पृष्ठगते 'सति' खनिः स्यात् ॥ ६ ॥

भाषार्थः—यदि घरके मालिककी जन्मराशिसे 'पूर्वोक्त गोचरीय विचारसे' सूर्य निर्बल (अशुभ स्थानगत) अस्त या नीच राशिमें हो तो ऐसे समयमें गृहारम्भ करनेसे उस गृहीपतिका नाश हो। चन्द्रमा निर्बल अस्त या नीचमें हो तो उसकी स्त्रीका नाश हो बृहस्पति वैसा हो तो उसके पुत्रका नाश हो और यदि शुक्र उस तरह हो तो उसके धनका नाश हो।

यदि चन्द्रमाका (दैनिक) नक्षत्र और वास्तुका (दैर्ध्य-विस्तारसे उत्पन्न)[1] नक्षत्र सम्मुख हों तो गृहारम्भ करनेसे उस गृहमें उस घरवालेकी स्थिति (वास) नहीं होती है। यदि चन्द्र नक्षत्र और वास्तु नक्षत्र पीछे पड़ें तो गृहारम्भ करनेसे उस घरमें चोरी होती है। तात्पर्य यह कि गृहारम्भमें चान्द्र नक्षत्र और वास्तु नक्षत्र सम्मुख और पृष्ठ नहीं होने चाहिये। दक्षिण और वाम शुभ होते हैं ॥ ६ ॥

वि०—श्लोकके पूर्वार्द्धमें जो ग्रहोंके अस्त दोषका त्याग कहा गया है वह अस्त दैनिक नहीं, प्रत्युत सूर्यसान्निध्यवश जो अस्त होता है वही समझना चाहिये। क्योंकि वास्तुमें दैनिक अस्तका त्याग नहीं है। जैसे—

"अस्तदोषोऽत्र न ग्राह्यः प्रातिदैवसिको बुधैः।
नास्तदोषः सदा चान्द्रे न मैत्रेऽब्जस्य (२) नीचता।" ऐसा लिखा है।

चन्द्र नक्षत्र और वास्तु नक्षत्रके सम्मुख और पृष्ठका विचार यों करना चाहिये कि 'यात्रा प्रकरणके ३६ वें श्लोकके अनुसार जो दिक् नक्षत्र बताये गये हैं तदनुसार'—यदि चान्द्र नक्षत्र या गृहनक्षत्र कृत्तिका या अनुराधा आदि ७ नक्षत्रोंमें हो तो पूर्व और पश्चिम द्वारका घर नहीं बनाना चाहिये। एवं मघा या धनिष्ठा आदि ७, ७ नक्षत्रोंमें दक्षिण और उत्तर द्वारका घर नहीं बनाना चाहिये ॥ ६ ॥

गृहमें व्यय और अंशका ज्ञान—

भं नागतष्टं व्यय ईरितोऽसौ ध्रुवादिनामाक्षरयुक् सपिण्डः ।
तष्टो गुणैरिन्द्रकृतान्तभूपा ह्यंशा भवेयुर्न शुभोऽन्तकोऽत्र ॥७॥

१—आगे ११-१२ श्लोकमें देखिये।

२—अनुराधा नक्षत्रमें चन्द्रमाका नीच दोष नहीं लगता।

अन्वयः—भं (कल्पितं गृहनक्षत्रम्) नागतष्टं 'फलं' व्ययः ईरितः । असौ 'व्ययः' ध्रुवादिनामाक्षरयुक् सपिण्डः गुणैः (त्रिभिः) तष्टः 'तदा शेषक्रमाद्' इन्द्र-कृतान्त-भूपाः अंशाः भवेयुः । अत्र (गृहारम्भे) अन्तकः 'अंशः' न शुभः ॥ ७ ॥

भाषार्थः—गृहके कल्पित नक्षत्रकी सङ्ख्यामें ८ से भाग देने पर शेष व्यय होता है । उस व्ययमें गृहके ध्रुव आदि नामाक्षर (जो आगे कहा जायगा) को जोड़कर फिर गृहका पिण्ड जोड़कर ३ से भाग देनेसे यदि १ शेष हो तो इन्द्र, २ शेष हो तो कृतान्त (यम) और ३ शेष हो तो भुप नामका अंश होता है । यहाँ गृहारम्भमें अन्तक (यम) अंश अशुभ होता है और इन्द्र तथा भुप अंश शुभ होते हैं ॥ ७ ॥

उदाहरण—

जैसे—इष्टर्क्ष आर्द्राकी सङ्ख्या ६ में ८ का भाग देनेसे शेष ६ बचा, अतः ६ व्यय हुआ । अब अंशका साधन देखिये । कर्त्ताको पूर्व-दक्षिण और पश्चिम मुखवाला गृह बनाना है, तो आगेके ८ और ९ वें श्लोकके अनुसार गृहका ध्रुवादिक ८ वाँ नाम ३ अक्षरवाला 'सुमुख' हुआ । इसलिए पूर्व साधित व्यय ६ में सुमुखके ३ अक्षर जोड़े गये तो ९ हुए । उसमें पूर्वका पिण्ड ७५ जोड़नेसे ८४ हुए । फिर इसमें ३का भाग देनेसे शेषमें भूप अंश हुआ जो शुभ है ॥७॥

गृह ध्रुवाङ्कानयनाम्—

दिक्षु पूर्वादितः शालाध्रुवा भूद्वौ कृता गजाः ।
शालाध्रुवाङ्कसंयोगः सैको वेश्म ध्रुवादिकम् ॥ ८ ॥

अन्वयः—पूर्वादितः दिक्षु 'क्रमेण' भूः, द्वौ, कृताः, गजाः 'एते' शालाध्रुवाः स्युः । अथ, शालाध्रुवाङ्कसंयोगः सैकः 'तदा तत्तुल्यं' ध्रुवादिकं वेश्म स्यात् ॥ ८ ॥

भाषार्थः—घरमें पूर्वके द्वार १, दक्षिण में २, पश्चिममें ४ और उत्तरमें ८ शाला ध्रुवा (गृहोंके ध्रुवाङ्क) हैं । जिस तरफका द्वार बनाना हो उसके यथा सम्भव ध्रुवाङ्कोंका योग करके उसमें १ मिलाकर जो संख्या हो वही (आगे कहे जानेवाले) ध्रुव आदि नामका वह घर होता है ।

जैसे किसीको अपने घरमें पूर्व और उत्तरके द्वार करने हैं तो श्लोकके अनुसार १ और ८ शाला ध्रुवाओंके योग ९ में १ जोड़ने से १० संख्या हुई, अतः आगे के (९ वें १० वें) श्लोकसे उस गृहका नाम 'उग्र' होगा ॥ ८ ॥

ध्रुव आदि गृहोंकी नामाक्षर संख्या—

तिथ्यर्काष्टाष्टिगोरुद्रशक्रे नामाक्षरं त्रयम् ।
भ्रूभ्यब्धीष्वङ्गदिग्वह्निविश्वेषु द्वौ नगेऽब्धयः ॥ ९ ॥

अन्वयः—तिथ्यर्काष्टाष्टिगोरुद्रशक्रे 'शालाध्रुवाङ्कसंयोगे सैके' सति गृहस्य, नामाक्षरं त्रयम्, भूव्यब्धीष्वङ्गदिग्वह्निविश्वेषु द्वौ, तदा नगे अब्धयः नामाक्षरं भवति ॥९॥

भाषार्थः—'शालाध्रुवाङ्कसंयोगः सैकः' इस रीतिसे घरकी सङ्ख्या यदि १५, १२, ८, १६, ९, ११, १४ इनमेंसे कोई हो तो घरका नाम ३ अक्षर वाला होता है। यदि १, २, ४, ५, ६, १०, ३, १३ इनमें कोई संख्या हो तो घरका नाम २ अक्षरका होता है और ७ में ४ अक्षरका घरका नाम होता है। किस संख्यामें कौन नाम होगा सो आगे १० वें श्लोकमें देखिये ॥ ९ ॥

सोलह ग्रहोंके नाम—

ध्रुव-धान्ये जय-नन्दौ खर-कान्त-मनोरम-सुमुख-दुर्मुखोग्रं च ।
रिपुदं वित्तद-नाशे चाक्रन्द-विपुल-विजयाख्यं स्यात् ॥ १० ॥

अन्वयः—ध्रुव-धान्ये, जय-नन्दौ, खर-कान्त-मनोरम-सुमुख-दुर्मुखोग्रं च (पुनः) रिपुदं, वित्तद्-नाशे, आक्रन्द-विपुल-विजयाख्यं क्रमात् 'षोडशगृह' स्यात् ॥ १० ॥

भाषार्थः—१. ध्रुव, २. धान्य, ३. जय, ४. नन्द, ५. खर, ६. कान्त, ७. मनोरम, ८. सुमुख, ९. दुर्मुख, १०. उग्र, ११. रिपुद, १२. वित्तद, १३. नाश, १४. आक्रन्द, १५. विपुल, १६. विजय-से क्रमसे सोलह गृहोंके नाम हैं ॥ १० ॥

वि०—जिस गृहका जैसा नाम है उसका फल भी वैसा ही समझिये। इससे यह अर्थ निकलता है कि खर, दुर्मुख, उग्र, रिपुद, नाश, आक्रन्द नामके गृह अच्छे नहीं होते। घर बनानेके पहले इसका विचार कर लेना चाहिये।

९ वें श्लोकमें जो गृहोंके नामाक्षर कहे गये हैं वे इस श्लोकसे स्पष्ट हो जाते हैं। जैसे—१, २, ३, ४, ५, ६, १०, १३ गृहोंके नामाक्षर २ हैं। ८, ९, ११, १२, १४, १५, १६ के नामाक्षर ३ हैं औ ७ वें के ४ हैं ॥ १० ॥

मतान्तरसे गृहके आय वार आदिका साधन—

पिण्डे नवाङ्काङ्गगजाग्निनागनागाब्धिनागैर्गुणिते क्रमेण ।
विभाजिते नागनगाङ्क-सूर्य-नागर्क्षतिथ्यृक्षखभानुभिश्च ॥ ११ ॥
आयो वारोंऽशको द्रव्यमृणमृक्षं तिथिर्युतिः ।
आयुश्चाथऽगृहेशर्क्षगृहभैक्यं मृतिप्रदम् ॥ १२ ॥

अन्वयः—पिण्डे 'पृथक पृथक्' नवाङ्काङ्गगजाग्निनागनागाब्धिनागैः गुणिते, तथा 'क्रमेण' नागनगाङ्कसूर्यनागर्क्षतिथ्यृक्षखभानुभिः विभक्ते च 'शेषं, क्रमात्' अयाः,

वारः, अंशकः, द्रव्यम्, ऋणम्, ऋक्षम्, तिथिः, युतिः, आयुश्च 'ज्ञेयम्'। अथ, गृहेशर्क्षगृहर्क्षैक्यं मृतिपदं भवति ॥ ११–१२ ॥

भाषार्थ—गृहके पिण्ड (क्षेत्रफल) को ९ से गुणकर ८ से भाग देने पर शेष आय होती है। एवं ९ से गुणकर ७ से भाग देने पर शेष वार, ६ से गुणकर ९ से भाग देने पर अंश, ८ से गुणकर १२ से भाग देने पर धन, ३ से गुणकर ८ से भाग देने पर ऋण, ८ से गुणकर २७ से भाग देने पर नक्षत्र, ८ से गुणकर १५ से भाग देने पर तिथि, ४ से गुणकर २७ से भाग देने पर योग और ८ से गुणकर १२० से भाग देने पर शेष आयु होती है।

उक्त प्रकारसे जो गृहका नक्षत्र आवे वही नक्षत्र यदि उस गृहपतिका भी हो तो उस गृहपतिका मरण होता है ॥ ११–१२ ॥

उदाहरण—

जैसे पिण्ड ७५ को ९ से गुणकर ८ से भाग देनेपर शेष ३ हुआ। अतः सिंह आय जानिये।
एवं पिण्ड ७५ को ९ से गुणकर ७ से भाग देनेपर शेष ३ बचा। अतः वार मङ्गल हुआ।
पिण्ड ७५ को ६ से गुणकर ९ से भाग देनेपर शेष ०, अतः ९ अंश हुआ।
पिण्ड ७५ को ८ से गुणकर १२ से भाग देनेपर शेष ०, अतः द्रव्य १२ हुआ।
„ ७५ को ३ से गुणकर ८ से भाग देनेपर शेष १, अतः ऋण १ हुआ।
„ ७५ को ८ से गुणकर २७ से भाग देनेपर शेष ६, अतः आर्द्रा नक्षत्र हुआ।
„ ७५ को ८ से गुणकर १५ से भाग देनेपर शेष ०, अतः पूर्णमासी तिथि हुई।
„ ७५ को ४ „ „ „ २७ „ „ „ „ ३, „ आयुष्मान योग हुआ।
„ ७५ को ८ „ „ १२० „ „ „ „ ०, „ आयु १२० हुई ॥११–१२॥

उपपत्ति—आय आदिके साधनमें जो गुणाङ्क हैं वे १ पिण्डके आय आदि हैं, उन्हें, इष्ट पिण्डसे गुणने पर इष्ट पिण्डमें आय आदि होते हैं। उनमें आय ८ हैं, अतः ८ से अधिक आयको ८ से भाग देनेपर अभीष्ट आय होती है। वार ७ हैं, अतः वारसङ्ख्यामें ७ से भाग देनेपर इष्ट वार होता है। एवं नवांश ९ होनेके कारण अंशमें ९ से, धनमें १२ से, ऋणमें ८ से, नक्षत्रमें २७ से, तिथियोंमें १५ से, योगोंमें २७ से और आयुमें १२० से भाग देनेपर इष्ट अंशादि होते हैं। जिसकी जो परम सङ्ख्या है उससे अधिकावस्थामें भाग देनेपर इष्ट सङ्ख्याका लाभ उचित ही है। अतः यह प्रकार उपपन्न हुआ ॥ ११–१२ ॥

मन्तव्य—इस श्लोकमें जो आय आदिका विचार किया गया है उससे यह समझना चाहिये कि गृहमें विषम आय ही शुभ हैं। शुभग्रहोंके वार और उनकी राशि तथा नवांश ही शुभ हैं। नक्षत्र गृहकर्ताके मेलापक वाले ही शुभ होते हैं और आयु दीर्घायु लेनी चाहिये। अन्यथा अशुभप्रद गृहका परित्याग करना चाहिये ॥ ११–१२ ॥

दैर्घ्य-विस्तार परसे आय आदि जाननेका कोष्ठक—

दैर्घ्य	विस्तार	आय	वार	अंश	द्रव्य	ऋण	नक्षत्र	तिथि	योग	आयुः	दैर्घ्य	विस्तार	आय	वार	अंश	द्रव्य	ऋण	नक्षत्र	तिथि	योग	आयुः
२१	१९	७	७	९	१२	५	६	१२	३	७२	३९	३९	१	४	९	१२	३	१८	३	९	४८
२१	२१	१	७	९	१२	३	१८	३	९	४८	४१	३३	१	४	९	१२	३	२४	९	१२	२४
२३	१९	५	६	३	४	७	१३	१	२०	१६	४१	३५	३	७	६	८	१	५	५	१६	८०
२३	२१	३	७	९	१२	१	३	९	१५	२४	४१	३	५	३	३	४	७	१३	१	२०	१६
२३	२३	१	१	६	८	३	२०	२	१०	३२	४१	३९	७	६	९	१२	५	२१	१२	२४	७२
२५	२१	५	७	९	१२	७	१५	१५	२१	१२०	४१	४१	१	१	६	८	३	२	८	१	८
२५	२३	७	२	३	४	५	१०	१०	५	४०	४३	३५	१	७	३	४	३	२५	१०	२६	४०
२५	२५	१	४	६	८	३	५	५	१६	८०	४३	३७	७	४	६	८	५	११	८	१९	८
२७	२३	५	३	९	१२	७	२७	३	२७	४८	४३	३९	५	१	९	१२	७	२४	६	१२	९६
२७	२५	३	६	९	१२	१	२७	१५	२७	१२०	४३	४१	३	५	३	४	१	१०	४	५	६४
२७	२७	१	२	९	१२	३	२७	१२	२७	७२	४३	४३	१	२	६	८	३	२३	२	२५	३२
२९	२५	५	१	३	४	७	२२	१०	११	४०	४५	३७	१	५	९	१२	३	९	१५	१८	१२०
२९	२७	७	५	९	१२	५	२७	९	२७	२४	४५	३९	३	३	९	१२	१	२७	१५	२७	१२०
२९	२९	१	२	६	८	३	५	८	१६	८	४५	४१	५	१	९	१२	७	१८	१५	९	१२०
३१	२५	७	३	६	८	५	१७	५	२२	८०	४५	४३	७	६	९	१२	५	९	१५	१८	१२०
३१	२७	५	१	९	१२	७	२७	६	२७	९६	४५	४५	१	४	९	१२	३	२७	१५	२७	१२०
३१	२९	३	६	३	४	१०	१	७	५	११२	४७	३९	१	५	९	१२	३	३	९	१५	२४
३१	३१	१	४	६	८	३	२०	८	१०	८	४७	४१	७	४	६	८	५	२६	११	१३	५६
३३	२७	३	४	९	१२	१	२७	३	२७	४८	४७	४३	५	३	३	४	७	२२	१३	११	८८
३३	२९	५	३	९	१२	७	१५	६	२१	९६	४७	४५	३	२	९	१२	१	१८	१५	९	१२०
३३	३१	७	२	९	१२	५	३	९	१५	२४	४७	४७	१	१	६	८	३	१४	२	७	३२
३३	३३	१	१	९	१२	३	१८	१२	९	७२	४९	४१	७	७	३	४	३	७	७	१७	११२
३५	२९	७	७	६	८	५	२०	५	१०	८०	४९	४३	३	७	६	८	१	८	११	४	५६
३५	३१	५	७	३	४	७	१३	१०	२०	४०	४९	४५	५	७	९	१२	७	९	१५	१८	१२०
३५	३३	३	७	९	१२	१	६	१५	३	१२०	४९	४७	७	७	३	४	५	१०	४	५	६४
३५	३५	१	७	६	८	३	२६	५	१३	८०	४९	४९	१	७	६	८	३	११	८	१९	८
३७	३१	३	५	६	८	१	२३	१०	२५	५६	५१	४१	३	३	९	१२	१	१५	३	२१	४८
३७	३३	५	६	९	१२	७	२१	३	२४	४८	५१	४३	१	४	९	१२	३	२१	९	२४	२४
३७	३५	७	७	३	४	५	१९	१०	२३	४०	५१	४५	७	५	९	१२	५	२७	१५	२७	१२०
३७	३७	१	१	६	८	३	१७	२	२२	३२	५१	४७	५	६	९	१२	७	६	६	३	९६
३९	३३	७	५	९	१२	५	९	६	१८	९६	५१	४९	३	७	९	१२	१	१२	१२	६	७२
३९	३५	५	७	९	१२	७	१२	१५	६	१२०	५१	५१	१	१	९	१२	३	१८	३	९	४८
३९	३७	३	२	९	१२	१	१५	९	११	२४	५३	४३	७	२	३	४	५	७	७	१७	११२

दैर्घ्य-विस्तार परसे आय आदि जाननेका कोष्ठक-

दैर्घ्य	विस्तार	आय	वार	अंश	द्रव्य	ऋण	नक्षत्र	तिथि	योग	आयुः	दैर्घ्य	विस्तार	आय	वार	अंश	द्रव्य	ऋण	नक्षत्र	तिथि	योग	आयुः
५३	४५	१	३	९	१२	३	१८	१५	९	१२०	६३	५७	७	७	९	१२	५	२७	३	२७	४८
५३	४७	३	५	६	८	१	२	८	१	८	६३	५९	५	७	९	१२	७	९	६	१८	९६
५३	४९	५	७	३	४	७	१३	१	२०	१६	६३	६१	१	७	९	१२	१	१८	९	९	२४
५३	५१	७	२	९	१२	५	२४	९	१२	२४	६३	६३	१	७	९	१२	३	२७	१२	२७	७२
५३	५३	१	४	६	८	३	८	२	४	३२	६५	५३	५	२	६	८	७	२०	५	१०	८०
५५	४५	३	१	९	१२	१	९	१५	१८	१२०	६५	५५	७	३	३	४	५	७	१०	१७	४०
५५	४७	१	४	३	४	३	२५	१०	२६	४०	६५	५७	१	४	९	१२	३	२१	१२	२४	१२०
५५	४९	७	७	६	८	५	२४	५	७	८०	६५	५९	३	५	६	८	१	८	५	४	८०
५५	५१	५	३	९	१२	७	३	१५	१५	१२०	६५	६१	५	६	३	४	७	२२	१०	११	४०
५५	५३	३	६	३	४	१	१९	१०	२३	४०	६५	६३	७	७	९	१२	५	९	१५	१८	१२०
५५	५५	१	२	६	८	३	८	५	४	८०	६५	६५	१	१	६	८	३	२३	५	२५	८०
५७	४७	७	३	९	१२	५	२१	१२	२४	७२	६७	५५	५	६	६	८	७	२३	५	२५	८०
५७	४९	१	७	९	१२	३	१५	९	२१	२४	६७	५७	३	१	९	१२	१	१५	१२	२१	७२
५७	५१	३	४	९	१२	१	९	६	१८	९६	६७	५९	१	३	३	४	३	७	४	१७	६४
५७	५३	५	१	९	१२	७	३	३	१५	४८	६७	६१	७	५	६	८	५	२६	११	१३	५६
५७	५५	७	५	९	१२	५	२४	१५	१२	१२०	६७	६३	५	७	९	१२	७	१८	३	९	४८
५७	५७	१	२	९	१२	३	१८	१२	९	७२	६७	६५	३	२	३	४	१	१०	१०	५	४०
५९	४९	३	७	३	४	१	१६	१३	८	८८	६७	६७	१	४	६	८	३	२	२	१	३२
५९	५१	१	५	९	१२	३	१५	१२	२१	७२	६९	५७	५	५	९	१२	७	९	९	१८	२४
५९	५३	७	३	६	८	५	१४	११	७	५६	६९	५९	७	१	९	१२	५	६	३	३	४८
५९	५५	५	१	३	४	७	१३	१०	२०	४०	६९	६१	१	४	९	१२	३	३	१२	१५	७२
५९	५७	३	६	९	१२	१	१२	९	६	२४	६९	६३	३	७	९	१२	१	२७	६	२७	९६
५९	५९	१	४	६	८	३	११	८	१९	८	६९	६५	५	३	९	१२	७	२४	१५	२१	१२०
६१	४९	५	७	६	८	७	१७	२	२२	३२	६९	६७	७	६	९	१२	५	२१	९	२४	२४
६१	५१	७	६	९	१२	५	२१	३	२४	४८	६९	६९	१	२	९	१२	३	१८	३	९	४८
६१	५३	१	५	३	४	३	२५	४	२६	६४	७१	५७	७	२	९	१२	५	३	६	१५	९६
६१	५५	३	४	६	८	१	२	५	१	८०	७१	५९	५	६	६	८	७	५	२	१६	३२
६१	५७	५	३	९	१२	७	६	६	३	९६	७१	६१	३	३	३	४	१	७	१३	१७	८८
६१	५९	७	२	३	४	५	१०	५	७	११२	७१	६३	१	७	९	१२	३	९	९	१८	२४
६१	६१	१	१	६	८	३	१४	८	७	८	७१	६५	७	४	६	८	५	११	५	१९	८०
६३	५१	५	७	९	१२	७	२७	९	२७	२४	७१	६७	५	१	३	४	७	११	१	२०	१६
६३	५३	३	७	९	१२	१	९	१२	१८	७२	७१	६९	३	५	९	१२	१	१५	१२	२१	७२
६३	५५	१	७	९	१२	३	१८	१५	९	१२०	७१	७१	१	२	६	८	३	१७	८	२२	४८

दैर्घ्य-विस्तार परसे आय आदि जाननेका कोष्ठक—

दैर्घ्य	विस्तार	आय	वार	अंश	द्रव्य	ऋण	नक्षत्र	तिथि	योग	आयुः	दैर्घ्य	विस्तार	आय	वार	अंश	द्रव्य	ऋण	नक्षत्र	तिथि	योग	आयुः
७३	५९	३	४	३	४	१	४	१	२	१६	७५	६१	७	१	९	१२	५	१५	१५	२१	१२०
७३	६१	५	२	६	८	७	११	१४	१९	१०४	७५	६३	५	७	९	१२	७	२७	१५	२७	१२०
७३	६३	७	७	९	१२	५	१८	१२	९	७२	७५	६५	३	६	९	१२	१	१२	१५	६	१२०
७३	६५	१	५	३	४	३	२५	१०	२६	४०	७५	६७	१	५	९	१२	३	२४	१५	१२	१२०
७३	६७	३	३	६	८	१	५	८	१६	८	७५	६९	७	४	९	१२	५	९	१५	१८	१२०
७३	६९	५	१	९	१२	७	१२	६	६	९६	७५	७	५	३	९	१२	७	२१	१५	२४	१२०
७३	७१	७	६	३	४	५	१९	४	२३	६४	७५	७३	३	२	९	१२	१	६	१५	३	१२०
७३	७३	१	४	६	८	३	२६	२	१३	३२	७५	७५	१	१	९	१२	३	१८	१५	१९	१२०

इस तरह गृहोंका परिमाण बताकर आगे गृहारम्भका मुहूर्त कहा जायगा। उसमें सूर्यके नक्षत्रसे वर्तमान दैनिक नक्षत्रकी गणनामें वृष वास्तु चक्रका विचार कहा जाता है।

गृहारम्भमें वृषवास्तु चक्र—

गेहाद्यारम्भेऽर्कभाद्वत्सशीर्षे रामैर्दाहो वेदभैरग्रपादे।
शून्यं वेदैः पृष्ठपादे स्थिरत्वं रामैः पृष्ठे श्रीर्युगैर्दक्षकुक्षौ ॥ १३ ॥
लाभो रामैः पुच्छगैः स्वामिनाशो वेदैर्नैःस्वं वामकुक्षौ मुखस्थैः।
रामैः पीडा सन्ततं वार्कधिष्ण्यादश्वै रुद्रैर्दिग्भिरुक्तं ह्यसत्सत् ॥१४॥

अन्वयः—गेहाद्यारम्भे अर्कभात् वत्सशीर्षे रामैः नक्षत्रैः 'गृहपतेः' दाहः, अग्रपादे वेदभैः शून्यं फलम्, पृष्ठपादे वेदैः 'नक्षत्रैः' स्थिरत्वं फलम्, पृष्ठे रामैः नक्षत्रैः श्रीः, दक्षकुक्षौ युगैः नक्षत्रैः लाभः, पुच्छगैः रामैः नक्षत्रैः स्वामिनाशः, वामकुक्षौ वेदैः नक्षत्रैः नैःस्वं, तथा 'वत्सस्य' मुखस्थैः रामैः नक्षत्रैः सन्ततं पीडा फलं स्यात्। वा अर्कधिष्ण्यात् अश्वैः, रुद्रैः, दिग्भिश्च नक्षत्रैः 'क्रमात्' हि (निश्चयेन) असत् सत् फलं उक्तं 'मनीषिभिः' इति शेषः ॥ १३–१४ ॥

भाषार्थः—गृह आदिके आरम्भमें सूर्यके नक्षत्रसे 'वृषवास्तु' चक्र विचारनेमें-सूर्य जिस नक्षत्रमें हो उससे ३ नक्षत्र वृषके शिरपर रखे, उनमें गृहारम्भ करनेसे गृहपतिकी दाह हो। उसके बाद आगेके पैरवाले ४ नक्षत्रोंमें शून्य फल होता है। अर्थात् पहले ७ अशुभ हैं। फिर पिछले पाँववाले ४ नक्षत्रोंमें गृहपति की उस गृहमें स्थिरता होती है। फिर पीठवाले ३ नक्षत्रोंमें श्री (लक्ष्मीकी प्राप्ति) होती है। उसके बाद दाहिने कोंखके ४ नक्षत्रोंमें लाभ होता है। अर्थात् ७ के

बाद ११ नक्षत्र शुभ होते हैं। फिर उसके बाद पूंछवाले ३ नक्षत्रोंमें गृहपतिका नाश, वाम कोंखवाले ४ नक्षत्रोंमें निर्धनता और अन्तके मुखवाले ३ नक्षत्रोंमें गृहपतिको सर्वदा पीड़ा होती है। अर्थात् १८ के बाद १० नक्षत्र अशुभ हैं। इसी अर्थको पुनः संक्षेपमें कहते हैं-अथवा गृहादिके आरम्भमें सूर्यके नक्षत्रसे प्रथम ७ नक्षत्र अशुभ, उसके बाद ११ नक्षत्र शुभ और पुनः १० नक्षत्र अशुभ होते हैं। गृहारम्भके मुहूर्तमें प्रथम इसका विचार करना आवश्यक है ॥१२-१४॥

गृहारम्भमें वृषवास्तु चक्र—

सूर्यर्क्षसे नक्षत्र	३	४	४	३	४	४	४	३
फल	दाह	शून्य	स्थिरता	श्रीः	लाभ	नाश	दारिद्र्य	पीड़ा
फल	अशुभ ७		शुभ ११			अशुभ १०		

पूर्व आदि दिशामें गृहद्वार, गृहारम्भनक्षत्र और सूतिकागृहमें प्रवेशमुहूर्त—

कुम्भेऽर्के फाल्गुने प्रागपरमुखगृहं श्रावणे सिंहकर्क्योः
पौषे नक्रे च याम्योत्तरमुखसदनं गोजगेऽर्के च राधे।
मार्गे जूकालिगे सद् ध्रुवमृदुवरुणस्वातिवस्वर्कपुष्यैः
सूतीगेहं त्वदित्यां हरिभविधिभयोस्तत्र शस्तः प्रवेशः ॥१५॥

अन्वयः—अर्के कुम्भे 'स्थिते सति' फाल्गुने, सिंहकर्क्योः 'स्थिते सति' श्रावणे, नक्रे 'स्थिते सति' पौषे च मासे प्रागपरमुखगृहं सत् भवति। गोजगे अर्के 'सति' राधे (वैशाखे) तथा जूकालिगे 'अर्के सति' मार्गे च मासे याम्योत्तरमुखसदनं 'सद् भवति'। अथ, ध्रुव-मृदु-वरुण-स्वाति-वस्वर्कपुष्यैः 'नक्षत्रैः' 'गृहारम्भः शुभः स्यात्'। तथा, अदित्यां तु सूतीगेहं सत् स्यात्। तत्र (सूतीगेहे) हरिभ-विधिभयोः प्रवेशः शस्तः भवति ॥ १५ ॥

भाषार्थः—जब सूर्य कुम्भ राशिमें हो तो फाल्गुन मासमें, सिंह और कर्कमें हो तो श्रावणमें, मकर राशिमें हो तो पूस मासमें पूर्व और पश्चिम मुखका गृह बनाना चाहिये। जब सूर्य वृष और मेषमें हो तो वैशाख मासमें तथा वृश्चिक और तुला में हो तो अग्रहण मासमें दक्षिण और उत्तर मुखका घर बनाना चाहिये। ध्रुव और मृदु संज्ञक नक्षत्र, शतभिषा, स्वाती, धनिष्ठा, हस्त और पुष्य नक्षत्रोंमें गृहारम्भ करना शुभ होता है। सूतिका (सन्तान जन्मके वास्ते)

गृह पुनर्वसु नक्षत्रमें बनाना चाहिये और उसमें श्रवण तथा रोहिणी नक्षत्रमें प्रवेश शुभ होता है ॥ १५ ॥

वि०—श्री नारदजीके मतसे जब सूर्य, मेष, वृष, कर्क, सिंह, तुला, वृश्चिक, मकर और कुम्भ–इन ८ राशियोंमें रहे तो गृहारम्भ शुभ कहा गया है। जैसे—

गृहसंस्थापनं सूर्ये मेषगे शुभदं भवेत्। वृषस्थे धनवृद्धिः स्यान्मिथुने मरणं ध्रुवम्॥
कर्कटे शुभदं प्रोक्तं सिंहे भृत्यविवर्धनम्। कन्या रोगं तुला सौख्यं वृश्चिके धनवर्धनम्॥
कार्मुके च महाहानिर्मकरे स्याद्धनागमः। कुम्भे तु रत्नलाभः स्यान्मीने सद्म भयावहम्॥ इति

श्री श्रीपति आचार्यके मतसे गृहारम्भमें मासफल इस तरह है—

शोको धान्यं मृति पशुहती द्रव्यवृद्धिर्विनाशो युद्धं भृत्यक्षतिरथ धनं श्रीश्च वह्नेर्भयं च।
लक्ष्मीप्राप्तिर्भवति भवनारम्भकर्तुः क्रमेण चैत्रादूचे मुनिरिति फलं वास्तुशास्त्रोपदिष्टम्॥

नारद और श्रीपतिके मासफलमें भेद पाया जाता है, इसलिये जिस दिशाका द्वार करना हो उसके अनुकूल सौर मासमें उस गृहका आरम्भ करना ग्रन्थकारका अभिप्राय है ॥ १५ ॥

प्रकारान्तरसे गृहारम्भ विचार—

कैश्चिन्मेषरवौ मधौ वृषभगे ज्येष्ठे शुचौ कर्कटे
भाद्रे सिंहगते घटेऽश्वयुजि चोर्जेऽलौ मृगे पौषके।
माघे नक्रघटे शुभं निगदितं गेहं तथोर्जो न सन्
कन्यायां च तपा धनुष्यपि न सन्कृष्णादिमासाद्भवेत् ॥१६॥

अन्वयः—कैश्चित् (अन्यैराचार्यैः) मेषरवौ मधौ, वृषभगे रवौ ज्येष्ठे, कर्कटे, शुचौ, सिंहगते भाद्रे, घटे अश्वयुजि, अलौ च ऊर्जे, मृगे पौषके, नक्रघटे रवौ माघे मासि गेहं शुभं निगदितम्। तथा कन्यायां स्थिते रवौ ऊर्जः (कार्तिकः) सन् न। एवं, धनुषि गते रवौ तपाः (माघः) न सत्। अत्र मासगणना कृष्णादिमासात् भवेत्॥१६॥

भाषार्थः—किसी आचार्यके मतसे—जब सूर्य मेष राशिमें हो तो चैत्रमें भी; वृषमें हो तो ज्येष्ठमें; कर्कमें सूर्य हो तो आषाढ़में, सिंहमें हो तो भाद्रमें; तुलामें हो तो आश्विनमें; वृश्चिकमें हो तो कार्तिकमें; मकरमें हो तो पूसमें; और मकर-कुम्भमें सूर्य हो तो माघ मासमें गृहारम्भ शुभ होता है। परन्तु कन्याका सूर्य हो तो कार्त्तिक और धनुका सूर्य हो तो माघ मास गृहारम्भमें शुभ नहीं होता। यहां मासोंकी गणना कृष्णपक्षादिसे करनी चाहिये। अर्थात् फाल्गुनकी पूर्णिमाके बाद चैत्रकी पूर्णिमा तक 'चान्द्र चैत्रमास' एवं चैत्रकी पूर्णिमासे वैशाखकी पूर्णिमा तक 'चान्द्र वैशाख मास' समझना चाहिये। इसमें अमावस-से अमावस तकका चान्द्र मास नहीं गिना जाता।

इन दो (१५–१६ वें) श्लोकोंका अभिप्राय यह है—कि मिथुन, कन्या, धनु और मीन राशिमें सूर्यके रहनेपर गृहारम्भ निषिद्ध बताया गया है, जिसमें, मिथुनस्थ सूर्यमें ज्येष्ठ-आषाढ़की सम्भावना, कन्याके सूर्यमें भाद्र–आश्विनकी, धनुके सूर्यमें पूस–माघकी और मीनस्थ सूर्यमें फाल्गुन–चैतकी सम्भावना रहती है । इसलिये यह कहा गया है कि यदि चैत्र (फाल्गुन पूर्णिमासे चैत्री पूर्णिमा-तक) में जबसे सुर्य मेषमें आजाये तबसे चैत्रमें भी गृहारम्भ करना चाहिये । मीनस्थ सूर्यमें चैत्रका त्याग करे । एवं यदि सूर्य वृषमें हो जाय तो ज्येष्ठमें शुभ समझा जाता है । मिथुनस्थ सूर्यमें ज्येष्ठ और आषाढ़ दोनों अशुभ है । कर्कस्थ सूर्यमें आषाढ़ शुभ होता है । सिंहमें सूर्यके रहने तक ही भाद्र शुभ है, कन्यामें जाने पर नहीं । तुलामें जानेपर आश्विन शुभ होता है । कन्यामें रहने-पर नहीं । एवं यदि कन्यामें सूर्य रहे तब तक कार्तिक भी अशुभ है, तुला वृश्चिक में नहीं । मकरमें सूर्यके चले जानेपर पूस भी शुभ होता है । धनुमें रहनेपर पूस माघ दोनों अशुभ हैं । इसी तरह यदि मीनमें सूर्य चला जाय तो फाल्गुन भी अशुभ होता है ।

सारांश यही है कि सूर्य मिथुन, कन्या, धनु और मीनमें जब हो तब तक गृहारम्भ नहीं करना और शेष ८ राशियोंमें रहनेपर चाहे जो मास हो गृहारम्भ करना चाहिये । अर्थात् वहाँ चान्द्रमासकी प्रधानता नहीं बल्कि सौर मासको ही मुख्य माना जाता है । इस विषयको गृहारम्भमें ही नहीं; अपितु विवाहादि शुभ कार्योंमें भी माना गया है कि मास सौर ही प्रधान है । गृहा-रम्भमें विशेष कर शुक्ल पक्ष लेने चाहिये । कृष्णमें केवल ५ मी तक ॥ १६ ॥

तिथि भेदसे द्वारनिषेध—

पूर्णेन्दुतः प्राग्वदनं नवम्यादिषूत्तरास्यं त्वथ पश्चिमास्यम् ।
दर्शादितः शुक्लदले नवम्यादौ दक्षिणास्यं न शुभं वदन्ति ॥१७॥

अन्वयः—पूर्णेन्दुतः (पूर्णिमातिथिमारभ्याष्टमीं यावत्) प्राग्वदनं गृहं नवम्या-दिषु उत्तरास्यं, तु = तथा, दर्शादितः शुक्लदले पश्चिमास्यं, नवम्यादौ दक्षिणास्यं गृहं 'आचार्याः' शुभं न वदन्ति ॥ १७ ॥

भाषार्थः—पूर्णिमासे कृष्ण पक्षकी अष्टमी तिथि तक पूर्वमुखका, कृष्णप-क्षकी ९ मीसे १४ शी पर्यन्त उत्तर मुखका, अमावससे शुक्ल पक्षकी ८ मी तक

पश्चिम मुखका और शुक्ल पक्षकी ९ मीसे चतुर्दशी पर्यन्त दक्षिण मुखका गृह शुभ नहीं होता। जिस मुखका गृह बनाना हो उसकी प्रतिकूल तिथियोंको बराकर आरम्भ करना चाहिये ॥ १७ ॥

गृहारम्भ में पञ्चाङ्गशुद्धि—

भौमार्करिक्तामाद्यूने चरोनेऽङ्गे त्रिपञ्चके ।
व्यष्टान्त्यस्थैः शुभैर्गेहारम्भस्त्र्यायारिगैः खलैः ॥ १८ ॥

अन्वयः—भौमार्करिक्तामाद्यूने 'दिने' चरोने अङ्गे, विपञ्चके नक्षत्रे, शुभैः व्यष्टान्त्यस्थैः, खलैः त्र्यायारिगैः गेहारम्भः शुभः भवति ॥ १८ ॥

भाषार्थः—मङ्गल और रविवार, रिक्ता, अमावस, प्रतिपदा तथा अष्टमी तिथि इनसे रहित दिनमें, चर (मेष-कर्क-तुला-मकर) राशिको छोड़ अन्य स्थिर और द्व्यङ्गः लग्नमें, पञ्चकके अतिरिक्त नक्षत्रमें, शुभग्रह जब लग्नसे १२।८ वेंसे अतिरिक्त स्थानोंमें हों और पाप ग्रह ३, ११, ६ स्थानोंमें हों तो गृहारम्भ शुभ होता है ॥ १८ ॥

वि०—यहाँ पञ्चक शब्द पाठकोंको भ्रममें डालने वाला है। पञ्चक धनिष्ठा आदि ५ नक्षत्रोंको कहते हैं। इससे पूर्व १५ वें श्लोकमें 'ध्रुवमृदुवरुणस्वातिवस्वर्कपुष्यैः, इस वाक्यसे धनिष्ठा, शततारा उत्तराभाद्र और रेवती ये ४ नक्षत्र गृहारम्भमें प्रशस्त बताये गये हैं, केवल १ पूर्वाभाद्र निषिद्ध है। परन्तु यहाँ 'विपञ्चके' वाक्यसे गृहारम्भमें ५ नक्षत्र त्याज्य सिद्ध होते हैं। ऐसा क्यों ? इसका समाधान यह है कि पञ्चकका त्याग गृहारम्भके बाद जो स्तम्भरोपण किया जाता है उसीमें है, गृहारम्भमें नहीं। इसमें श्रीमाण्डव्यका वचन—

धनिष्ठापञ्चके नैव कुर्यात् स्तम्भसमुच्छ्रयम् ।
सूत्राधारशिलान्यासप्राकारादि समारभेत् ॥

नक्षत्रप्रकरणके ४८ वें श्लोकमें पञ्चकमें 'गृहगोपनादि च' इस वाक्यसे तृण काष्ठादि-प्रस्तुत गृहका छावना वगैरह त्याज्य है। हो सकता है कि केवल तृण-काष्ठ-मय गृहका आरम्भ भी त्याग करे।

किसी २ के मतसे 'चरोनेङ्गे विपञ्चके' का अर्थ 'विवाह प्रकरणोक्त रुगनलनृपचोरमृत्यु संज्ञक पंच बाणदोष रहित लग्नमें' ऐसा है। परन्तु इस अर्थमें कोई आर्ष वचन प्रमाण नहीं मिलता, इसलिये पञ्चकका त्याग गृहके स्तम्भरोपणमें ही करना चाहिये, गृहारम्भ में नहीं ॥ १८ ॥

गृहारम्भमें राहुमुखका विचार—

देवालये गेहविधौ जलाशये राहोर्मुखं शम्भुदिशो विलोमतः ।

मीनार्कसिंहार्कमृगार्कतस्त्रिभे खाते मुखात् पृष्ठविदिक्शुभा भवेत् १९

अन्वयः—देवालय, गृहविधौ, जलाशये 'क्रमेण' मीनार्क-सिंहार्क-मृगार्कतः त्रिभे त्रिभे शम्भुदिशः विलोमतः राहोः मुखं स्यात्। खाते मुखात् पृष्ठविदिक् शुभा भवेत् ॥ १९ ॥

भाषार्थः—देवालय (मठमन्दिर) के आरम्भमें मीनसे ३-३ राशिमें, गृही (वासगृह) के आरम्भमें सिंहसे ३-३ राशिमें और जलाशय (तालाब आदि) के आरम्भमें मकरसे ३-३ राशि क्रमसे ईशान कोणसे विपरीत दिशाओं (ईशान, वायु, नैर्ऋति, आग्नेय) में राहुका मुख होता है और उसके विरुद्ध भागमें उसकी पीठ होती है। खातमें (नीव डालनेमें) मुखसे पीठकी दिशा शुभ होती है। अर्थात् यदि ईशानमें मुख हो तो आग्नेय कोणमें नीव डाले। वायव्यमें राहुमुख हो तो ईशानमें, नैर्ऋत्यमें मुख हो तो वायव्यमें और आग्नेय में मुख हो तो नैर्ऋत्यमें नीव डालनी चाहिये।

इस श्लोकका सारांश शीघ्र जाननेके लिये नीचे कोष्ठक दिया जाता है उससे स्पष्ट समझिये ॥ १९ ॥

आरम्भमें	मुख-पृष्ठभेद	ईशानमें	वायव्यमें	नैर्ऋत्यमें	आग्नेयमें
देवालयमें-	राहुमुख राशयः	१२।१।२ के सूर्यमें	३।४।५ के सूर्यमें	६।७।८ के सूर्यमें	९।१०।११ के सूर्यमें
	नीवकी दिशा	आग्नेय	ईशान	वायव्य	नैर्ऋत्य
गृहारम्भमें-	राहुमुख राशयः	५।६।७ के सूर्यमें	८।९।१० के सूर्यमें	११।१२।१ के सूर्यमें	२।३।४ के सूर्यमें
	नीवकी दिशा	आ.	ई.	वा.	नै.
जलाशयमें-	राहुमुख राशयः	१०।११।१२ के सूर्यमें	१।२।३ के सूर्यमें	४।५।६ के सूर्यमें	७।८।९ के सूर्यमें
	नीवकी दिशा	आ.	ई.	वा.	नै.

वास्तुभूमिमें दिशाभेदसे कूपका फल—

कूपे वास्तोर्मध्यदेशेऽर्थनाशस्त्वैशान्यादौ पुष्टिरैश्वर्यवृद्धिः ।
सूनोर्नाशःस्त्रीविनाशो मृतिश्च सम्पत् पीडा शत्रुतःस्याच्च सौख्यम् २०

अन्वयः—वास्तोः मध्यदेशे कूपे सति कर्तुः अर्थनाशः स्यात् । ऐशान्यादौ तु 'क्रमेण' पुष्टिः, ऐश्वर्यवृद्धिः, सूनोः नाशः, स्त्रीविनाशः मृतिः, सम्पत्, शत्रुतः पीडा, सौख्यं च स्यात् ॥ २० ॥

भाषार्थः—यदि वास्तु (वासभूमि) के मध्य भागमें कूप बनावे तो गृहपतिका धननाश हो । ईशान कोणमें कूप हो तो पुष्टि, पूर्वमें सम्पत्तिकी वृद्धि, अग्निकोणमें पुत्रका नाश, दक्षिणमें स्त्रीका नाश, नैऋत्यमें मरण, पश्चिममें सम्पत्ति, वायव्यमें शत्रुसे पीड़ा और उत्तरमें सौख्य फल होता है । वास्तुभूमिके ईशान, पूर्व, पश्चिम और उत्तर भागमें ही कूप बनाना चाहिये ।

यदि कूप या कोई अन्य जलाशय पहलेसे ही बना हो तो उस जलाशयके प्रतिकूल (वायव्य, उत्तर, ईशान, आग्नेय) भागोंमें गृह नहीं बनाना चाहिये॥२०॥

यहाँ प्रसङ्ग वश जलाशय के आरम्भमें नक्षत्र शुद्धिका विचार—

कूपेऽर्कभान् मध्यगतैस्त्रिभिर्भैः स्वादूदकं पूर्वदिशि त्रिभिर्भैः ।
खण्डं जलं स्वादुजलं जलक्षयं स्वादूदकं क्षारजलं शिलाजलम् ॥
क्षारं जलं मृष्टजलं क्रमाद् भवेद् वा सूर्यभात् त्रित्रिमितैःशुभाशुभम् ॥इति॥२०॥

स्पष्टार्थ चक्र देखिये—

सूर्यके नक्षत्रसे ३—३ नक्षत्रोंमें	३	३	३	३	३	३	३	३	३
क्रमसे फल—	शुभ	अशुभ	शु.	अ.	शु.	अ.	शु.	अ.	शु.

वास्तुके दिग्भेदसे उपकरण गृह—

स्नानाग्निपाकशयनास्त्रभुजेश्च धान्य-
भाण्डारदैवतगृहाणि च पूर्वतः स्युः ।
तन्मध्यतस्तु मथनाज्यपुरीषविद्या-
भ्यासाख्यरोदनरतौषधसर्वधाम ॥ २१ ॥

अन्वयः—पूर्वतः 'क्रमात्' स्नानाग्निपाकशयनास्त्रभुजेः गृहाणि, तथा च धान्य-

भाण्डारदैवतगृहाणि स्युः । तन्मध्यतस्तु मथनाज्यपुरीषविद्याभ्यासाख्यरोदनरतौषधसर्वधाम कार्यम् ॥ २१ ॥

भाषार्थः—वास्तु भूमिके पूर्व भागमें स्नानका, अग्निकोणमें पाकगृह, दक्षिणमें शयनका, नैऋत्यमें शस्त्रका, पश्चिममें भोजनका, वायव्यमें अन्न रखनेका, उत्तरमें भाण्डार (द्रव्यादि रखने) का, ईशानकोणमें देवताका गृह बनावे। एवं-पूर्व और अग्निकोणके बीचमें मथन (दही दूध मक्खन आदि) का, अग्नि और दक्षिणके बीचमें घृत रखनेका, दक्षिण और नैऋत्यके बीचमें पैखानाका, नैऋत्य और पश्चिमके बीचमें विद्या पढ़नेका, पश्चिम वायव्यके बीचमें रोनेका, वायव्य-उत्तरके बीचमें रति (प्रसङ्ग) का, उत्तर-ईशानके बीचमें औषधिका और ईशान-पूर्वके बीचमें सर्व सङ्ग्रहका घर बनाना चाहिये ॥ २१ ॥

स्पष्टार्थ चक्र देखिये—

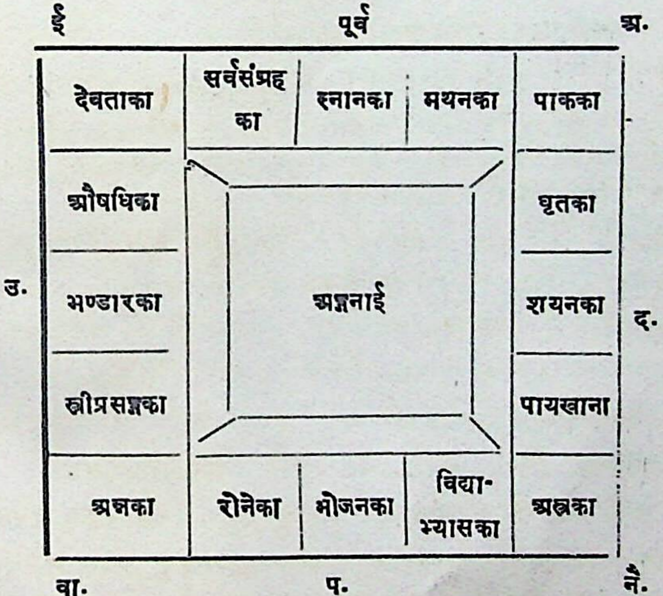

गृहारम्भमें ग्रहस्थितिसे फल—

जीवार्कविच्छुक्रशनैश्चरेषु लग्नारिजामित्रसुखत्रिगेषु ।
स्थितिः शतं स्याच्छरदां सितार्कारेज्ये तनुत्र्यङ्गसुते शते द्वे ॥२२॥

अन्वयः—जीवार्कविच्छुक्रशनैश्चरेषु 'क्रमेण' लग्नाग्निजामित्रसुखत्रिगेषु 'प्रारब्ध-गृहस्य' शरदां शतं स्थितिः स्यात्। तथा सितार्कारेज्ये 'क्रमात्' तनुत्र्यङ्गसुते 'गते सति' द्वे शते (द्विशतवर्षाणि) गृहस्य स्थितिः स्यात् ॥ २२ ॥

भाषार्थः—यदि लग्नमें बृहस्पति, छठेमें सूर्य, सातवेंमें बुध, चौथेमें शुक्र और तीसरेमें शनि हो तो ऐसे समयमें प्रारम्भ होनेवाले घरकी स्थिति १०० वर्ष तक होती है। एवं शुक्र लग्नमें, सूर्य तीसरेमें, मङ्गल छठेमें और गुरु पांचवेंमें हो तो प्रारम्भगृहकी स्थिति २०० वर्ष तक होती है ॥ २२ ॥

गृहस्थितिके योगान्तर—

लग्नाम्बरायेषु भृगुज्ञभानुभिः
केन्द्रे गुरौ वर्षशतायुरालयः।
बन्धौ गुरुर्व्योम्नि शशी कुजार्कजौ
लाभे तदाऽशीतिसमायुरालयः ॥ २३ ॥

अन्वयः—भृगुज्ञभानुभिः 'क्रमेण' लग्नाम्बरायेषु स्थितैः, गुरौ च केन्द्रे स्थिते सति प्रारब्धः आलयः वर्षशतायुः स्यात्। अथ च गुरुः बन्धौ, शशी व्योम्नि, कुजार्कजौ लाभे तदा प्रारब्धः आलयः अशीतिसमायुः स्यात् ॥ २३ ॥

भाषार्थः—यदि शुक्र लग्नमें, बुध १० वेंमें और सूर्य ११ वेंमें हों, तथा बृहस्पति केन्द्र (१।४।७।१०) में हो तो ऐसे समय का प्रारम्भ गृह १०० वर्षकी स्थितिवाला होता है। एवं यदि गुरु ४ थेमें, चन्द्रमा १० वेंमें तथा मङ्गल और शनि साथ २ ग्यारहवेंमें हों तो गृहकी स्थिति ८० वर्षकी होती है ॥ २३ ॥

चिरस्थायी-लक्ष्मीयुक्त गृहके ३ योग—

स्वोच्चे शुक्रे लग्नगे वा गुरौ वेश्मगतेऽथवा।
शनौ स्वोच्चे लाभगे वा लक्ष्म्या युक्तं चिरं गृहम् ॥२४॥

अन्वयः—शुक्रे स्वोच्चे लग्ने, वा गुरौ स्वोच्चे वेश्मगते, अथवा शनौ स्वोच्चे लाभगे सति प्रारब्धं गृहं चिरं लक्ष्म्या युक्तं भवति ॥ २४ ॥

भाषार्थः—शुक्र उच्च (मीन राशि) का लग्नमें हो, अथवा गुरु उच्च (कर्क) का चौथे में हो, अथवा शनि उच्च (तुला) का ११ वेंमें हों तो इन तीनों योगोंमें प्रारम्भ गृह चिरकाल पर्यन्त लक्ष्मीयुक्त रहता है ॥ २४ ॥

गृहके दूसरे मनुष्यके हाथ चले जानेका योग—

द्यूनाम्बरे यदैकोऽपि परांशस्थो ग्रहो गृहम् ।
अब्दान्तः परहस्तथं कुर्याच्चेद्वर्णपोऽबलः ॥ २५ ॥

अन्वयः—एकः अपि ग्रहः परांशस्थः सन् यदा द्यूनाम्बरे भवेत् तथा वर्णपः ग्रहः चेत् अबलः भवेत् तदा असौ ग्रहः प्रारब्धं गृहं अब्दान्तः एव परहस्तस्थं कुर्यात् ॥२५॥

भावार्थः—एक भी ग्रह पर (शत्रु) ग्रहके नवांशमें होकर यदि लग्नसे ७ वें या १० वें स्थानमें हो और वर्ण (उस गृहपतिके वर्ण) का स्वामी ग्रह यदि निर्बल हो तो उस प्रारम्भ गृहको एक वर्षके भीतर ही दूसरेके हाथमें कर देता है । अर्थात् उस घरका मालिक दूसरा हो जाता है ॥ २५ ॥

गृहारम्भमें नक्षत्रों और वारोंके फल—

पुष्यध्रुवेन्दुहरिसर्पजलैः सजीवै-
स्तद्वासरेण च कृतं सुतराज्यदं स्यात् ।
द्वीशाश्वितक्षवसुपाशिशिवैः सशुक्रै-
र्वारे सितस्य च गृहं धनधान्यदं स्यात् ॥२६॥

अन्वयः—सजीवैः (गुरुसहितैः) पुष्यध्रुवेन्दुहरिसर्पजलैः नक्षत्रैः तद्वासरेण (गुरुवासरेण) च 'कृतं 'गृहं कर्तुः सुतराज्यपदं स्यात् । तथा, सशुक्रैः द्वीशाश्वितक्षवसुपाशिशिवैः नक्षत्रैः, सितस्य वारे च 'कृतं, गृहं 'कर्तुः' धनधान्यदं स्यात् ॥२६॥

भावार्थः—बृहस्पतिसे युक्त-पुष्य, ध्रुवसंज्ञक, मृगशिरा, श्रवण, आश्लेषा, पूर्वाषाढ़—इनमेंसे किसी नक्षत्रमें और बृहस्पतिवारमें प्रारम्भ किया गया घर गृहपतिके सुत और राज्यकी वृद्धि करता है । एवं-शुक्रसे युक्त-विशाखा, अश्विनी, चित्रा, धनिष्ठा शतभिषा, आर्द्रा—इनमेंसे किसी नक्षत्रमें और शुक्र वारमें प्रारम्भ गृह धन धान्यको देनेवाला होता है ॥ २६ ॥

सारैः करेज्यान्त्यमघाम्बुमूलैः
कौजेऽह्नि वेश्माग्निसुतार्तिदं स्यात् ।
सज्ञैः कदास्त्रार्यमतक्षहस्तै-
र्ज्ञस्यैव वारे सुखपुत्रदं स्यात् ॥ २७ ॥

अन्वयः—सारः (मङ्गलेन युक्तैः) करेज्यान्त्यमघाम्बुमूलैः नक्षत्रैः, कौजे अह्नि च प्रारब्धं वेश्म (गृहं) अग्निसुतार्तिदं स्यात् । तथा च, सज्ञैः (बुधयुक्तैः) कधाद्यार्यमतक्षहस्तैः नक्षत्रैः ज्ञस्यैव वारे 'कृतं वेश्म' सुखपुत्रदं स्यात् ॥ २७ ॥

भाषार्थः—मङ्गलसे युक्त—हस्त, पुष्य, रेवती, मघा, पूर्वाषाढ़ा, मूल—इनमेंसे किसी एक नक्षत्रमें और मङ्गलवारमें बनाया गया घर गृहपतिको अग्नि-भय और पुत्रपीड़ा करता है। एवं—बुधसे युक्त-रोहिणी, अश्विनी, उत्तरा-फल्गुनी, चित्रा, हस्त नक्षत्रमें और बुधवारमें प्रारम्भ गृह सुख और पुत्र-प्रद होता है ॥ २७ ॥

अजैकपादहिर्बुध्न्यशक्रमित्रानिलान्तकैः ।
समन्दैर्मन्दवारे स्याद्रक्षोभूतयुतं गृहम् ॥ २८ ॥

अन्वयः—समन्दैः (शनियुक्तैः) अजैकपादहिर्बुध्न्यशक्रमित्रानिलान्तकैः नक्षत्रैः मन्दवारे च कृत गृहं रक्षोभूतयुतं स्यात् ॥ २८ ॥

भाषार्थः—शनिसे युक्त-पूर्वभाद्र, उत्तरभाद्र, ज्येष्ठा, अनुराधा, स्वाती, भरणी—इनमें किसी नक्षत्रमें और शनिवारमें प्रारम्भ किया गया घर राक्षसों और भूतोंके उपद्रवसे युत होता है ॥ २८ ॥

वि०—यहां २६,२७,२८ इन श्लोकोंमें कहे गये फलोंमें निष्कृष्टार्थ यह है कि पहले (१५ वें) श्लोकोक्त 'ध्रुवमृदुवरुणस्वातिवस्वर्कपुष्यैः, के अनुसार गृहारम्भ नक्षत्र विचार कर उस नक्षत्रकी शुद्धि वृषवास्तु चक्रसे (१३–१४ श्लोकोंसे) विचारे और उसके बाद इन ५ योगोंको विचारे तब गृहारम्भ करना चाहिये ॥ २८ ॥

अन्य आचार्यके मतसे द्वारचक्र और उसका फल—

सूर्यर्क्षाद्युगभैः शिरस्यथ फलं लक्ष्मीस्ततः कोणभै-
र्नागैरुद्वसनं ततो गजमितैः शाखासु सौख्यं भवेत् ।
देहल्यां गुणभैर्मृतिर्गृहपतेर्मध्यस्थितैर्वेदभैः
सौख्यं चक्रमिदं विलोक्य सुधिया द्वारं विधेयं शुभम् ॥२९॥

अन्वयः—सूर्यर्क्षात् शिरसि स्थितैः युगभैः 'गृहारम्भे कृते सति' फलं कर्तुः लक्ष्मीः स्यात् । ततः नागैः (अष्टभिः नक्षत्रैः) कोणगैः फलं उद्वसनं स्यात् । ततः शाखासु स्थितः गजमितैः नक्षत्रैः सौख्यं भवेत् । ततः देहल्यां गुणभैः गृहपतेः मृतिः स्यात् । ततः मध्यस्थितः वेदभैः सौख्यं फलं स्यात् । इदं चक्रं विलोक्य सुधिया शुभं (शुभ-फलदं) द्वारं विधेयम् ॥ २९ ॥

भाषार्थः—सूर्य जिस नक्षत्रमें हो उससे आगे ४ नक्षत्र द्वारचक्रके शिरपर होते हैं, उनमें द्वारका आरम्भ करनेसे घरवालेको लक्ष्मी प्राप्ति हो । उसके बाद ८ नक्षत्र कोणमें होते हैं, उनमें गृहपतिका उद्वसन (उस घरसे पलायन) हो । उसके बाद शाखा (चौखट) के ८ नक्षत्रोंमें सौख्य हो । उसके बाद देहलीके ३ नक्षत्रोंमें घरवालेकी मृत्यु हो और उसके बाद बीचके ४ नक्षत्रोंमें सौख्य हो । पहले इस चक्रको विचारकर बुद्धिमान्को शुभ (शुभ फलवाले नक्षत्रोंमें) द्वारका आरम्भ करना चाहिये ॥ ३९ ॥

स्पष्टार्थ द्वार चक्र—

सूर्यके नक्षत्रसे नक्षत्रोंकी संख्या	४	८	८	३	४
फल	शुभ	अशुभ	शुभ	अशुभ	शुभ

इति वास्तुप्रकरणम् ॥ १२ ॥

अथ गृहप्रवेशप्रकरणम् ॥ १३ ॥

इस प्रकरणमें गृहप्रवेशका विचार किया जायगा। नवीन गृहमें जो प्रथम २ प्रवेश किया जाता है वही गृहप्रवेश यहां मुख्य समझना चाहिये परन्तु मुहूर्त यात्रानिवृतिके बादका प्रवेश तथा जीर्ण गृहप्रवेशके भी विचारे जायेंगे। नवीनगृहप्रवेशको अपूर्वप्रवेश, यात्रासे लौटनेपर सपूर्वप्रवेश और जीर्णगृहप्रवेशको द्वन्द्वप्रवेश कहते हैं[1]

अपूर्व-सपूर्व प्रवेशका मुहूर्त—

सौम्यायने ज्येष्ठतपोऽन्त्यमाधवे
यत्रानिवृत्तौ नृपतेर्नवे गृहे ।
स्याद्वेशनं द्वाःस्थमृदुध्रुवोडुभि-
र्जन्मर्क्षलग्नोपचयोदये स्थिरे ॥ १ ॥

अन्वयः—नृपतेः यात्रानिवृत्तौ, अथवा नवे गृहे सौम्यायने ज्येष्ठतपोऽन्त्यमाधवे 'मासे' द्वाःस्थमृदुध्रुवोडुभिः जन्मर्क्षलग्नोपचयोदये स्थिरे (स्थिरे लग्ने च) वेशनं शुभं स्यात् ॥ १ ॥

भाषार्थः—उत्तरायणमें ज्येष्ठ, माघ, फाल्गुन और वैशाख मासमें गृहके द्वाराभिमुख नक्षत्रोंमें तथा ध्रुव और मृदु संज्ञक नक्षत्रोंमें कर्त्ताकी जन्मराशि तथा जन्मलग्नसे उपचय (३।६।१०।११) राशिवाले तथा स्थिर राशि (२।५।८।११) वाले लग्नमें राजाके यात्रासे लौटनेपर गृहमें प्रवेश तथा नवीन बना हुआ जो गृह उसमें प्रथम २ प्रवेश शुभ होता है ॥ १ ॥

वि०—गृहप्रवेशमें ३ उत्तरा, रोहिणी, मृगशिरा, चित्रा, अनुराधा और रेवती ये ही नक्षत्र विहित हैं। उनमें जिस दिशामें (यात्रा प्रकरणके ३६ वें श्लोकके अनुसार) जो नक्षत्र पड़े उस दिशाके द्वारवाले घरमें उस नक्षत्रमें प्रवेश करना चाहिये। उस नक्षत्रकी शुद्धि आगेके ६ ठे श्लोकसे देख लेनी चाहिये ॥ १ ॥

जीर्ण गृहमें प्रवेश करनेमें विशेषता—

जीर्णे गृहेऽग्न्यादिभयान्नवेऽपि मार्गोर्जयोः श्रावणिकेऽपि सन् स्यात्

(१) अपूर्वसंज्ञः प्रथमः प्रवेशो यात्रावसाने तु सपूर्वसंज्ञः।
द्वन्द्वाभयस्त्वग्निभयादिजातस्त्वेवं प्रवेशस्त्रिविधः प्रदिष्टः ॥

वेशोऽम्बुपेज्यानिलवासवेषु नावश्यमस्तादिविचारणाऽत्र ॥ २ ॥

अन्वयः—जीर्णे गृहे तथा अग्न्यादिभयात् नवे अपि गृहे मार्गोर्जयोः तथा श्रावणिके अपि, अम्बुपेज्यानिलवासवेषु वेशः सन् स्यात् । अत्र अस्तादिविचारणा आवश्यं न भवति ॥ २ ॥

भाषार्थः—पुराने घरमें (जो अधिक दिनका बना हो) तथा अग्निके भयसे, वृष्टि भयसे, राजदण्डके कारण या रोगादिके भयसे नवीन घरमें भी मार्गशीर्ष, कार्त्तिक और श्रावण मासमें भी प्रवेश शुभ कहा गया है। उसमें शतभिषा, पुष्य, स्वाती, धनिष्ठा-ये नक्षत्र भी प्रशस्त हैं, तथा ऐसी अवस्थामें गुरु-शुक्रके अस्त आदिका विचार करना भी आवश्यक नहीं है ॥ २ ॥

वि०—सुपूर्व प्रवेश और जीर्णगृहप्रवेशमें अस्तादि कालकी शुद्धि अनावश्यक है। परन्तु वास्तु पूजा आदि नवप्रवेशकी तरह ही करनी चाहिये। ऐसा ही श्रीवसिष्ठजीने भी कहा है—

नवप्रवेशे ह्यथ कालशुद्धिर्न द्वन्द्वसौपूर्विकयोः कदाचित् ।
प्रवेशपश्चाङ्गदिने सुलग्ने वास्त्वर्चनं पूर्ववदेव कुर्यात् ॥ इति ॥ २ ॥

गृहप्रवेशके पूर्व कर्तव्यता—

मृदु ध्रुवक्षिप्रचरेषु मूलभे वास्त्वर्चनं भूतबलिं च कारयेत् ।
त्रिकोणकेन्द्रायधनत्रिगैः शुभैर्लग्ने त्रिषष्ठायगतैश्च पापकैः ॥३॥
शुद्धाम्बुरन्ध्रे विजनुर्भमृत्यौ व्यर्कारिरिक्ताचरदर्शचैत्रे ।
अग्रेऽम्बुपूर्णं कलशं द्विजांश्च कृत्वा विशेद्वेश्म भकूटशुद्धम् ॥४॥

अन्वयः—'गृहप्रवेशात् पूर्वं' मृदुध्रुवक्षिप्रचरेषु मूलभे च 'पुरोहितो विद्वान् गृहपतिद्वारेण' वास्त्वर्चनं भूतबलिं च कारयेत् । ततः शुभैः त्रिकोणकेन्द्रायधनत्रिगैः, पापकैः त्रिषष्ठायगतैः, च पुनः शुद्धाम्बुरन्ध्रे, विजनुर्भमृत्यौ लग्ने, व्यर्कारिरिक्ताचरदर्शचैत्रे एवं विधे समये भकूटशुद्धं यथा स्यात्तथा 'गृहपतिः' अम्बुपूर्णकलशं द्विजांश्च अग्रे कृत्वा वेश्म विशेत् ॥ ३-४ ॥

भाषार्थः—गृहप्रवेशके पहले मृदु, ध्रुव, क्षिप्र, चर संज्ञक नक्षत्र तथा मूल नक्षत्रमें वास्तु पूजन और भूतबलि करनी चाहिये। उसके बाद जिस लग्नसे ९।५।१।४।७।१०।११।२।३ स्थानोंमें शुभग्रह हों, तथा ३।६।११ स्थानोंमें पापग्रह हों, एवं ४।८ स्थान शुद्ध (ग्रहरहित) हों और जो लग्न जन्मकी राशि और लग्नसे ८ वाँ नहीं हो ऐसे लग्नमें, रविवार-मङ्गलवार, रिक्तातिथि, चर लग्न

अमावास्या और चैत्र मास—इन्हें छोड़कर अन्य तिथि वारादिमें जब यजमानका भकूट शुद्ध हो तो जलपूर्ण कलश और ब्राह्मणोंको आगे करके घरमें प्रवेश करे ॥३-४॥

वि०—वास्तुपूजाका प्रकार श्रीवसिष्ठसंहितामें निम्नलिखित प्रकारसे है। गृहके मध्यमें एक हाथ चौखूटी वेदीपर चावल बिछाकर चतुष्कोण ८१ कोष्ठ तिलसे बनावे और उन कोष्ठोंमें निम्नलिखित देवताओंका स्थापन करके विधिवत् पूजन करे।

"निर्माणे मन्दिराणां च प्रवेशे त्रिविधेऽपि च।
वास्तुपूजा प्रकर्त्तव्या यस्मात्तां कथयाम्यतः॥
गृहमध्ये हस्तमात्रं समन्तात् तण्डुलोपरि।
एकाशीतिपदं कार्यं तिलैस्तुष्यं सुशोभनम्॥
एक-द्वि-त्रिपदाः पञ्चचत्वारिंशत् सुरार्चिताः।
द्वात्रिंशद् बाह्यतो वक्ष्यमाणाश्चान्तस्त्रयोदश॥
तेषां स्थानानि नामानि वक्ष्यामीश्वरकोणतः।
तत्राग्नि शम्भुकोणस्थस्त्वसौ चैकपदेश्वरः॥
तस्माद् द्वितीयः पर्जन्यश्चासावेकपदेश्वरः।
जयन्तेन्द्रेनसत्याख्या, भृशश्च द्विपदेश्वराः॥
आकाशवायू परतः क्रमादेकपदेश्वरौ।
एवं प्राच्यां नव ज्ञात्वा त्वेवमेवान्यदिक्षु च॥
आद्याश्चान्त्यावेकपदौ द्विपदाः पञ्चमध्यगाः।
शिख्याद्यष्टावाकाशान्ता अमरा पूर्वभागगाः॥
आद्याश्चान्त्यावेकपदौ द्विपदाः पञ्च मध्यगाः।
पूषाद्यष्टौ यमान्ताः स्युरमरा याम्यभागगाः॥
आद्याश्चान्त्यावेकपदौ द्विपदा पञ्चमध्यगाः।
अष्टौ पितृगणाधीशात् पापान्ताः पश्चिमे सुराः॥
आद्यन्तौ द्वावेकपदौ द्विपदाः पञ्च मध्यगाः।
रोगादिदितिपर्यन्तसुराः सप्त सौम्यदिशि क्रमात्॥
तथाधःस्थचतुःकोणे त्वीशानादिषु च क्रमात्।
आपः सावित्रविजयरुद्राश्चैकपदेश्वराः॥
मध्ये नवपदो ब्रह्मा तस्यैशानादिकोणगाः।
आपवत्सोऽथ सविता विबुधाधिपसंज्ञकः॥
राजयक्ष्मा च चत्वारः सुराश्चैकपदेश्वराः।
ब्रह्मणः पूर्वतो दिक्षु त्रिपदाश्चामरा अमी॥
आर्यमा च विवस्वांश्च मित्रः पृथ्वीधरः क्रमात्।

स्वस्वस्थलेषु देवेषु स्थापितेष्वीदृशं भवेत् ॥
कोणेषु पञ्च पञ्चैव चतुर्थैकपदाः सुराः ।
प्रागादिदिक्षु द्विपदाः पञ्च पञ्च यथा क्रमम् ॥
ब्रह्मणः पूर्वतो दिक्षु द्विपदाः स्युः समीपगाः ।
हिरण्यरेताः पर्जन्यो जयन्तः पाकशासनः ॥
सूर्यः सत्यो भृशाकाशौ वायुः पूषा च वै तथा ।
गृहक्षतः पितृपतिः गन्धर्वो भृङ्गराजकः ॥
मृगः पितृगणाधीशस्तथा दौवारिकाह्वयः ।
सुग्रीवः पुष्पदन्तश्च जलाधीशो निशाचरः ॥
शोषः पापश्च रोगोऽहिर्मुख्यो भल्लाट एव च ।
सोम-सर्पौ दित्यदिती द्वात्रिंशदमराः स्मृताः ॥
आपश्चैवापवत्सश्च जयो रुद्रस्तथव च ।
मध्ये नवपदो ब्रह्मा तस्थौ तस्य समीपगाः ॥
प्राच्याद्यन्तरिता देवाः परितो ब्रह्मणः स्मृताः ।
अर्यमा सविता चैव विवस्वान् विबुधाधिपः ॥
मित्रोऽथ राजयक्ष्मा च तथा पृथ्वीधरः क्रमात् ।
आपवत्सोऽष्टमः पञ्चचत्वारिंशत्सुरोत्तमाः ॥
ज्ञात्वैवं स्थाननामानि ब्रह्मणा सहितान् न्यसेत् ।
वास्तुज्ञो वास्तुमन्त्रेण गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ॥
प्रणवेनार्चयेद्वापि अथवा स्वस्वनामभि ।
शुक्लवस्त्रयुगं दद्याद् धूपदीपफलैः सह ॥
अपूपैर्भूरिनैवेद्यैः वाद्यैः सह समर्चयेत् ।
ताम्बूलं च ततो दद्याद् देवेभ्यश्च पृथक् पृथक् ॥
दत्वा पुष्पाञ्जलिं कर्ता प्रार्थयेत् वास्तुपूरुषम् ।
वास्तुपुरुष ! नमस्तेऽस्तु भूशय्यानिरत ! प्रभो ! ॥
मद्गृहं धनधान्यादिसमृद्धं कुरु सर्वदा ।
इति प्रार्थ्य ततो दद्याद् दक्षिणामर्चकाय च ॥
विप्रेभ्यो भोजनं दत्वा स्वयं भुञ्जीत बन्धुभिः ।
एवं यः कुरुते सम्यग् वास्तुपूजां प्रयत्नतः ॥
आरोग्यं पुत्रपौत्रादि धनं धान्यं लभेन्नरः ।
वास्तुपूजामकृत्वा यः प्रविशेन्नवमन्दिरम् ॥
रोगान्नानाविधान् क्लेशानश्नुते बहुसङ्कटम् ।” इति ॥ ३-४ ॥

वास्तुपूजनमें ८१ पदका कोष्ठ—

पूर्व

उत्तर (बाएँ) — दक्षिण (दाएँ)

अग्नि १	पर्जन्य १	जयन्तः १	इन्द्रः १	सूर्यः १	सत्यः १	भृशः १	आकाशः १	अनिलः १
दितिः १	आपः १	जयन्तः २	इन्द्रः २	सूर्यः २	सत्यः २	भृशः २	सविता १	पूषा २
अदितिः १	अदितिः २	आपवत्स १	अर्यमा १	अर्यमा २	अर्यमा ३	सवितः १	वितथ २	वितथ १
सर्पः १	सर्पः २	पृथ्वीधरः १	ब्रह्मा १	ब्रह्मा २	ब्रह्मा ३	विवस्वान् १	गृहक्षतः २	गृहक्षतः १
सोमः १	सोमः २	पृथ्वीधरः २	ब्रह्मा ४	ब्रह्मा ५	ब्रह्मा ६	विवस्वान् २	यमः २	यमः २
भल्लाटः १	भल्लाटः २	पृथ्वीधरः ३	ब्रह्मा ७	ब्रह्मा ८	ब्रह्मा ९	विवस्वान् ३	गन्धर्वः २	गन्धर्वः १
मुख्यः १	मुख्यः २	राजयक्ष्मा १	मित्रः १	मित्रः २	मित्रः ३	इन्द्र १	भृङ्गराज २	भृङ्गराज १
नागः १	रुद्रः १	शोषः २	असुरः २	वरुणः २	पुष्पदन्त २	सुग्रीवः २	जयः १	मृग १
रोगः १	पापः यक्ष्मा १	शोषः १	असुरः १	वरुणः १	पुष्पदन्त १	सुग्रीवः १	दौवारि. १	पिता १

पश्चिम

गृह प्रवेशके लग्नमें वाम रविका विचार—

वामो रविर्मृत्युसुतार्थलाभतोऽ
के पञ्चभे प्राग्वदनादिमन्दिरे ।
पूर्णे तिथौ प्राग्वदने गृहे शुभो
नन्दादिके याम्यजलोत्तराननेे ॥ ५ ॥

अन्वयः—प्राग्वदनादिमन्दिरे 'क्रमात्' मृत्युसुतार्थलाभतः पञ्चभे अर्के 'सति' वामः रविः भवति । अथ पूर्णातिथौ प्राग्वदने गृहे, नन्दादिकेतिथौ क्रमात् याम्यजलोत्तराननेे गृहे प्रवेशः शुभः भवति ॥ ५ ॥

भावार्थः—यदि लग्नसे अष्टम आदि ५ राशियोंमें (अर्थात् ८।९।१०।११।-१२ वें भावोंमें) सूर्य हो तो पूर्व मुखके घरमें, ५।६।७।८।९ वें भावोंमें सूर्य हो तो दक्षिण मुखके घरमें, २।३।४।५।६ ठें भावोंमें हो तो पश्चिम मुखके घरमें और ११।१२।१।२।३ रे भावोंमें हो तो उत्तर मुखके घरमें प्रवेश करनेमें वामरवि होता है, जो प्रवेशमें अत्यन्त शुभ होता है ।

यदि पूर्वमुखका घर हो तो पूर्णा (५।१०।१५) तिथिमें, दक्षिणमुखके घरमें नन्दा (१।६।११) तिथिमें, पश्चिम मुखके घरमें भद्रा (२।७।१२) तिथिमें और उत्तर मुखके घरमें जया (३।८।१३) तिथिमें प्रवेश शुभ होता है ॥ ५ ॥

वाम रवि और प्रवेश तिथिबोधक चक्र—

पूर्वमुखके घरमें वाम रवि लग्नसे	दक्षिणमुखके घरमें वामरवि लग्नसे	पश्चिममुखके घरमें वाम रवि लग्नसे	उत्तरमुखके घरमें वाम रवि लग्नसे
८ ९ १० ११ १२ वें स्थानमें सूर्यके रहने से	५ ६ ७ ८ ९ वें स्थानमें सूर्यके रहने से	२ ३ ४ ५ ६ वें स्थानमें सूर्यके रहने से	११ १२ १ २ ३ वें स्थानमें सूर्यके रहने से
५।१०।१५ तिथिमें प्रवेश	१।६।११ में प्रवेश	२।७।१२ में प्रवेश	३।८।१३ में प्रवेश

नोट :— प्रवेशमें रिक्ता और अमावस तिथियाँ अशुभ हैं, अतः इनका उल्लेख नहीं किया गया है ॥ ५ ॥

गृहप्रवेशमें कुम्भचक्र—

वक्त्रे भू रविभात्प्रवेशसमये कुम्भेऽग्निदाहः कृताः

प्राच्यामुद्वसनं कृता यमगता लाभः कृताः पश्चिमे ।

श्रीर्वेदाः कलिरुत्तरे युगमिता गर्भे विनाशो गुदे
रामाः स्थैर्यमतः स्थिरत्वमनलाः कण्ठे भवेत्सर्वदा ॥ ६ ॥

अन्वयः—कुम्भे (कुम्भचक्रे) प्रवेशसमयेरविभात् भूः (एकं नक्षत्रं) 'कुम्भस्य' वक्त्रे 'भवति' तस्मिन् प्रवेशे कृते फलं कर्तुः अग्निदाहः स्यात् । ततः कृताः कुम्भस्य प्राच्यां भवन्ति, तेषु उद्वसनं भवति । पुनः कृताः यमगताः भवन्ति, तेषु लाभः स्यात् । पुनः कृताः पश्चिमे भवन्ति, तेषु श्रीः भवति । पुनः वेदाः उत्तरे भवन्ति, तेषु कलिः स्यात् । ततः युगमिता गर्भे भवन्ति, तेषु विनाशः स्यात् । ततः रामाः गुदे भवन्ति तेषु स्थैर्यम्, तथा ततः अनलाः कण्ठे भवन्ति, तेषु सर्वदा स्थिरत्वं भवेत् ॥ ६ ॥

भाषार्थः—गृहप्रवेशके समय सूर्यके नक्षत्रसे कुम्भ चक्रका विचार करे जिसमें सूर्यके नक्षत्रसे १ नक्षत्र कुम्भके मुखमें रहता है। उसमें प्रवेश होनेसे अग्निका भय हो। उसके बाद पूर्ववाले ४ नक्षत्रोंमें उद्वसन (पलायन) हो उसके बाद दक्षिणवाले ४ नक्षत्रोंमें लाभ हो। फिर पश्चिमवाले ४ नक्षत्रोंमें लक्ष्मी हो। फिर उत्तर वाले ४ में कलह हो। फिर भीतरवाले ४ में नाश हो। पुनः पेंदी (नीचे) के ३ में स्थिरता और उसके बाद कण्ठवाले ३ में सदा स्थिरता ऐसा फल हो। सारांश यह निकला कि सूर्यके नक्षत्रसे आगे पहले ५ नक्षत्र अशुभ, उसके बाद ८ शुभ, उसके बाद ८ अशुभ फिर ६ शुभ होते हैं। स्पष्टार्थ चक्र देखें ॥ ६ ॥

गृहप्रवेशमें कुम्भ चक्र—

सूर्य नक्षत्रसे-	१	४	४	४	४	४	३	३
स्थान और फल-	मुखे अग्निदाह	पूर्वे उद्वसनं	याम्ये लाभः	पश्चिमे श्रीः	उत्तरे कलिः	गर्भे नाशः	गुदे स्थैर्य	कण्ठे स्थिरता
विशिष्ट फल-	अशुभ		शुभ		अशुभ		शुभ	

गृहप्रवेशके बादका कर्तव्य—

एवं सुलग्ने स्वगृहं प्रविश्य
वितानपुष्पश्रुतिघोषयुक्तम् ।

शिल्पज्ञदैवज्ञविधिज्ञपौरान्
राजाऽर्चयेद्भूमिहिरण्यवस्त्रैः ॥ ७ ॥

अन्वयः—राजा एवं सुलग्ने वितान-पुष्प-श्रुतिघोष-युक्तं स्वगृहं प्रविश्य भूमि-हिरण्यवस्त्रैः शिल्पज्ञ-दैवज्ञ-विधिज्ञ-पौरान् अर्चयेत् ॥ ७ ॥

भाषार्थः—इस प्रकार शुभ लग्नमें चाँदनी-फूल-वेदपाठ आदि माङ्गलिक वस्तुओंसे अलङ्कृत गृहमें राजा प्रवेश करके भूमि-सुवर्ण-वस्त्र-आदि उपकरणोंसे शिल्पज्ञ, ज्योतिषी, आचार्य-पुरोहित और पुरवासियोंका सत्कार करे।

यहाँ राजा उपलक्षण है, सभीको यथा सम्भव करना चाहिये ॥ ७ ॥

इति मुहूर्तचिन्तामणौ गृहप्रवेशप्रकरणम् ॥ १२ ॥

अथ ग्रन्थकारवंशवर्णनम्

इस तरह इस ग्रन्थकी पूर्ति करके अन्तमें २ श्लोकोंमें ग्रन्थकार अपने वंशका परिचय देते हैं।

पितामहका वर्णन—

आसीद्धर्मपुरे षडङ्गनिगमाध्येतृद्विजैर्मण्डिते
ज्योतिर्वित्तिलकः फणीन्द्ररचिते भाष्ये कृतातिश्रमः।
तत्तज्जातकसंहितागणितकृन्मान्यो महाभूभुजां
तर्कालंकृतिवेदवाक्यविलसद्बुद्धिः स चिन्तामणिः॥ १॥

अन्वयः—षडङ्गनिगमाध्येतृद्विजैः मण्डिते धर्मपुरे ज्योतिर्वित्तिलकः, फणीन्द्ररचिते भाष्ये कृतातिश्रमः, तत्तज्जातकसंहितागणितकृत्, महाभूभुजां मान्यः, तर्कालंकृतवेदवाक्यविलसद्बुद्धिः सः (विशिष्टो मत्पितामहः) चिन्तामणिः आसीत्॥१॥

भाषार्थः—श्रीनर्मदा नदीके किनारे शिक्षा आदि षडङ्ग सहित वेदके अध्ययन करनेवाले ब्राह्मणोंसे अलङ्कृत 'धर्मपुर' नामके प्रसिद्ध ग्राममें ज्योतिषियोंके शिरोमणि, श्रीशेषनागकृत व्याकरण भाष्यमें अत्यन्त परिश्रम करनेवाले, लघु और बड़े-बड़े जातक, संहिता और गणितग्रन्थोंके रचयिता, बड़े-बड़े राजाओंके पूज्य, न्याय-अलंकार-मीमांसा-वेदान्तादि शास्त्रोंमें अति पवित्र विचार करनेवाले 'श्रीचिन्तामणि' नामके (मेरे पितामह) हुए॥ १॥

पितृवर्णन—

ज्योतिर्विद्गणवन्दिताङ्घ्रिकमलस्तत्सूनुरासीत्कृती
नाम्नाऽनन्त इति प्रथामधिगतो भूमण्डलाहस्करः।
यो रम्यां जनिपद्धतिं समकरोद्दुष्टाशयध्वंसिनीम्
टीकां चोत्तमकामधेनुगणितेऽकार्षीत्सतां प्रीतये॥ २॥

अन्वयः—तत्सूनुः ज्योतिर्विद्गणवन्दिताङ्घ्रिकमलः अनन्त इति नाम्ना प्रथां अधिगतः, भूमण्डलाहस्करः कृती (मत्पिता) आसीत्। यः रम्यां जनिपद्धतिं दुष्टाशयध्वंसिनीं समकरोत्। तथा च सतां प्रीतये उत्तमकामधेनुगणिते टीकां आकर्षीत्॥२॥

भाषार्थः—उस चिन्तामणि दैवज्ञके पुत्र 'अनन्त' इस नामसे प्रसिद्ध ज्यौतिषियोंसे पूजित चरणकमलवाले। पृथ्वी पर सूर्यके सदृश प्रतापी आचार्य (मेरे पिता) हुए। जिन्होंने दुष्ट आशयों (जन्मपत्रीके मार्गको न माननेकी विपरीत भावनावालों)को ध्वंस करनेवाली अति रक्षणीय जातक पद्धती बनायी और सज्जनोंकी प्रीतिके लिये अत्युत्तम ब्रह्मपक्ष–आर्यपक्षीय सिद्धान्तप्रतिपादक 'कामधेनु गणितमें' सुन्दर टीका की ॥ २ ॥

स्ववर्णन—

तदात्मज उदारधीर्विबुधनीलकण्ठानुजो
गणेशपदपङ्कजं हृदि निधाय रामाभिधः।
गिरीशनगरे वरे भुजभुजेषुचन्द्रै (१५२२) र्मिते
शके विनिरमादिमं खलु मुहूर्तचिन्तामणिम् ॥ ३ ॥

अन्वयः—तदात्मजः (अनन्तदैवज्ञपुत्रः) विबुधनीलकण्ठानुजः उदारधीः रामाभिधः 'अयमहम्' भुजभुजेषुचन्द्रैः मिते शके वरे गिरीशनगरे हृदि गणेशपदपङ्कजं निधाय इमं मुहूर्तचिन्तामणिं खलु विनिरमात् ॥ ३ ॥

भाषार्थः—उस श्रीअनन्त दैवज्ञका पुत्र श्रीनीलकण्ठ आचार्यका छोटा भाई श्रीरामाचार्य नामक उदारबुद्धिवाला (यह मैं) १५२२ शाकेमें अत्युत्तम परम पावन काशी नगरमें अपने हृदयमें श्रीगणेशजीके चरण कमलोंको धारणकर इस मुहूर्तचिन्तामणिको बनाया ॥ ३ ॥

इन तीन श्लोकोंसे यह सिद्ध है कि इस ग्रन्थके रचयिता नर्मदा तीरवर्ती धर्मपुर निवासी श्री चिन्तामणि दैवज्ञके पौत्र और श्री अनन्त दैवज्ञके पुत्र श्रीरामाचार्य श्रीकाशीपुरीमें शाके १५२२ में इस ग्रन्थको बनाये। इनके बड़े भाईका नाम श्रीनीलकण्ठ आचार्य था, जिनकी बनाई ताजिकनीलकण्ठी आज भारत वर्ष के कोने-कोनेमें पूजा पा रही है। इत्यलम् ॥

शुभमस्तु। सिद्धिरस्तु। श्रीरस्तु ॥

इति मुहूर्तचिन्तामणौ मैथिलभूदेवचातुरश्वरिकोपाह्वपण्डित-
श्रीकपिलेश्वरशास्त्रिकृता 'मणिप्रभा' हिन्दीटीका समाप्ता।

समाप्तश्चायं ग्रन्थः।

जन्मपत्र-विधानम्

सोदाहरण 'तत्त्वप्रभा' हिन्दी व्याख्या सहित

दैवज्ञप्रवर पं० लषणलाल झा

जन्म कुण्डली विधान के लिये अनेकानेक लघु, पुस्तक छपे हैं परन्तु किसी में परिशुद्ध इष्टकाल बनाने की विधि नहीं है, तो किसी में अष्टोत्तरी महादशा आदि का विचार ही नहीं है। अतः जन्मपत्र विधान सम्बन्धी यावतोपलब्ध ग्रन्थों का तुलनात्मक अध्ययन करके प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना की गयी है। जन्म समय की गड़बड़ी से ही फलादेश में न्यूनता होती है अतः जन्मकुण्डली बनाते समय जन्म-कालिक स्टैण्डर्ड समय को जन्म स्थानीय पंचांग के सूर्योदयादि द्वारा जन्म के समय दोनों चाहिये। इस संस्करण में इन सबों का भी विवरण दिया गया है। ३—५०

बृहज्जातकम्

सोपपत्तिक, सोदाहरण 'विमला' हिन्दीटीकोपेतम्

अनेक विश्वस्त प्रमाणों के सहित अत्यन्त सरल सुबोध हिन्दीटीका तथा नवीन उपपत्ति और अनेक उदाहरणों से युक्त यह नवीन संस्करण छात्रों के लिये अत्यधिक उपयोगी है। व्या० पं० अच्युतानन्द झा २८—८०

जातकाभरणम्

सपरिशिष्ट 'विमला' हिन्दी टीका सहित

इसकी 'विमला' टीका में संवत्सर, अयन, ऋतु, मास, पक्ष ग्रहयुति, नाभस योग, दृष्टिफल आदि की व्याख्या अत्यन्त सरल शब्दों में की गई है तथा परिशिष्ट में ग्रहों के परस्पर नैसर्गिक, तात्कालिक, संस्कृत अधिमित्रादि, राशियों के स्वामी, होरा, द्रेष्काण, सप्तमांश नवमांश, त्रिंशांश, द्वादशांश, राहु के गृह-मित्र आदि का विचार, दशा-अन्तर्दशा के गणित, स्पष्ट आयु लाने का प्रकार, भावेश फल आदि के ज्ञान-प्रकार स्पष्ट रूप से दिये गये हैं—जो इस संस्करण की सबसे बड़ी विशेषता है. १६—८०

अपरञ्च प्राप्तिस्थानम्—

चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय

क.चौड़ीगली वाराणसी—२२१००१

ज्योतिष ग्रन्थाः

- 'मुहूर्त' चिन्तामणिः । 'मणिप्रभा' हिन्दी व्याख्या सहित
- गणितीयकोष । गणितीय परिभाषा और शब्दावली
- ताजिकनीलकण्ठी । 'जलदगर्जना' संस्कृत टीका 'गूढग्रन्थिमोचनी' वासना 'उदाहरणचन्द्रिका' हिन्दी टीका सहित
- बृहज्जातकम् । 'विमला' हिन्दी टीका सहित
- जातकाभरणम् । सपरिशिष्ट 'विमला' हिन्दी टीका सहित
- केशवी जातकपद्धति । दैवज्ञदिवाकरकृत 'प्रौढमनोरमा' संस्कृत टीका एवं सान्वय 'पार्वती' हिन्दी टीका विभूषित
- वास्तुरत्नावली । 'सोदाहरण' 'सुबोधनी' संस्कृत हिन्दी व्याख्या सहित
- रमलनवरत्नम् । रमलप्रश्नसंग्रह एवं 'विमला' हिन्दी टीका सहित
- जन्मपत्रविधानम् । सोदाहरण 'तत्त्वप्रभा' हिन्दी व्याख्या सहित
- नान्हिदत्तपञ्चविंशतिका । 'गम्भीरा' संस्कृत हिन्दी टीका सहित
- चमत्कारचिंतामणिः । सान्वय 'भावबोधिनी' हिन्दी टीका सहित
- शीघ्रबोधः । 'सरला' हिन्दी टीका सहित
- रत्नगर्भाचक्रम् । 'हरिप्रिया' हिन्दी टीका सहित
- ग्रहगोचरफलम् । 'शिशुतोषिणी' हिन्दी व्याख्या सहित
- पञ्चाङ्गविज्ञानम् । हिन्दी टीका सहित
- गोलपरिभाषा । 'तत्त्वप्रकाशिका' हिन्दी टीका सहित
- शिशुबोधः । 'विमला' हिन्दी टीका सहित
- प्रश्नभूषणम् । 'विमला' संस्कृत-हिन्दी टीका सहित
- लघुपाराशरी मध्यपाराशरी । 'सुबोधिनी' संस्कृत-हिन्दी टीका सहित
- योगिनीजातकम् । 'विमला' हिन्दी टीका सहित
- घराचक्रम् । 'सुबोधिनी' हिन्दी व्याख्या सहित
- जैमिनिसूत्रम् । सोदाहरण सयुक्तिक 'तत्त्वप्रकाशिका' संस्कृत हिन्दी टीका सहित
- जातकालङ्कार । सोदाहरण, सान्वय 'रञ्जना' संस्कृत हिन्दी टीका सहित । टीकाकार—ज्योतिर्विद् प्रभाकरदत्त तिवारी
- भारतीय सुगम ज्योतिष विज्ञान । ज्योतिर्विद् प्रभाकरदत्त तिवारी

चौखम्बा अमरभारती प्रकाशन
पोस्ट बॉक्स संख्या 1138
वाराणसी-221001 (भारत)